मजदूरी नीति

एवं

सामाजिक सुरक्षा

(Labour Policy & Social Security)

सामग्री

प्रो. सी. एम. चौधरी

सहायक
प्रकाश जैन

रिसर्च पब्लिकेशन्स
त्रिपोलिया, जयपुर-2

ITI



Published by Research Publications, Tripolia Bazar, Jaipur-2

Printed at Hema Printers, Jaipur.

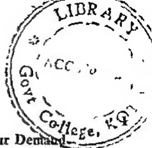


प्रकाशकीय

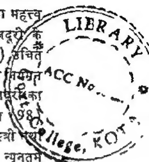
'मजदूरी नीति एवं सामाजिक सुरक्षा' का यह नवीन संस्करण नए परिवेश मे आपके समक्ष प्रस्तुत है। नवीनतम आँकड़ो और अनेक स्थलो पर नई सामग्री का समावेश कर पुस्तक को अधिक समृद्ध और उपयोगी बनाने का पूरा प्रयास किया गया है। पुस्तक 10 अध्यायों में विभाजित है जिनमें मजदूरी नीति और सामाजिक सुरक्षा के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पहलुओं पर विवेचन किया गया है। विषय-सामग्री भारत, ब्रिटेन और अमेरिका के सन्दर्भ में है। विषय-सामग्री के संयोजन की दृष्टि से पुस्तक की उपादेयता निसन्दिग्ध है। इसमे श्रम-बाजार, श्रम की माँग एवं पूर्ति, मजदूरी के सिद्धान्तों, श्रम के शोषण, मजदूरी तथा उत्पादकता, राष्ट्रीय आय-वितरण में श्रम का योगदान, मजदूरी-भुगतान की पद्धतियाँ और रीतियो, मजदूरी के राजकीय नियमन, श्रमिकों के जीवन-स्तर, मजदूरी नीति, रोजगार तथा आर्थिक विकास, रोजगार सेवा सगठन, श्रमिक भर्ती, मानव-शक्ति नियोजन, सामाजिक सुरक्षा के सगठन और वित्तीयन, कारखाना अधिनियम, श्रमिको के आवास, श्रम-कल्याण योजनाओं आदि विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के अन्त में, कुछ अध्ययन योग्य परिशिष्ट जोडे गए हैं जिनमे देश के श्रम मन्त्रालय, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा वर्तमान श्रम कानूनो मे सशोधन पर प्रकाश डाला गया है। भारत सरकार के विभिन्न स्रोतो से प्रचुर सहायता ली गई है जिससे पुस्तक की उपयोगिता विशेष रूप से बढ़ गई है।

सुधार हेतु सुझाव सहर्ष आमन्त्रित हैं। जिन प्रामाणिक स्रोतों से सहायता ली गई है उनके लिए प्रकाशक हृदय से आभारी हैं।

—प्रकाशक



अनुक्रमणिका


LIBRARY
ACC No.
College, KOT


LIBRARY



1 श्रम-बाजार की विशेषताएँ, श्रम की माँग एवं पूर्ति

(Characteristics of Labour Market, Labour Demand and Supply)

'श्रम' उत्पादन का एक सक्रिय (Active) और महत्त्वपूर्ण साधन है। एक देश में विभिन्न प्रकार के प्रचुर प्राकृतिक साधन बेकार होंगे यदि श्रम द्वारा उनका समुचित प्रयोग न किया जाए। कैरनक्रास के शब्दों मे, "यदि भूमि अथवा पूंजी का उचित प्रयोग नही होता तो केवल इन साधनों के स्वामियो को थोडी आय की हानि होगी, किन्तु यदि श्रम का उचित प्रयोग नही होता (अर्थात् वह बेरोजगार रहता है अथवा उससे अत्यधिक कार्य लेकर उसका शोषण किया जाता है) तो इससे न केवल पुरुषो और स्त्रियो मे हीनता तथा निर्धनता का प्रसार होता है, वरन् सामाजिक जीवन के स्वरूप मे ही गिरावट आती है।" श्रम के बढते हुए महत्त्व ने ही 'श्रम अर्थशास्त्र' (Labour Economics) का विकास किया है और आज अर्थशास्त्र के एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप मे इसका अध्ययन किया जाता है। श्रम अर्थशास्त्र के अन्तर्गत श्रम सम्बन्धी समस्याएँ, सिद्धान्त और नीतियाँ सन्निहित हैं। आर्थिक और सामाजिक प्रक्रिया मे श्रम के योगदान मे वृद्धि करना किसी भी सरकार का मुख्य दायित्व है। उपयुक्त मात्रा मे निपुण श्रम-शक्ति देश को विभिन्न क्षेत्रों मे उन्नति के शिखर पर पहुँचाने की कुंजी है। एक देश की सम्पन्नता बहुत कुछ इसी बात पर निर्भर है कि वहाँ के श्रम का किस तरह सृजनात्मक कार्यों में अधिकतम उपयोग किया जाता है।

प्राचीन समय मे श्रम के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोणों की प्रधानता थी। प्रथम, वस्तु दृष्टिकोण (Commodity Approach)—जिसके अन्तर्गत श्रम को वस्तु की भाँति खरीदा और बेचा जा सकता है। श्रमिक को कम पारिश्रमिक देकर उसकी सहायता से अधिकतम लाभ अर्जित करना पूंजीपतियों का उद्देश्य रहा। द्वितीय,

उदारतावादी दृष्टिकोण (Philanthrophic Welfare Approach)—जिसके अन्तर्गत श्रमिकों को एक निम्न वर्ग और आर्थिक दृष्टि से दुर्बल माना जाता है और इसीलिए उनकी मदद करना धनिक वर्ग अपना कर्त्तव्य समझता है। आज के युग में मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण (Human Relation Approach) प्रधानता पाता जा रहा है, परम्परागत विचारधारा (Traditional Approach) का महत्त्व समाप्त हो रहा है। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं में जो श्रम-नीति अपनाई गई है वह अमानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण पर आधारित है। देश की पाँचवीं योजना में व्यूह-रचना इस प्रकार की गई है कि सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था में श्रम-जनित उत्पादकता बढ़ाने के निश्चित प्रयासों को निरन्तर बल मिले। "इस सम्बन्ध में योजना में अच्छे भोजन, पोषण तथा स्वास्थ्य के स्तर, शिक्षा तथा प्रशिक्षण के उच्च स्तर, अनुशासन तथा नैतिक आचरण में सुधार और अधिक उत्पादनशील तकनीकी तथा प्रबन्धात्मक कार्यों की परिकल्पना की गई है।"[1]

श्रम का अर्थ और महत्त्व
(Meaning and Importance of Labour)

श्रम-बाजार और श्रम की माँग एवं पूर्ति के विवेचन पर आने में पूर्व श्रम के अर्थ, महत्त्व और उसकी विशेषताओं पर दृष्टिपात कर लेना प्रासंगिक होगा। अर्थशास्त्र में श्रम का अभिप्राय उस शारीरिक और मानसिक प्रयत्न से है जो आर्थिक उद्देश्य से किया जाए। कोई भी कार्य चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, जिसके बदले से मौद्रिक पारिश्रमिक मिले, श्रम कहलाता है। इस दृष्टि से मजदूर, प्रबन्धक, वकील, अध्यापक, डॉक्टर, नौकर आदि सभी के प्रयत्न श्रम के अन्तर्गत आ जाते हैं। मार्शल की परिभाषा के अनुसार "श्रम से हमारा अर्थ मनुष्य के उस मानसिक और शारीरिक प्रयास से है जो अंशत या पूर्णतया, कार्य से प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाले आनन्द के अतिरिक्त, किसी लाभ की दृष्टि से किया जाए।"[3] इस प्रकार श्रम के लिए दो बातों का होना आवश्यक है—(क) मानवीय श्रम में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के प्रयत्न सम्मिलित हैं, एवं (ख) केवल वे ही प्रयत्न सम्मिलित हैं जिनके उद्देश्य आर्थिक हैं।

श्रम का महत्त्व आज के युग में स्वयं स्पष्ट है। समाचार-पत्रों को उठा लीजिए, श्रम-सम्बन्धी सूचनाओं की प्रमुखता पाई जाती है। श्रम के बढ़ते हुए महत्त्व पर प्रो गैलब्रेथ ने कहा था—"आजकल हमें अपने औद्योगिक विकास का अधिकांश, अधिक पूँजी विनियोग से नहीं बल्कि मानवीय प्रसाधन में उन्नति करने से उपलब्ध

1 पाँचवीं योजना के प्रति दृष्टिकोण (1974-79), भारत सरकार योजना आयोग (जनवरी, 1973), पृष्ठ 54.

2 *Galbraith* : 'Productivity' Spring Number 1968, p 510

3 *Marshall* : Principles of Economics, p. 54.

होता है। इस प्रसाधन से हमें विनियोग की अपेक्षा कहीं अधिक प्रतिफल मिलता है।"[3] पर्याप्त और कुशल श्रम के माध्यम से साधनों का अधिकतम उपयोग करके अर्थ-व्यवस्था को सम्पन्न और सफल बनाया जा सकता है। श्रमिकों की सहायता से देश की विभिन्न योजनाएँ पूरी की जाती हैं। श्रम के आर्थिक महत्त्व को इन बिन्दुओं में रखा जा सकता है—

1. अधिक उत्पादन की मांग (Demand for Increased Production)—आधुनिक युग में उत्पादन में तेजी से वृद्धि करने की मांग जोर पकड़ रही है। औद्योगिक विकास हेतु उत्पादन में वृद्धि होना आवश्यक है। औद्योगिक उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्त्वों में श्रम की कार्यकुशलता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत में राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि आन्दोलन चलाने के लिए राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council) की भी स्थापना की गई है।

2. तीव्र औद्योगीकरण (Rapid Industrialisation)—वर्तमान युग औद्योगीकरण का युग है। विश्व में तीव्र औद्योगीकरण की होड़ सी लग गई है। कृषि-प्रधान देशों, जैसे—चीन, भारत, पाकिस्तान आदि ने भी अपनी-अपनी अर्थ-व्यवस्थाओं का तीव्र औद्योगीकरण करने की विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन का मार्ग अपनाया है। तीव्र औद्योगीकरण द्वारा देशवासियों के जीवन-स्तर को उन्नत बनाया जा सकता है। उत्पादन के साधनों में श्रम और पूँजी, महत्त्वपूर्ण है, लेकिन श्रम सबसे महत्त्वपूर्ण उत्पादन का साधन है। इसके सक्रिय सहयोग के बिना उत्पादन की कोई भी क्रिया सुचारु रूप से नहीं चलाई जा सकती।

3. आधुनिकीकरण (Modernisation)—वर्तमान युग में गला-काट प्रतिस्पर्धा (Cut-throat Competition) का बोलबाला है। इस प्रतिस्पर्धा में वही देश सफल हो सकता है जिसने तीव्र औद्योगीकरण के साथ-साथ उत्पादन के साधनों का आधुनिकतम उपकरणों, विधियों के साथ उपयोग किया है। आधुनिकतम उत्पादन के तरीकों से वस्तु का उत्पादन बड़े पैमाने पर निम्न लागत पर किया जा सकता है और वस्तु की किस्म भी अच्छी होती है। इसके लिए श्रम-विभाजन, विशिष्टीकरण, नवीनीकरण, विवेकीकरण और प्रमापीकरण का सहारा लेना नितान्त आवश्यक है। विवेकीकरण व आधुनिकीकरण से श्रम प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप श्रम अधिक जागरूक हो गया है।

4. प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी (Participation of Labour in Management)—प्राचीन समय में औद्योगिक लाभ तथा उद्योग-धन्धों के प्रबन्ध का कार्य पूँजीपतियों व प्रबन्धकों के हाथ में था। उस समय 'अँगूठे का नियम' (Rule of Thumb) का बोलबाला था। वर्तमान समय में इस विचारधारा में परिवर्तन किया गया है। अब औद्योगिक प्रजातन्त्र (Industrial Democracy) का विचार औद्योगिक क्षेत्र में पनपने लगा है। इसके अन्तर्गत श्रम को केवल मात्र

उत्पादन का एक साधन ही नहीं समझा जाता बल्कि उसको औद्योगिक प्रजातन्त्र के अन्तर्गत प्रबन्ध के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण भागीदार समझा जाने लगा है। भारत सरकार ने भी अपनी श्रम नीति में एक नया अध्याय श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र में प्रबन्धकों के साथ भागीदारी देकर जोड़ दिया है। श्रमिकों को प्रबन्ध में भागीदारी न केवल सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में ही दी है बल्कि निजी क्षेत्र के उद्योगों में भी यह भूमिका प्रदान की गई है।

5. औद्योगिक शान्ति की आवश्यकता (Need for Industrial Peace)–तीव्र औद्योगीकरण के माध्यम से देश का तीव्र आर्थिक विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उस देश में औद्योगिक वातावरण कैसा है। औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि उत्पादन के साधनों के सक्रिय सहयोग पर निर्भर है। उत्पादन के साधनों में श्रम और पूंजी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इन दोनों साधनों में यदि सक्रिय सहयोग नहीं होगा तो उत्पादन में बाधा पड़ेगी। मालिक और मजदूरों में अच्छे सम्बन्ध न होने पर आए दिन हड़तालें, तालाबन्दी, घेराव, धीमी गति से कार्य करना आदि औद्योगिक उत्पादन में बाधाएँ डालते हैं। इस आपसी मतभेद को दूर कर, स्वच्छ एवं मधुर औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करने सम्बन्धी चुनौती का सामना प्रत्येक राष्ट्रीय सरकार के सामने है।

6. श्रम कानूनों की बाढ़ (Plethora of Labour Laws)—श्रमिकों के कार्य की दशाओं एवं उनके जीवन-स्तर को उन्नत करने की ओर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organisation) एक महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। प्रत्येक देश में इस संगठन द्वारा निर्धारित प्रस्तावों को लागू करने के लिए सरकार को श्रम कानूनों में संशोधन करने तथा नए कानून बनाने पड़ते हैं। सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में भी कुछ वर्षों में संशोधन हुए हैं ताकि श्रमिक व उसके आश्रितों को भविष्य की अनिश्चितता का सामना न करना पड़े।

7 श्रमिकों की राजनीति में रुचि (Interest of Labour in Politics)–किसी भी देश में श्रमिकों का बाहुल्य होना स्वाभाविक है। वे अपने मताधिकार द्वारा देश की राजनीति को प्रभावित करते है। इंग्लैण्ड में श्रमिकों की सरकार बनी है। हमारे देश में भी श्रमिक नेता विभिन्न दलों की ओर से चुनाव जीत कर संसद् तथा विधान-सभाओं में श्रमिकों का हित देखते हैं।

श्रम की विशेषताएँ
(Characteristics of Labour)

श्रम उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक साधन है। यह अन्य साधनों की तुलना में भिन्न है। इसकी अपनी कुछ विशेषताएं होती है, जो कि अन्य साधनों में नहीं पाई जाती हैं। इन विशेषताओं के कारण ही श्रम सम्बन्धी विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। श्रम की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. श्रम उत्पादन का सक्रिय साधन (Active Factor)—उत्पादन के अन्य साधन जैसे भूमि व पूंजी निष्क्रिय (Passive) साधन हैं। वे अपने आप उत्पादन

नहीं कर सकते, लेकिन श्रम बिना अन्य साधनों की सहायता से भी उत्पादन कर सकता है।

2. श्रम को श्रमिक से पृथक् नहीं किया जा सकता (Labour is inseparable from the Labourer)–उत्पादन के अन्य साधनों को उनके स्वामियों से पृथक् किया जा सकता है, जैसे भूमि को भू-स्वामी तथा पूंजी को पूंजीपति से पृथक् किया जा सकता है, लेकिन श्रम को श्रमिक से पृथक् नहीं किया जा सकता। यदि एक श्रमिक अपना श्रम बेचना चाहता है तो उसे स्वयं को आकर कार्य करना पड़ेगा।

3. श्रमिक श्रम बेचता है लेकिन स्वयं का मालिक होता है (Labourer sells his labour but he himself is his master)—श्रमिक अपना श्रम बेचता है। वह अपने को नहीं बेचता तथा जो भी गुण व कुशलता उसमे होते है, उनका वह मालिक होता है। श्रम पर किया गया विनियोग (प्रशिक्षण व दक्षता) इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होता है।

4. श्रम नाशवान है (Labour is perishable)—श्रम ही एक ऐसा साधन है जिसका संचय नहीं किया जा सकता। यदि एक श्रमिक एक दिन कार्य नहीं करता है तो उसका उस दिन का श्रम सदैव के लिए चला जाता है। इसी कारण श्रमिक अपना श्रम बेचने के लिए तैयार रहता है।

5 श्रमिक की सौदाकारी शक्ति दुर्बल (Labour has got weak bargaining power)—श्रमिक अपना श्रम बेचता है तथा श्रम के क्रेता पूंजीपति होते हैं। मालिको की तुलना में श्रमिको की सौदा करने की शक्ति कमजोर होती है क्योंकि श्रम की प्रकृति नाशवान है, वह प्रतीक्षा नहीं कर सकता, वह आर्थिक दृष्टि से दुर्बल होता है, वह अज्ञानी, अशिक्षित व अनुभवहीन होता है। श्रम संगठन दुर्बल होते हैं, बेरोजगारी पाई जाती है। इन्हीं बातों के कारण श्रमिको को निम्न मजदूरी देकर पूंजीपति उनका शोषण करते हैं।

6. श्रम की पूर्ति में तुरन्त कमी करना सम्भव नहीं (Supply of labour cannot be curtailed immediately)—मजदूरी मे कितनी ही कमी क्यों न करदी जाए श्रम की पूर्ति तुरन्त घटायी नहीं जा सकती। श्रम की पूर्ति मे तीन रूपों मे कमी की जा सकती है–जनसख्या को कम करना, कार्यक्षमता मे कमी करना तथा श्रमिको को एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय मे स्थानान्तरित करना परन्तु इसमे समय लगेगा।

7 श्रम पूंजी से कम उत्पादक (Labour is less productive than capital)—श्रम को अधिक उत्पादन हेतु पूंजी का सहारा लेना पड़ता है। पूंजी की तुलना मे श्रम कम उत्पादक होता है। मशीन से अधिक उत्पादन सम्भव होता है।

8. श्रम पूंजी से कम गतिशील (Labour is less mobile than capital)—श्रम मानवीय साधन होने के कारण कम गतिशील होता है। यह वातावरण, फैशन, आदत, रुचि, धर्म, भाषा आदि तत्त्वों से प्रभावित होता है जबकि पूंजी नहीं।

9. श्रम उत्पादन का साधन ही नहीं बल्कि साध्य भी (Labour is not only a factor of production but is also an end of production)—श्रम न केवल उत्पादन में एक साधन के रूप में योग देता है बल्कि यह अन्तिम उत्पादित वस्तुओं का उपभोग भी करता है तथा उत्पादन सम्बन्धी समस्याओं का भी इसमें घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। श्रम की निर्धनता, आवास समस्या, बेकारी की समस्या आदि भी उसे प्रभावित करती हैं।

10. श्रम मानवीय साधन (Labour is human factor)—श्रम एक सजीव उत्पादन का साधन होने के कारण यह न केवल आर्थिक पहलू से प्रभावित होता है बल्कि नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक पहलुओं का भी इस पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए श्रम समस्याओं के अध्ययन में इन सभी का समुचित समावेश करना होगा।

11. श्रम में पूंजी का विनियोग (Capital investment in labour)—अन्य उत्पादन के साधनों के समान श्रम की कार्यक्षमता में वृद्धि करनी पड़ती है। श्रम की कार्यक्षमता ही उसके जीवन-स्तर को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। परम्परागत नियोजक (Traditional Employers) श्रम की कार्यकुशलता में वृद्धि पर किए गए व्यय को अपव्यय (Wastage) समझते हैं, लेकिन आधुनिक नियोजक (Modern Employers) श्रम की कार्यकुशलता में वृद्धि करने के लिए कई कल्याणकारी कार्य (Welfare activities) और शिक्षा तथा प्रशिक्षण पर व्यय करते हैं। इससे श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है और परिणामस्वरूप न केवल श्रमिकों को ही लाभ होता है बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है तथा नियोजकों (Employers) को लाभ प्राप्त होता है। इस तरह के व्यय को 'मानवीय पूंजी' (Human Capital) अथवा मानवीय साधनों पर विनियोग (Investment on Human Factors) कहा जाता है। इसके अन्तर्गत कार्य की दशाओं में सुधार, आवास व्यवस्था में सुधार शिक्षा एवं प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाओं में वृद्धि आदि सम्मिलित हैं। यही कारण है कि भारत सरकार ने भी श्रमिकों की शिक्षा हेतु एक केन्द्रीय बोर्ड (Central Board for Workers' Education) की स्थापना 1958 में की थी।

निष्कर्षतः, श्रम के साथ एक वस्तु के समान व्यवहार नहीं करना चाहिए क्योंकि वस्तु की विशेषताएँ श्रम की विशेषताओं से भिन्न होती हैं। यही कारण है कि वर्तमान समय में कल्याणकारी तथ्य (Welfare State) की स्थापना से श्रम के सम्बन्ध में परम्परागत विचारधारा (Traditional Approach) जो कि वस्तुगत दृष्टिकोण (Commodity Approach) कहलाता था उसका महत्त्व अब समाप्त हो गया है। इसके साथ ही आधुनिकतम दृष्टिकोण, जिसे कि मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण (Human Relation Approach) कहा जाता है, का मार्ग धीरे-धीरे प्रशस्त हो रहा है। भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में श्रम-नीति में नए-नए अध्याय जोड़कर इसी विचारधारा की पुष्टि की जा रही है।

श्रम का वर्गीकरण
(Classification of Labour)

श्रम के मुख्य प्रकार निम्नलिखित बताए जाते हैं—

(1) उत्पादक तथा अनुत्पादक श्रम—इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद रहा है। वणिकवादी अर्थशास्त्रियों का मत था कि वही श्रम उत्पादक है जो निर्यातक वस्तुओं का उत्पादन करता है। निर्बाधावादी अर्थशास्त्रियों ने प्राथमिक उद्योग (कृषि) में लगे श्रम को ही उत्पादक माना है। बाद में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने भौतिक वस्तुओं (मेज, बर्तन, मशीन आदि) के उत्पादन में लगे श्रम को उत्पादक बतलाया तथा अभौतिक वस्तुओं (डॉक्टर, वकील आदि की सेवाएँ) में लगे श्रम को अनुत्पादक माना। मार्शल ने उत्पादक श्रम का और अधिक विस्तृत दृष्टिकोण लिया और यह मत रखा कि जो प्रयत्न उपयोगिता का सृजन करता है और अपनी उद्देश्य-पूर्ति में सफल होता है उसे 'उत्पादक श्रम' कहना चाहिए, इसकी विपरीत दशाओं में श्रम को अनुत्पादक मानना चाहिए।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने, मार्शल की भाँति, उत्पादक श्रम का प्रयोग अधिक विस्तृत दृष्टिकोण से ही किया है। आधुनिक मत के अनुसार वह कोई भी प्रयत्न जो उपयोगिता का सृजन करे उत्पादक श्रम है और जो उपयोगिता का सृजन न करे वह अनुत्पादक श्रम है। यहाँ उपयोगिता का आशय है 'आवश्यक-सन्तुष्टि की शक्ति' (Want satisfying power)। प्रो० टॉमस ने 'उपयोगिता सृजन' के स्थान पर 'मूल्य सृजन' (Production of Value) का प्रयोग अधिक उपयुक्त माना है। उनका मत है कि अनेक वस्तुओं में उपयोगिता तो बहुत अधिक हो सकती है पर मूल्य का अभाव हो सकता है, अतः उन सभी श्रमों को जो मूल्य-सृजन करें (न कि उपयोगिता सृजन करें), उत्पादक श्रम कहा जाना चाहिए। कभी-कभी श्रम उत्पादक और अनुत्पादक नहीं होता। उदाहरण के लिए यदि एक चोर चोरी करता है तो वह अपने उद्देश्य में तो सफल हो जाता है पर इस श्रम को उत्पादक नहीं कहा जाएगा क्योंकि यह काम समाज-विरोधी है। प्रो० टाजिग ने ऐसे श्रम को समाज-विरोधी श्रम की संज्ञा दी है।

(2) कुशल एवं अकुशल श्रम—मानसिक एवं शारीरिक श्रम को पूरा करने में यदि शिक्षा, प्रशिक्षण, निपुणता आदि की आवश्यकता है तो वह कुशल श्रम है, जैसे अध्यापक, डॉक्टर, मशीन-चालक आदि का श्रम। दूसरी ओर अकुशल श्रम वह है *जिसे करने के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण, ज्ञान अथवा निपुणता की आवश्यकता* नहीं होती, जैसे घरेलू नौकरी, कुली, चपरासी आदि का श्रम। अकुशल श्रम की लागत कम होने के कारण ही उसकी मजदूरी कम होती है।

(3) मानसिक तथा शारीरिक श्रम—जिस श्रम में शरीर की अपेक्षा मस्तिष्क अथवा बुद्धि की प्रधानता हो उसे मानसिक श्रम कहा जाएगा जैसे वकील, डॉक्टर जज आदि का श्रम। दूसरी ओर जिस श्रम में मस्तिष्क अथवा बुद्धि की अपेक्षा शरीर का अधिक प्रयोग होता हो उसे शारीरिक श्रम कहा जाएगा, जैसे उद्योग में काम करने वाले मजदूर, कुली, घरेलू नौकर आदि का श्रम। यह बात

अशान्ति, अराजकता आदि के वातावरण मे श्रमिको की कार्यक्षमता का ह्रास होना है।

(3) कार्य करने की दशाएँ—कार्य करने की दशाएं श्रमिको की कार्यक्षमता को अनुकूल या प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती है—

(i) रुचि के अनुकूल कार्य—श्रमिक को अपनी इच्छा और रुचि के अनुकूल कार्य मिलता रहे तो उसकी कार्यक्षमता विकसित होती है। अरुचिपूर्ण कार्यों से श्रमिको की कार्यक्षमता का ह्रास होता है।

(ii) उचित पारिश्रमिक—श्रमिक के अनुकूल उचित पारिश्रमिक मिलने पर श्रमिको मे कार्य के प्रति लगन और उत्साह बना रहता है। आय अधिक होने मे सुख-सुविधाओ के कारण उनके स्वास्थ्य पर उचित प्रभाव पड़ता है जिससे उनकी कार्य क्षमता बढ़ती है। बोनस, पेन्शन, सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक बीमा आदि की दशाएँ श्रमिको को अधिक कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

(iii) कार्य-स्थान—श्रमिक जिस स्थान पर कार्य करता है यदि वही का वातावरण गन्दा और अस्वास्थ्यकर है तो निश्चित रूप से उसकी कार्यक्षमता कम होगी। पर यदि स्थान स्वच्छ है, हवादार और स्वास्थ्यकर है तो श्रमिको की कार्यक्षमता बढेगी। वे प्रसन्नचित्त होकर काम करेंगे जिससे उत्पादन भी अधिक होगा।

(iv) अच्छी मशीनों, अच्छे औजारों आदि की प्राप्ति—जिन श्रमिको के पास काम करने के लिए अच्छी मशीनें, अच्छे औजार आदि उपलब्ध होंगे उनकी कार्यक्षमता उन मजदूरो की कार्यक्षमता से अधिक होगी जिनके पास काम करने के लिए पुरानी किस्म की मशीने हैं और जिनके औजार अच्छे नही है। अधिकांश भारतीय कारखानों का आधुनिकीकरण न होने से और कार्य करने की समुचित सुविधाओ का अभाव होने से श्रमिको की कार्यक्षमता नीची है।

(v) कार्य की अवधि—श्रमिकों को यदि उचित समय से अधिक कार्य करना पड़े और विश्राम तथा अवकाश की नियमितता न हो तो उनकी कार्यक्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

(vi) भावी उन्नति की दशा—श्रमिको के लिए भावी उन्नति की आशा एक प्रेरक शक्ति होती है। यदि कार्य करते रहने पर भी भविष्य मे उन्नति की आशा न हो तो श्रमिक की कार्य के प्रति रुचि नही बनी रहेगी और न ही वह कार्य कुशलता पर ध्यान देगा।

(vii) कार्य-परिवर्तन एवं स्वतन्त्रता—यदि श्रमिको के कार्य मे थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया जाता रहे तो कार्य के प्रति उनमे शुष्कता या उदासीनता के भाव जाग्रत नहीं होगे। कार्य करने की इच्छा बनाए रखने के लिए यह भी उचित है कि श्रमिको को समुचित स्वतन्त्रता दी जाए।

(4) प्रबन्ध की योग्यता—श्रमिकों की कार्य-कुशलता संगठनकर्त्ता अथवा प्रबन्धकर्त्ता की योग्यता पर भी निर्भर करती है। यदि प्रबन्धक योग्य और अनुभवी

हैं तो वह श्रमिकों के बीच उनकी रुचि और योग्यता के अनुसार कार्य का वितरण करेगा। एक निपुण प्रबन्धकर्ता उत्पादन के अन्य साधनों के साथ श्रम को अनुकूलतम अनुपात में मिलाने की चेष्टा करेगा और श्रमिकों को उचित सुविधाएँ देने की व्यवस्था करेगा। इन सब बातों के फलस्वरूप श्रमिकों की कार्य-कुशलता विकसित होगी। यदि प्रबन्धक अयोग्य और अकुशल है तब न तो वह श्रमिकों का उचित संगठन और समन्वय ही कर पाएगा और न ही ऐसी दशाएँ उत्पन्न कर सकेगा जो श्रमिकों की कार्यक्षमता को बढ़ाती हैं।

(5) विविध कारण—कुछ और भी तत्त्व हैं जो श्रमिकों की कार्यक्षमता को प्रभावित करते हैं। ये निम्न हैं—

(i) श्रमिक संघों का प्रभाव—विघटनकारी श्रमिक संघ श्रमिकों की कार्यक्षमता का ह्रास करेंगे जबकि व्यवस्थित और शक्तिशाली श्रमिक संघ श्रमिकों की सौदेबाजी की शक्ति को बढ़ा सकेंगे, उनके लिए स्वस्थ कार्य दशाएँ उत्पन्न करा सकेंगे, और इस प्रकार श्रमिकों की कार्यक्षमता को विकसित करने में सहायक होंगे।

(ii) श्रमिकों तथा मालिकों में सम्बन्ध—यदि श्रमिकों और मालिकों के बीच सहयोगपूर्ण सम्बन्ध हैं तो श्रमिकों की कार्यक्षमता अधिक होगी और उत्पादन अच्छा और अधिक हो सकेगा। इसके विपरीत इन दोनों के सम्बन्ध तनावपूर्ण हैं तो हड़तालों, असहयोग आदि के दौर चलेंगे जिससे न केवल उत्पादन घटेगा बल्कि श्रमिकों की कार्यक्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

(iii) सरकारी नीति—सरकार उपयोगी श्रम अधिनियम पारित कर श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि कर सकती है। सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम के विस्तार, श्रमिकों को शोषण से मुक्त करने सम्बन्धी कानूनों के निर्माण आदि द्वारा सरकार श्रमिकों की कार्यकुशलता में उल्लेखनीय वृद्धि ला सकती है। पर यदि निष्क्रिय है तो श्रमिकों के शोषण किए जाने के द्वार सदैव खुले रहेंगे।

(iv) श्रमिकों का प्रवासी होना—यदि श्रमिक किसी व्यवसाय में जमकर काम करने की अपेक्षा 'लुढ़कते लोटे' हैं और जल्दी ही जल्दी व्यवसाय तथा स्थान परिवर्तन करते हैं तो वे किसी भी काम में निपुण नहीं हो सकेंगे।

(v) भारत में श्रमिकों की कार्यक्षमता—भारत में श्रमिकों की कार्यक्षमता विकसित राष्ट्रों के श्रमिकों की कार्यकुशलता की तुलना में बहुत कम है। सांख्यिकीय आँकड़ों से पता चलता है कि लौह-इस्पात उद्योग में अमेरिकी श्रमिकों की कार्यक्षमता अन्य देशों के श्रमिकों से लगभग 10 गुनी अधिक है। बहुत कुछ इसी प्रकार की स्थिति अनेक दूसरे उद्योगों में है। भारतीय श्रमिकों में अशिक्षा, प्रशिक्षण की कमी, स्वस्थ कार्य-दशाओं की कमी, कम वेतन आदि विभिन्न कारणों से निराशा का वातावरण प्रबल है। उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि के लिए राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों, कार्यों की दशाओं, संगठन की योग्यता आदि विभिन्न तत्त्वों में प्रभावी परिवर्तन करने होंगे।

श्रम की माँग एवं पूर्ति
(Demand and Supply of Labour)

श्रम की माँग (Demand of Labour)

श्रम की मांग किसी वस्तु या सेवा के उत्पादकों द्वारा की जाती है क्योंकि श्रम की सहायता से उत्पादन-कार्य सम्भव होता है। दूसरे शब्दों में श्रम की मांग उसकी उपयोगिता के कारण नहीं की जाती है, बल्कि श्रम की उत्पादकता पर ही उसकी मांग निर्भर करती है अर्थात् श्रम की मांग एक व्युत्पन्न मांग (Derived Demand) है। जिस वस्तु का उत्पादन श्रम की सहायता से किया जाता है उस वस्तु की मांग पर श्रम की मांग निर्भर करती है। यदि वस्तु की मांग अधिक है तो श्रम की मांग भी अधिक होगी अन्यथा नहीं। एक फर्म श्रम की उस समय तक मांग करती रहती है जब तक कि श्रम को दी जाने वाली मजदूरी उसकी सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity) से कम रहती है। एक दी हुई मजदूरी दर पर विभिन्न उत्पादकों द्वारा जितनी मात्रा में श्रम की मांग की जाती है उनके योग को श्रम की कुल मांग (Total Demand for Labour) कहते हैं। दूसरे शब्दों में, एक उद्योग की विभिन्न फर्मों के मांग वक्रों को मिलाकर सम्पूर्ण उद्योग का जो मांग वक्र बनेगा वही श्रम की मांग को बताएगा। श्रम की मांग को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं—

1. श्रम की उत्पादकता और उसको दिया जाने वाला पारिश्रमिक—श्रम की मजदूरी से यदि उसकी सीमान्त उत्पादकता का मूल्य (Value of Marginal Productivity or V M P) अधिक होता है तो श्रम की मांग अधिक होगा।

2. उत्पादन की मात्रा—यदि किसी वस्तु का अधिक उत्पादन किया जाता है और उसमें श्रमिक अधिक लगाए जाते हैं तो श्रम की अधिक मांग की जाएगी।

3. उत्पादन विधियाँ (Production Techniques)—जिस वस्तु का उत्पादन पूँजीगत उत्पादन विधि द्वारा होता है, उसमें मशीनें अधिक लगाई जाती हैं तथा श्रम की मांग कम की जाती है।

4 आर्थिक विकास का स्तर—ऊँची दर से आर्थिक विकास करने हेतु श्रम की अधिक मांग की जाती है तथा धीमी गति से विकास करने पर श्रम की मांग कम होती है।

5. उत्पादन के अन्य साधनों का पुरस्कार (Remuneration) तथा श्रम के प्रतिस्थापन की सम्भावना—यदि उत्पादन के अन्य साधन महँगे हैं तथा श्रम को उनकी जगह लगाकर उत्पादन सम्भव होता है तो श्रम की मांग अधिक होगी। इसके विपरीत अन्य साधन सस्ते तथा श्रम के स्थानापन्न सम्भव न होने पर श्रम की मांग कम ही होगी।

एक उद्योग में श्रम की मांग विभिन्न फर्मों के मांग वक्र का योग होती है। उद्योग में श्रम का मांग वक्र (Demand Curve of Labour) बाईं से नीचे दाईं

ओर गिरता है जो मजदूरी तथा श्रम की मांग के बीच विपरीत सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है अर्थात् ऊँची मजदूरी पर कम श्रम की माँग की जाती है तथा नीची मजदूरी पर अधिक श्रम की माँग होगी। श्रम की माँग अल्पकाल मे बेलोचदार होती है जबकि दीर्घकाल मे यह लोचदार होती है।

श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)

इसका अर्थ विभिन्न मजदूरी दरों पर किसी देश की कार्यशील जनसंख्या (Working Population) का कार्य के कुल घण्टो (Total working hours) पर कार्य करने के लिए तैयार होना है। किसी भी देश मे श्रम की पूर्ति अनेक तत्वों पर निर्भर करती है, जैसे-मजदूरी का स्तर, देश की कार्यशील जनसंख्या, श्रमिकों की कार्यकुशलता, कार्य करने के घण्टों की संख्या और देश की जनसंख्या मे वृद्धि की दर आदि। देश की जनसंख्या मे वृद्धि होने पर तथा कार्यशील जनसंख्या का भाग अधिक होने पर श्रम की पूर्ति मे वृद्धि होगी तथा कार्यकुशलता में वृद्धि होने पर भी श्रम की पूर्ति के गुणात्मक पहलू (Qualitative Aspects) पर भी प्रभाव पडेगा। श्रम के कार्य-आराम अनुपात (Work-Leisure Ratio) तथा श्रम संघों (Trade Unions) का भी श्रम की पूर्ति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

श्रम की पूर्ति के निर्धारक तत्त्व—किसी भी देश मे श्रम की पूर्ति के निर्धारक तत्त्व या उसे प्रभावित करने वाले तत्त्व (घटक) चार है—

1. जनसंख्या,
2. कार्य एवं आराम अनुपात,
3. श्रमिकों की कार्यकुशलता, एवं
4. वास्तविक मजदूरी की दर।

1. जनसंख्या तथा श्रम-पूर्ति—जनसंख्या और श्रम की पूर्ति मे घनिष्ठ सम्बन्ध है—

(i) अन्य बातो के समान रहते हुए, जनसंख्या का आकार जितना अधिक होगा श्रम की पूर्ति भी उतनी ही अधिक होगी। उदाहरणार्थ, भारत और चीन की जनसंख्या विश्व मे सबसे अधिक है और इन देशो मे श्रम की पूर्ति भी सर्वाधिक है।

(ii) जनसंख्या वर्द्धन की गति जितनी तीव्र होगी उतनी ही श्रम-शक्ति मे भी तेजी से वृद्धि होगी। उदाहरणार्थ, भारत में जनसंख्या वृद्धि की दर लगभग 2.5 प्रतिशत है और श्रम की पूर्ति मे भी तेजी से वृद्धि हो रही है।

(iii) श्रम की पूर्ति और जनसंख्या वृद्धि मे समयान्तर (Time Lag) होता है। आज जो बच्चा जन्म लेता है वह लगभग 15 वर्ष बाद ही श्रम की पूर्ति मे सहायक होता है। अर्द्ध विकसित कृषि प्रधान अर्थ-व्यवस्थाओ मे अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों के बच्चे स्कूल आदि नही जाते, अतः वे जल्दी से ही श्रम मे प्रवेश कर जाते हैं। दूसरी ओर उन्नत और विकसित राष्ट्रों मे बच्चे श्रम शक्ति मे देर से प्रवेश करते है।

(iv) यदि कार्यशील जनसंख्या में मृत्युदर कम और जन्मदर अधिक है और साथ ही बच्चों की मृत्युदर में भी कमी है तो श्रम की पूर्ति तीव्र वेग से बढती है। पिछडी अर्थ-व्यवस्थाओं में बच्चों की मृत्युदर प्राय बहुत अधिक होती है और नए बच्चों में लगभग 50 प्रतिशत ही श्रम करने की आयु तक जीवित रहते हैं।

(v) जनसंख्या की आयु-वर्ग संरचना (Age Composition) भी श्रम की पूर्ति को ही प्रभावित करती है। आर्थिक दृष्टि से प्राय 15-60 आयु-वर्ग की जनसंख्या उत्पादक मानी जाती है, अतः जिस देश में इस आयु-वर्ग का प्रतिशत जितना अधिक होगा वहाँ श्रम की पूर्ति भी उतनी ही अधिक होगी। एक अध्ययन के अनुसार विकसित अर्थ-व्यवस्थाओं की लगभग 62 से 65 प्रतिशत जनसंख्या इस आयु-वर्ग में आती है जबकि पिछड़े देशों में यह अनुपात 55 प्रतिशत के आसपास ही पाया जाता है। साथ ही जहाँ विकसित राष्ट्रों में इस आयु-वर्ग में काम न करने योग्य लोगों का प्रतिशत बहुत कम होता है वहाँ पिछड़े देशों में यह प्रतिशत काफी अधिक पाया जाता है।

(vi) जीवन काल का भी श्रम की पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश में औसत आयु कम है तो कार्यशील जनसंख्या में यह श्रम बहुत कम समय तक रह पाएगा और यदि जीवन-काल अधिक है तो वह श्रम कार्यशील जनसंख्या में अधिक समय तक टिक सकेगा और श्रम की पूर्ति अपेक्षाकृत अधिक होगी। अर्द्ध-विकसित देशों में औसत आयु प्राय नीची पाई जाती है। भारत में 1951 में औसत आयु 32 वर्ष की थी जो 1971 में बढ़कर 52 वर्ष हो गई।

(vii) लोगों की प्रकृति और श्रम की पूर्ति में भी सम्बन्ध है। यदि कार्यशील आयु वर्ग के व्यक्ति आलसी, कामचोर और कार्य करने के अनिच्छुक हैं तो श्रम की पूर्ति उसी सीमा तक कम हो जाएगी। वास्तव में लोगों में काम करने की रुचि और प्रबल इच्छा से श्रम-शक्ति में वृद्धि होती है।

(viii) देश की जनसंख्या का विदेशों में प्रवास होने से श्रम की पूर्ति कम होती है। जबकि देश में विदेशों से जनसंख्या का आप्रवास होने पर श्रम की पूर्ति बढती है।

(ix) जनसंख्या की मनोवैज्ञानिक स्थिति भी श्रम की पूर्ति को प्रभावित करती है। यदि जनसंख्या का मानसिक स्तर ऊँचा है और जीवन आकांक्षाओं और अभिलाषाओं से पूर्ण है तो श्रम-शक्ति का विकास होगा और यदि जनसंख्या मनोवैज्ञानिक निराशा से पीड़ित है तो श्रम की पूर्ति कम होगी।

2 कार्य एवं आराम अनुपात—जिस प्रकार जनसंख्या श्रम की मात्रात्मक पूर्ति को प्रभावित करती है उसी प्रकार काम के घण्टों और शान्तिपूर्ति में भी सम्बन्ध है। यदि श्रमिक कम आराम और अधिक कार्य करना चाहता है तो श्रम की पूर्ति बढ़ेगी और यदि अधिक आराम व कम कार्य करना है तो श्रम की पूर्ति घटेगी। मजदूरी बढने पर श्रमिक अधिक आराम भी कर सकता है या अधिक कार्य कर सकता है। यह मजदूरी बढने का प्रतिस्थापन प्रभाव (Substitute Effect of

Unincreased Wage Rate) कहलाता है। इस स्थिति में मजदूरी में वृद्धि होने पर श्रम का पूर्ति वक्र दाएँ ऊपर की ओर उठेगा क्योंकि श्रमिक मजदूरी बढ़ने के कारण अधिक कार्य करेगा। दूसरी ओर मजदूरी बढने पर श्रमिक अधिक आरामतलब भी हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप श्रम-पूर्ति वक्र ऊपर उठने की बजाय बाईं ओर झुका हुआ (Backward Bending) होगा और यह मजदूरी वृद्धि का आय प्रभाव (Income Effect) कहा जाएगा।

3. श्रम की कार्यकुशलता—कार्यकुशता अधिक होने पर उत्पादन पर वैसा ही प्रभाव होगा जैसे कि श्रम की पूर्ति बढाने पर अधिक उत्पादन सम्भव होगा। इसके विपरीत कार्यकुशलता कम होने पर अधिक श्रमिक लगाने के बावजूद भी उत्पादन अधिक प्राप्त नहीं किया जा सकेगा।

4. वास्तविक मजदूरी की दर—सामान्यता मजदूरी की दर में वृद्धि श्रम की कुल पूर्ति को बढाती है। प्राय: होता यह है कि प्रारम्भ में वास्तविक मजदूरी की दर बढ़ाने के साथ-साथ श्रम की पूर्ति भी बढती है अर्थात् श्रमिक प्रतिदिन अधिक घण्टे कार्य करते है। लेकिन एक सीमा के बाद मजदूरी की दर में वृद्धि होने के फलस्वरूप श्रम की पूर्ति में कमी प्रारम्भ हो जाती है क्योंकि पहले की अपेक्षा कम समय तक काम करने पर ही, पहले जितनी आय प्राप्त होने लगती है अत: श्रमिकों में कम समय काम करने, अधिक अवकाश लेने और विश्राम करने की प्रवृत्ति बढती है। इस प्रकार प्रारम्भ में जहाँ श्रम की पूर्ति का वक्र आगे की ओर ऊपर उठता हुआ होता है, वहाँ बाद में पीछे की ओर मुडता हुआ होता है अर्थात् एक सीमा के बाद श्रम की पूर्ति तथा मजदूरी की दर में ऋणात्मक सम्बन्ध हो जाता है—

(i) जनसंख्या के आकार में वृद्धि होती है, और

(ii) श्रम की कार्यकुशलता में वृद्धि से श्रम की पूर्ति बढ जाती है।

श्रम बाजार
(Labour Market)

श्रम बाजार वह बाजार है जहाँ पर श्रम का क्रय-विक्रय किया जाता है अर्थात् श्रम को बेचने वाले (श्रमिक) व श्रम को खरीदने वाले (मालिक-नियोजक) श्रम का सौदा करते है। श्रम के क्रेता और विक्रेता के सम्बन्ध एक वस्तु के क्रेता-विक्रेता की भाँति अस्थायी नहीं होते हैं। क्रेता-विक्रेता जो कि श्रम का सौदा करते हैं, व्यक्तिगत तत्त्वों से काफी प्रभावित होते है।

श्रम बाजार की विशेषताएँ
(Characteristics of Labour Market)

श्रम बाजार, जिनमें श्रम की माँग और पूर्ति वाले पक्षों का अध्ययन किया जाता है, वे स्थानीय होते हैं और इस बाजार की अग्रलिखित विशेषताएँ हमें देखने को मिलती हैं—

1. श्रम मे गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान, एक उद्योग से दूसरे उद्योग को गतिशील नही हो पाता है। परिणामस्वरूप मजदूरी मे भिन्नताएँ पाई जाती है तथा मालिक भी उसको कम मजदूरी देकर उसका आर्थिक शोषण करने मे सफल हो जाता है। गतिशीलता मे कमी श्रम की अशिक्षा, अनभिज्ञता, भाषा, धर्म, रीति-रिवाज आदि कारणो का परिणाम होती है।

2. श्रम बाजार मे श्रम संघो के सुदृढ होने वाले स्थानों को छोडकर क्रेताधिकारी (Monopsomy) की स्थिति देखने को मिलती है। जहाँ श्रम सघ सुदृढ होते हैं, वे अपनी पूर्ति पर नियन्त्रण करके अधिक मजदूरी लेने मे सफल हो सकते है और इस तरह एकाधिकारी (Monopoly) की स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। लेकिन व्यावहारिक जीवन मे हमे यह स्थिति अपवाद के रूप मे मिल सकती है। अधिकांशतः श्रम बाजार मे क्रेताधिकारी (Manopsomy) की स्थिति देखने को मिलेगी। इसमे प्रबन्धक मालिक सगठित होकर श्रम का क्रय करते है तथा उसको कम मजदूरी पर खरीदते है।

3 श्रम बाजार एक अपूर्ण बाजार होता है जिसमे सामान्य मजदूरी (Normal Wages) देखने को नही मिलती है। मजदूरी की विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं।

भारतीय श्रम बाजार
(Indian Labour Market)

भारत एक विकासशील और जनाधिक्य वाला (Overpopulated) राष्ट्र है जहाँ पर भारी बेरोजगारी भी है। इस विशेषता का प्रभाव यहाँ के श्रम बाजार पर भी पडता है। भारतीय श्रम बाजार की निम्नलिखित विशेषताएँ हमे देखने को मिलती हे—

1. भारतीय अर्थव्यवस्था मे विभिन्न क्षेत्रो मे अर्द्ध-बेरोजगारी (Underemployment) देखने को मिलती है। कृषि क्षेत्र मे देश की 80% जनसख्या लगी हुई है लेकिन प्रो नर्कसे के अनुसार अर्द्ध-विकसित या विकासशील देशो मे 15 से 20% तक कृषि क्षेत्र मे छिपी हुई बेरोजगारी (Disguised-unemployment) देखने को मिलती है। यहाँ तक कि श्रम की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) शून्य (Zero) है। गैर-कृषि क्षेत्रो मे भी बेरोजगारी विद्यमान है।

2 भारतीय श्रम बाजार की दूसरी विशेषता यह है कि श्रम की पूर्ति सभी नौकरियो की सख्या से अधिक होते हुए भी कुछ नौकरियो के लिए श्रम का अभाव है, जैसे तकनीकी व सुपरवाइजरी पदो के लिए अधिक श्रमिक नही मिल पाते हैं।

3 अस्थिर श्रम शक्ति (Unstable Labour Force) भी भारतीय श्रम बाजार की एक विशेपता है जिसमे श्रमिक औद्योगिक कार्य हेतु तैयार नहीं होते

क्योंकि वे अधिकांशतः ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करना व रहना पसन्द करते हैं। अतः श्रमिकों को ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर आकर्षित करना तथा एक स्थायी औद्योगिक श्रम शक्ति तैयार करना भी एक समस्या बन गई है।

4. भारतीय श्रम जनसंख्या (Labour Population) में अधिकांश श्रमिक युवक हैं। इस प्रकार के श्रमिकों के लिए सामाजिक विनियोग (Social Investment) शिक्षा, प्रशिक्षण, चिकित्सा सुविधाएँ आदि के रूप में करना पड़ेगा।

श्रम बाजार का मजदूर पक्ष
(The Employee Side of the Labour Market)

श्रम बाजार भी अन्य बाजारों की भाँति है, लेकिन जब भी हम श्रम का अध्ययन करते हैं तब हमें यह ध्यान रखना होगा कि हम कार्य करने वाले मानवीय पक्ष का अध्ययन कर रहे हैं। इसमें श्रम की माँग और पूर्ति दोनों पक्षों को ध्यान में रखते हुए अध्ययन करना पड़ेगा। श्रम बाजार के मजदूर पक्ष में हम श्रम की पूर्ति पक्ष (Supply side of Labour-Employee) का अध्ययन करते हैं।

श्रम शक्ति के रूप में सक्रिय भाग लेने की प्रवृत्ति जिसे श्रम शक्ति प्रवृत्ति (Labour force propensity) भी कहा जाता है, न केवल जनसंख्या की वृद्धि की दर द्वारा ही प्रभावित होती है, बल्कि जनसंख्या वृद्धि के स्रोतों तथा इसके आयु एवं लिंग-वितरण (Age and Sex distribution) द्वारा भी प्रभावित होती है।

सामाजिक रीति-रिवाज भी जनसंख्या के कार्य करने वाले अनुपात को प्रभावित करते हैं। विकसित देशों में शिक्षा के अधिक प्रसार के कारण श्रम शक्ति के रूप में जनसंख्या का भाग कम होने लगता है जबकि एक विकासशील देश (जैसे, भारत) में जहाँ जनसंख्या का अधिकांश भाग अशिक्षित होता है, श्रम शक्ति में जनसंख्या का अनुपात कार्य के रूप में लगेगा।

व्यावसायिक परिवर्तन (Occupational shifts), साधनों का आवण्टन (Allocation of resources), तकनीकी परिवर्तन (Technological changes) आदि भी श्रम शक्ति में जनसंख्या के लगाए जाने वाले भाग को प्रभावित करते हैं। उदाहरणतः एक विकासशील देश में जहाँ श्रम-प्रधान उत्पादन के तरीके (Labour intensive techniques of production) अपनाए जाते हैं, वहाँ श्रम की अधिक माँग होगी।

श्रम की व्यावसायिक गतिशीलता तथा भौगोलिक गतिशीलता (Occupational and Geographical mobilities of labour) में वृद्धि मजदूरी बढ़ाने से की जा सकती है, लेकिन मजदूरी में वृद्धि के अतिरिक्त जो अधिक प्रभावशाली तत्त्व इसमें बाधक हैं, वे हैं—सामाजिक रीति-रिवाज, परिवार व स्थान से लगाव, धर्म, भाषा, रहन-सहन, खान-पान। अब आधुनिकता एवं शिक्षा के प्रसार के साथ-साथ गतिशीलता में वृद्धि हो रही है।

प्रबन्ध और श्रम बाजार
(Management & Labour Market)

प्रबन्धक या नियोजक श्रम की माँग करता है। श्रम की सहायता से मालिक

उत्पादन करना है। एक गतिशील अर्थव्यवस्था में नियोजक श्रम की माँग करने से पूर्व यह अनुमान लगाएगा कि कितना उत्पादन उसे करना है। साथ ही उस वस्तु की माँग, उत्पादन लागत, उस वस्तु का बाजार, लाभ आदि सभी विषयों पर निर्णय करके श्रम की एक निश्चित संख्या को रोजगार प्रदान करेगा।

प्रबन्धक व्यवसाय में संगठन के विषय में भी निर्णय लेगा कि संगठन का आधार तथा प्रकार क्या होगा? संगठन-Staff, या Line या Staff & Line अथवा क्रियात्मक संगठन (Functional Organisation) में से कोई भी अपनाया जा सकता है।

संदेशवाहन (Communication), कार्य करने वाली टीम, नियोजकों का संगठन या संघ (Association of Employers), नियोजकों की श्रमिकों की भर्ती (Recruitment), चयन (Selection), प्रशिक्षण कार्यक्रम (Training Programme), कार्मिक व्यवहार (Personnel Practice) आदि के सम्बन्ध में भी एक निश्चित नीति का निर्धारण करना पड़ेगा। इन सबका प्रभाव न केवल व्यवसाय के संगठन पर ही पड़ता है बल्कि ये दोनों पक्षों—मालिक व मजदूर पक्ष को भी प्रभावित करते हैं। इन सबके अनुकूल व सफल होने पर सम्पूर्ण व्यवसाय या उद्योग सफल होगा जिससे न केवल दोनों पक्ष बल्कि उपभोक्ता, समाज व राष्ट्र भी लाभान्वित होंगे।

इस प्रकार श्रम की विशेषताएँ, श्रम बाजार की विशेषताएँ, मालिक और मजदूर दृष्टिकोण व व्यवहार तथा व्यवसाय का संगठन व ढाँचा एक-दूसरे पर पूर्ण रूप से आश्रित हैं। ये एक-दूसरे को पूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं। दी हुई स्थिति या दशाओं में उचित नीतियों व कार्यक्रमों की सहायता से किसी भी उद्योग को सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है।

भारत में श्रमिकों का विभाजन : कार्यशील जनसंख्या
(Distribution of Working Population in India)

देश के संविधान में उल्लिखित राज्य के नीति निर्देशक तत्त्वों पर ही भारत की श्रम नीति मूल रूप से आधारित है। नीति-निर्देशक तत्त्व समान कार्य के लिए समान वेतन, काम की समुचित और मानवीय स्थिति और सभी मजदूरों के लिए एक आजीविका मजदूरी का आदेश देते हैं। सरकार देश में मजदूरों के संगठित क्षेत्रों के कल्याण को महत्त्व देती है, विशेष तौर पर स्वतन्त्रता के बाद से। यह इस तथ्य से भी प्रकाशित होता है कि 1947 के बाद सामाजिक सुरक्षा, सुरक्षा एवं कल्याण आदि के क्षेत्र में एक बड़ी संख्या में अधिनियम पारित हुए हैं जबकि औद्योगीकरण के प्रारम्भिक वर्षों में श्रम नीति मुख्यतः श्रम दलों के संगठित क्षेत्रों के साथ जुड़ी हुई थी। संगठित क्षेत्रों के श्रमिकों की वास्तविक आय और कार्य स्थिति के सुधार को ध्यान में रखते हुए, आजकल असंगठित क्षेत्रों के श्रमिकों के हितों की ओर ध्यान दिया जा रहा है। असंगठित क्षेत्रों के लिए भी कुछ अधिनियम और नियम तैयार किए गए हैं। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 को इस क्षेत्र के बहुत से श्रमिक वर्गों पर लागू किया गया है।

तथापि भारत की अर्थव्यवस्था के विश्वस्त आँकड़े केवल सगठित क्षेत्र के बारे मे उपलब्ध हैं। श्रमिको के कल्याण के लिए सरकार द्वारा पास किए गए अधिकांश कानून इसी क्षेत्र मे श्रमिको की भलाई के लिए है। इन श्रमिकों के लिए अनेक सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ भी चल रही है। इनमें फैक्ट्री एक्ट, मजदूरी अधिनियम और सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ, जैसे—कर्मचारी राज्य बीमा योजना, कर्मचारी भविष्य-निधि योजना, श्रमिकों और उनके परिवारो के लिए मृत्यु राहत और परिवार पेन्शन सम्मिलित है। कुछ नियम असगठित क्षेत्र के लिए भी बनाए गए है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 इस क्षेत्र के बहुत से श्रमिक वर्गों पर भी लागू होता है।

श्रम एक समवर्ती विषय है। श्रम कानून केन्द्र सरकार और राज्य सरकारो दोनो के द्वारा बनाए जाते हैं और सचालित होते है। सामान्यत. श्रम कानूनों को क्रियान्वित करना राज्य सरकारो की जिम्मेदारी होती है तथा ये कुछ केन्द्रीय क्षेत्रो मे काम करने वाले श्रमिक जैसे रेलवे, बन्दरगाह, खान, बैंकिग और बीमा-कम्पनियाँ सीधे केन्द्रीय सरकार के अधिकार क्षेत्र मे आते हैं।

भारत मे श्रमिको की सख्या 1981 मे लगभग 24 46 करोड या देश की कुल जनसख्या का 36 77 प्रतिशत थी। भारतीय अर्थव्यवस्था के सगठित क्षेत्र मे सर्वाधिक श्रमिक फैक्टरियो मे काम करते हैं।[1] 1981 मे, चालू फैक्टरियों मे, जिनके आँकडे उपलब्ध है, प्रतिदिन का अनुमानित औसत रोजगार 72 71 लाख था।

महाराष्ट्र मे फैक्टरी कर्मचारियो की सख्या सबसे अधिक थी (12,53,755)। इसके पश्चात् पश्चिम बगाल (9,25,053), तमिलनाडु (7,19,611), गुजरात (6,68,059) तथा आन्ध्र प्रदेश (5 62,390) आते है। 1978 मे सभी खानो मे काम करने वाले श्रमिको की प्रतिदिन औसत सख्या 7,41,777 थी (3,10,170 खानो के अन्दर, 2,06,121 खान की सतह पर तथा 2,25,486 खानो के बाहर) अग्रिम सारणी मे श्रमिकों की स्थिति (लिंग और कार्यशार) दिखाई गई है[2]—

1 फैक्टरी अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत फैक्टरी की परिभाषा इस प्रकार की गई है—कोई भी ऐसा स्थान, प्रांगण सहित, जहां पर 10 या 10 से अधिक श्रमिक कार्य कर रहे हों, या पिछले 12 महीनों मे किसी दिन भी कार्य करते रहे हों, और उसके किसी भी भाग मे निर्माण कार्य के लिए बिजली का उपयोग किया जा रहा हो। जहाँ बिजली का प्रयोग न किया जाता हो वहां श्रमिको की सख्या 20 या उससे अधिक होनी चाहिए।

अधिनियम मे श्रमिक उस व्यक्ति को कहा गया है जिसका निर्माण प्रक्रिया मे या किसी मशीनरी या उसके हिस्से अथवा स्थान की सफाई मे उपयोग किया जाता हो, या किसी अन्य प्रकार के काम मे, जिसका सम्बन्ध निर्माण प्रक्रिया के विषय से सम्बन्धित हो और जिसकी सीधे या किसी एजेंसी के द्वारा नियुक्ति की जाती हो, चाहे उसे मजदूरी दी जाती हो या नहीं।

2 भारत 1985, पृ. 557-58.

श्रमिक तथा गैर-श्रमिक संख्या का बंटवारा (1981 की जनगणना)

(लाख में)

श्रेणी	पुरुष		महिलाएँ		योग	
	संख्या	कुल पुरुष जनसंख्या का प्रतिशत	संख्या	कुल स्त्री जनसंख्या का प्रतिशत	संख्या	कुल जनसंख्या का प्रतिशत
श्रमिक जनसंख्या						
कुल (क+ख)	1,810	52·65	636	19 77	2 446	36·77
(क) कुल मुख्य श्रमिक	1,775	51·62	450	13 99	2,225	33 45
(i) कृषक	776	22 56	149	4 65	925	13·9
(ii) कृषक मजदूर	347	10 10	208	6 46	555	8·34
(iii) घरेलू उद्योग	56	1·64	21	0 64	77	1·16
(iv) अन्य श्रमिक	596	17 32	72	2 24	668	10·04
(ख) सीमान्त श्रमिक	35	1 03	186	5 77	221	3·32
(ग) कुल गैर-श्रमिक जनसंख्या	1,629	47 35	2,578	80·23	4,207	63·23
(घ) कुल जनसंख्या (क+ख+ग)	3,439	100 00	3,214	100 00	6,653	100 00

2 मजदूरी के सिद्धान्त, सीमान्त उत्पादकता, संस्थात्मक और सौदेकारी सिद्धान्त, श्रम का शोषण, मजदूरी में अन्तर के कारण

(Wage Theories, Marginal Productivity, Institutional and Bargaining Theories, Exploitation of Labour, Causes of Wage Differentials)

श्रम-उत्पादन में वृद्धि तभी स्वाभाविक है जब श्रमिकों को समुचित कार्य के लिए समुचित मजदूरी दी जाए। पर्याप्त मजदूरी के अभाव में श्रमजीवियों से सामान्यतः यह आशा नहीं की जा सकती कि वे लगन से काम करेंगे। अपर्याप्त मजदूरी का उनकी कार्यक्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इससे उनमें असन्तोष जाग्रत होता है और मालिकों अथवा नियोजकों तथा श्रमिकों के सम्बन्धों में दूरियाँ उत्पन्न होती है। वस्तुतः मजदूरी (Wages) वह धुरी है जिसके चारों ओर श्रम-समस्याएँ चक्कर लगाती हैं। अर्थ-व्यवस्था चाहे विकसित हो, चाहे विकासशील, मजदूरी पर निर्भर रहने वाले लोगों की संख्या प्रायः अधिक होती है और इस प्रकार समाज के आर्थिक ढाँचे में इन लोगों का प्रमुख स्थान होता है। विकसित देशों में मजदूरी पर निर्भर लोगों की संख्या विकासशील देशों की तुलना में प्रायः इसीलिए अधिक होती है कि विकासशील देशों में जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि पर निर्भर करता है। 'मजदूरी' अर्थशास्त्रियों के लिए एक दिमागी कसरत रही है और इसके विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। मजदूरी के सिद्धान्तों के विवेचन पर आने से पूर्व पृष्ठभूमि के रूप में आवश्यक है कि हम 'मजदूरी' के अर्थ और महत्त्व को अच्छी तरह समझ लें।

मजदूरी का अर्थ
(Meaning of Wages)

'श्रम' उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। कुल उत्पादन में से 'श्रम' को जो भाग अथवा पारिश्रमिक दिया जाता है उसे साधारणतया 'मजदूरी' कहते है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन-प्रक्रियाओं के अन्तर्गत श्रमिक द्वारा दी गई सेवाओं का

जो मूल्य है वही 'मजदूरी' है। प्रो फेल्प्स (Prof Phelps) के अनुसार, "व्यक्तिगत सेवाओं के लिए दिया जाने वाला मूल्य ही मजदूरी है" प्रो के. एन वैद के अनुसार "एक श्रमिक को किसी कार्य की मात्रा करने पर मुद्रा के रूप में पारिश्रमिक दिया जाता है।"[1]

प्रो. सक्सेना के अनुसार, "मजदूरी एक प्रसंविदा आय (Contract Income) है जो कि मालिक व मजदूर दोनों के बीच निश्चित की जाती है, जिसके अन्तर्गत श्रमिक मुद्रा या वस्तु के बदले अपना श्रम बेचता है। मजदूरी की एक विस्तृत परिभाषा में वे सभी पारिश्रमिक, जिन्हें मुद्रा में व्यक्त किया जा सकता है और जो कि रोजगार के प्रसंविदे के अनुसार एक श्रमिक को देय होते हैं।"[2] इस प्रकार मजदूरी में यात्रा भत्ता, प्रोविडेन्ट फण्ड में दिया गया योगदान, किसी मकान सुविधा या कल्याणकारी सेवाओं हेतु दिया जाने वाला द्रव्य का भाग शामिल नहीं किया जाता है। अर्थशास्त्र में मजदूरी शब्द व्यापक है तथा इसके अन्तर्गत न केवल विभिन्न प्रकार के श्रमिकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक ही सम्मिलित किया जाता है, बल्कि फर्मों तथा फैक्ट्रियों के मैनेजर, उच्च अधिकारी, सरकारी अफसरों को दिया जाने वाला वेतन, व्यावसायिक लोगों (Professional People) जैसे वकील, अध्यापक, डॉक्टर आदि को दिया जाने वाला पुरस्कार (Remuneration), बोनस (Bonus), रॉयल्टी (Royalty) तथा कमीशन (Commission) आदि को शामिल किया जाता है।

मौद्रिक मजदूरी एवं वास्तविक मजदूरी
(Money Wages and Real Wages)

नकद या मौद्रिक मजदूरी वह मजदूरी है जो श्रमिक को उसके श्रम के बदले में मुद्रा के रूप में प्रदान की जाती है, जैसे 3 रुपये प्रति घण्टा, 10 रुपये प्रति दिन, 300 रुपये प्रति माह आदि। लेकिन नकद मजदूरी से हमें श्रमिक की वास्तविक आर्थिक स्थिति का पता नहीं लगता और इसलिए उसकी मौद्रिक मजदूरी के साथ-साथ उसकी वास्तविक मजदूरी के विषय में भी जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है।

वास्तविक मजदूरी (Real Wages) वह मजदूरी है जिसके अन्तर्गत श्रमिक को उसकी सेवाओं के बदले कितनी वस्तु तथा सेवाएँ प्राप्त होती है अर्थात् श्रमिक की मौद्रिक मजदूरी के द्वारा श्रमिक कितनी वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीद सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक श्रमिक को अपनी नकद मजदूरी से अधिक वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्राप्त होती हैं और वह अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को आसानी से पूरा कर लेता है तो हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उसकी वास्तविक मजदूरी ऊँची है। इसके विपरीत यदि अधिक नकद मजदूरी के बावजूद भी वह अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं

1 *Vaid K N* · State and Labour in India, p. 89.
2 *Saxena R C.* Labour Problems and Social Welfare, p. 512.

को पूरा नही कर पाता है तो हम कह सकते है कि उसकी मौद्रिक आय की वास्तविक क्रय-शक्ति कम है। मुद्रा-स्फीत के अन्तर्गत मुद्रा की क्रय-शक्ति गिरने के कारण श्रमिक अधिक मौद्रिक आय की माँग करते है जबकि मुद्रा-अपस्फीति (Deflation) के अन्तर्गत मुद्रा की क्रय-शक्ति अधिक होने के परिणामस्वरूप श्रमिकों को आर्थिक कठिनाइयों का सामना नही करना पड़ता है। वर्तमान समय मे भारत मे बढ़ती हुई कीमतें इस बात की द्योतक हैं कि श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी (Real Wages) मे गिरावट आ रही है।

वास्तविक मजदूरी को प्रभावित करने वाले तत्त्व

एक व्यक्ति की वास्तविक आर्थिक स्थिति का ज्ञान उसकी नकद मजदूरी से नही बल्कि उसकी वास्तविक मजदूरी से होता है। विभिन्न व्यवसायों मे वास्तविक मजदूरी भिन्न-भिन्न पाई जाती हैं। वास्तविक मजदूरी को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित तत्त्व होते है—

1. मुद्रा की क्रय-शक्ति (Purchasing Power of Money)–यह वास्तविक मजदूरी को निर्धारित या प्रभावित करती है। यदि कीमतें नीची है तो अधिक वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदी जा सकेंगी, जिसके परिणामस्वरूप वास्तविक मजदूरी अधिक होगी। इसके विपरीत ऊँची कीमतों पर वस्तुओ व सेवाओ के मिलने पर मुद्रा की क्रय-शक्ति कम होने के कारण वास्तविक मजदूरी कम होगी।

2. अतिरिक्त आय (Extra Earnings)—यदि किसी व्यक्ति को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है तो उसकी वास्तविक आय बढ़ेगी। उदाहरणत एक प्राध्यापक को उसकी किताब पर मिलने वाली रोयल्टी तथा श्रमिको व मैनेजरो को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। इससे उनकी वास्तविक आय बढ़ेगी।

3. अन्य सुविधाएँ (Other Facilities)—किसी भी व्यक्ति या श्रमिक को मिलने वाली नि:शुल्क चिकित्सा सुविधाएँ, उसके मकान, बच्चो की नि:शुल्क शिक्षा आदि भी वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि करने वाले तत्त्व है।

4. कार्य की दशाएँ अच्छी होने पर, कार्य रुचिकर होने पर, कार्य की नियमितता आदि से भी वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि होती है। यदि कार्य की दशाएँ अच्छी नही है, कार्य रुचिपूर्ण नही है, कार्य अस्थायी है, तो मौद्रिक मजदूरी अधिक होने पर भी वास्तविक मजदूरी कम होगी।

5 प्रशिक्षण का समय तथा व्यय—व्यावसायिक सेवाओ (Professional Services) जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, आदि के लिए प्रशिक्षण पर व्यय करना पड़ता है तथा इसमे समय भी लगता है। अत वास्तविक मजदूरी ज्ञात करते समय इस प्रकार के प्रशिक्षण हेतु किया गया व्यय तथा अवधि को भी ध्यान मे रखना पड़ता है।

6. भावी उन्नति के अवसर–जिस व्यवसाय या उद्योग मे भविष्य मे उन्नति के अधिक अवसर हैं तो प्रारम्भ मे कम नकद मजदूरी होने पर भी वास्तविक मजदूरी अधिक होगी।

मजदूरी का महत्त्व
(Importance of Wages)

मजदूरी सम्बन्धी प्रश्न न केवल श्रमिकों के जीवन-स्तर तथा उनकी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करने के रूप में ही महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह उत्पादन में वृद्धि के लिए भी आवश्यक है। श्रमिक का जीवन-स्तर, उसकी कार्यकुशलता सभी मजदूरी पर निर्भर करती है। मजदूरी श्रमिकों को उनकी सेवाओं के लिए किया जाने वाला भुगतान है और वह उनकी आय है। दूसरी ओर नियोजक श्रमिकों की सहायता से उत्पादन क्रियाओं का सम्पादन करते हैं और उनके लिए यह उत्पादन लागत का एक अंग माना जाता है। श्रमिक समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अब प्राचीन दृष्टिकोण—वस्तु दृष्टिकोण (Commodity Approach) बिल्कुल समाप्त-सा हो गया है। अब श्रमिक अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति सजग हो गया है तथा नियोजकों से सौदा करने में पीछे नहीं है। अब श्रमिक को उद्योग में एक साझेदार के रूप में माना जाने लगा है। मजदूरी में न केवल आर्थिक पहलू ही आते हैं बल्कि यह गैर-आर्थिक पहलुओं को भी प्रभावित करने वाला प्रश्न है जिसका अध्ययन श्रमिक अपनी आय के दृष्टिकोण से तथा नियोजक (Employers) अपनी उत्पादन-लागत के दृष्टिकोण से करते हैं। मजदूर अधिकतम मजदूरी तथा नियोजक अधिक लाभ चाहने वाले उद्देश्यों में फँसे हुए हैं। इन दोनों पक्षों के उद्देश्य एक-दूसरे के विपरीत हैं। प्रो. जीन मार्शल के अनुसार, "श्रमिक यह चाहते हैं कि मजदूरी को एक वस्तु का मूल्य नहीं माना जाना चाहिए बल्कि एक आय मानी जानी चाहिए, ताकि वे उद्यमियों के माध्यम से अपनी सेवाएँ देकर एक पूर्व-निर्धारित जीवन व्यतीत कर सकें।"[1]

प्रो. पन्त के अनुसार मजदूरी का उपभोग, रोजगार एवं कीमतों पर भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।[2] अतः किसी भी देश में श्रमिकों के लिए एक प्रभावपूर्ण एवं प्रगतिशील मजदूरी नीति-निर्धारण के लिए मजदूरी की समस्या का पूर्ण अध्ययन आवश्यक है।

मजदूरी निर्धारण के सिद्धान्त
(Theories of Wage Determination)

मजदूरी की समस्याओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है, अर्थात् सामान्य मजदूरी की समस्या (Problem of general wages) और तुलनात्मक मजदूरी की समस्या (Problem of relative wages)। सामान्य मजदूरी की समस्या का सम्बन्ध इस बात से है कि राष्ट्रीय आय में से उत्पादन के साधन के रूप में श्रम को किस आधार पर हिस्सा दिया जाए। दूसरी ओर तुलनात्मक या सापेक्ष मजदूरी की समस्या इस बात का अध्ययन करती है कि विभिन्न स्थानों, समय तथा श्रमिकों की

1 *Jean Marchal* Wage Theory and Social Groups in Dunlop, J. T. (Ed.), The Theory of Wage Determination, p. 149
2 *Pant S. C.*, Indian Labour Problems, p. 165–67.

मजदूरी किस आधार पर निर्धारित की जाएगी। सामान्य मजदूरी निर्धारण किन आधारों पर हो, इसका अध्ययन मजदूरी के सिद्धान्तों (Theories of wages) के अन्तर्गत किया जाता है। अत यहाँ सक्षेप मे उन सभी मजदूरी के सिद्धान्तों का अध्ययन करना है, जो विभिन्न अर्थशास्त्रियो द्वारा भिन्न-भिन्न कालो मे प्रतिपादित किए गए हैं।

मजदूरी का जीवन-निर्वाह सिद्धान्त अथवा लौह सिद्धान्त
(Subsistance Theory of Wages or the Iron Law of Wages)

सर्वप्रथम इस सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रांस के प्रकृतिवादी अर्थशास्त्रियों (Physiocrats) ने किया था। उन्होंने फ्रांस मे उस समय श्रमिक के जीवन निर्वाह की स्थिति को ध्यान मे रखते हुए इस सिद्धान्त का निर्माण किया। यह सिद्धान्त 19वीं शताब्दी मे सभी लोगो द्वारा माना गया। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री रिकार्डो ने भी आगे चलकर माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त के आधार पर इस सिद्धान्त का समर्थन किया। समाजवादी अर्थशास्त्रियो ने भी इसी सिद्धान्त के आधार पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की कड़ी आलोचना की और कार्ल मार्क्स ने इसे अपने शोषण के सिद्धान्त (Theory of Exploitation) पर आधारित किया। जर्मन अर्थशास्त्री लसाले (Lassalle) ने इसे 'लौह सिद्धान्त' (Iron Law of Wages) का नाम दिया।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी का निर्धारण श्रमिक व उसके परिवार के जीवन निर्वाह के लिए न्यूनतम साधनो के आधार पर होता है। मजदूरी इतनी होनी चाहिए जिससे श्रमिक को निर्वाह हेतु न्यूनतम राशि प्राप्त हो सके। जीवित रहने के लिए आवश्यक राशि के बराबर मजदूरी दी जानी चाहिए। यदि मजदूरी इस न्यूनतम जीवन निर्वाह व्यय से अधिक दी जाती है तो श्रमिको को शादी करने का प्रोत्साहन मिलेगा और उनके परिवारो मे तथा श्रमिक सख्या मे वृद्धि होगी और इसके परिणामस्वरूप मजदूरी गिरकर जीवन निर्वाह के बराबर हो जाएगी। इसके विपरीत यदि मजदूरी न्यूनतम जीवन निर्वाह से कम दी जाती है तो शादियाँ और जन्म-दिन हतोत्साहित होंगे और कम पोषण से मृत्यु-दर बढेगी और फलस्वरूप श्रमिको की पूर्ति मे गिरावट आने से मजदूरी मे वृद्धि होगी और पुन: मजदूरी जीवन निर्वाह के बराबर हो जाएगी।

आलोचना (Criticism)—यह सिद्धान्त बड़ा ही निराशावादी है और स्पष्टत माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त पर आधारित है। यह आधार ही गलत है कि मजदूरी मे वृद्धि के साथ-साथ जनसख्या में भी वृद्धि होगी। यूरोपीय देशो का उदाहरण हमारे सामने है कि वहाँ मजदूरी और आय बढने के साथ-साथ जनसख्या मे वृद्धि होने के स्थान पर जीवन-स्तर उन्नत हुआ है और जनसख्या मे कमी हुई है।

1 यह सिद्धान्त श्रम के पूर्ति पक्ष पर आधारित है। इसमे श्रम के माँग पक्ष की उपेक्षा की गई है। किसी भी वस्तु के मूल्य-निर्धारण मे जिस प्रकार पूर्ति और माँग दोनो का होना आवश्यक है उसी प्रकार मजदूरी-निर्धारण में भी दोनों पक्षो का होना जरूरी है। अतः मजदूरी-निर्माण का यह सिद्धान्त एक-पक्षीय (One-sided theory of wage determination) है।

2 यह सिद्धान्त विभिन्न व्यवसायों में पाई जाने वाली मजदूरी की विभिन्नताओं (Wage differentials) के कारणों की व्याख्या करने में पूर्ण रूप से असफल रहा है।

3. यह सिद्धान्त मजदूरी में वृद्धि से श्रमिक की कार्यकुशलता में वृद्धि और उत्पादन में वृद्धि के सम्बन्ध की उपेक्षा करता है। जब श्रमिकों की मजदूरी बढ़ेगी तो इससे उनका जीवन-स्तर उन्नत होगा तथा परिणामस्वरूप श्रमिकों की कार्य-क्षमता में वृद्धि के माध्यम से राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ेगा।

4 जीवन निर्वाह से अधिक मजदूरी देने से श्रमिकों की जनसंख्या में वृद्धि होगी और मजदूरी वापिस गिरकर जीवन निर्वाह व्यय के बराबर हो जाएगी—यह वास्तविकता से परे की बात है। आज हमारे सम्मुख विभिन्न विकसित देशों का उदाहरण है कि वहाँ मजदूरों में वृद्धि करने से जीवन-स्तर में वृद्धि हुई है न कि जनसंख्या में वृद्धि।

5. यह सिद्धान्त उत्पादन के तरीकों में सुधार, श्रमिक संघों तथा आविष्कारों आदि के कारण मजदूरी में वृद्धि होने के कारणों की व्याख्या करने में असमर्थ है। आधुनिक समय में श्रमिक संघों, उत्पादन रीतियों में सुधार तथा विभिन्न आविष्कारों के कारण भी समय-समय पर मजदूरी दरों में परिवर्तन करने पड़ते हैं।

6 जीवन निर्वाह के स्तर को भी ज्ञात करना कठिन है क्योंकि विभिन्न श्रमिकों व उनके परिवारों का जीवन-निर्वाह-स्तर उनकी आवश्यकताओं, सदस्य संख्या आदि के कारण भिन्न-भिन्न होता है।

मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त
(The Standard of Living Theory of Wages)

यह सिद्धान्त जीवन निर्वाह सिद्धान्त का एक सुधरा हुआ रूप है। 19वीं शताब्दी के अन्त में 'जीवन-निर्वाह' के स्थान पर 'जीवन-स्तर' का प्रयोग करना अधिक उपयुक्त माना जाने लगा। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी श्रमिक के जीवन निर्वाह के आधार पर निर्धारित न करके उसके जीवन-स्तर के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए। जिस प्रकार के जीवन-स्तर व्यतीत करने के श्रमिक अभ्यस्त हो गए हैं उसके अनुसार ही उनको मजदूरी दी जानी चाहिए। श्रमिक उनके जीवन-स्तर से नीची मजदूरी स्वीकार नहीं करेंगे। ऊँचा जीवन-स्तर श्रमिक की कार्यकुशलता में वृद्धि करता है, अत मजदूरी अधिक होनी चाहिए। मजदूरी के जीवन-स्तर के बराबर होने से एक ओर श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होने से उत्पादन में वृद्धि होगी तथा श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति (Bargaining Power) में भी वृद्धि होगी क्योंकि श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि और उच्च जीवन-स्तर से जनसंख्या पर नियन्त्रण रखा जा सकेगा।

आलोचना—1. इस सिद्धान्त में श्रम की माँग पक्ष की उपेक्षा की गई है। श्रम की पूर्ति को ध्यान में रखकर ही मजदूरी निर्धारण करना एक-पक्षीय है।

2 जीवन-स्तर के अनुसार मजदूरी दी जाए अथवा मजदूरी के आधार पर जीवन-स्तर निर्धारित किया जाए–यह निश्चय करना कठिन है। वास्तविक जीवन मे श्रमिको के जीवन-स्तर मे वृद्धि करने के लिए मजदूरी मे वृद्धि करना आवश्यक है।

3 जैसा जीवन-स्तर हो उसी के आधार पर मजदूरी का निर्धारण किया जाए–यह भी गलत है क्योकि केवल ऊँचा जीवन-स्तर ही नही बल्कि श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि होने पर मजदूरी मे वृद्धि सम्भव हो सकती है।

4 जीवन-स्तर स्वय एक परिवर्तनशील तत्त्व है। इसमें समय-समय पर परिवर्तन होने के कारण मजदूरी मे परिवर्तन करना पडेगा लेकिन इस विषय मे इस सिद्धान्त मे कुछ भी नही कहा गया है।

मजदूरी कोष सिद्धान्त
(The Wage Fund Theory)

इस सिद्धान्त के सम्बन्ध मे प्रारम्भ मे कई प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो (Classical Economists) का हाथ रहा, लेकिन अन्तिम रूप देने वाले प्रो जे. एस. मिल (J S Mill) ही माने जाते हैं। प्रो. मिल के अनुसार मजदूरी जनसख्या तथा पूँजी के अनुपात पर निर्भर करती है। यहाँ जनसख्या का सम्बन्ध श्रमिकों की सख्या से है, जो कि कार्य करने के लिए तैयार हैं। पूँजी का एक भाग श्रमिको को मजदूरी का भुगतान करने हेतु रखा जाता है। मजदूरी मे वृद्धि तभी सम्भव होती है जबकि मजदूरी कोष मे वृद्धि की जाए अथवा श्रमिको की सख्या मे कमी हो। सिद्धान्त मे मजदूरी कोष को निश्चित माना है। इसमे वृद्धि या कमी सम्भव नही है। मजदूरी 'मजदूरी कोष' (Wage Fund) मे से दी जाती है जो कि पूंजीपति द्वारा निश्चित किया जाता है तथा जिसे स्थिर माना गया है। दूसरी ओर श्रमिकों की सख्या प्राकृतिक कारणो पर निर्भर है। अत मजदूरी की सामान्य दर (The general wage rate) मजदूरी कोष मे श्रमिकों की सख्या का भाग लगाने से ज्ञात की जा सकती है—

$$\text{मजदूरी दर} = \frac{\text{मजदूरी कोष}}{\text{श्रमिको की सख्या}}$$

उदाहरणत यदि मजदूरी कोष 1000 रु. है तथा श्रमिको की सख्या 200 है तो मजदूरी दर 5 रु होगी।

इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी मे वृद्धि तब तक सम्भव नही जब तक कि जनसख्या नियन्त्रण द्वारा श्रमिक अपनी संख्या पर नियन्त्रण नही करते। यदि किसी उद्योग विशेष मे मजदूरी की दर मे वृद्धि हो जाती है तो दूसरे उद्योगो मे मजदूरो को कम मजदूरी मिलेगी क्योकि मजदूरी कोष स्थिर या निश्चित है।

आलोचना—1. यह सिद्धान्त मजदूरी कोष को दिया हुआ मानता है। मजदूरी कोष पहले ही निर्धारित नही होता है। इसमे परिवर्तन होता रहता है।

2. मजदूरी मे वृद्धि मजदूरी कोष तथा मजदूरो की सख्या के आधार पर सम्भव न होकर श्रमिक की कार्यकुशलता में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होने से होती है।

3 यह मान्यता कि यदि मजदूरी अधिक दी जाएगी तो पूँजीपतियो का लाभ कम हो जाएगा, गलत है। वस्तुस्थिति यह है कि मजदूरी बढने से श्रमिक की कार्य-कुशलता मे वृद्धि होती है, उत्पादन बढता है और परिणामस्वरूप न केवल श्रमिक की मजदूरी ही बढती है, बल्कि पूंजीपतियो का लाभ भी बढता है।

4 यह मान्यता भी कि मजदूरी मे वृद्धि होने से श्रमिको की सख्या में वृद्धि होगी, गलत है। मजदूरी मे वृद्धि होने से जीवन-स्तर ऊँचा होगा और फलस्वरूप जनसख्या मे अधिक वृद्धि नही होगी।

5. यह सिद्धान्त श्रमिको की कार्य-कुशलता मे भिन्नता के कारण मजदूरी पाए जाने वाले अन्तरो (Differences) की व्याख्या करने मे असमर्थ रहा है।

6 इस सिद्धान्त ने सुदृढ श्रमिक सघो (Strong Trade Unions) द्वारा सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) से मजदूरी मे वृद्धि करा लेने की परिस्थितियो की पूर्ण उपेक्षा की है। जिन उद्योगो मे मजबूत श्रमिक संघ है, वे मजदूरी बढाने मे सफल हो गए हैं।

मजदूरी का अवशेष अधिकारी सिद्धान्त
(The Residual Claimant Theory of Wages)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिकी अर्थशास्त्री वाकर (Walker) ने किया। वाकर के अनुसार श्रमिक उद्योग के अवशिष्ट उत्पादन (Residual Product) का अधिकारी होता है। उद्योग के उत्पादन मे से उत्पादन के अन्य साधनो को लगान, ब्याज तथा लाभ का भुगतान करने के पश्चात जो अवशिष्ट भाग बचता है वह मजदूरों की मजदूरी के रूप मे वितरित कर दिया जाता है। लगान, ब्याज तथा लाभ का निर्धारण कुछ निश्चित नियमो द्वारा होता है, परन्तु मजदूरी निर्धारण मे कोई निश्चित सिद्धान्त काम मे नही लिया जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है, तो श्रमिको की मजदूरी भी बढेगी—

मजदूरी = कुल उत्पादन − लगान + ब्याज + लाभ

आलोचना—1 यह सिद्धान्त श्रमिको की मांग-पक्ष का अध्ययन करता है न कि पूर्ति पक्ष (Supply side) का। मजदूरी निर्धारण मे दोनो पक्षो का होना आवश्यक है। अत यह सिद्धान्त एक-पक्षीय (One-side Theory) है।

2 इस सिद्धान्त के अनुसार सबसे बाद मे भुगतान मजदूर को मजदूरी के रूप मे किया जाता है पर यह गलत है। वास्तविक जीवन मे सबसे पहले भुगतान श्रमिक को किया जाता है तथा अन्त मे अवशिष्ट का अधिकारी (Residual Claimant) साहसी अथवा उद्यमी होता है।

3 यह सिद्धान्त श्रमिक सघो की मजदूरी को बढाने के प्रयासो की उपेक्षा करता है।

4. जब लगान, ब्याज तथा लाभ के लिए निश्चित सिद्धान्त काम मे लाए जाते हैं तो फिर मजदूरी निर्धारण हेतु क्यो नही इन्ही सिद्धान्तो का उपयोग किया जाता है, यह बताने मे सिद्धान्त असमर्थ है।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त
(The Marginal Productivity Theory of Wages)

यह सिद्धान्त उत्पादन के सभी साधनों के मूल्य-निर्धारण के काम में लाया जाता है। जब वितरण के अन्तर्गत इस सिद्धान्त द्वारा भी उत्पादन के साधनों का मूल्य निर्धारित किया जाता है तब इसे वितरण का सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Distribution) कहा जाता है। श्रमिक का पारिश्रमिक निर्धारित करने में इसे मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमिक को दिया जाने वाला पारिश्रमिक (Remuneration) उसके सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) के बराबर होना चाहिए। यदि सीमान्त उत्पादकता अधिक है तो पारिश्रमिक भी अधिक होगा और यदि सीमान्त उत्पादकता कम है तो पारिश्रमिक भी कम होगा। सीमान्त उत्पादकता किसी उद्योग में एक अतिरिक्त श्रमिक को लगाने से कुल उत्पादन (Total Production) में जो वृद्धि होगी, वही सीमान्त उत्पादकता होगी। उदाहरणार्थ 100 श्रमिकों द्वारा किसी वस्तु की 4000 इकाइयों का उत्पादन किया जाता है तथा 101 श्रमिक उसी उद्योग में लगाने पर उत्पादन बढ़ कर 4050 इकाइयाँ हो जाता है तो ये 50 इकाइयाँ सीमान्त उत्पादन हुआ।

मजदूर की मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य (Value of Marginal Productivity i. e V M P) के बराबर होनी चाहिए। यदि श्रमिक को मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम (W<V M P.) दी जाती है तो श्रमिक का शोषण होता है तथा इससे अधिक (W>V M P) होने पर साहसी को हानि उठानी पड़ेगी। अतः दीर्घकाल में मजदूरी (Wages) श्रमिक के सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर (W=V M. P) होगी।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त कुछ मान्यताओं पर आधारित है जो निम्नांकित हैं—

1. श्रम की सभी इकाइयाँ समरूप (Homogeneous) होती हैं। सभी इकाइयाँ कार्य-कुशलता में समान होती हैं। उनमें अन्तर नहीं होता है।

2. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता (*Perfect* Competition) की मान्यता पर आधारित है। साधनों का पूर्ण गतिशील, बाजार दशाओं का पूर्ण ज्ञान, उद्योग में प्रवेश व छोड़ने की स्वतन्त्रता आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।

3. साधन की इकाइयों में पूर्ण स्थानापन्न (Perfect Substitution) की स्थिति विद्यमान होती है।

4. साधन की मात्रा में दूसरे साधन के साथ वृद्धि अथवा कमी करना सम्भव है। एक साधन की मात्रा अधिक अथवा कम की जा सकती है।

5. यह सिद्धान्त पूर्ण रोजगार (Full Employment) की मान्यता पर आधारित है। सभी साधनों को रोजगार मिला हुआ होता है।

6 यह सिद्धान्त उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) पर आधारित है। इसका अर्थ यह है कि किसी साधन की मात्रा गैर-आनुपातिक रूप में बढ़ाने से कुल उत्पादन में घटती हुई दर में वृद्धि होती है।

7. उत्पादन के साधन के रूप में श्रम पूर्ण गतिशील (Perfectly Mobile) होता है। जहाँ अधिक मजदूरी है वहाँ श्रमिक कम मजदूरी वाले उद्योग को छोड़कर आ जाएँगे।

8. दीर्घकाल में ही मजदूरी श्रम के सीमान्त उत्पादकता के मूल्य (W=V. M P) के बराबर होगी। अल्पकाल में इनमें असन्तुलन (Disequilibrium) हो सकता है।

9. किसी भी उत्पादन के साधन की सीमान्त उत्पादकता उसकी अतिरिक्त इकाई लगाने से ज्ञात की जा सकती है।

आलोचना—इस सिद्धान्त की प्राय ये आलोचनाएँ की जाती हैं—

1. यह मानना कि श्रम की सभी इकाइयाँ समरूप होती हैं, गलत है। वास्तविक जीवन में हम यह देखते हैं कि कार्य-कुशलता के आधार पर श्रम के तीन भेद किए गए हैं—कुशल (Skilled), अर्द्ध-कुशल (Semi-skilled) और अकुशल (Un-skilled)।

2. सिद्धान्त द्वारा पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता को लेकर चलना भी अव्यावहारिक है क्योंकि व्यवहार में हमें अपूर्ण प्रतियोगिता ही देखने को मिलती है। बाजार की अपूर्णताएँ (Market Imperfections) जैसे बाजार की दशाओं का पूर्ण ज्ञान न होना, कृत्रिम बाधाएँ आदि हमें देखने को मिलती हैं।

3 कोई भी साधन पूर्ण स्थानापन्न (Perfect Substitute) नहीं है। एक साधन की विभिन्न इकाइयों में असमानताएँ पाई जाती हैं तथा विभिन्न साधनों में भी स्थानापन्न एक सीमा तक ही सम्भव है।

4. यह मानना कि एक साधन की मात्रा में वृद्धि अथवा कमी दूसरे साधन के साथ सम्भव है, गलत है क्योंकि एक सीमा के पश्चात् साधन की मात्रा में वृद्धि या कमी से विभिन्न साधनों के बीच असन्तुलन उत्पन्न करके उत्पादन को सुचारू रूप से चलाने में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

5 पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित यह सिद्धान्त व्यावहारिकता से दूर है क्योंकि धनी से धनी अथवा विकसित से विकसित देश में भी 5 से 7 प्रतिशत बेरोजगारी पाई जाती है। वास्तव में पूर्ण रोजगार से कम (Less than full employment) की स्थिति हमें देखने को मिलती है।

6 इस सिद्धान्त द्वारा यह मानना कि हमेशा उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns) लागू रहता है, असत्य प्रतीत होता है क्योंकि उत्पत्ति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns) भी उत्पत्ति के प्रारम्भिक काल में लागू होता है। इसके पश्चात् उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Returns) लागू होता है तथा अन्तिम स्थिति में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

7 पूर्ण गतिशीलता की मान्यता सही नही है। क्योकि श्रमिक न केवल उत्पादन का साधन ही है, बल्कि वह एक मानव भी है। अत मजदूरी मे वृद्धि करने मात्र से ही मजदूर कम मजदूरी से अधिक मजदूरी वाले स्थान की ओर गतिशील नही होता है बल्कि वह अन्य तत्त्वो जैसे भाषा, स्थान, वातावरण, धर्म, जान-पहचान, वेशभूषा, रीति-रिवाज आदि से भी प्रभावित होता है, अत उसमे गतिशीलता नही पाई जाती है।

8 यह सिद्धान्त मजदूरी का निर्धारण केवल दीर्घकाल मे ही करता है। अल्पकालीन मजदूरी निर्धारण इससे असम्भव है। जैसा कि प्रो. कीन्स ने कहा है कि "हमारी अधिकाँश आर्थिक समस्याएँ अल्पकालीन है। दीर्घकाल मे हम सब मर जाते है और कोई समस्या नही रहती है।"

9 कुछ उत्पादन के साधनो की सीमान्त उत्पादकता मापना सम्भव नहीं है। साहसी या प्रबन्धक उत्पादन के साधन के रूप मे एक-एक ही होते है। किसी भी उद्योग मे दूसरा प्रबन्धक या साहसी लगाया नही जा सकता है। अत साहसी या संगठनकर्त्ता की सीमान्त उत्पादकता मापने मे यह सिद्धान्त असफल रहा है।

10 सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण मे श्रमिको की माँग को ध्यान मे रखता है। लेकिन मजदूरी को प्रभावित करने मे श्रमिक की पूर्ति भी महत्त्व रखती है। अत. यह सिद्धान्त मजदूरी निर्धारण का एक-पक्षीय सिद्धान्त (One-sided Theory) है।

मजदूरी का बट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त
(The Discounted Marginal Productivity Theory of Wages)

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिकी अर्थशास्त्री प्रो टाउसिग (Prof Taussig) ने किया। प्रो टाउसिग ने मजदूरी के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना करते हुए अपना मजदूरी का सिद्धान्त दिया जिसके अन्तर्गत श्रमिक को मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम दी जाती है क्योकि मजदूरी का भुगतान उत्पादित वस्तु की बिक्री के पूर्व ही उद्योगपति को करना पड़ता है। उद्योपति अग्रिम रूप मे भुगतान करते समय वर्तमान ब्याज दर पर बट्टा काट कर मजदूर को मजदूरी उसके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम देता है। इसलिए इसे बट्टायुक्त सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी निम्न प्रकार दी जाएगी—

मजदूरी की सामान्य दर = सीमान्त उत्पादकता—वर्तमान ब्याज दर से बट्टा

इस प्रकार पूँजीपति जब भी मजदूरी का भुगतान करता है तब वह वर्तमान ब्याज की दर के आधार पर सीमान्त उत्पादकता मे से बट्टा काट कर ही श्रमिक को मजदूरी चुकाता है क्योकि वर्तमान मे श्रम द्वारा उत्पादित वस्तु की बिक्री करने में समय लगता है क्योकि मजदूरी का भुगतान पहले ही करना पड़ता है।

आलोचना—इस सिद्धान्त की निम्नांकित आलोचना की गई है—

यह सिद्धान्त 'धुँधला एवं अमूर्त' (Dim and Abstract Theory)

कहा जाता है क्योंकि व्यावहारिक जीवन मे मजदूरी निर्धारण में इस सिद्धान्त की कोई उपयोगिता नही है।

2 उत्पादन के अन्य साधनो जैसे पूँजी, भूमि तथा साहसी को क्रमश ब्याज, लगान तथा लाभ अथवा हानि के रूप मे किए जाने वाले भुगतान में से बट्टा क्यों नही काटा जाता है ? मजदूरी का भुगतान करते समय ही बट्टा क्यो काटा जाता है ? इन प्रश्न के उत्तर हमें इस सिद्धान्त मे नही मिलते है।

3 इस सिद्धान्त में श्रम की पूर्ति (Supply of Labour) को निश्चित या दिया हुआ मानकर मजदूरी का निर्धारण किया जाता है जो कि एक-पक्षीय सिद्धान्त का एक नमूना है। दोनों पक्षों के बिना मजदूरी का निर्धारण सही तौर पर सम्भव नही हो पाता है।

4 इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त पर सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की सभी आलोचनाएं लागू होती है।

मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त अथवा मजदूरी का माँग व पूर्ति का सिद्धान्त

यद्यपि मजदूर एक मानवीय उत्पादन का साधन (Human Factor of Production) है न कि एक वस्तु, फिर इसका मूल्य निर्धारित करते समय हमें श्रम की मांग और श्रम की पूर्ति दोनो को ध्यान मे रखना पडेगा। प्रो० मार्शल के अनुसार मजदूरी का निर्धारण श्रम की मांग और पूर्ति की शक्ति पर आधारित होगा जो कि भिन्न-भिन्न पाई जाती है।

किसी भी उद्योग मे मजदूरी का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जहाँ पर श्रम की मांग इसके पूर्ति वक्र को काटती है।

श्रमिक की मांग (Demand for Labour)—श्रमिक की मांग नियोजक या उद्योगपति द्वारा उत्पादन करने हेतु की जाती है। उत्पादक श्रम की मांग करते समय उसके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य (Value of Marginal Productivity or V M P) को ध्यान मे रखता है। प्रत्येक उत्पादक श्रम की उस समय तक माँग करता रहेगा जहाँ तक कि श्रम को दिया जाने वाला पारिश्रमिक उसमें सीमान्त उत्पादकता के 50 के बराबर (W= V M P) होता है। कोई भी उत्पादक श्रमिक को उसके सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से अधिक पारिश्रमिक देने को तैयार नही होगा क्योंकि इससे उसको हानि उठानी पड़ेगी।

श्रम की माँग एक व्युत्पन्न माँग (Derived Demand) है। अत जिस वस्तु की मांग अधिक है तो श्रमिक की भी अधिक मांग की जाएगी। इसके विपरीत श्रमिक की मांग कम होगी।

श्रम की मांग अन्य उत्पादन के साधनो की कीमतो द्वारा प्रभावित होती है। यदि अन्य साधनों की कीमतें अधिक है तो श्रमिक की मांग अधिक होगी अन्यथा कम।

श्रमिक की माँग तकनीकी दशाओं (Technical Conditions) द्वारा भी प्रभावित होती है। यदि उत्पादन का श्रम गहन तरीका (Labour Intensive Technique of Production) अपनाया जाता है तो श्रमिकों की माँग अधिक होगी और पूँजी गहन उत्पादन के तरीके (Capital Intensive Technique of Production) के अन्तर्गत श्रमिको की माँग कम होगी।

श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)—श्रम की पूर्ति का अर्थ है विभिन्न मजदूरी दरो पर कार्य करने वाले श्रमिको की संख्या से अलग-अलग मजदूरी दर पर कितने-कितने श्रमिक कार्य करने हेतु तैयार होंगे। सामान्यत: श्रम की पूर्ति और मजदूरी दर मे सीधा सम्बन्ध (Direct Relation) होता है अर्थात् अधिक मजदूरी पर अधिक श्रमिक तथा कम मजदूरी पर कम श्रमिक कार्य करने हेतु तैयार होंगे।

दीर्घकाल मे मजदूरी श्रमिक के सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर होगी। अल्पकाल मे यह कम अथवा अधिक हो सकती है। मजदूरी सीमान्त उत्पादन तथा औसत उत्पादन दोनों के बराबर (W = M.P = A.P.) होगी। यह पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में ही होगी।

मजदूरी का सौदाकारी सिद्धान्त
(Bargaining Theory of Wages)

प्रो सिलवरमैन (Prof. Silverman) के अनुसार सामान्यत: मजदूरी श्रमिक के सीमान्त उत्पादन के बराबर होती है, लेकिन यह पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है जो कि व्यवहार मे नही पाई जाती है। अत: वास्तविक मजदूरी का निर्धारण श्रमिको व नियोजको की सौदाकारी शक्तियों (Bargaining Powers of the Workers and Employers) द्वारा निर्धारित होता है। सीमान्त उत्पादन का मूल्य मजदूरी की अधिकतम सीमा निर्धारित करता है। यदि अपूर्ण प्रतियोगिता और श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति (Bargaining Power of Workers) दुर्बल है तो मजदूरी सीमान्त उत्पादन के मूल्य से कम होगी।

प्रो रघुराजसिंह के अनुसार आधुनिक अर्थ-व्यवस्थाओ मे सामान्यत. मजदूरी तीन तरीको से निश्चित की जाती है।[1] ये तरीके है—व्यक्तिगत सौदाकारी, सामूहिक सौदाकारी और कानूनी नियमन।

व्यक्तिगत सौदाकारी (Individual Bargaining) के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक अपने नियोजक से व्यक्तिगत रूप से मजदूरी का सौदा करता है। एक व्यक्ति की सौदा करने की शक्ति कमजोर होने से उसे उसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य से कम मजदूरी मिलेगी और इस प्रकार व्यक्तिगत सौदाकारी के अन्तर्गत शोषण की प्रवृत्ति पाई जाती है।

सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) के अन्तर्गत श्रम के क्रेता (नियोजक) तथा विक्रेता (श्रमिक) सामूहिक रूप से मिलकर मजदूरी निर्धारण का

1 *Raghu Raj Singh* : Movement of Wages in India, p. 27.

कार्य करते हैं। इसके अन्तर्गत मालिक शुरू मे न्यूनतम मजदूरी देना चाहेगा जबकि श्रमिक अधिकतम मजदूरी का प्रस्ताव रखेंगे। इसके अन्तर्गत वास्तविक मजदूरी दर का निर्धारण श्रमिको और नियोजकों की सौदाकारी शक्ति तथा उनकी दक्षता पर आधारित होता है। जो पक्ष जितना अधिक सुसंगठित तथा सुदृढ (Well-organised and strong) होगा उतनी ही सफलता उसे अधिक मिलेगी। एक विकासशील देश (जैसे भारत) मे सुसंगठित तथा सुदृढ श्रमिक सघो का अभाव होने से यहाँ के श्रमिको की सौदाकारी शक्ति दुर्बल होने पर उनका शोषण होता है तथा मजदूरी दर नियोजकों या मालिको के अधिक अनुकूल है। सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत निर्धारित वास्तविक मजदूरी किसी भी उद्योग या व्यवसाय मे वहाँ के श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर हो सकती है तथा नही भी हो सकती है।

कभी-कभी नियोजक तथा श्रमिक सामूहिक सौदाकारी द्वारा मजदूरी-निर्धारण मे असफल हो जाते है तब मजदूरी का निर्धारण ऐच्छिक सुलह अथवा पचफैसले (Arbitration) के आधार पर होता है। यह निर्धारण दोनो की सहमति तथा समझौते पर आधारित होने के कारण दोनो पक्षो की सौदेकारी शक्ति तथा कुशलता को प्रदर्शित करता है। पंचफैसले के अन्तर्गत जो भी पच नियुक्त होता है वह मजदूरी निर्धारित करते समय न केवल दोनो पक्षो की सौदेकारी शक्ति व कार्य-कुशलता को ही ध्यान मे रखता है बल्कि वह उद्योग या नियोजक की भुगतान क्षमता, श्रमिको की जीवन-निर्वाह लागत, श्रमिको की उत्पादकता, वर्तमान मे पाई जाने वाली मजदूरी दरें और राष्ट्रीय हित आदि बातों को भी ध्यान मे रखता है।

इसके अतिरिक्त मजदूरी-निर्धारण का कार्य किसी वैधानिक मण्डल द्वारा भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, हमारे देश में विभिन्न उद्योगो के लिए समय-समय पर वेतन मण्डल (Wage Boards) नियुक्त किए गए है तथा उनकी सिफारिशो के आधार पर सरकार ने मजदूरी निश्चित की है। ये मण्डल मजदूरी निर्धारित करते समय देश के औद्योगिक स्तर, आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक पहलुओ को ध्यान में रखते हुए मजदूरी निर्धारित करते हैं।

मजदूरी का सौदाकारी सिद्धान्त सर्वप्रथम प्रसिद्ध अर्थशास्त्री वेब्स ने प्रतिपादित किया था। इसके बाद से ही यह सिद्धान्त श्रमिक सघो का मूलभूत सिद्धान्त बन गया। प्रो.मिलिस एव मोन्टगोमरी (Prof Millis & Montgomery) के अनुसार मजदूरी, कार्य के घण्टे और कार्य की दशा मे दोनो पक्षो की सापेक्षिक सौदेकारी शक्ति का मामला है। सुसगठित प्रयासो के माध्यम से मजदूरी, कार्य के घण्टो तथा अन्य महत्त्वपूर्ण श्रम प्रसविदो और उनके प्रशासन मे महत्त्वपूर्ण सुधार किया जा सकता है।[1]

हाल ही के वर्षों मे, विशेष रूप से तीसा की महान् मन्दी के पश्चात् से ही सौदेकारी सिद्धान्त ने मजदूरी दरो तथा अल्पकालीन मजदूरी विभिन्नताओ के निर्धारण मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

1 *Millis H A & Montgomery R A* . Organised Labour, p. 36.

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार श्रमिक अपनी मजदूरी बढ़वाने में असमर्थ थे, लेकिन आधुनिक समय में समाजवादी विचारधारा और सुसंगठित तथा सुदृढ श्रमिक संघों ने यह सिद्ध कर दिया है कि नियोजक (Employer) अपनी इच्छानुसार कार्य की दशाएँ, काम के घण्टे, मजदूरी, संगठन का प्रशासन आदि निर्धारित नहीं कर सकता। अब श्रमिक एक वस्तु की तरह क्रय नहीं किया जा सकता। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री पूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं को मानकर चलते थे जो कि व्यवहार में नहीं पाई जाती हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि इस सिद्धान्त के अनुसार श्रमिकों को सुसंगठित तथा सुदृढ़ होना चाहिए और मजदूरी में कमी करने के किसी भी दबाव का डटकर मुकाबला करना चाहिए। सामूहिक सौदे द्वारा ही श्रमिक अपनी मजदूरी, कार्य के घण्टे, कार्य की दशाओं आदि में महत्त्वपूर्ण सुधार करवाने में सफल हो सकते है। यह सिद्धान्त 'संगठन ही शक्ति है' (Union is Strength) पर आधारित है।

प्रो कीन्स की 1936 में 'सामान्य सिद्धान्त' नामक पुस्तक के प्रकाशित होने से प्रो वेब्स के सौदाकारी सिद्धान्त को एक महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक सहारा मिला।

आलोचना—मजदूरी के सौदेकारी सिद्धान्त की भी उसी प्रकार से आलोचना की गई है जिस प्रकार से मजदूरी के सीमान्त उत्पादन की—

1. यह प्रश्न किया गया है कि क्या मजदूरी निर्धारण करने में सौदेकारी सिद्धान्त उपयुक्त एवं वांछनीय प्रभाव डालता है? मजदूरी निर्धारित करते समय उद्योग की भुगतान-क्षमता, विभिन्न उद्योगो में पाई जाने वाली मजदूरी दर, सहकारी नीति आदि तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं।

2. नियोजक (Employers) इस सिद्धान्त की आलोचना करते हैं क्योंकि साधन-बाजार (Factor Market) में प्रतियोगिता के अभाव की मान्यता पर यह सिद्धान्त आधारित है। हम देखते हैं कि इंजीनियरिंग, वैज्ञानिक और अन्य तकनीकी पदों के लिए कर्मचारी प्राय: नहीं मिल पाते हैं।

3 सामूहिक सौदेकारी द्वारा मजदूरी में इतनी शीघ्र वृद्धि नहीं हो पाती है जितनी कि व्यक्तिगत सौदेकारी में—यह मान्यता भी गलत है क्योंकि व्यवहार में हम देखते है कि व्यक्तिगत सौदेकारी के अन्तर्गत श्रमिक को उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम मजदूरी मिलती है जबकि सामूहिक सौदेकारी के अन्तर्गत यदि सुदृढ एवं सुसंगठित (Strong and well organised) श्रमिक है तो मजदूरी कभी भी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम नहीं हो सकती है।

4. सामूहिक सौदेकारी के आधार पर हुए मजदूरी निर्धारण के समझौते की भी आलोचना की गई है क्योंकि सामूहिक सौदेकारी सिद्धान्त द्वारा निर्धारित मजदूरी जरूरी नहीं है कि सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर हो अथवा उद्योग की भुगतान क्षमता, राष्ट्रीय नीति आदि के अनुकूल हो। इस सिद्धान्त द्वारा हुए समझौते को सही नहीं मान सकते। चाहे इसे साधनों के कुशल आवण्टन, मूल्य-स्थिरता अथवा समान कार्य हेतु समान मजदूरी को ध्यान में रखकर अध्ययन किया जाए।

5. सामूहिक सौदेकारी सिद्धान्त के अन्तर्गत हुए मजदूरी समझौतो की सामाजिक तथा आर्थिक लागतें (Social and economic costs of wage dispute settlements) भी होती हैं जो कि राष्ट्रीय प्रगति मे बाधक होती हैं—जैसे हड़तालें, ताला-बन्दियाँ, मध्यस्थता, पचफैसला आदि। इनको भी ध्यान मे रखकर इस सिद्धान्त की उपयुक्तता का अध्ययन करना होगा।

6 सौदेकारी सिद्धान्त की सबसे प्रभावपूर्ण दुर्बलता इसका अवसरवादी गुण (Opportunistic Character) है। यह अपने आप मे मजदूरी-निर्धारण का एक पूर्ण सिद्धान्त (Complete Theory) नही है क्योंकि यह दीर्घकालीन रूप रेखाएँ प्रस्तुत नही करता। जब दोनों पक्ष सगठित हो और मजदूरी का निर्धारण सौदेकारी सिद्धान्त के आधार पर हो जाए तो फिर आगे क्या कार्यक्रम होगा—इसे बताने में यह सिद्धान्त असफल रहा है।

प्रो कीन्स के अनुसार मजदूरी न केवल सौदेकारी शक्ति द्वारा ही निर्धारित की जाए, बल्कि इसके अतिरिक्त इसमे निम्नलिखित बातें भी ध्यान मे रखनी होगी—

1. एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति (A National Wage Policy),
2 एक स्थिर नकदी मजदूरी स्तर (A Stable Money Wage Level),
3. दीर्घकाल में बढता हुआ नकदी मजदूरी स्तर (A Rising Money Wage Level in the Long Run)।

श्रमिक शोषण की विचारधारा
(Concept of 'Exploitation of Labour')

श्रमिक शोषण की विचारधारा समाजवादी अर्थशास्त्रियों की देन है। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Das Capital' मे पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था को श्रमिक शोषण के लिए उत्तरदायी बताया है। उन्होने इसी विचारधारा के आधार पर मूल्य का बचत सिद्धान्त (Surplus Theory of Value) प्रतिपादित किया है। इसके अन्तर्गत श्रमिक को पूँजीपति उसकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम मजदूरी देकर उसका शोषण करते हैं। साथ ही पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था मे जो लाभ है वह श्रमिको के शोषण का परिणाम माना है।

श्रमिको का शोषण श्रमिको व मालिको की असमान सौदेकारी शक्ति के कारण होता है क्योंकि श्रमिक प्राय विकासशील देशों मे सुदृढ़ तथा सुसगठित न होने के कारण उनकी मोलभाव करने की शक्ति (Bargaining Power) कमजोर होती है और उनको जो मजदूरी दी जाती है वह उनके कुल उत्पादन मे किए गए योगदान (Contribution to total production) के मूल्य से कम होती है और इस तरह उनका शोषण होना रहता है।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री (Classical Economists) वस्तु बाजार (Commodity Market) तथा साधन बाजार (Factor Market) मे पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता को मान कर चले थे। अत उस समय किसी भी साधन के शोषण होने का प्रश्न नही उत्पन्न होता था, लेकिन हम वास्तविक जीवन मे देखते हैं कि न तो वस्तु

बाजार और न ही साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है। व्यवहार में अपूर्ण प्रतियोगिता के कारण साधन के शोषण की स्थिति उत्पन्न होती है।

साधारण व्यक्ति की दृष्टि में जब लाभ अधिक हो और मजदूरी काफी कम, श्रम का शोषण माना जाता है। अर्थशास्त्रियों ने श्रमिक का शोषण विभिन्न रूपों में परिभाषित किया है। प्रो. पीगू के अनुसार, जब श्रमिक को उसके सीमान्त भौतिक उत्पादन के मूल्य (Value of Marginal Physical Product) से कम मजदूरी दी जाती है तो श्रमिक शोषण होगा जबकि श्रीमती जॉन रोबिन्सन (Mrs Joan Robinson) ने श्रमिक के शोषण को सीमान्त विशुद्ध उत्पादकता (Marginal Net Productivity) के रूप में परिभाषित किया है। इसमें सीमान्त विशुद्ध उत्पादकता से अर्थ है—सीमान्त भौतिक उत्पादकता को फर्म के सीमान्त आगम (Marginal Revenue or M R) से गुणा किया जाता। श्रीमती रोबिन्सन के अनुसार, श्रमिक का शोषण श्रम बाजार की अपूर्णताओं के कारण होता है जबकि प्रो. पीगू की श्रम शोषण सम्बन्धी विचारधारा व्यापक है। उसके अनुसार श्रमिक का शोषण न केवल श्रम बाजार की अपूर्णताओं का परिणाम है, बल्कि इस शोषण में वस्तु बाजार की अपूर्णताओं का भी हाथ है। वस्तु बाजार में जब अपूर्ण प्रतियोगिता होती है तो सीमान्त आगम कीमत से कम (Marginal Revenue is less than Price or MR < P) होता है।

पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत श्रमिक शोषण के अध्ययन हेतु हमें सीमान्त आगम उत्पादकता (Marginal Revenue Productivity) को ध्यान में रखना चाहिए। वास्तविक व्यवहार में हमें पूर्ण प्रतियोगिता न केवल साधन बाजार (Factor Market) में बल्कि वस्तु बाजार (Commodity Market) में भी देखने को नहीं मिलती है। यदि नियोक्ता सभी उत्पादन के साधनों को उनके सीमान्त उत्पादन के मूल्य (Value of Marginal Product) के बराबर भुगतान कर देता है तो स्वयं उसका शोषण होगा। श्रमिकों के शोषण के कारणों का अध्ययन अग्रलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1 अपूर्ण वस्तु बाजार (Imperfect Commodity Market) के कारण श्रमिक का शोषण होता है क्योंकि प्रत्येक उत्पादन के साधन का सीमान्त आगम उत्पादन इसके सीमान्त उत्पादन के मूल्य से कम (MRP < VMP or Marginal Revenue Product is less than Value of Marginal Product) होता है। इस प्रकार का शोषण सभी साधनों का होता है। जहाँ तक कुछ सीमा तक एकाधिकारी तत्व की स्थिति देखने को मिलेगी, श्रमिकों का शोषण भी होता रहेगा। इस स्थिति में मजदूरी बढ़ाने से शोषण समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा करने से रोजगार तथा उत्पादन में कमी आ जाएगी। इस कमी का कारण मजदूरी बढ़ाने से उद्योग की उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाती है। इस शोषण को समाप्त करने के लिए एकाधिकारी द्वारा उतना उत्पादन करना होगा जो कि उसकी औसत लागत तथा कीमत दोनों को बराबर (Average Cost = Price) करता

हो। यदि मजदूरी नीची है तो हम यह नही कह सकते कि श्रमिक शोषण होता है। यह तभी कहा जा सकता है जबकि श्रमिक की उत्पादकता को ध्यान मे रखा जाए। उत्पादकता कम होने पर मजदूरी भी कम होगी और इसे हम श्रमिक के शोषण के नाम से नही पुकार सकते।

2. श्रम बाजार (Labour Market) के अपूर्ण होने की स्थिति मे भी श्रम का शोषण होता है क्योकि इसके अन्तर्गत नियोक्ता मिलकर श्रम के क्रय हेतु समझौता कर लेते है। यह शोषण उस स्थिति मे भी सम्भव है जहाँ पर श्रम की पूर्ति पूर्ण लोचदार से कम होती है। श्रम की पूर्ति पूर्ण लोचदार से कम उस स्थिति मे हो सकती है—जब श्रमिक एक स्थान से दूसरे स्थान, एक उद्योग से दूसरे उद्योग मे गतिशील न हो और चालू मजदूरी-दरो पर कार्य करने को तत्पर न हो।

जहाँ क्रेताधिकार (Monopsony) की स्थिति श्रम बाजार मे विद्यमान होती है वहाँ श्रमिक का शोषण होता है। श्रमिक-संघ क्रेताधिकारियो पर मजदूरी बढाने हेतु दबाव डाल सकते है लेकिन उनको अधिक सफलता नही मिल सकती क्योकि अधिक दबाव डालने पर श्रमिको के रोजगार पर भी विपरीत प्रभाव पड सकता है।

3. श्रमिको की भिन्नता (Heterogeneity of Labour) के कारण भी श्रमिको का शोषण सम्भव होता है क्योकि श्रमिको को अलग-अलग वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—जैसे कुशल, अर्द्ध-कुशल एव अकुशल। कार्य-कुशलता के आधार पर विभिन्न वर्गो वाले श्रमिको को अलग अलग पारिश्रमिक दिया जाता है। एक ही वर्ग जैसे कुशल मे भी कितने ही श्रमिक होते हैं। सबसे घटिया दक्षता वाले श्रमिक को जितनी मजदूरी दी जाती है और उतनी ही उससे अधिक दक्षता रखने वाले श्रमिक को दी जाती है तो यह भी श्रमिक शोषण को उत्पन्न करता है।

आधुनिक विचारधारा

उपरोक्त मजदूरी-निर्धारण के विभिन्न सिद्धान्तो का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कोई भी मजदूरी-निर्धारण का सिद्धान्त अपने आप मे पूर्ण एव व्यावहारिक नही है। इस तरह किसी भी राष्ट्र मे मजदूरी-निर्धारण सम्बन्धी कार्य एक जटिल विषय है। प्राचीन समय मे मजदूर को एक वस्तु की भाँति समझकर मजदूरी का निर्धारण कर दिया जाता था लेकिन अब समाजवादी विचारधाराओ तथा कल्याणकारी राज्य की भूमिका ने मजदूरी-निर्धारण सम्बन्धी विचार को पूर्ण रूप से बदल दिया है। अब श्रमिक के वस्तु दृष्टिकोण के स्थान पर मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाता है। अब श्रमिक का सम्बन्ध नियोक्ता के साथ मालिक-मजदूर का न रहकर सहभागिता (Partnership) का सम्बन्ध हो गया है। औद्योगिक प्रजातन्त्र (Industrial Democracy) के विकास से श्रमिक उद्योग के प्रशासन मे भी हाथ बँटाते हैं। अधिकांश देशो मे मजदूरी-निर्धारण मे कई महत्त्वपूर्ण तत्त्व प्रभाव डालते हैं—जैसे श्रम की उत्पादकता श्रमिको व नियोक्ताओ की मोलभावकारी शक्ति, सरकारी विधान एव हस्तक्षेप, आर्थिक विकास का

स्तर, राष्ट्रीय आय, जीवन निर्वाह लाभ, उद्योग की भुगतान क्षमता, सामाजिक लाभ नियोक्ता का उपभोग और विनियोग एवं उसकी एकाधिकार तत्त्व की स्थिति आदि। मजदूरी निर्धारित करते समय इन बातों को ध्यान में रखना पड़ेगा।

मजदूरी में अन्तर के कारण
(Causes of Wage Differentials)

मजदूरी से सम्बन्धित समस्या सापेक्षिक मजदूरी (Relative Wages) है। इसके अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायों, विभिन्न रोजगारों, विभिन्न स्थानों में मजदूरी में अन्तर होने के कारणों का अध्ययन किया जाता है। भिन्न-भिन्न व्यवसायों में मजदूरी की दर समान नहीं होती है। एक ही व्यवसाय और विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी में पाए जाने वाले कारणों का अध्ययन करना उचित होगा। वे तत्त्व जिनके कारण विभिन्न व्यवसायों, विभिन्न रोजगारों तथा स्थानों में मजदूरी में अन्तर पाया जाता है, निम्नांकित है—

1. कार्यकुशलता में अन्तर (Differences in Efficiency)—एक ही व्यवसाय तथा विभिन्न व्यवसायों में मजदूरी में भिन्नता का कारण श्रमिकों की कार्यकुशलता में अन्तर का पाया जाना है। श्रमिक कुशल (Skilled), अर्द्ध-कुशल (Semi-skilled) एवं अकुशल (Unskilled) होते है। यह कार्यकुशलता का अन्तर जन्मजात गुणों (Inborn qualities), शिक्षा, प्रशिक्षण एवं कार्य की दशाओं आदि के कारण से होता है। अतः जब कार्यकुशलता अलग-अलग होगी तो मजदूरी में अन्तर होना भी स्वाभाविक है।

2. बाजार की अपूर्णताएँ (Market Imperfections)—श्रम का पूर्ण गतिशील न होना, एकाधिकारी तत्त्व तथा सरकारी हस्तक्षेप आदि बाजार की अपूर्णताओं को उत्पन्न करते हैं। इन्हीं अपूर्णताओं के कारण मजदूरी में अन्तर पाए जाते है। किसी व्यवसाय में सुदृढ़ श्रम-संघ का होना, सरकार द्वारा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, श्रमिकों में भौगोलिक गतिशीलता का अभाव एवं श्रम की गतिशीलता में सामाजिक तथा संस्थागत बाधक तत्त्व आदि के कारण बाजार की अपूर्णताएँ पाई जाती हैं। परिणामस्वरूप मजदूरी में अन्तर देखने को मिलते है।

3. किसी व्यवसाय को सीखने की लागत अथवा कठिनाई के कारण किसी व्यवसाय विशेष में श्रमिकों की पूर्ति उनकी माँग की तुलना में कम होती है। परिणामस्वरूप उनकी मजदूरी अन्य वर्गों से अधिक होगी और मजदूरी में अन्तर पाए जाएँगे। उदाहरणतः डॉक्टर व इन्जीनियर को एक साधारण स्नातक से अधिक वेतन मिलता है।

4 कार्य की प्रकृति (Nature of Work)—कुछ कार्य स्थायी होते हैं तथा कुछ सामयिक (Seasonal) होते है। स्थायी कार्यों में लगे श्रमिकों की मजदूरी दर कम होती है जबकि अस्थायी प्रकृति वाले कार्यों में लगे श्रमिकों को प्रायः अधिक मजदूरी दी जाती है। ये सभी कारण मजदूरी में अन्तर को जन्म देते हैं।

5 भावी उन्नति मे अन्तर (Differences in Future Prospects) के कारण भी मजदूरी मे अन्तर पाए जाते हैं। जिस व्यवसाय या उद्योग मे श्रमिको को भविष्य मे उन्नति के अधिक अवसर होते है, उनमे श्रमिक प्रारम्भ में कम मजदूरी पर भी कार्य करने को तैयार हो जाते है। इसके विपरीत जिन व्यवसायो मे भावी उन्नति के आसार कम अथवा नही होते है, उनमे प्रारम्भ मे श्रमिको को ऊंची मजदूरी का भुगतान किया जाता है। अतः इस भिन्नता के कारण अलग-अलग व्यवसायो मे मजदूरी मे अन्तर देखने को मिलेंगे।

6 रोजगार का समाज में स्थान (Social Esteem of Employment)—निम्न कार्य के लिए अधिक मजदूरी देकर श्रमिको को आकर्षित करना पडता है क्योंकि समाज मे ऐसे कार्य करने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता है जबकि समाज में अच्छी निगाह से देखे जाने वाले रोजगार के लिए कम मजदूरी देने पर भी श्रमिक कार्य करने हेतु तैयार हो जाएंगे।

7. व्यवसाय की जोखिम (Risk of Occupation)—जिन व्यवसायो मे कार्य अधिक खतरनाक अथवा जोखिमपूर्ण होते है, उनमे कार्य करने वालो को अधिक पारिश्रमिक दिया जाता है जबकि मजदूरी और आसान कार्य करने वालो को कम मजदूरी दी जाती है। श्रमिक व सैनिक दोनो की मजदूरी में अन्तर मुख्यतः इसी कारण पाया जाता है।

8 निर्वाह लागत (Cost of Living)—जिन स्थानो या शहरो मे जीवन-निर्वाह लागत अधिक होती है वहाँ पर कार्य करने वालो को ऊँचा वेतन दिया जाता है जबकि दूसरी ओर सस्ते जीवन-निर्वाह लागत वाले शहरो में मजदूरी कम दी जाती है। इस प्रकार जीवन-निर्वाह लागत मजदूरी मे अन्तर उत्पन्न करती है।

मजदूरी मे विभिन्नता एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की महत्त्वपूर्ण देन है। इस अर्थव्यवस्था का अर्थ-तन्त्र ही ऐसा है जो कि मजदूरों में अन्तर तथा आर्थिक असमानता को जन्म देने मे सहायक होता है। फिर भी विभिन्न श्रमिको की कार्य-कुशलता की विभिन्नताओ के कारण मजदूरी मे अन्तर होना परमावश्यक (Inevitable) है। एक अमेरिका जैसी स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था मे मजदूरी का निर्धारण बाजार दशाओ के आधार पर होने के कारण मजदूरी की विभिन्नताएं उत्पन्न होती हैं। एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में भी मजदूरी मे पाई जाने वाली विभिन्नताओ को अभी समाप्त नही किया जा सका है, यद्यपि इन देशो मे उत्पादन के सभी साधन सरकारी स्वामित्व मे है तथा निजी सम्पत्ति के अधिकार को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया है।

मजदूरी मे अन्तर श्रमिको के शारीरिक और मानसिक गुणो के अलग-अलग होने का परिणाम है। श्रमिको मे मौलिक तथा प्राप्त गुणो के अन्तर के कारण उनकी दक्षता भी अलग-अलग होती है और स्वाभाविक है कि उनको मजदूरी भी अलग-अलग दी जाएगी। विभिन्न श्रमिको की उत्पादन-क्षमता भी इससे अलग-अलग होगी।

मजदूरी-अन्तरों के प्रकार
(Types of Wage Differentials)

मजदूरी में अन्तरों को निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है[1]—

1. रोजगार बाजार की अपूर्णताओं (Imperfections of the Employment Market) के कारण भी मजदूरी में अन्तर उत्पन्न होते हैं। श्रमिक को कार्य की जानकारी का न होना, श्रमिक की भौगोलिक एवं व्यावसायिक गतिशीलता का अभाव आदि मजदूरी में अन्तर को प्रोत्साहन देते हैं।

2. लिंग, आयु आदि के कारण भी मजदूरी में अन्तर पाया जाता है। स्त्री को पुरुष से कम मजदूरी दी जाती है और बालक को वयस्क से कम मजदूरी दी जाती है।

3. व्यावसायिक मजदूरी में अन्तर (Occupational Wage Differentials)—व्यवसायों को भी मानसिक तथा शारीरिक कार्य करने वालों के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। रोजगार बाजार में कितनी ही पूर्णताएँ क्यों न हों फिर भी व्यावसायिक मजदूरी में अन्तर मिलेंगे। किसी एक उद्योग के प्रबन्धक को वेतन तथा इसी संस्थान के विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्षों को मिलने वाला वेतन अलग-अलग होता है। शारीरिक कार्य करने वाले श्रमिकों की मजदूरी भी मानसिक कार्य करने वाले श्रमिकों से अलग होगी।



1 *Bhagoliwal, T. N.*: Economics of Labour & Social Welfare, p. 252.

3 मजदूरी श्रौर उत्पादकता, ऊँची मजदूरी की मितव्ययिता, राष्ट्रीय श्राय वितरण में श्रम का भाग, प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की पद्धतियाँ, भारत में मजदूरी भुगतान की पद्धतियाँ

(Wages and Productivity, Economy of High Wages, Labour Share in National Income Distribution, Methods of Incentive Wage Payment, Systems of Wage Payment in India)

मजदूरी श्रौर उत्पादकता
(Wages and Productivity)

मजदूरी को प्रभावित करने मे उत्पादकता का महत्वपूर्ण स्थान है। जब भी मजदूरी मे वृद्धि की जाती है तो यह सोचा जाता है कि उत्पादकता मे भी वृद्धि होगी श्रथवा नही। यद्यपि उत्पादकता के श्राधार पर ही मजदूरी मे वृद्धि करना वाँछनीय होगा, लेकिन स्वय उत्पादकता को मापना बडा कठिन है। किसी वस्तु के उत्पादन मे, उत्पादन के विभिन्न साधनो का सहयोग होता है। एक साधन द्वारा एक वस्तु के उत्पादन मे कितना योगदान रहा है, वह उस साधन की उत्पादकता होती है। श्रम की एक इकाई द्वारा कितना उत्पादन किया जाता है वही उसकी उत्पादकता है। रोजगार की दी हुई मात्रा के साथ राष्ट्रीय श्राय की मात्रा श्रम की उत्पादकता पर निर्भर करती है। उत्पादन को अधिकतम करने हेतु हमे मानवीय शक्ति को रोजगार देकर उससे श्रधिकतम उत्पादन करना होगा। श्रधिक रोजगार होने के बावजूद भी उत्पादन श्रधिकतम सम्भव नही हो पाता यदि श्रमिको की उत्पादकता कम है।

उत्पादन के यन्त्रो, उत्पादन के तरीको, प्रबन्ध-कुशलता, अन्य साधनो की पूर्ति आदि को दिया हुआ मानकर चलें तो हम कह सकते हैं कि श्रमिक उत्पादकता उसकी कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में सीधा सम्बन्ध है। यदि कार्यकुशलता अच्छी है तो उत्पादकता मे वृद्धि होगी अन्यथा नहीं।

उत्पादकता की परिभाषा
(Definition of Productivity)

उत्पादकता किसी वस्तु के उत्पादन की मात्रा और एक या अधिक उत्पादन के साधनों का अनुपात बताती है, जो कि मात्रा मे ही मापी जाती है।[1] इस विचार के अनुसार उत्पादकता विभिन्न प्रकार की होती है, जैसे—श्रम उत्पादकता, पूँजी उत्पादकता, शक्ति उत्पादकता एवं कच्चे माल की उत्पादकता, आदि।

प्रो. गांगुली (Prof H. C Ganguli) के अनुसार, उत्पादकता का अर्थ सामान्यतया किसी सृजन करने की शक्ति या क्षमता से होता है (Productivity usually means possession or rise of the power to create)। उत्पादकता को निम्नांकित सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है[2]—

$$\text{श्रम उत्पादकता} = \frac{\text{धन का उत्पादन (Output of Wealth)}}{\text{श्रम साधन (Input of Labour)}}$$

उपयोग और महत्त्व
(Uses and Significance)

श्रम उत्पादकता के उपयोग व महत्त्व को निम्न रूपो मे देखा जा सकता है—

1. किसी भी देश मे विकास और प्रगति की दर एक लम्बे समय तक किस तरह परिवर्तित रही है। उत्पादकता को किसी भी समाज की उन्नति का बैरोमीटर कहा जा सकता है। अधिक उत्पादकता है तो इससे उत्पादन में वृद्धि होगी और राष्ट्रीय आर्थिक विकास की दर मे वृद्धि होगी।

2. उत्पादकता सूचकांको की सहायता से विभिन्न सरकारी, व्यावसायिक एव श्रम संघ नीतियो जिनका सम्बन्ध उत्पादन, मजदूरी, मूल्य, रोजगार, कार्य के घण्टो और जीवन निर्वाह से होता है, निर्धारण आसानी से किया जा सकता है।

3. मजदूरी दरो के सम्बन्ध मे सौदा करने की सुविधा उत्पादकता के कारण ही सम्भव होती है क्योंकि उत्पादकता मे वृद्धि होते ही श्रमिक मजदूरी मे वृद्धि करने की माँग कर सकते है।

4. उत्पादकता की सहायता से हम विभिन्न उद्योगो की उत्पादकता का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते है तथा यह पता लगा सकते है कि साहसी निम्न उत्पादकता उद्योग से अधिक उत्पादकता उद्योग मे अपनी पूँजी निवेश करता है अथवा नही।

1 *Beri, G. C.* · Measurements of Production & Productivity in Indian Industry, p. 90

2 *Ganguli, H. C.* · Industrial Productivity and Motivation, p. 1.

5. उत्पादकता से हमें यह भी पता चलता है कि किसी प्रौद्योगिक इकाई में वित्तीय, प्रबन्धकीय एवं प्रशासकीय एकीकृत नीति का उसकी उत्पादकता पर क्या प्रभाव पड़ता है।

6. उत्पादकता सूचकांकों के सहारे किसी भी प्रौद्योगिक इकाई में विवेकीकरण (Rationalisation) तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management) की योजनाओं के लागू करने से निकले परिणाम ज्ञात किए जा सकते हैं।

7. कारखाना प्रबन्धक उत्पादकता के माध्यम से नवीन मजदूरी भुगतान तथा प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतानों की सफलता के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकता है।

श्रम की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्त्व (Factors affecting the Productivity of Labour)

अब हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि श्रम उत्पादकता किन-किन तत्त्वों से प्रभावित होती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organisation) के अनुसार श्रम की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है[1]—

1 सामान्य तत्त्व (General Factors)—श्रम उत्पादकता को प्रभावित करने में सामान्य तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं। सामान्य तत्त्वों के अन्तर्गत जलवायु, कच्चे माल का भौगोलिक वितरण आदि आते हैं। जहाँ गर्म जलवायु होती है वहाँ के श्रमिक लम्बे समय तक कार्य नहीं कर पाते हैं तथा उनकी कार्य-क्षमता कम होने से उत्पादकता भी कम होती है। भारतीय श्रमिक यूरोपीय श्रमिक की तुलना में कम उत्पादकता देता है क्योंकि हमारे देश की जलवायु गर्म है। जहाँ कच्चा माल आसानी से और शीघ्र सुलभ होता है वहाँ श्रमिक उत्पादकता अधिक होगी और इसके विपरीत कम उत्पादकता होगी।

2. संगठन एवं तकनीकी तत्त्व (Organisation & Technical Factors)—श्रम की उत्पादकता उद्योग के संगठन तथा उनमें काम लाई गई तकनीकी द्वारा भी प्रभावित होती है। इनके अन्तर्गत कच्चे माल की किस्म (Quality of Raw Material), प्लान्ट की स्थिति एवं संरचना, मशीनों एवं औजारों की घिसावट आदि आते हैं।

3 मानवीय तत्त्व (Human Factors)—मानवीय तत्त्वों से भी श्रम की उत्पादकता प्रभावित होती है। मानवीय तत्त्वों के अन्तर्गत श्रम-प्रबन्ध सम्बन्ध, कार्य की सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक दशाएँ, श्रम-संघ व्यवहार आदि आते हैं। जिस संस्थान में श्रम-प्रबन्ध सम्बन्ध अच्छे एवं मधुर होते हैं वहाँ हड़ताल, ताला-बन्दियाँ, धीमे कार्य की प्रवृत्तियाँ आदि न होने से श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होती है। इसके

1 *Beri, G. C.*: Measurements of Production & Productivity in Indian Industry, p. 9.

विपरीत बातें होने पर श्रम की उत्पादकता घटती है। कार्य की दशाएँ अच्छी होने पर तथा श्रम समस्याओं को मानवीय दृष्टिकोण से देखने पर श्रमिकों की मनोदशा और समाज पर अच्छा प्रभाव पड़ने से श्रमिक उत्पादकता मे वृद्धि होती है। श्रमिक संघो का व्यवहार भी अच्छा होने पर उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

श्रम-उत्पादकता की माप (Measurement of Labour Productivity)—श्रम उत्पादकता को कई तरीको से मापा जा सकता है। किसी उद्योग में एक ही उत्पादन (Single Product) होने पर श्रम उत्पादकता ज्ञात करना आसान है। उत्पादकता मापने हेतु निम्नलिखित समीकरण काम मे लाया जाएगा[1]—

$$P = \frac{q}{m}$$

P का अर्थ है उत्पादकता, q उत्पादन की मात्रा या इकाइयों तथा m मानव घण्टो की सख्या को प्रदर्शित करता है। दो समयो (Two Periods) मे उत्पादकता मे हुए परिवर्तनो को इस प्रकार लिख सकते है—$\frac{q_1/q_0}{m_1/m_0}$. इनमें $_0$ और $_1$ आधार वर्ष एव चालू वर्ष को प्रदर्शित करते है।

लेकिन उपरोक्त समीकरण द्वारा मापी गई उत्पादकता वास्तविक जीवन मे मापी जाने वाली उत्पादकता से आसान है। वास्तविक जीवन मे उत्पादकता मापना आसान नही है क्योंकि एक ही उद्योग द्वारा एक से अधिक वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है। विभिन्न वस्तुओ की भौतिक मात्रा तथा आकार-प्रकार अलग-अलग होते हैं। इस समस्या को दो विधियो द्वारा हल किया जा सकता है—

1. उत्पादन के साथ-साथ रोजगार के सूचकांक आधार तथा चालू वर्षो के लिए तैयार किए जा सकते है और इनके आधार पर चालू वर्ष मे आधार वर्ष के आधार पर हुए उत्पादकता के परिवर्तन के अनुपात को मापा जा सकता है। चालू वर्ष मे हुए उत्पादकता के परिवर्तन को निम्न प्रकार ज्ञात किया जाएगा—

$$\frac{P_1/P_0}{E_1 E_0}$$

इस सूत्र में P तथा E उत्पादक सूचकांक तथा रोजगार सूचकांक को प्रदर्शित करते हैं।

2. श्रम उत्पादकता मापने की दूसरी विधि के अन्तर्गत प्रति मानव घण्टा उत्पादन (Output per man hour) का विपरीत (Reciprocal) उपयोग करके उत्पादकता मालूम की जा सकती है। इस प्रकार उत्पादन की प्रति इकाई पर किया गया मानव घण्टों का व्यय ज्ञात किया जाता है अर्थात् एक वस्तु की एक इकाई के उत्पादन में कितने मानव घण्टों (Man-hours) का व्यय हुआ। इसे हम 'इकाई श्रम जरूरत' (Unit Labour Requirement) के नाम से भी पुकारते है।

1 *Beri G C.*: Measurements of Production & Productivity in Indian Industry, p 93.

श्रम उत्पादकता की आलोचना
(Criticism of Labour Productivity)

1. यदि हम श्रमउत्पादकता का अध्ययन करते है तो इससे श्रम को ही उत्पादन बढाने के लिए अनावश्यक महत्त्व दिया जाता है जबकि उत्पादन में वृद्धि हेतु न केवल श्रम की उत्पादकता मे वृद्धि करना आवश्यक है, बल्कि उत्पादन के अन्य साधनो के महत्त्व को भी स्वीकार करना है।

2. किसी भी सस्थान, फर्म अथवा उद्योग से प्राप्त कुल उत्पादन को श्रम के रूप मे व्यक्त नही कर सकते हैं। उद्योग अथवा फर्म की कार्यकुशलता भी भौतिक उत्पादन और श्रम प्रयासो के अनुपात के रूप मे नापना कठिन है।

3. प्रति व्यक्ति घण्टे की उत्पादकता का सूचकांक मानकर चलना भी उचित नही है क्योकि यह अन्तर-साधन एव उत्पादन कुशलता मे परिवर्तन को भी बताते है।

4 अविकसित देशो मे अपनी श्रम उत्पादकता जानने, इसे मापने आदि के सम्बन्ध मे स्पष्ट जानकारी का अभाव है। अत. वहाँ इस विचारधारा का सही एव उचित उपयोग सम्भव नही हो सकता।

5 श्रम उत्पादकता के सूचकांको की सहायता से सरकारी नीतियो का निर्धारण केवल एक अनुमान मात्र है। जिस आधार पर सूचकांक तैयार किए जाते हैं, वे अपने आप मे सही नही हैं।

उत्पादकता सम्बन्धी विचारों के प्रकार
(Types of Productivity Concepts)

उत्पादकता सम्बन्धी विचार विभिन्न संदर्भों तथा अर्थों मे काम आते हैं—

1 भौतिक उत्पादकता (Physical Productivity)—जब किसी उत्पादन के साधन का उत्पादन मे कितना योगदान है, उसे भौतिक रूप मे व्यक्त करते हैं तो वह भौतिक उत्पादकता कहलाती है, जैसे प्रति मानव घण्टा तीन मीटर कपडा आदि।

2. मूल्य उत्पादकता (Value Productivity)—उत्पादकता समरूप (Homogeneous) नही होने पर तथा विभिन्न प्रकार की वस्तुओ के उत्पादन से तुलना सम्भव नही होने पर उन वस्तुओ की भौतिक मात्रा को बाजार मूल्यो पर गुणा करके मूल्य में व्यक्त करते हैं तो यह मूल्य उत्पादकता कहलाएगी, उदाहरणत. 3 मीटर कपडा, 4 किलो सूत आदि का मूल्य ज्ञात करके उत्पादकता के रूप में व्यक्त करना।

3. औसत उत्पादकता (Average Productivity)—जब कुल उत्पादकता (Total Productivity) मे श्रम की लगाई गई इकाइयो का भाग लगाया जाएगा तो हमे औसत उत्पादकता प्राप्त होगी। उदाहरणार्थ, कुल उत्पादकता 500 इकाइयाँ हैं तथा श्रमिक सख्या 100 है तो औसत उत्पादकता 5 इकाइयाँ होगी।

4. सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity)—किसी वस्तु के उत्पादन मे श्रम की एक अतिरिक्त इकाई के लगाने पर कुल उत्पादकता मे जो वृद्धि

होती है, वही सीमान्त उत्पादकता होगी, जैसे 100 श्रमिकों की कुल उत्पादकता 500 इकाइयाँ है तथा 101 श्रमिको की 510 इकाइयां तो सीमान्त उत्पादकता 10 इकाइयाँ होंगी।

भारत में श्रम उत्पादकता एवं उत्पादकता आन्दोलन
(Labour Productivity and Productivity Movement in India)

भारत एक विकासशील देश है जो पचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सुनियोजित रूप में अपने तीव्र विकास के लिए प्रयत्नशील है। छः पचवर्षीय योजनाएँ पूरी करने और सातवी पंचवर्षीय योजना में प्रवेश करने के उपरान्त भी हमारी औद्योगिक उत्पादन क्षमता बहुत कम है और उत्पादन लागत बहुत अधिक है। हमारे उद्योगो की उत्पादकता अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक क्षेत्र की उत्पादन की तुलना मे काफी कम है। अत. भारत मे उत्पादकता वृद्धि तथा उत्पादकता आन्दोलन का अपना विशेष महत्त्व है। उत्पादकता आज समृद्धि का प्रतीक है और भारत के लिए तो यह जीवन-मरण का प्रश्न है। हमे उत्पादन की विकसित और आधुनिकतम पद्धतियों, नवीनतम मशीनो और उपकरणों, श्रेष्ठ मानवीय सम्बन्धों एव प्रबन्ध-गतिविधियो द्वारा औद्योगिक उत्पादकता को तेजी से बढाना होगा, ताकि जन-सामान्य का जीवन-स्तर वाँछित रूप मे ऊँचा हो सके।

स्वर्गीय प० नेहरू के ये शब्द आज भी हमारे लिए मार्गदर्शक है कि "यद्यपि हमारे देश मे पर्याप्त मात्रा मे सस्ती श्रम-शक्ति उपलब्ध है, फिर भी हम अन्य देशों से उत्पादन-कला व लागत आदि मे प्रतिस्पर्धा नही कर सकते, यहाँ तक कि हम देश के आन्तरिक सुरक्षित बाजार मे भी अधिक दिनो तक नही टिक पाते। इस वास्तविकता का उत्तर केवल एक ही बात मे निहित है कि हम अपने सीमित साधनो का सर्वोपयुक्त ढग से उपयोग करें और उत्पादन की विकसित तकनीक एव प्रबन्ध की श्रेष्ठतम प्रणालियो को मान्यता प्रदान करें।" स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री ने भी उत्पादकता के महत्व को इंगित करते हुए कहा था कि "हमें लोगो का जीवन-स्तर उच्चतर करना है। उत्पादकता बढाने से उत्पादन की लागत कम होती है जिससे वस्तुएँ कम कीमत पर बेची जा सकती है और बाजार का विस्तार होता है तथा विश्व के बाजारो मे हमारी वस्तुएँ महत्त्वपूर्ण ढग से प्रतियोगिता कर सकती है।" डॉ० जाकिर हुसैन ने भी कहा था "यह एक विरोधाभास लगता है कि यद्यपि उच्च विकासित राष्ट्रों की तुलना मे हमारे यहाँ मजदूरी का स्तर नीचा है लेकिन जो वस्तुएँ हम तैयार करते हैं, वे सस्ती नहीं है बल्कि अधिक लागत की है, जिसमे उनके बिकने में कठिनाई बनी रहती है। इसका एक ही उत्तर है कि हम अपनी जन-शक्ति एवं अन्य साधनो का प्रभावशाली ढग से उपयोग करें ताकि उत्पादकता में वृद्धि हो सके।"

भारत मे उत्पादकता आन्दोलन

हमारे देश मे उत्पादकता सम्बन्धी विचार नया नही है। कई सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाओं एव संगठनो ने उत्पादकता को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न

औद्योगिक क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन समय-समय पर किया है। फिर उत्पादकता के सम्बन्ध मे उद्योगो मे उस समय अधिक ध्यान दिया गया जब 1952 और 1954 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L. O.) की टीमे हमारे देश मे आई। इन टीमो ने अहमदाबाद और बम्बई की सूती वस्त्र मिलो तथा कलकत्ता के कुछ इजीनियरिंग सस्थानो को अपना कार्य-क्षेत्र चुना। विभिन्न प्रबन्धको तथा श्रम-सघ नेताओं को यह बताया गया कि थोडे से परिवर्तनो के माध्यम मे उत्पादन के तरीको से उत्पादकता मे वृद्धि की जा सकती है। श्रम सम्बन्धों तथा कच्चे माल के उपयोग के सम्बन्ध मे भी महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गए। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के इस मिशन के कार्य तथा सिफारिशो को ध्यान मे रखते हुए भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय ने बम्बई मे 1955 मे उत्पादकता केन्द्र (Productivity Centre) की स्थापना की। इस केन्द्र द्वारा कार्य-अध्ययन पाठ्यक्रम, उच्च प्रबन्धकीय सेमीनार एव कार्यक्रम, सयुक्त श्रम प्रबन्ध कार्य अध्ययन विभिन्न उद्योगो मे रखे जाते हैं।

हमारे देश मे उत्पादकता सम्बन्धी सही आंकडो का अभाव है। हमारी उत्पादकता का सूचकांक अधिकांश विकसित देशो के उद्योगो के सूचकांको से कम है। इस दिशा मे हमे सूचकांक तैयार करने चाहिए जिससे हम न केवल अन्य देशो के उद्योगो के सूचकांको से तुलना कर सकें बल्कि विश्व-बाजार मे सफलता प्राप्त कर सके। हमारे देश मे विभिन्न उद्योगो मे बड़े पैमाने पर उत्पादकता आन्दोलन को प्रोत्साहित करने हेतु 1956 मे भारत सरकार के व्यापार एव उद्योग मन्त्रालय ने डॉ विक्रम साराभाई की अध्यक्षता मे एक टीम 6 सप्ताह के अध्ययन हेतु जापान भेजी। अध्ययन दल की सिफारिशो के विचार के लिए सरकार ने 1957 मे एक सेमीनार आयोजित किया जिसमे आन्दोलन की प्रगति के आधारभूत सिद्धान्त निश्चित किए गए, जो सक्षेप मे इस प्रकार है[1]—

1. उत्पादकता आन्दोलन को बल देने हेतु राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना की जाए।

2 सुधरी हुई तकनीक का प्रयोग करके उत्पादन की मात्रा और गुण मे सुधार किया जाए।

3 रोजगार सम्भावनाओ मे वृद्धि उत्पादकता वृद्धि पर ही निर्भर है।

4 उत्पादकता वृद्धि के सम्पूर्ण लाभ सभी वर्गों-श्रम, पूँजी तथा उपभोक्ता–मे समान रूप से वितरित किए जाएँ।

5 उत्पादकता वृद्धि के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करने के लिए औद्योगिक सम्बन्ध मधुर बनाए जाएँ।

6. उत्पादकता आन्दोलन का क्षेत्र विस्तृत बनाया जाए अर्थात् लघु एव वृहत् तथा सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के सभी उद्योगों मे इस आन्दोलन को एक साथ लागू किया जाए।

1 वी. सी. सिन्हा . श्रम अर्थशास्त्र, पृ 114

टीम की सिफारिशों के आधार पर 1958 में एक राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् (National Productivity Council or N. P. C.) की स्थापना की गई। इसका गठन एक स्वायत्त संगठन के रूप में हुआ जिसकी सदस्य संख्या अधिकतम 60 है। इन सदस्यों में नियोक्ताओं, श्रमिकों, सरकार और अन्य लोगों के प्रतिनिधि होते हैं। बम्बई, मद्रास, बंगलौर और कानपुर जैसे महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों पर राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के अन्तर्गत प्रादेशिक निदेशालय (Regional Directorates) स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के तहत देश में विभिन्न उद्योगों में उत्पादकता समितियाँ गठित की गई हैं तथा 1966 में भारत उत्पादकता वर्ष (India Productivity Year 1966) मनाया गया।

भारत सरकार ने उत्पादकता की प्रेरणा बनाए रखने की दृष्टि से ही 1956 से 'श्रमवीर' नामक राष्ट्रीय पुरस्कार की भी व्यवस्था की है। देश के औद्योगिक उत्पादकता आन्दोलन में राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं के योगदान भी उल्लेखनीय हैं—(1) भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता में विदेशी विशेषज्ञों को आमन्त्रित कर सांख्यिकीय गुण-नियन्त्रण के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया है। (2) अहमदाबाद टैक्सटाइल इण्डस्ट्रीज रिसर्च एसोसिएशन ने वस्त्र उद्योग में गुण नियन्त्रण कला का विस्तार किया है। (3) राष्ट्रीय विकास परिषदों के अन्तर्गत प्लाण्ट प्रोटेक्ट कमेटी एवं योजना की औद्योगिक प्रबन्ध अनुसन्धान इकाई तथा अन्य अनुसन्धान संस्थाओं द्वारा उत्पादकता वृद्धि में सम्बन्धित तकनीक में छानबीन के प्रयत्न किए जाते हैं। (4) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारत को विशेषज्ञों की सेवाएँ उपलब्ध कर इस आन्दोलन को प्रोत्साहित किया है। (5) अमेरिका के तकनीकी सहयोग मिशन ने भी विशेषज्ञों की सेवाओं तथा पुस्तकों के रूप में राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् को सहयोग दिया है।

नई दिल्ली में राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् द्वारा मार्च, 1972 में उत्पादकता पर त्रिपक्षीय सेमीनार आयोजित किया गया। इस सेमीनार में उत्पादकता वृद्धि के प्रयासों में और तेजी लाने तथा उत्पादकता वृद्धि में श्रम एवं प्रबन्ध के योगदान पर विचार-विमर्श किया गया।

भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए हमारे देश की गरीबी दूर करने हेतु विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन को बढ़ाना होगा। आज हमें कम से कम लागत पर अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने वाली योजनाओं को प्राथमिकताएँ देनी होंगी।

अब प्रश्न यह उठता है कि उत्पादकता आन्दोलन के परिणामस्वरूप देश में उत्पादन में जब वृद्धि होती है तो इस बढ़े हुए उत्पादन के लाभों का हिस्सा किस तरह से प्राप्त किया जाए। यदि इसी बढ़े हुए उत्पादन के लाभ को श्रमिकों में वितरित कर दिया जाता है तो इससे विभिन्न उद्योगों में मजदूरी में भिन्नताएँ

उत्पन्न हो जाएँगी। इस तरह से इसके हिस्से का वितरण श्रमिकों, मालिकों और उपभोक्ताओं में सन्तुलित रूप से किया जाना चाहिए। यदि इसके लाभों का वितरण श्रमिकों व मालिकों पर छोड़ दिया जाता है तो दोनों पक्ष समाज के अन्य वर्गों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ेंगे। इसलिए एक उचित तरीका यह है कि इसका वितरण तीनों पक्षों—श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि, मालिकों के प्रतिफल में वृद्धि और समाज को अच्छी किस्म व कम कीमत पर वस्तुओं की उपलब्धि के रूप में किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् द्वारा नियुक्त त्रिपक्षीय समिति ने उत्पादकता के लाभों के वितरण के लिए निम्न मार्गदर्शक तत्त्व सुझाव है—

1 इस योजना के अन्तर्गत केवल प्रबन्धकों और श्रमिकों के बीच में ही लाभ की सहभागिता का वितरण नहीं होना चाहिए बल्कि इसका हिस्सा उपभोक्ताओं और समाज को भी मिलना चाहिए।

2. इसके अन्तर्गत निरन्तर आर्थिक विकास की उन्नति का समझौता नहीं किया जाना चाहिए।

3 इस योजना की क्रियाशीलता में किसी तरह का व्यक्तिगत प्रभाव नहीं होना चाहिए।

4 इस प्रकार की योजना के लागू करने से पूर्व इसका प्रकाशन करना आवश्यक है।

लाभों की सहभागिता के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक ने सन् 1964 में एक स्टीरिंग ग्रुप नियुक्त किया। इस ग्रुप ने मजदूरी, आय और कीमत नीतियों के सम्बन्ध में अध्ययन किया और एक आय नीति के सम्बन्ध में निम्न मार्गदर्शक तत्त्वों की सिफारिश की—

1 नकद मजदूरी में परिवर्तन के नियमन हेतु अर्थव्यवस्था की पाँच वर्षीय गतिशील औसत उत्पादकता को ध्यान में रखना होगा।

2 मजदूरी आय समायोजन हेतु हमें अधिकतम सीमा उत्पादकता की प्रवृत्ति को ध्यान में रखना होगा।

3 विभिन्न क्षेत्रों और उद्योगों में मजदूरी और नकद आय का समायोजन अर्थव्यवस्था में होने वाली उत्पादकता की दर के अनुसार होना चाहिए जिससे उद्योग अथवा क्षेत्र में उत्पादकता में वृद्धि की दर के अनुसार ही समायोजन या नियमन सम्भव होगा।

4 उत्पादकता से जुड़ी हुई मजदूरी योजनाओं में इस बात का ध्यान रखना होगा कि उत्पादकता में हुई वृद्धि का लाभ समाज को भी अच्छी किस्म तथा निम्न कीमत वाली वस्तुओं के रूप में प्राप्त हो।

ऊँची मजदूरी की मितव्ययिता
(Economy of High Wages)

साधारणत: यह समझा जाता है कि नीची मजदूरी सस्ती होती है किन्तु यह

धारणा हमेशा सही नहीं होती। कारण यह है कि नीची मजदूरी पाने वाले श्रमिकों की कार्य-कुशलता कम होती है, जिससे उत्पादन कम होता है और परिणामस्वरूप उत्पादन लागत ऊँची रहती है। इस तरह नीची मजदूरी वास्तव में ऊँची मजदूरी होती है।

इसके विपरीत, ऊँची मजदूरी की दशा में श्रमिकों की कार्य-क्षमता बढ़ती है, उत्पादन बढ़ता है और परिणामस्वरूप उत्पादन लागत कम पड़ती है। इस प्रकार ऊँची मजदूरी वास्तव में 'सस्ती' मजदूरी होती है।

किसी भी वस्तु का उत्पादन 'मजदूरी पर व्यय' (Outlay on Wages) तथा उत्पादन के सम्बन्ध को दृष्टि में रखता है। इस विचार का आधुनिक अर्थशास्त्री 'मजदूरी की लागत' (Wage Costs) कहते हैं। ऊँची नकदी मजदूरी (High Money Wages) के कारण यदि श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं तो उत्पादक को वास्तव में मजदूरी की लागत नीची पड़ती है। इसके विपरीत यदि नीची नकदी मजदूरी देने पर श्रमिक कम उत्पादन करते हैं तो उत्पादन कम होता है और यह नीची नकदी मजदूरी ऊँची मजदूरी में परिवर्तित हो जाती है क्योंकि उत्पादन लागत बढ़ जाती है। अतः उत्पादक नीची द्राव्यिक मजदूरी के स्थान पर नीची मजदूरी लागत (Low Wage-Costs) पर ध्यान रखता है। अतः यह कहा जाता है कि यदि ऊँची नकदी मजदूरी में मजदूरी लागत नीची आती है तो यह उत्पादक को प्राप्त होने वाली मितव्ययिता होगी। इसे ही ऊँची मजदूरी की मितव्ययिता (Economy of High Wages) कहा जाता है। ऊँची मजदूरी निम्न कारणों से मितव्ययितापूर्ण होती है—

1. ऊँची मजदूरी से श्रमिकों का जीवन-स्तर उठता है, उनकी कार्य-क्षमता बढ़ती है, उत्पादन बढ़ता है और परिणामस्वरूप उत्पादन लागत कम आती है। दूसरे शब्दों में नीची मजदूरी-लागत (Low Wage Costs) आती है।

2 ऊँची मजदूरी देने से मालिक को अच्छे श्रमिक बाजार से प्राप्त होते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादन अधिक होता है और उत्पादन लागत कम होने से नीची उत्पादन-लागत पड़ती है।

3. ऊँची मजदूरी होने से श्रमिकों और मालिकों के बीच मधुर सम्बन्धों को प्रोत्साहन मिलता है। हड़तालें, तालाबन्दी, धीमे कार्य की प्रवृत्ति आदि को कोई स्थान नहीं मिलता है। श्रमिक रुचि लगाकर उत्पादन करते हैं और इसके परिणामस्वरूप उत्पादन नियमित और अधिक होता है जिससे नीची मजदूरी लागत पड़ती है।

अतः ऊँची मजदूरी देने से उत्पादन अधिक होता है तथा नीची मजदूरी-लागत (Low Wage Costs) आती है और इसी के फलस्वरूप बचतें या मितव्ययिता प्राप्त होती है।

मजदूरी भुगतान की रीतियाँ
(Methods of Wage Payment)

मजदूरी श्रम को उत्पादन के साधन के रूप में दिया जाने वाला पारिश्रमिक है। मजदूरी भुगतान का तरीका श्रमिकों की आमदनी को प्रभावित करता है। अलग-अलग देशों में मजदूरी भुगतान करने की भिन्न-भिन्न रीतियाँ हैं। एक आदर्श मजदूरी भुगतान प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि वह दोनों पक्षों श्रमिकों व मालिकों के अनुकूल हो। इसके साथ ही उत्पादन में वृद्धि करने हेतु श्रमिकों को प्रेरणात्मक भुगतान देने का भी प्रावधान हो। इसमें औद्योगिक झगड़ों को दूर करने तथा उद्योग की सफलता हेतु दोनों पक्षों में मधुर सम्बन्ध उत्पन्न करने का गुण भी होना जरूरी है।

मजदूरी के भुगतान की विभिन्न रीतियाँ पाई जाती हैं फिर भी मजदूरी के भुगतान की रीतियों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(1) समय के अनुसार मजदूरी, और (2) कार्य के अनुसार मजदूरी।

1. समयानुसार मजदूरी
(Time Wage System)

यह मजदूरी भुगतान का सबसे प्राचीन तरीका है। इसके अन्तर्गत मजदूर को मजदूरी का भुगतान समय के अनुसार, जैसे—प्रति घण्टा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह के हिसाब से किया जाता है। प्रत्येक श्रमिक को यह विश्वास रहता है कि उसे एक निश्चित समय पश्चात् निश्चित मजदूरी प्राप्त हो जाएगी। इसके अन्तर्गत कार्य की मात्रा तथा किस्म (Quality) के सम्बन्ध में कोई शर्तें नहीं रखी जाती हैं। मालिक द्वारा इस तरीके के अन्तर्गत भुगतान उस स्थिति में किया जाता है जबकि कार्य को न तो मापा जा सकता है और न ही उसका निरीक्षण सम्भव होता है तथा कार्य की माप के स्थान पर कार्य की किस्म को अधिक महत्व दिया जाता है।

समयानुसार मजदूरी पद्धति के लाभ (Advantages of Time Wage System)—इस पद्धति के अनुसार भुगतान करने के निम्न लाभ हैं—

1 सरल प्रणाली—यह पद्धति अत्यन्त सरल होने से श्रमिकों व नियोजकों को आसानी रहती है। भारतीय श्रमिक अधिकांशत: अशिक्षित होने के कारण यह प्रणाली विशेष रूप से उपयोगी है।

2. लोकप्रिय प्रणाली—यह प्रणाली श्रमिकों के प्रत्येक वर्ग तथा उनके संगठनों द्वारा पसन्द की जाती है। इसके अन्तर्गत सभी श्रमिक वर्गों में एकता की भावना को प्रोत्साहन मिलता है।

3. निश्चितता एवं नियमितता—इस पद्धति के अन्तर्गत मजदूरी के भुगतान में निश्चितता तथा नियमितता पाई जाती है। प्रत्येक श्रमिक को निश्चित वेतन नियमित रूप से मिलने का विश्वास रहता है। आय की निश्चितता तथा नियमितता

के कारण प्रत्येक श्रमिक अपने आय तथा व्यय मे समायोजन द्वारा एक निश्चित जीवन-स्तर बनाए रखने का प्रयास करता है।

4. उत्पादन के साधनों का उचित उपयोग—इस पद्धति मे कार्य सुचारु रूप मे एव तसल्ली से होने के कारण यन्त्र, औजार, कच्चे माल आदि साधनों का उपयोग ढग से होता है।

5 प्रशासनिक व्यय कम एव आसानी से पूर्ण—इस पद्धति मे निरीक्षण करने की अधिक आवश्यकता नही होती है तथा उस पर व्यय अधिक न करने से प्रशासनिक व्यय भी कम होता है तथा आसानी मे प्रशासन किया जा सकता है।

6 विभिन्न रुकावटों के अन्तर्गत उत्पादन होने पर भी यह पद्धति लाभपूर्ण है। प्राकृतिक कारणो जैसे वर्षा आदि के कारण कार्य मे रुकावट आने पर कार्य बन्द हो जाता है। उस स्थिति मे यह पद्धति उचित होती है।

समयानुसार मजदूरी पद्धति के दोष (Demerits of Time Wage System)—समयानुसार मजदूरी पद्धति के अन्तर्गत हमे निम्न दोष देखने को मिलते हैं—

1. कुशल श्रमिकों को कोई प्रेरणा नहीं—इस पद्धति के अनुसार श्रमिक मन लगाकर तथा ईमानदारी से काम नही कर सकते क्योंकि उन्हे यह मालूम रहता है कि एक निश्चित मजदूरी नियमित रूप से मिल जाएगी चाहे वे कम काम करें अथवा अधिक।

2. कुशल-अकुशल सब बराबर—इस पद्धति के अनुसार चाहे कुशल श्रमिक हो अथवा अकुशल सभी को समान मजदूरी मिलती है। परिणामस्वरूप कुशल श्रमिक भी कम रुचि रख कर कार्य करने लगते है और उनकी कार्य-क्षमता घट जाती है।

3. अकुशलता को प्रोत्साहन—कुशल श्रमिक व अकुशल श्रमिक दोनों को समान मजदूरी मिलने का अर्थ है कि अकुशल श्रमिक को पुरस्कृत किया जाता है और कुशल श्रमिक को दण्डित किया जाता है। इससे अकुशलता को प्रोत्साहन मिलता है।

4 काम-चोरी—जब निश्चित मजदूरी नियमित रूप से मिलती है तो श्रमिक एक दिए हुए काम को एक लम्बे अर्से के बाद समाप्त करता है। वह काम से जी चुराता है।

5. श्रम-पूंजी संघर्ष—इस पद्धति के अनुसार भुगतान करने से अकुशल व कुशल दोनो प्रकार के श्रमिको को समान मजदूरी दी जाती है जिससे कुशल श्रमिक हड़ताल, धीमे काम की प्रवृत्ति का सहारा लेते है।

निष्कर्ष—समयानुसार मजदूरी के गुण-दोषो को देखने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जिन कार्यो को मापा नही जा सकता—जैसे चित्रकारी का कार्य, अध्यापक व डॉक्टर का कार्य आदि, उनमे यह पद्धति उपयुक्त है।

2 कार्यानुसार पद्धति

(Piece of Wage System)

कार्यानुसार मजदूरी का अर्थ उस मजदूरी से है जहाँ श्रमिक अपने किए हुए कार्य के अनुरूप वेतन पाता है। इस पद्धति के अन्तर्गत भुगतान की दर किए हुए कार्य के अनुरूप होती है और इसमे समय की व्यवस्था का मापन नही होता। इसमे श्रमिको की मजदूरी कार्य के अनुसार घटती-बढती रहती है। जहाँ कर्मचारी कुशल न होगे अथवा आलसी होने या कार्य न करने पर भी वेतन-भोगी होगे वहाँ इस पद्धति मे उन्हे हानि उठानी पड़ेगी।

कार्यानुसार मजदूरी भुगतान के लाभ—कार्यानुसार दी जाने वाली मजदूरी पद्धति के निम्नांकित लाभ है—

इस पद्धति के अन्तर्गत मजदूर को उसके कार्यानुसार मजदूरी दी जाती है चाहे उसमे कितना ही समय क्यो नही लगे। जब मालिक कम लागत पर अधिक उत्पादन की मात्रा चाहता है, तब यह पद्धति अपनाई जाती है। कार्य की मात्रा ही मजदूरी के भुगतान का आधार होता है। जो श्रमिक अधिक कार्य करता है उसे अधिक मजदूरी दी जाती है तथा जो कम कार्य करता है उसको कम मजदूरी मिलती है।

1 **योग्यतानुसार भुगतान**—अधिक कार्य करने वाले योग्य श्रमिक को अधिक मजदूरी का भुगतान तथा कम कार्य करने वाले अयोग्य मजदूर को कम मजदूरी का भुगतान किया जाता है।

2. **प्रेरणात्मक पद्धति**—अधिक कार्य करने वाले को अधिक मजदूरी देकर प्रोत्साहन दिया जाता है। इससे कार्यकुशल श्रमिको को अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

3. **अधिक उत्पादन**—श्रमिको को कार्यानुसार मजदूरी मिलने मे वे अधिक समय तक कार्य करते है जिससे उत्पादन मे अधिक वृद्धि होती है।

4. **उत्पादन-व्यय कम**—इस पद्धति के अन्तर्गत उत्पादन अधिक करने के कारण प्रति इकाई उत्पादन लागत कम आती है और परिणामस्वरूप श्रमिकों व समाज के सदस्यो को कम कीमत पर वस्तु सुलभ हो जाती है।

5 **समय का सदुपयोग**—इस पद्धति के अन्तर्गत श्रमिक अपने खाली समय मे इधर-उधर घूमने की बजाय अपने आप को कार्य मे लगाए रखता है जिससे उसके समय का सदुपयोग भी होता है और उसे अधिक मजदूरी भी प्राप्त हो जाती है।

6. **श्रमिक-मालिकों मे मधुर सम्बन्ध**—कार्य की मात्रा के अनुसार श्रमिको को भुगतान प्राप्त होता है इसलिए वे धीमे कार्य करने की प्रवृत्ति तथा हड़ताल आदि करने का प्रयास नही करते। दोनो पक्षो में प्राय. मधुर सम्बन्ध बने रहते है।

7 **श्रमिकों की गतिशीलता मे वृद्धि**-कार्यानुसार मजदूरी मिलने के कारण जहाँ भी अधिक मजदूरी मिलेगी श्रमिक वही जाकर कार्य करना अधिक पसन्द करेगा। समयानुसार मजदूरी की तुलना मे कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के अन्तर्गत श्रमिको मे अधिक गतिशीलता पाई जाती है।

8. श्रमिकों के जीवन-स्तर में सुधार—कार्यानुसार मजदूरी मिलने के कारण अधिक मजदूरी अधिक कार्य करने वाले व्यक्तियों को मिलती है। उनका जीवनस्तर ऊँचा उठता है और कार्य-क्षमता बढ़ती है।

9. निरीक्षण व्यय में कमी—इसके अन्तर्गत निश्चित कार्य की मात्रा तथा किस्म निश्चित होने से कार्य निरीक्षण आदि करने की जरूरत नहीं होने से निरीक्षण व्यय कम होता है।

10. उपभोक्ता वर्ग को लाभ—उत्पादन अधिक होता है। उत्पादन लागत कम आती है। परिणामस्वरूप वस्तुओं की कीमत भी कम होती है। इससे उपभोक्ता वर्ग को लाभ होता है।

कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के दोष (Demerits of Piece Wage System)—इस पद्धति के निम्नलिखित दोष हैं—

1. मजदूरी में कटौती—कभी-कभी यह देखने में आता है कि जब श्रमिक अधिक कार्य करके अधिक पारिश्रमिक प्राप्त करने लगता है तो नियोक्ता मजदूरी दर में कटौती करके पारिश्रमिक में भी कटौती कर लेते हैं।

2. स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव—'अधिक कार्य अधिक मजदूरी' के लोभ में श्रमिक अधिक कार्य करने लगते हैं। वे अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखते। बाद में इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक बीमार रहने लग जाता है। उसकी कार्यक्षमता घटने लगती है।

3. उत्पादन की निम्न किस्म—श्रमिक अधिक मजदूरी प्राप्त करने के लोभ में अधिक कार्य तेजी से करता है। इससे उत्पादन की मात्रा में तो वृद्धि होती है, लेकिन उत्पादन की किस्म बढ़िया के स्थान पर घटिया आने लगती है।

4. मजदूरी की अनियमितता तथा अनिश्चितता—श्रमिक की मजदूरी निश्चित तथा नियमित नहीं होती है। बीमार होने पर अथवा कारखाना बन्द होने पर श्रमिक को कुछ भी मजदूरी नहीं मिलती है।

5. कलात्मक तथा बारीकी वाले कार्यों में अनुपयुक्त—यह पद्धति कलात्मक कार्यों जैसे चित्रकारी, खुदाई तथा अन्य बारीकी वाले कार्यों में उपयुक्त नहीं है।

6. श्रमिक संघों पर विपरीत प्रभाव—कार्यानुसार मजदूरी देने के कारण श्रमिक 'अधिक कार्य अधिक मजदूरी' के लोभ में पड़े रहते हैं। वे अपने संगठन के लिए समय नहीं निकाल पाते। इसका परिणाम सुदृढ़ एवं सुसंगठित श्रमिक-संघों का अभाव होता है।

7. श्रमिकों में पारस्परिक एकता का अभाव—कार्यानुसार मजदूरी के अन्तर्गत श्रमिक कुशल अर्द्ध-कुशल एवं अकुशल वर्गों में बँट जाते हैं। वे प्रायः एक-दूसरे के नजदीक नहीं आते हैं। उनमें आर्थिक असमानता उत्पन्न हो जाने से प्रायः परस्पर स्नेह तथा एकता नहीं हो पाती है।

जब कम लागत पर अधिक उत्पादन करना होता है तथा योग्यतानुसार वेतन दिया जाना हो वहाँ पर कार्यानुसार मजदूरी भुगतान पद्धति उचित है।

कार्यानुसार पद्धति के कुछ रूप

प्रीमियम बोनस पद्धति—इस पद्धति के कारण कार्यानुसार मजदूरी के दोषों की समाप्ति हो जाती है और मजदूरी दर एक बारगी ऊँचाई के साथ प्रारम्भ की जाती है। फिर आगे घटती दर से बढ़ती है। इसे प्रेरणात्मक प्रगतिशील प्रणाली, प्रीमियम बोनस पद्धति एवं प्रोत्साहन मजदूरी पद्धति के नाम से जाना जाता है। यह पद्धति प्रमाणी समय पर आधारित है। इसमें किसी कार्य को करने के लिए एक निश्चित समय की अवधि निर्धारित कर दी जाती है। समय से पहले कार्य समाप्त करने पर उस व्यक्ति को अतिरिक्त मजदूरी प्राप्त हो जाती है। इसी अतिरिक्त मजदूरी को बोनस अथवा अधिलाभांश कहते हैं। इसकी विवेचना अनेक विद्वानों ने की है जिसमें श्री रोवन, हाल्से, टेलर, मेरिक, गैण्ट आदि प्रमुख हैं। इनके विश्लेषण का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है—

रोवन पद्धति—सन् 1898 में श्री डेविस रोवन ने इस पद्धति का विकास किया। इस पद्धति में किसी कार्य को निर्धारित अवधि में ही समाप्त कर देना पड़ता है। उसके लिए मजदूरी भी निर्धारित कर दी जाती है। यदि कोई मजदूर निर्धारित अवधि के पूर्व ही उस कार्य को पूर्ण कर लेता है तो बचे हुए समय के प्रतिशत के बराबर ही उसको प्रतिशत लाभांश दिया जाता है—

$$\text{अर्थात्, } \frac{\text{बचा समय}}{\text{निर्धारित अवधि}} \times \text{लिया हुआ समय} \times \text{निर्धारित वेतन दर}$$

इस सूत्र को इस प्रकार समझा जा सकता है—मान लिया किसी कार्य को 6 घण्टों में पूरा करना है परन्तु कोई श्रमिक उस कार्य को केवल 4 घण्टे में ही पूरा कर लेता है, तब इसी बचे समय के लिए उसे अतिरिक्त मजदूरी मिलती है। इसी अतिरिक्त मजदूरी को रोवन पद्धति में मजदूरी-निर्धारण कहा जाता है। इसमें श्रमिकों की मजदूरी घटे हुए समय की दर के अनुसार बढ़ती है।

हाल्से पद्धति—श्री एफ ए हाल्से ने सन् 1890 में इस पद्धति को निर्मित किया था। इसके अनुसार किसी कार्य को सम्पन्न करने के लिए एक समय निश्चित कर दिया जाता है और यदि कार्य समय से पूर्व ही समाप्त कर दिया जाता है तो उस बचे समय में कार्य करने पर अतिरिक्त मजदूरी प्रदान की जाती है। इस पद्धति के अन्तर्गत प्रतिदान का कोई झगड़ा नहीं रहता। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि उत्पादन का प्रमाप तथा प्रमाणित समय पहले से ही निश्चित रहते हैं। प्रत्येक श्रमिक के लिए एक न्यूनतम मजदूरी भी निश्चित रहती है।

टेलर पद्धति—इस पद्धति में मजदूरी दो प्रकार से दी जाती है—प्रथम, साधारण कार्यानुसार एवं द्वितीय, प्रमाणित कार्यानुसार। दोनों पद्धतियों की मजदूरी की दरों में बहुत अन्तर रहता है। कभी-कभी तो दूने का अन्तर भी पड़ जाता है। इस पद्धति में मजदूरी की दो दरें होती हैं—एक उचित पद्धति और दूसरी निश्चित पद्धति। इसका निर्धारण कार्य के अनुसार होता है। दोनों दरों में निश्चित समय से अधिक कार्य करने पर उचित दर से और कम काम करने पर नीची दर से

भुगतान किया जाता है। कुशल कारीगरों के लिए यह पद्धति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस पद्धति में अधिक कार्य करने वाले को पुरस्कार एवं कम कार्य करने वालों को स्वतः ही दण्ड मिलता है। टेलर के इस सिद्धान्त की कुछ त्रुटियों को समाप्त करने के लिए मैरिक ने एक पद्धति विकसित की जिसे मैरिक पद्धति कहते हैं। इसमें सीमावर्ती कठोरता को कम करने का प्रयत्न किया गया है। इसमे मजदूरी की दो दरो के बजाय तीन दरें होती है। ये तीनो दरें तीन प्रकार के मजदूरों, जैसे नए मजदूर, औसत मजदूर एवं कुशल-मजदूर के लिए अलग-अलग निश्चित होती है। मजदूरी दर का उद्देश्य श्रमिकों को उचित मजदूरी प्रदान करना है।

गैण्ट पद्धति—गैण्ट पद्धति के अनुसार यदि कोई श्रमिक आदेशों के अनुसार चले और किसी कार्य को एक निश्चित समय के अनुसार पूरा कर ले तो उसे दैनिक दर के अतिरिक्त एक निश्चित बोनस भी प्रदान किया जाता है और यदि उसने दिए हुए कार्य को समयानुसार पूरा नहीं किया तो उसे मात्र उस दिन का वेतन ही दिया जाता है।

प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की रीतियाँ
(Methods of Incentive Wage Payments)

मजदूरी भुगतान कार्यानुसार तथा समयानुसार दो रूपों में किया जाता है। लेकिन इन दोनों तरीकों द्वारा दी गई मजदूरी की आलोचना समय-समय पर विभिन्न वैज्ञानिक प्रबन्ध विशेषज्ञों ने की है। इन दोनों ही रीतियों के अपने-अपने लाभ तथा दोष हैं। इन दोनों ही रीतियों के मिलने से एक प्रगतिशील मजदूरी पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ है जिसे प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति (Progressive Wage System) अथवा मजदूरी भुगतान की प्रेरणात्मक रीति (Incentive System of Wage Payments) कहा जाता है।

इस मिश्रित प्रणाली (कार्यानुसार मजदूरी तथा समयानुसार मजदूरी) के अन्तर्गत श्रमिक को निश्चित न्यूनतम मजदूरी के अतिरिक्त और भी भुगतान किया जाता है जिसे अधिलाभांश (Bonus) अथवा प्रीमियम (Premium) कहते हैं। इसमे प्रमाप उत्पादन (Standard Output) के लिए एक निश्चित मजदूरी दी जाती है। इससे अधिक कार्य करने पर बढ़ती हुई दर से अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाता है जिससे योग्यता को पुरस्कार मिल सके तथा कार्य की किस्म में गिरावट न आए।

उदाहरणार्थ यदि एक कार्य 3 दिन में करना है और मजदूरी 4 रु. प्रतिदिन दी जाती है तथा कार्य 2 दिन में पूरा कर लिया जाता है तो श्रमिक को दो दिन की मजदूरी 8 रु तथा एक दिन बचाने के लिए 2 रु और मिलेंगे। अतः कुल मजदूरी 10 रु होगी जो कि औसत मजदूरी 4 रु से अधिक है। प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की रीतियों का वर्गीकरण मजदूरी प्रेरणात्मक पद्धति में पाए जाने वाले महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के आधार पर किया गया है।[1] ये तत्त्व अग्रांकित हैं—

1 *Flippo, E. B.* : Principles of Personnel Management, p. 302

1. उत्पादन की इकाइयाँ (Units of Output),
2. प्रमाप समय (Standard Time),
3. कार्य में लगा समय (Time Worked),
4. बचाया गया समय (Time Saved)।

किसी भी प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की पद्धति अपनाते समय मजदूरी-निर्धारण मे यह बात ध्यान मे रखनी पड़ेगी कि उत्पादन की इकाइयां कितनी है, समय कितना दिया गया है, कितना समय लगा और कितना समय बचा, आदि।

प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की विभिन्न रीतियाँ या पद्धतियाँ निम्नलिखित है–

1 टेलर पद्धति (Taylor Piece Work Plan)—इसका प्रतिपादन वैज्ञानिक प्रबन्धक के जनक श्री एफ. डब्ल्यू टेलर ने किया। इसमे दो प्रकार की कार्यानुसार दरो को सम्मिलित किया गया है—एक औसत उत्पादन से अधिक तथा दूसरी औसत उत्पादन तथा उससे कम उत्पादन करने पर दी जाने वाली मजदूरी। इन दरों मे काफी अन्तर पाया जाता है।

उदाहरण के लिए 8 इकाई प्रतिदिन प्रमाप उत्पादन (Standard Output) तय किया गया है। इतना या इससे अधिक उत्पादन के लिए प्रति इकाई दर 1 रुपया हो सकती है, परन्तु 8 इकाई (प्रमाप इकाई) से कम उत्पादन होने पर प्रति इकाई दर 75 पैसे हो सकती है। अत 8 इकाइयो का उत्पादन करने वाले को 8 रुपये, 10 इकाइयाँ उत्पादन करने वाले को 10 रु, लेकिन 7 इकाइयो का उत्पादन करने वाले को 75 पैसे प्रति इकाई के हिसाब से 5 रु 25 पैसे मिलेंगे।

इस प्रकार टेलर पद्धति कुशल श्रमिको के लिए विशेष रूप से प्रेरणात्मक है, क्योंकि ऊँची दर के द्वारा उनको अपने परिश्रम का पुरस्कार मिलता है, परन्तु अकुशल श्रमिको को यह पद्धति दण्डित करती है। यह आय मे असमानता को बढ़ावा देती है। वर्तमान समय मे इस पद्धति का एक ऐतिहासिक महत्त्व रह गया है क्योंकि आय की असमानता के स्थान पर 'आय की समानता' पर अधिक जोर दिया जाने लगा है।

2 हैल्से प्रीमियम पद्धति (Halsey Premium System)—इस पद्धति का प्रतिपादन प्रो एफ. ए. हैल्से द्वारा किया गया था। इस पद्धति मे कार्यानुसार तथा समयानुसार मजदूरी भुगतान की रीतियो के लाभो का मिश्रण है तथा इनके दोषो को छोड़ दिया गया है। इसमे एक प्रमाप उत्पादन निश्चित समय मे पूरा करना होता है। यदि कोई श्रमिक दिए हुए कार्य को निश्चित अवधि से पूर्व ही समाप्त कर लेता है तो उसे बचाए हुए समय (Time Saved) के लिए अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाता है। यदि किसी कार्य हेतु 10 घण्टे निश्चित किए गए हैं और कार्य 8 घण्टे मे पूरा कर लिया जाता है तो श्रमिक को 8 घण्टे के पारिश्रमिक के अतिरिक्त बचाए गए समय (2 घण्टे) के लिए दर का 50% भुगतान किया जाएगा। यदि 10 रु प्रति घण्टा समय मजदूरी है तो प्रीमियम 1/2 (दर × बचाया गया समय) के बराबर अर्थात् $1/2(10 \times 2) = 10$ रु. होगा तथा मजदूरी $8 \times 10 = 80$ रु. अर्थात् कुल भुगतान $80 + 10 = 90$ रु. किया जाएगा।

इस पद्धति के अन्तर्गत बचाए गए समय के लिए निश्चित दर पर प्रीमियम दिया जाता है तथा मजदूरी को समयानुसार मजदूरी की भी गारण्टी रहती है जिससे नियोक्तओं को भी अधिक मजदूरी का भुगतान नहीं करना पड़ता है।

इस पद्धति की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि मालिक किसी कार्य के करने का प्रमाप (Standard) अधिक रख देता है जो कि पूरा करना सम्भव न हो। उस स्थिति में श्रमिकों को हानि उठानी पड़ती है इसलिए कार्य का प्रमाप उचित एवं वैज्ञानिक प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए।

3. शत-प्रतिशत समय प्रीमियम योजना (The 100 Percent Time Premium Plan)—जहाँ समय अथवा कार्य अध्ययन द्वारा समय प्रमाप (Time Standards) निर्धारित किए जा सकते है वहाँ श्रमिको को उनके द्वारा बचाए गए समय (Time Saved) के लिए शत-प्रतिशत दर पर प्रीमियम दिया जाता है।

उदाहरण के लिए 10 घण्टे किसी कार्य हेतु निश्चित किए जाते है तथा समय दर (Time Rate) 10 रु. प्रति घण्टा है। कार्य 8 घण्टे में पूरा किया जाता है तथा समय 2 घण्टे बचता है तो उसको 8 घण्टों के 80 रु मजदूरी तथा 2 घण्टे बचाने के कारण 20 रु प्रीमियम के रूप मे अर्थात् कुल भुगतान 100 रु. किया जाएगा।

इस योजना में भी समयानुसार मजदूरी की गारण्टी दी जाती है तथा बचाए गए समय (Time Saved) हेतु दर वही रखी जाती है। कुशलता को इससे अधिक प्रेरणा मिलती है।

4. रोवन योजना (Rowan Plan)—इस पद्धति के प्रतिपादन का श्रेय श्री जेम्स रोवन को है। इसके अन्तर्गत समय के आधार पर मजदूर को न्यूनतम मजदूरी की गारण्टी दी जाती है। एक प्रमाप समय किसी कार्य को पूरा करने हेतु निश्चित कर दिया जाता है। यदि दिए हुए समय से पूर्व ही कार्य कर लिया जाता है तो बचाए गए समय के लिए कुल समय के अनुपात मे भुगतान किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कार्य 10 घण्टो मे पूरा करना है और वह कार्य 6 घण्टो मे पूरा कर लिया जाता है, बचाया हुआ समय 4 घण्टे है और समय दर 10 रु. प्रति घण्टा है तो इसके अन्तर्गत प्रीमियम होगा—

$$\frac{\text{बचाया गया समय (Time Saved)}}{\text{दिया गया समय (Time Allowed)}} \times \text{लिया गया समय (Time Taken)} \times \text{दर}$$

$$\frac{4}{10} \times 6 \times 10 = 24 \text{ रु}$$

अत. श्रमिक को 60 रु (6×10) मजदूरी तथा 24 रु. प्रीमियम अर्थात् कुल 84 रु प्राप्त होंगे।

इस पद्धति के अन्तर्गत हैल्से पद्धति की तुलना मे अधिक प्रीमियम प्राप्त होता है, लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब बचाया गया समय (Time Saved) दिए

हुए समय (Time Allowed) का 50% से कम हो। यदि बचाया हुआ समय 50% है तो दोनों मे समान तथा 50% से अधिक होने पर हैल्से पद्धति के अन्तर्गत अधिक प्रीमियम प्राप्त होगा।

5. इमरसन योजना (Emerson Plan)—इसका प्रतिपादन प्रो. इमरसन ने किया। यह पद्धति रोवन पद्धति के अनुसार कार्यक्षमता के सूचकांक तथा किए गए कार्य के समय के मूल्य पर आधारित है। इसमे सूचकांक प्रमाप समय (Standard Time) मे लिए गए वास्तविक समय का भाग लगाकर ज्ञात करते हैं। उदाहरण के लिए 36 प्रमाप समय के घण्टो का कार्य 40 घण्टो मे होता है तो कार्य-क्षमता या कार्यकुशलता 90 प्रतिशत होगी। विभिन्न कार्यकुशलताओ के लिए विभिन्न प्रीमियम की दरें निर्धारित की जाती है। कम से कम 65% तक की कार्यकुशलताओ को प्रीमियम दिया जाता है। इस प्रकार की पद्धति उन छोटे कर्मचारियो के लिए लागू की जाती है जिनकी कार्य-क्षमता बहुत कम होती है तथा जो शत-प्रतिशत प्रीमियम योजना के प्रमाप को प्राप्त नही कर सकते।

6 गैण्ट की कार्यभार एवं बोनस पद्धति (Gantt Task and Bonus System)—इस पद्धति का प्रतिपादन श्री हेनरी एल. गैण्ट ने किया था। इसके अन्तर्गत हैल्से योजना के समान धीरे-धीरे काम करने वाले श्रमिकों को प्रति घण्टे की दर से और तेज काम करने वाले मजदूरो को इकाई दर से मजदूरी दी जाती है। साथ ही टेलर पद्धति के समान यह प्रमाप (Standard) तक पहुँचने मे समर्थ और असमर्थ मजदूरो मे निश्चित रूप से भेद करती है। गैण्ट योजना सब योजना की प्रति घण्टे दर की गारण्टी देता है। यदि दिए हुए समय मे कार्य पूरा नही किया जाता है तो मजदूरी तो दी जाएगी लेकिन उसको बोनस प्राप्त करने का कोई अधिकार नही होगा। यह बोनस 20 से 25% तक होता है जो कि दिन के अन्त मे काम मे लाया जाता है।

उदाहरण के लिए किसी कारखाने मे एक श्रमिक को 8 घण्टे कार्य करना होता है। मजदूरी 2 रु प्रति घण्टे है तथा काम भी 8 घण्टे मे पूरा होने वाला होता है। यदि श्रमिक उस कार्य को 8 घण्टे मे पूरा कर लेता है तो उसको 20% बोनस उसकी कुल मजदूरी का दिया जाएगा। 8 घण्टे की मजदूरी 2 रु प्रति घण्टे के हिसाब से 16 रु तथा 20% बोनस मे 3 रु 20 पैसे अर्थात् कुल 19 रु. 20 पैसे मिलेंगे। यदि 8 घण्टे मे उस कार्य को पूरा नही करता है तो उसे केवल 16 रु मजदूरी के रूप मे मिलेंगे लेकिन बोनस नही मिलेगा।

7. परिवर्तन पैमाना पद्धति (Sliding Scale System)—इस पद्धति के अन्तर्गत मजदूरी मे परिवर्तन वस्तुओ की कीमतो तथा जीवन-निर्वाह लागत एवं लाभो मे परिवर्तन के साथ किए जाते हैं। यदि वस्तुओ की कीमतो, जीवन-निर्वाह लागत तथा लाभो मे वृद्धि होती है तो उसी अनुपात मे भी मजदूरी मे वृद्धि की जाती है। यह पद्धति नियोक्ताओ द्वारा, उन वस्तुओ मे जिनकी कीमतो मे अधिक परिवर्तन होते हैं, चाही जाती है। फिर भी इस पद्धति का कई कारणो से विरोध

किया जाता है। कीमतों में होने वाले परिवर्तन सन्तोषप्रद तरीके से मापना कठिन है क्योंकि कीमतों में परिवर्तन कई कारणों से होते रहते हैं। साथ ही बाजार की शक्तियों पर मजदूरी-निर्धारण हेतु श्रमिकों को नहीं छोड़ा जा सकता। इसके अतिरिक्त नियोक्ता तथा श्रमिक अपने-अपने फायदे के लिए कीमतों में परिवर्तन लाने का प्रयास करेंगे।

मजदूरी भुगतान के तरीकों का श्रमिकों की आय स्वयं उनकी दक्षता, राष्ट्रीय लाभांश एवं आर्थिक कल्याण पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। प्रो. पीगू के अनुसार यदि उत्पादन में हुई वृद्धि का वितरण श्रमिकों में उनके योगदान के अनुसार किया जाता है तो इससे उनके आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। यह उस स्थिति में ही सम्भव है जब मजदूरी का भुगतान सामूहिक सौदेकारी के नियन्त्रण में कार्यानुसार किया जाए।

एक अच्छी प्रेरणात्मक मजदूरी की विशेषताएँ
(Characteristics of Good Incentive Wage System)

किसी भी फर्म या उद्योग द्वारा एक प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति लागू करते समय उत्पादन, बचाया गया समय, लिया गया समय और प्रमाप समय आदि आधारभूत तत्त्वों को शामिल किया जाना है। इस प्रकार किसी भी योजना में निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिए—

1. कोई भी पद्धति सरल, समझने योग्य तथा श्रमिकों द्वारा गणना के योग्य होनी चाहिए।

2 उत्पादन तथा कार्यकुशलता में वृद्धि के साथ-साथ आमदनी में प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तन होना चाहिए।

3. श्रमिकों को तुरन्त उनकी आय प्राप्त होनी चाहिए।

4. कार्य प्रमापों (Work Standards) को सुव्यवस्थित अध्ययन के पश्चात् निश्चित करना चाहिए।

5 किसी भी परिवर्तन पर प्रेरणात्मक मजदूरी की गारण्टी की जानी चाहिए।

6 श्रमिकों को आधार घण्टा दर की गारण्टी दी जानी चाहिए। यदि दिया हुआ प्रमापी कार्य पूरा नहीं होता है तो श्रमिकों को पुनः प्रशिक्षण देना चाहिए।

7. प्रेरणात्मक पद्धति उद्योग तथा संस्थान के लिए मितव्ययी होनी चाहिए, जिससे न केवल उत्पादन में ही वृद्धि हो बल्कि उत्पादकता में भी वृद्धि हो और प्रति इकाई लागत में कमी हो।

8. श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा कल्याण पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

9. तकनीकी परिवर्तनों या योजना में परिवर्तन करने हेतु इस प्रकार की योजना लोचपूर्ण होनी चाहिए।

10. प्रेरणात्मक पद्धति से श्रमिकों में सहयोग, एकता एवं भ्रातृत्व की भावना को बढ़ावा मिलना चाहिए।

किसी भी प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान की योजना को जल्दबाजी में लागू नहीं करना चाहिए। इससे संस्थान अथवा उद्योग को लाभ होने के स्थान पर हानि होने के ही अधिक अवसर होंगे। अतः इस प्रकार की योजना को लागू करने से पूर्व प्रमाप कार्य, प्रमाप समय, दक्षता आदि का सुव्यवस्थित ढंग से अध्ययन करना चाहिए तथा इसे योजनाबद्ध तरीके से लागू करना चाहिए जिससे कि वांछनीय लाभ प्राप्त किए जा सकें।

प्रेरणात्मक मजदूरी योजना की बुराइयों के सम्बन्ध में सावधानियाँ
(Precautions against Ill-effects of Incentive Wage System)

सभी प्रेरणात्मक योजनाएँ लाभपूर्ण नहीं होती हैं। उनमें कुछ खामियाँ भी होती हैं जिनको लागू करते समय हमें ध्यान में रखना चाहिए। ये निम्नलिखित हैं–

1. श्रमिकों की यह आदत बन जाती है कि प्रेरणात्मक योजना के अन्तर्गत वे उत्पादन की ओर ध्यान अधिक देते हैं जबकि उत्पादन की किस्म की ओर ध्यान नहीं देते। घटिया किस्म की वस्तु उत्पादित करने से बाजार में उसकी बिक्री अधिक नहीं हो सकेगी तथा जिस संस्थान में योजना लागू की गई है वह उसी के लिए घातक सिद्ध होगी। इस बुराई को दूर करने हेतु उत्पादन पर जाँच तथा निरीक्षण लागू करना होगा।

2. कभी-कभी प्रेरणात्मक योजनाओं को लागू करने में उनमें परिवर्तनशीलता का अभाव पाया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन की रीतियों, मशीनों, आधुनिकीकरण तथा विवेकीकरण आदि के लाभ प्राप्त नहीं हो पाते। अतः इन परिवर्तनों को लागू करने हेतु प्रेरणात्मक योजना में लोच का गुण पाया जाना चाहिए।

3. प्रेरणात्मक योजना के अन्तर्गत श्रमिक 'अधिक कार्य अधिक मजदूरी' के लोभ से कार्य करते रहते हैं और प्रायः सुरक्षा सम्बन्धी नियमों का ध्यान नहीं रखते। परिणामस्वरूप दुर्घटनाएँ अधिक होती हैं। दुर्घटनाओं को कम करने हेतु भी श्रमिकों पर निगरानी रखनी पड़ती है।

4. अधिक मजदूरी प्राप्त करने के लोभ से अधिक कार्य करने से श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है और इससे उनकी कार्य-क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके लिए प्रेरणात्मक आय की अधिकतम सीमा निश्चित करनी चाहिए।

5. अधिक दक्ष श्रमिक को अधिक तथा कम दक्ष श्रमिक को कम मजदूरी का भुगतान किया जाता है। इससे आय की असमानता बढ़ती है। इस असमानता के कारण अधिक दक्ष तथा कम दक्ष श्रमिकों में आपस में ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हो जाती है और उनमें एकता का अभाव पनपता है। आय सम्बन्धी अन्तर यदि वैज्ञानिक ढंग से चलाई गई योजनाओं के परिणामस्वरूप होता है तो फिर श्रमिकों

को आपस में किसी तरह की ईर्ष्या नहीं रखनी चाहिए। इसके लिए श्रमिक संघों का दायित्व है कि वे अपने सभी सदस्यों के बीच मधुर सम्बन्ध एवं एकता की भावना पैदा करें।

6. भुगतान के प्रेरणात्मक तरीकों को कभी भी अच्छे श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धों का प्रतिस्थापन्न (Substitute) नहीं समझना चाहिए। अतः अच्छे श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धों का होना भी आवश्यक है।

लाभाँश-भागिता
(Profit-Sharing)

प्राचीन आर्थिक विचारधारा के अन्तर्गत लाभ पर सम्पूर्ण अधिकार पूँजीपति का माना जाता था। मार्क्स के अनुसार 'लाभ चोरी की हुई मजदूरी है' तथा वर्तमान समय में समाजवादी विचारधारा तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो जाने से किसी भी संस्थान या उद्योग में उत्पन्न लाभ पर न केवल साहसी का अधिकार माना जाता है बल्कि यह समझा जाने लगा है कि बिना श्रमिकों के सहयोग के लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता। लाभ में से श्रमिकों को भी हिस्सा दिया जाना चाहिए।

लाभाँश-भागिता की योजना सर्वप्रथम फ्राँसीसी चित्रकार श्री एम. लेक्लेयर (M. Leclayer) ने 1820 में आरम्भ की। इसके अनुसार यदि लाभ का कुछ हिस्सा श्रमिकों को दे दिया जाए तो इससे और अधिक लाभ एवं बचत होती है।

अर्थ (Meaning)—लाभाँश-भागिता के अन्तर्गत नियोजक श्रमिकों को उनकी मजदूरी के अतिरिक्त लाभ में से कुछ हिस्सा देता है। यह दोनों पक्षों के बीच समझौते पर आधारित होता है। किसी भी संस्थान से प्राप्त लाभ औद्योगिक प्रणाली का अभिन्न अंग है और श्रमिकों के शोषण को समाप्त करने हेतु इस योजना के महत्त्व पर जोर दिया गया है।

लाभाँश-भागिता की वाँछनीयता
(Desirability of Profit-sharing)

लाभाँश-भागिता की योजना से सामाजिक लाभ (Social Justice) प्रदान किया जा सकता है। किसी भी संस्थान में जो लाभ प्राप्त होता है वह श्रमिकों के कारण से होता है। यदि हम इस लाभ में से श्रमिकों को कुछ भी नहीं दें तो यह उनके प्रति अन्याय होगा।

यदि लाभ का हिस्सा श्रमिकों को न देकर पूँजीपति या साहसी रख लेता है तो इससे श्रमिकों व मालिक के सम्बन्ध मधुर नहीं रहते। इससे आए दिन हड़ताल, धीमी गति से कार्य करने की प्रवृत्ति से औद्योगिक उत्पादन में गिरावट आती है। अतः अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने तथा उत्पादन में वृद्धि करने हेतु लाभाँश-भागिता योजना का होना आवश्यक है।

लाभाँश-भागिता में श्रमिकों को मजदूरी के अतिरिक्त लाभ में से हिस्सा मिलता है जिससे श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती है और इसके परिणाम-

स्वरूप उत्पादकता मे वृद्धि होगी। इससे अच्छी योग्यता वाले श्रमिक आकर्षित होते हैं।

लाभांश-भागिता योजना की सीमाएँ

(Limitations of Profit-sharing Scheme)

लाभांश-भागिता योजना की कुछ सीमाएँ हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. श्रम संघ नेताओं द्वारा इस योजना का विरोध किया जाता है क्योंकि श्रमिक नेताओं का कहना है कि इन योजना से श्रम संघों को दुर्बल बनाया जाता है। इससे श्रमिक मालिक पर आश्रित होते हैं।

2 इस योजना के अन्तर्गत लाभ के लोभ मे श्रमिक अधिक कार्य करते हैं। अतः उनकी कार्यकुशलता घटती है और निम्न वास्तविक मजदूरी मिलती है।

3. श्रमिको को दिया जाने वाला हिस्सा आसानी से मालूम नही किया जा सकता है। लाभांश-भागिता की गणना एक उद्योग से दूसरे उद्योग, एक स्थान से दूसरे स्थान पर अलग-अलग आधारो पर होगी। इससे श्रमिक में कम हिस्सा तथा अधिक हिस्सा पाने वाले दो वर्ग होंगे। इससे औद्योगिक संघर्ष उत्पन्न होते है।

4. श्रमिकों को मिलने वाला हिस्सा अधिक न होने के कारण वे मालिको की ईमानदारी मे अविश्वास करने लगते है और इस प्रकार की योजना मे अधिक रुचि नही लेते।

5. मालिक भी इसका विरोध करते है। उनका कहना है कि जब श्रमिकों को उद्योग के लाभ मे से हिस्सा दिया जाता है तो हानि होने पर श्रमिको द्वारा हानि का भार भी वहन करना चाहिए। वे इस योजना को एक-पक्षीय योजना बताते हैं।

6. इस योजना के अन्तर्गत दोनो पक्ष अपना-अपना महत्व बताते है कि लाभ उनके प्रयासो का परिणाम है और इससे उनमे आपस मे झगड़ा उत्पन्न हो जाता है।

7 श्रमिको को जब उद्योग के लाभ मे हिस्सा दिया जाने लगता है तो वे सुस्ती से कार्य करते हैं जिससे उत्पादन मे गिरावट आती है।

इस प्रकार की योजना पूर्ण रूप से कही भी सफल नही हुई है क्योंकि इसकी कई सीमाएँ है। फिर भी हम कह सकते हैं कि इस प्रकार की योजना की सफलता के लिए एक ऐसे वातावरण की आवश्यकता है जिसमे दोनो पक्ष (श्रमिक व मालिक) एक-दूसरे पर विश्वास करते हैं। यह कहना कि इससे औद्योगिक विवाद नही होंगे, बिलकुल सही नही है। यह जरूर है कि इस योजना के लागू करने से कुछ सीमा तक विवादो को कम किया जा सकता है।

भारत में लाभांश (बोनस) योजना : इतिहास और ढाँचा[1]

सही अर्थों मे बोनस के भुगतान की प्रथा का प्रादुर्भाव प्रथम विश्व-युद्ध के अन्तिम दिनो मे हुआ था। इस प्रश्न पर विचार-विमर्श के दौरान ह्वाइटले आयोग ने अग्रांकित मत व्यक्त किया था—

1 भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सन्दर्भ सामग्री से साभार।

"हमारे कहने का मतलब यह नहीं है कि अपनी कार्यकुशलता के मौजूदा स्तर के अनुसार, कामगर को पहले किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान के कारोबार में होने वाले लाभ में सदा ही उचित भाग मिला है या उसे अब मिलता है, लेकिन जब तक उसका संगठन उतना दुर्बल रहेगा, जितना कि आज है, तब तक इस बात का सदा खतरा बना रहेगा कि उसे उद्योग के कारोबार में (मुनाफे का) उचित भाग पाने में सफलता न मिले। समय-समय पर इस बात के सुझाव दिए गए हैं कि लाभ बाँटने की योजनाओं को आमतौर पर लागू करने से इस मुश्किल को आसान किया जा सकता है, लेकिन इस आन्दोलन ने भारत में जरा भी प्रगति नहीं की और औद्योगिक विकास की मौजूदा स्थिति में ऐसी योजनाओं के लाभदायक या प्रभावी सिद्ध होने की सम्भावना नहीं है।"

युद्ध बोनस

सन् 1914–18 के युद्धकाल में वस्तुओं के दाम बढ़ गए थे। नतीजा यह हुआ कि वास्तविक तनख्वाहें तो कम हो गईं और दूसरी ओर व्यापार में लाभ बहुत बढ़ गए। उस समय मजदूरों ने अतिरिक्त पैसे के लिए आन्दोलन किया। कुछ तो इसलिए कि वे अपने वेतन और वास्तविक तनख्वाहों के बीच अन्तर कम करना चाहते थे और कुछ इसलिए भी कि उद्योगों द्वारा उस दौर में कमाए गए अतिरिक्त मुनाफों में भी हिस्सा बाँटने का उनका इरादा था। इस स्थिति ने कुछ औद्योगिक इकाइयों को अपने मजदूरों को 'युद्ध बोनस' देने पर मजबूर कर दिया।

उस समय दिया जाने वाला बोनस दो तरह का था—(1) यह मालिकों द्वारा सद्भावना प्रदर्शन के रूप में केवल ग्रेच्युटी या अनुग्रह राशि के नाम पर दिया जाता था, (2) यह या तो महँगाई भत्ते के बदले दिया जाता था या वार्षिक अर्जित अवकाश के स्थान पर मिलता था।

मजदूरों का अधिकार

दूसरे विश्व-युद्ध के दौरान युद्धकालीन बोनस का अर्थ ऐसा भुगतान समझा जाने लगा जो कि युद्ध के दौरान कमाए गए अतिरिक्त मुनाफे में से मजदूरों को दिया जाता था। इण्डियन लेबर कांफ्रेंस (1943) मुनाफा बाँटने के बारे में बोनस पर विचार-विमर्श करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँची थी कि बोनस के प्रश्न पर महँगाई भत्ते के सवाल से अलग विचार करना चाहिए और यह एक ऐसा सवाल है जिसे मालिकों को अपने कर्मचारियों से बातचीत करके तय करना है। उनके मालिकों ने स्वेच्छा से बोनस दिया, पर इस सवाल पर अनेक विवाद भी भारत रक्षा अधिनियम के अधीन अदालतों में उठाए गए। अदालतों का कहना था कि श्रम और पूँजी के सहयोग से ही मुनाफे हुए हैं, इसलिए मजदूरों को अधिकार है कि वे किसी समय विशेष में अतिरिक्त लाभ में हिस्सा बाँटने की माँग करें। अभी तक भी बोनस का दावा एक कानूनी अधिकार नहीं था। केवल उसे मजदूरों को सतुष्ट रखने की दृष्टि से न्याय, तर्क और सद्भावना के सिद्धान्तों के आधार पर स्वीकार किया गया था।

बम्बई उच्च न्यायालय का फैसला

यह स्थिति तब तक चलती रही जब तक इस प्रश्न पर बम्बई उच्च न्यायालय ने यह निर्णय नही दे दिया कि बोनस की माँग मजदूर का अधिकार है। उसने कहा—"बोनस एक ऐसा भुगतान है जो किसी मालिक द्वारा कर्मचारियो को एक स्पष्ट या निहित समझौते के अधीन किए गए काम के लिए अतिरिक्त पारिश्रमिक के रूप मे किया जाए।"

बोनस विवाद समिति

बम्बई के सूती कपडा मिल कामगरो को सन् 1920, 1921 व 1922 के लिए सन् 1921, 1922 व 1923 मे भी बोनस दिया गया था। सन् 1923 के लिए बोनस न देने के विरोध मे जनवरी, 1924 के अन्त मे एक आम हडताल हुई थी। इसके फलस्वरूप बम्बई उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश सर नार्मन मेक्लीड की अध्यक्षता मे एक बोनस विवाद समिति स्थापित की गई थी।

विचारार्थ विषय

समिति को निम्नलिखित विषयो पर विचार करना था—

(1) बम्बई की सूती कपडा मिलो द्वारा अपने कर्मचारियो को सन् 1919 से दिए गए बोनस की प्रकृति के आधार पर विचार करना और इस बात की घोषणा करना कि क्या इस बारे मे कर्मचारियो का कोई पारम्परिक, कानून या मान्यता का दावा बन गया है ? और (2) सन् 1917 से आलोच्य अवधि तक हर वर्ष के लिए मिलो द्वारा कमाए गए मुनाफो की जाँच करना ताकि उनकी तुलना सन् 1923 मे हुए मुनाफो से की जा सके और मिल मालिको की इस मान्यता पर मत दिया जा सके कि पिछले वर्षों की तरह सन् 1923 में बोनस देने का कोई औचित्य नही है क्योकि सन् 1923 मे सूती वस्त्र उद्योग ने कुल मिलाकर जो मुनाफा कमाया है उसके आधार पर बोनस नही दिया जा सकता।

समिति से कहा गया था कि वह इस बारे मे कोई निर्णय या अमल के लिए सुझाव न दे बल्कि केवल तथ्य सग्रह तक ही सीमित रहे।

समिति के निष्कर्ष

मिल मजदूरो को पाँच वर्षों तक जो बोनस दिया गया था उसकी प्रकृति और आधार की जाँच-परख करने के बाद कमेटी ने यह घोषित किया कि मिल मजदूरों को वार्षिक बोनस के भुगतान का कोई ऐसा पारम्परिक, कानूनी या तर्कसंगत दावा नही बनता जिसे अदालत मे सही ठहराया जा सके। सन् 1917 के बाद के वर्षों मे हुए मुनाफो की जाँच-परख करने और सन् 1923 मे हुए मुनाफो से उसकी तुलना करने के बाद समिति ने कहा कि सन् 1923 के लिए सूती वस्त्र उद्योगों ने कारोबार किया है। उससे मिल मालिकों की यह बात सही ठहरती है कि उसके आधार पर कोई बोनस नही दिया जा सकता।

वैसे समिति का विचार यह था कि मजदूरो ने अपने मालिको के विरुद्ध जो दावा किया है, उसकी सही प्रवृत्ति को देखते हुए यह मालिको और मजदूरो के बीच

सौदेबाजी का प्रश्न बन गया था, जिसमे तर्क या न्याय व औचित्य के सिद्धान्तो के अनुरूप भी सोच-विचार किया जा सकता है। यह सवाल इस बात को निश्चित करने का नही है कि इन दोनो के बीच अनुबन्ध का स्वरूप क्या है।

अहमदाबाद की समस्या

सन् 1921 मे अहमदाबाद में भी उद्योग के सामने ऐसी ही समस्या उठ खड़ी हुई थी। बोनस की विस्तृत शर्तों पर विवाद हो गया था और तब प. मदन मोहन मालवीय की मध्यस्थता से ही इस समस्या का हल निकला था। मालवीय जी ने कहा था—

"मेरी स्पष्ट मान्यता यह है कि अगर किसी मिल को अच्छा लाभ होता है, तो मजदूरो को आमतौर पर हर वर्ष के अन्त में एक मास के वेतन के बराबर बोनस दिया जाना चाहिए, क्योंकि मजदूरो के निष्ठापूर्ण सहयोग से ही मिल ऐसा मुनाफा कमा पाती है। अगर फायदा बहुत ज्यादा हुआ हो तो मिल मालिकों को चाहिए कि मजदूरों को ज्यादा बोनस दें।"

स्वैच्छिक भुगतान

दूसरा विश्व-युद्ध छिड़ने पर समस्त उद्योगो को अनिवार्य सेवाएँ (रख-रखाव) अध्यादेश के तहत ले आया गया था। असामान्य युद्धकालीन परिस्थितियो के कारण कुछ कम्पनियो ने बहुत अधिक मुनाफे कमाए और औद्योगिक प्रतिष्ठानो के मालिको ने खद इस बात को अच्छा समझा कि मजदूरो को खुश व सतुष्ट रखा जाए।

सन् 1941 से 1945 तक बम्बई के मिल मालिक सघ की सदस्य मिलो ने स्वेच्छा से बोनस घोषित किया। सन् 1941 मे यह रकम कर्मचारियो की वार्षिक बेसिक आय का 1/8 वां भाग और सन् 1942 से 1945 तक 1/6 वां भाग थी।

बहुत से मामलो मे बोनस अदायगी कर दी गई, पर साथ ही यह भी कहा गया कि बोनस देने की बात अधिक मुनाफा होने से सम्बन्धित है। कुछ मामलों मे तो स्वय मजदूरो या कर्मचारियो ने यह स्वीकार कर लिया कि अगर कम्पनी को कोई खास मुनाफा न हुआ हो तो वे लोग बोनस के रूप मे उसका हिस्सा पाने के अधिकारी नही होगे। उस समय बोनस को 'बख्शीश' के रूप मे समझा जाता था।

श्रमिक अधिकार

बोनस के बारे में पहले समझा जाता था कि यह मालिक द्वारा अपने कर्मचारियों को अपनी मनमर्जी से दी जाने वाली मुक्त व स्वैच्छिक भेंट है, लेकिन यह विचार पुराना पड गया। किसी व्यावसायिक प्रतिष्ठान में काम करने वाले सभी लोगो का सहयोग ही औद्योगिक सस्थानो को ठीक व फलता-फूलता रखने के लिए जरूरी माना जाने लगा। अब उद्योगो के बारे मे केवल व्यावसायिक दृष्टिकोण से ही नही सोचा-विचारा जाता था, इसका मानवीय पक्ष भी विचारणीय हो गया था। उद्योग क्षेत्र मे शान्ति बनाए रखने की बात पर बल दिया जाने लगा था। बम्बई के मुख्य न्यायाधीश एम. सी छागला ने कहा था—(1) मजदूरो को किसी साल विशेष मे हुए ज्यादा मुनाफो मे हिस्सा मांगने का अधिकार है और (2) ज्यादा

मुनाफे को बाँटने का अच्छा तरीका तनख्वाहें बढ़ाना नहीं, बल्कि वार्षिक बोनस देना है। श्री छागला की इस बात से महाराष्ट्र के ही नहीं, अन्य राज्यों के न्यायाधीशों ने भी सहमति प्रकट की, लेकिन बोनस की परिभाषा निश्चित करने के लिए कोई फार्मूला तैयार करने की दिशा में कोशिश नहीं की गई।

'अनजाने सागर' की यात्रा

अप्रेल, 1948 में आयोजित इण्डियन लेबर कान्फ्रेंस ने मुनाफा बाँटने के विषय पर विचार-विमर्श करते हुए कहा था कि यह मामला इस प्रकार का है कि इस पर विशेषज्ञों द्वारा विचार किया जाना चाहिए। भारत सरकार ने मुनाफा बाँटने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति गठित की। समिति से कहा गया कि वह सरकार को निम्नलिखित बातों के लिए सिद्धान्त तय करने में अपनी सलाह दे—(अ) श्रमिक को उचित तनख्वाहें, (आ) उद्योगों में निवेशित पूंजी पर उचित लाभ, (इ) संस्थानों के रख-रखाव और विस्तार के लिए पर्याप्त संचित कोष की व्यवस्था और (ई) अधिशेष लाभ में मजदूरों के हिस्से का निर्धारण। इसे आम तौर पर (आ) व (इ) में किए गए उत्पादन प्रावधानों के अनुरूप तालमेल बैठाते हुए (कम या ज्यादा) तय किया जाना था।

समिति कोई ऐसी प्रक्रिया तय नहीं कर सकी, जिसके आधार पर मुनाफे में कर्मचारियों के हिस्से की बात को उत्पादन के साथ तालमेल बैठाकर कम या ज्यादा तय किया जा सके। समिति का विचार था—"इसलिए बड़े पैमाने पर मुनाफे में बँटवारे का प्रयोग करना एक अनजान-अनदेखे सागर की यात्रा पर निकलने जैसा होगा।"

समिति ने सुझाव दिया कि कुछ सुव्यवस्थित उद्योगों में मुनाफा बाँटने की बात प्रायोगिक तौर पर लागू की जा सकती है। ये उद्योग हैं—(1) सूती वस्त्र, (2) जूट, (3) इस्पात (मुख्य उत्पाद), (4) सीमेन्ट, (5) टायर उत्पादन और (6) सिगरेट उत्पादन।

मुनाफा बाँटने का प्रयोग करने का सुझाव देने के पीछे औद्योगिक शान्ति बनाए रखने की भावना ही काम कर रही थी। समिति का यह कहना था कि अधिशेष लाभ का अनुमान लगाने और उसे कानून के अनुसार बाँटा जाए, इस बात को प्रमाणित करने की पूरी जिम्मेदारी कम्पनियों के वैध रीति से नियुक्त लेखा परीक्षकों पर डाल दी जानी चाहिए।

केन्द्रीय परामर्शदात्री परिषद् ने उक्त समिति की रिपोर्ट पर विचार किया, लेकिन उस दिशा में कोई समझौता नहीं हो सका। व्यवहार रूप में मुनाफे के बँटवारे की प्रक्रिया समय-समय पर औद्योगिक अदालतों व न्यायाधिकरण द्वारा बोनस अदायगी के निर्णय देने के रूप में चलती रही। लेकिन उनके पंचाटों में इसके लिए कोई समरूप या स्पष्ट आधार उभर कर सामने नहीं आ सका।

श्रमिक अपीली ट्रिब्यूनल फार्मूला

इस पृष्ठभूमि में, थोड़े समय तक चले श्रमिक अपीली ट्रिब्यूनल (एल.ए.टी) ने बोनस भुगतान के सिद्धान्त तय किए थे। सन् 1950 में सूती कपड़ा उद्योग

के विवाद पर अपने फैसले में श्रमिक अपीली ट्रिब्यूनल ने श्रमिकों को बोनस देने से सम्बन्धित मुख्य सिद्धान्तों का प्रारूप सामने रखते हुए कहा था—

"इसे (बोनस को) अब अनुग्रह भुगतान नहीं माना जा सकता क्योंकि यह बात मानी जा चुकी है कि अगर बोनस के दावे का प्रतिरोध किया जाए तो उससे ऐसा औद्योगिक विवाद उभरता है जिसका फैसला वैध रूप से गठित औद्योगिक न्यायालय या ट्रिब्यूनल को करना होता है।"

सन् 1952 में एक-दूसरे मामले में इसने बोनस का परिमाण निश्चित करने वाले आधारों की व्याख्या करते हुए कहा था—

"इस ट्रिब्यूनल की लगातार यह नीति रही है कि श्रमिकों के लिए ऐसी वेतन दर या मान तय की जाए जो वेतनों की आम दशा-दिशा के अनुरूप होने के साथ-साथ कम्पनी की भुगतान क्षमता के अनुकूल भी हो अगर सम्भव हो तो इसे मुनाफे के अधिशेष में से बोनस देकर उसे आर्थिक लाभ पहुँचाया जाए। इन मामलों को किन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर निश्चित करना होगा, न कि आधारहीन बातों पर। क्योंकि अगर हम सिद्धान्त से अलग हट जाते हैं तो श्रमिक निर्णयों में एक-रूपता नहीं रहेगी और अनिश्चित आधारों पर फैसले देना औद्योगिक सम्बन्धों के लिए खतरनाक सिद्ध होगा।"

पहले मामले के सन्दर्भ में निश्चित किए गए फार्मूले के अनुसार, जो कि 'पूर्ण पीठ फार्मूलों' (फुल बैंच फार्मूला) के नाम से जाना गया सकल लाभ में से निम्न-लिखित खर्चों की व्यवस्था करने के बाद ही बंटवारे के लिए अधिशेष निश्चित किया जाएगा। वे हैं—

(1) टूटे फूटे के लिए प्रावधान,
(2) पुनर्वास के लिए संचित कोष,
(3) चुकता पूँजी पर 6% लाभ, और
(4) कार्य पूँजी पर चुकता पूँजी की तुलना में कम दर पर लाभ।

और इसके बाद बाकी रहे 'उपलब्ध अधिशेष' से श्रमिकों को साल के लिए बोनस के रूप में उचित हिस्सा दिया जाए।

श्रमिक अपीली ट्रिब्यूनल द्वारा निश्चित फार्मूले को आधार मानकर ही देश भर के औद्योगिक ट्रिब्यूनलों ने बोनस अदायगी के फैसले दिए। हालांकि समय-समय पर इस फार्मूले को संशोधित करने की माँग लगातार उठाई जाती रही। संशोधन की माँग का प्रमुख आधार श्रमिक अपीली ट्रिब्यूनल द्वारा पुनर्वास के प्रावधान को प्राथमिक खर्च मानना था। सन् 1959 में एसोसिएटेड सीमेन्ट कम्पनीज की अपील पर विचार के दौरान सर्वोच्च न्यायालय के सामने यह मुद्दा आया था। श्रमिक अपील फार्मूले में निहित सिद्धान्तों को उचित ठहराते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ यह कहा—

"अगर विधान मण्डल को यह महसूस होता है कि श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले सामाजिक व आर्थिक न्याय के दावों को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट आधार पर

परिभाषित किया जाना चाहिए, तो यह उस मामले में हस्तक्षेप कर सकता है और विधान बना सकता है। यह भी सम्भव है कि एक उच्चाधिकार प्राप्त आयोग द्वारा इस प्रश्न पर सर्वांग विचार कराया जाए और आयोग से कहा जाए कि वह इस समस्या के सब पक्षों पर समस्त उद्योगों व मजदूरों की सब संस्थाओं से बात करके हर दृष्टि से विचार करें।"

बोनस आयोग

स्थाई श्रम समिति ने इस मुद्दे पर सन् 1960 में विचार किया और इसकी सिफारिशों के आधार पर 6 दिसम्बर, 1961 को एक त्रिपक्षीय आयोग का गठन किया गया। इसे लोग आमतौर पर बोनस आयोग के नाम से जानते हैं। इसका काम था लाभ पर आधारित बोनस की अदाएगी के प्रश्न पर सर्वांग-सम्पूर्ण विचार करना और सरकार को अपनी सिफारिशें देना। अध्यक्ष (श्री एम. आर मेहर) के अतिरिक्त आयोग में दो स्वतन्त्र सदस्य और दो-दो सदस्य कर्मचारियों व मालिकों के (सार्वजनिक क्षेत्र सहित) थे।

सार्वजनिक क्षेत्र को भी इस आयोग के विचार क्षेत्र में शामिल करने की माँग ज़ोर-शोर से उठाई थी। लेकिन फैसला यह हुआ कि सार्वजनिक क्षेत्र के उन्हीं संस्थानों को आयोग के विचार क्षेत्र में सम्मिलित किया जाना चाहिए, जो विभागीय तौर पर नहीं चलाए जाते हैं और जो निजी क्षेत्र के अपने जैसे प्रतिष्ठानों से प्रतिद्वन्द्विता करते हैं।

सरकार को बोनस आयोग की रिपोर्ट 21 जनवरी, 1964 को मिली। रिपोर्ट सर्वसम्मत नहीं थी और श्री डांडेकर (मालिकों के प्रतिनिधि) ने अनेक महत्त्वपूर्ण मामलों पर बहुमत की सिफारिशों का विरोध किया था। आयोग की सिफारिशों पर सरकार ने निर्णय 2 सितम्बर, 1964 के एक प्रस्ताव द्वारा घोषित किए गए थे। इसमें सरकार ने निम्नलिखित संशोधनों के साथ आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया था—

1 इस समय जारी सारे प्रत्यक्ष करों को बोनस की दृष्टि से, उपलब्ध अधिशेष का अनुमान लगाते समय प्रथम भार के रूप में काट लिया जाना चाहिए।

2. इसके अलावा आगे विकास करने की दृष्टि से साधन जुटाने के लिए उद्योगों को करों में जो छूटें दी जाती हैं, उनका इस्तेमाल कर्मचारियों को अधिक बोनस देने में नहीं किया जाना चाहिए। दूसरी ओर अगर वर्तमान कर-कानून और विनियम पूरी तरह इस स्थिति को सुरक्षित नहीं बना पाते, तो कानून द्वारा इस बात को सुनिश्चित बनाया जाना चाहिए कि ऐसी कर छूटों से जो रकम जमा होनी है वह सचमुच उन्हीं कामों में लगाई जाए जिनके लिए करों में छूटें दी जाती हैं। इसके अलावा हिन्दुस्तान शिपयार्ड जैसी कुछ विशिष्ट कम्पनियों को सरकार द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी को बोनस भुगतान के उद्देश्य से सकल लाभ के हिसाब में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

3 बोनस के उद्देश्य से 'उपलब्ध अधिशेष' का हिसाब लगाने में पहले पूंजी पर लाभ वाले खाते में प्रथम भार के रूप में काटी जाने वाली राशि का हिसाब

इस तरह होगा—अधिमानी शेयर पूंजी पर वास्तविक देय दर से, चुकता साधारण पूंजी पर 8 5 प्रतिशत (कर योग्य), और संचित राशि पर 6 प्रतिशत (कर योग्य)। इस व्यवस्था को बैंकों के अतिरिक्त दूसरे संस्थानो पर लागू किया जाना चाहिए। बैंकों के मामले मे तुलनात्मक दरें ये होनी चाहिए—अधिमानी शेयर पूंजी पर वास्तविक देय दर से, चुकता साधारण पूंजी पर 7 5 प्रतिशत (कर योग्य) और संचित राशि पर 5 प्रतिशत (कर योग्य)।

4 बाद के निर्णयो मे संशोधित बोनस आयोग की सिफारिशो के भूतलक्षी प्रभाव के बारे मे यह उन्हे सन् 1962 के किसी भी दिन समाप्त होने वाले लेखा वर्ष से सम्बन्धित सब विवादास्पद बोनस सम्बन्धी मामलों पर लागू माना जाना चाहिए। केवल वही मामले इससे मुक्त रहेंगे, जिनमें पहले ही समझौते हो चुके हैं या निर्णय दिए जा चुके है।

आयोग की रिपोर्ट पर सरकार के निर्णयो की घोषणा के बाद मजदूर सगठनो की ओर से सरकार को ऐसे अनेक प्रतिवेदन मिले कि नए फार्मूले से कुछ मामलो मे यह होने की आशंका है कि श्रमिको को मिलने वाले बोनस का परिमाण कम हो जाएगा। तत्कालीन केन्द्रीय श्रम मन्त्री ने 18 सितम्बर, 1964 को ससद् मे एक वक्तव्य मे उस स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा कि आयोग की रिपोर्ट के बारे मे प्रस्तावित विधेयक मे इस बात को संरक्षित करने के समुचित प्रावधान सम्मिलित किए जाएँगे कि बोनस के मामले तय करने मे चाहे वर्तमान आधारो पर निर्णय हो या नए फार्मूले के आधार पर, श्रमिकों को अधिक फायदे मिल सकें।

बोनस सम्बन्धी विधेयक

सरकार द्वारा स्वीकृत बोनस आयोग की सिफारिशों को व्यावहारिक रूप देने के लिए प्रस्तावित विधेयक के मसौदे पर स्थायी श्रम समिति ने अपनी दिसम्बर, 1964 व मार्च, 1965 की बैठको मे विचार-विमर्श किया। सरकार ने जिस विधेयक को अन्तिम रूप दिया उसमे विभिन्न पक्षो द्वारा दिए गए सुझावो का भी ध्यान रखा गया था। इसे 29 मई, 1965 को बोनस भुगतान अध्यादेश, 1965 के नाम से जारी किया गया। 25 सितम्बर, 1955 के बोनस भुगतान अधिनियम का स्थान 1965 के इस अध्यादेश ने ले लिया।

बोनस विधेयक को सांविधानिक चुनौती

29 मई, 1965 को बोनस अध्यादेश जारी होने के तुरन्त बाद ही विभिन्न उच्च न्यायालयो मे इस विधेयक के महत्त्वपूर्ण प्रावधानो की सांविधानिक वैधता को चुनौती देते हुए अपीलें दायर की गईं। कानून की सांविधानिक वैधता को सर्वांग चुनौती देते हुए सविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन सर्वोच्च न्यायालय मे दो रिट पिटीशन और बम्बई के औद्योगिक न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध एक दीवानी अपील दायर की गई। पूरे अधिनियम की आलोचना की गई। खासतौर पर धारा 10, जिसके तहत लाभ न होने की स्थिति मे भी न्यूनतम बोनस भुगतान का प्रावधान था, धारा 33, जिसका सम्बन्ध कुछ अनिर्णीत विवादो पर अधिनियम को लागू करने से था, और

धारा 34 (2) को, जिसका सम्बन्ध बोनस की मौजूदा ऊंची दरों को सरक्षण देने से था, चुनौती दी गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने 5 अगस्त, 1966 को दिए गए अपने फैसले मे धारा 10 की सांविधानिकता को उचित ठहराया था। अधिकतम बोनस या सेट ग्रॉन या अग्रिम देना व सेट ग्रॉफ या मुजरा प्रणाली से सम्बन्धित प्रावधानो को बरकरार रखा गया। लेकिन धारा 33 और 34 (2) और साथ ही धारा 37 को भी (जो अधिनियम के प्रावधानो को व्याख्या करने मे आने वाली कठिनाइयो को दूर करने का अधिकार सरकार को देती है), सांविधानिक दृष्टि से अवैध घोषित कर गया दिया।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से बनी स्थिति से निपटने की कठिनाई

फैसले के तुरन्त बाद मजदूरो ने प्रतिवेदन दिया कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निरस्त घोषित प्रावधानो (विशेषकर उच्चतर बोनस की मौजूदा स्थिति को सरक्षण देने वाले) को फिर से बहाल किया जाए। दूसरी ओर मालिको का कहना था कि यथास्थिति बनाए रखी जाए।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद दूसरी स्थिति पर स्थायी श्रम समिति और इसके बाद गठित द्विपक्षीय समिति द्वारा विचार किया गया। लेकिन फिर भी दोनों पक्षो के बीच विभिन्न प्रस्तावो पर कोई समझौता नही हो सका और विरोधी प्रस्ताव पेश किए गए।

1969 मे बोनस अधिनियम मे सशोधन

मेटल बॉक्स कम्पनी और इसके कर्मचारियो के बीच बोनस विवाद पर सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि धारा 6 (सी) के अधीन देय कर राशि का हिसाब लगाते समय बोनस अधिनियम के तहत दिए गए बोनस को सकल लाभ से घटाया नही जाएगा। इस फैसले के फलस्वरूप यह हुआ कि कर के नाम पर घटाई जाने वाली रकम वास्तविक देय कर से ज्यादा बैठ जाती थी और बोनस देने पर आयकर के अधीन मालिक को मिलने वाली कर छूट की पूरी रकम उसकी जेब मे जाती थी। यह बात सरकार की रीति-रिवाज के विपरीत ठहरती थी। मजदूर तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 34 (2) को रद्द किए जाने से पहले ही दुखी थे। मेटल बॉक्स कम्पनी के मामले मे दिए गए फैसले से और अधिक उद्वेलित और बेचैन हो गए क्योकि इन दोनो निर्णयो से उन्हें मिलने वाली बोनस राशि पर दुष्प्रभाव पडा था। इसलिए 10 जनवरी, 1969 को एक अध्यादेश जारी करके अधिनियम की धारा 5 मे सशोधन कर दिया गया। इस सशोधन ने यह स्पष्टीकरण दिया गया था कि किसी लेखा-वर्ष मे मालिक को मिलने वाली कर छूट राशि को बाद वाले लेखा वर्ष के उपलब्ध अधिशेष मे जोडना होगा। इस प्रकार कर छूट की राशि अब (अर्थात् लेखा वर्ष 1968 से आगे) मालिक और उनके लिए कर्मचारियो के बीच 40 60 के अनुपात मे बाँटी जाएगी। बाद मे एक संसदीय अधिनियम ने इस अध्यादेश का स्थान ले लिया।

राष्ट्रीय श्रम आयोग की सिफारिशें

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें दी है—

वार्षिक बोनस देने की प्रणाली अस्तित्व में आ गई है। उसने अपना स्थान बना लिया है और भविष्य में भी सम्भवत: जारी रहेगी। जहाँ तक बोनस के परिमाण को तय करने का प्रश्न है, उसे सामूहिक सौदेबाजी के जरिए तय किया जा सकता है। लेकिन ऐसे समझौतो को आधार बनाने वाले फार्मूले को कानूनी होना होगा। 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम को अधिक समय तक आजमा कर देखना चाहिए। कुछ कम्पनियों ने, जो बोनस अधिनियम पारित होने से पहले बोनस दिया करती थी, अब बोनस देना बन्द कर दिया है, क्योंकि यह अधिनियम उन पर लागू नही होता। इन कम्पनियों को केवल इसी बात पर बोनस की अदायगी बन्द नही करनी चाहिए। सरकार को चाहिए कि ऐसी कम्पनियो के सदर्भ मे अधिनियम मे उचित सशोधन करने की सम्भावना पर विचार करे।

यह तय किया गया कि बोनस पुनरीक्षण समिति की रिपोर्ट मिलने के बाद इस मामले पर विचार किया जाए।

बोनस पुनरीक्षण समिति का गठन

बोनस भुगतान अधिनियम में सशोधन करने के लिए 9 अगस्त, 1966 को श्री चित्त बसु द्वारा राज्यसभा मे बोनस भुगतान (संशोधन) विधेयक, 1966 के नाम से एक विधेयक प्रस्तुत किया गया। उनके द्वारा प्रस्तावित सशोधन के मुख्य उद्देश्य थे—

(1) अधिनियम की धारा 10 के अधीन देय न्यूनतम बोनस को लेखा वर्ष मे अर्जित वेतन मज़दूरी के 4% से बढाकर वार्षिक प्राप्तियों का 1/12 करना,

(2) अधिनियम की धारा 11 को हटाना जो अधिकतम बोनस को लेखा वर्ष के वेतन/मजदूरी के 20% तक सीमित करती है, और

(3) धारा 32 द्वारा अलग किए गए सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानो के अलावा उन सभी सार्वजनिक प्रतिष्ठानो पर इस अधिनियम को लागू करना, जो कम्पनियो और निगमों की तरह चलाए जाते है।

मत्रालय से परामर्श करके और मन्त्रिमण्डल के निर्देशानुसार इस विधेयक का विरोध करने और यह आश्वासन देने का फैसला किया गया कि सरकार उचित समय पर स्वय एक उचित विधेयक पेश करेगी ताकि 1965 के बोनस भुगतान के अधिनियम को ऐसी व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता न करने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों पर लागू किया जा सके, जो वर्तमान मे अधिनियम की धारा 20 के अधीन इससे अछूती रह गई हैं। उक्त विधेयक को राज्यसभा ने 26 मार्च, 1971 को अस्वीकृत कर दिया। बहस के दौरान श्रम मन्त्री ने यह आश्वासन दिया कि सरकार अतीत के अनुभवों को देखते हुए कानूनी बोनस भुगतान की पूरी योजना का पुनरीक्षण करेगी।

पिछले अनुच्छेद में उल्लिखित आश्वासन के अनुरूप 28 अप्रैल, 1978 को एक समिति स्थापित की गई जिस पर सन् 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम के व्यवहार के पुनरीक्षण की जिम्मेदारी थी। उसका स्वरूप व विचार क्षेत्र निम्नलिखित था—

1. स्वरूप—अध्यक्ष एवं सदस्य—(1) श्री एन. एन. भट्ट, (2) श्री हरीश महिंद्रा, (3) श्री आर पी बिलीमोरिया, (4) श्री जी रामानुजम, (5) श्री सतीश लुम्बा, (6) श्री महेश देसाई, (7) डॉ एम एल. पुनेकर।

2. विचार क्षेत्र—बोनस भुगतान अधिनियम, 1965 के संचालन की समीक्षा करना और उसमें प्रस्तावित योजना में उचित संशोधन सुझाना और खासतौर पर निम्नलिखित पर सुझाव देना—

(1) क्या उन संस्थानों (कारखानों के अलावा) पर जहाँ 20 से कम श्रमिक काम करते हैं, इस अधिनियम को लागू करना चाहिए। और यदि हाँ, तो रोजगार की किस सीमा तक? क्या इन छोटे संस्थानों में बोनस भुगतान के लिए अलग फार्मूला होना चाहिए?

(2) क्या न्यूनतम बोनस (4%) की सीमा को बढ़ाने का मामला बनता है? यदि हाँ तो किस स्तर तक वृद्धि की जाए?

(3) क्या बोनस भुगतान की वर्तमान उच्च सीमा और सेट ऑन या अग्रिम भुगतान और सेट ऑफ या मुजरा प्रणाली में किसी फेरबदल की जरूरत है? यदि हाँ, तो इस परिवर्तन की दिशा क्या होगी?

(4) क्या समूचे बोनस भुगतान को किसी न किसी रूप में संस्थान में उत्पादन में/उत्पादकता से संयुक्त कर दिया जाना चाहिए?

(5) क्या वर्तमान 4% न्यूनतम बोनस जारी रहे और उत्पादन/उत्पादकता की समुचित योजना के अध्ययन से इसे और बढ़ाने का प्रावधान भी किया जाना चाहिए?

(6) किसी भी सम्बन्धित/अनुषंगी मामले पर विचार करना और सुझाव देना।

समिति अपनी सिफारिशों को अन्तिम रूप देने से पहले राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पर उनके सम्भावित प्रभाव का भी सावधानीपूर्वक आंकलन करेगी।

बोनस पुनरीक्षण समिति की अन्तिम रिपोर्ट

बोनस पुनरीक्षण समिति ने 13 सितम्बर, 1972 को न्यूनतम बोनस, इसके भुगतान के तरीके, न्यूनतम बोनस में वृद्धि का उत्पादन-उत्पादकता से सम्भावित सम्बन्ध, प्रसार आदि प्रश्नों के बारे में अपनी अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी। समिति के निष्कर्ष इस विषय पर प्रस्तुत दो अलग-अलग रिपोर्टों में सन्निहित थे। एक रिपोर्ट अध्यक्ष, डॉ. एस. डी. पुनेकर, श्री एन एस. भट्ट और श्री हरीश महिंद्रा की तरफ से पेश की गई थी और दूसरी रिपोर्ट पेश करने वाले थे श्री आर. डी. बिलीमोरिया, श्री महेश देसाई, श्री जी. रामानुजम और श्री सतीश लुम्बा।

समिति द्वारा प्रस्तुत दोनों रिपोर्टों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद निम्नलिखित कदम उठाए गए—

(1) बोनस अधिनियम के तहत आने वाले श्रमिकों को मिलने वाले न्यूनतम कानूनी बोनस को 4% से बढ़ाकर लेखा वर्ष 1971-72 के लिए 8⅓% कर दिया गया।

(2) बोनस भुगतान अधिनियम के तहत आने वाले समस्त व्यक्तियों को 8⅓% तक पूरा भुगतान नकद किया जाए। जहाँ कथित लेखा वर्ष मे दिए जाने वाले बोनस की रकम 8⅓% से अधिक हो और कथित लेखा वर्ष मे किए जाने वाले भुगतान और सन् 1970–71 लेखा वर्ष मे किए गए भुगतान के बीच अगर कोई अन्तर (अनुकूल अर्थात् धन) हो, (यानी जहाँ यह भुगतान 8⅓% से अधिक रहा हो) तो देश की मौजूदा आर्थिक स्थिति को देखते हुए इसे कर्मचारियों के भविष्य निधि खाते मे जमा करा दिया जाएगा।

उपर्युक्त (1) और (2) मे निहित व्यवस्थाओ को गैर प्रतियोगी सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानो पर भी लागू किया जाएगा।

यह आधिकारिक आदेश जारी कर दिए जाएँ कि अधिनियम मे औपचारिक संशोधन होने तक, उन सार्वजनिक प्रतिष्ठानों को भी (जिन्हें इस समय बोनस भुगतान अधिनियम की धारा 20 की व्यवस्था के चलते, बोनस देने से छूट मिली हुई है) उपर्युक्त आधार पर सन् 1971 के किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के लिए भुगतान करना चाहिए, और

सरकार ने मालिको के केन्द्रीय संगठन से कहा कि वे अपने सदस्य संस्थानो को यह सलाह दें कि उन्हे 'खाडिलकर फार्मूले' के नाम से प्रचलित फार्मूले के सन्दर्भ मे कर्मचारियो को दिए गए अग्रिम धन की वसूली करने पर ज़ोर नही देना चाहिए।

बाद मे एक संसदीय अधिनियम ने इस अध्यादेश का स्थान ले लिया।

1972-73 के लिए न्यूनतम बोनस

सन् 1965 के बोनस भुगतान अधिनियम मे सितम्बर, 1973 मे फिर संशोधन किया गया और यह व्यवस्था कर दी गई कि सन् 1972 के किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के लिए तनख्वाह या मजदूरी के 8⅓% की दर से न्यूनतम बोनस का भुगतान किया जाए, तथा कुछ फार्मूले मामलो मे, बोनस के एक अंश को कर्मचारियो के भविष्य निधि खाते में जमा कर दिया जाए। लेकिन श्रमिकों की ओर से ऐसे प्रतिवेदन प्राप्त हुए हैं कि उन्हे प्राप्य बोनस की राशि नकद दी जानी चाहिए और सरकार ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करने का निश्चय किया। तदनुसार 14 दिसम्बर, 1973 को अधिनियम मे संशोधन कर दिया गया।

1973-74 के लिए न्यूनतम बोनस

15 जुलाई, 1974 को हुई अपनी बैठक मे राजनीतिक मामलों की मन्त्रिमण्डलीय समिति ने हमारे नोट पर विचार-विमर्श किया, जो सन् 1973 के

किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के बारे में न्यूनतम देय बोनस भुगतान से सम्बन्धित था। समिति ने फैसला किया कि कोई अध्यादेश जारी करने के बजाय, यह कहीं अधिक अच्छा रहेगा कि मालिकों के प्रमुख प्रतिनिधि संघों को अनौपचारिक रूप से सन् 1973-74 लेखा वर्ष के लिए 8⅓% की दर से न्यूनतम बोनस का भुगतान करने की सलाह दी जाए। केन्द्रीय श्रम मन्त्री ने इस सम्बन्ध में 22 जुलाई, 1974 को एक बैठक आयोजित की। राज्य सरकारों से भी कहा गया कि वे राज्यों के मालिक संगठनों को सन् 1973-74 लेखा वर्ष के लिए 8⅓% की दर से न्यूनतम बोनस भुगतान करने की सलाह दें। उनसे यह भी कहा गया कि वे यही सलाह सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों को भी दें। बाद में बोनस भुगतान अधिनियम में 11 सितम्बर, 1974 को संशोधन करके उसमें सन् 1973 के किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के लिए न्यूनतम बोनस के भुगतान की व्यवस्थाएँ जोड़ दी गईं।

बोनस पुनरीक्षण समिति द्वारा अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत करना

बोनस पुनरीक्षण समिति ने 14 अक्तूबर, 1974 को नई दिल्ली में अपनी अन्तिम रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत कर दी थी।

बोनस भुगतान (संशोधन) अध्यादेश सन् 1975 का जारी होना

बोनस पुनरीक्षण समिति द्वारा अपनी अन्तिम रिपोर्ट में दी गई सिफारिशों के बारे में विभिन्न स्तरों पर काफी विस्तार से विचार-विमर्श किया जाए। गत सितम्बर के मध्य में सरकार द्वारा इन सिफारिशों पर निर्णय लिए गए और उन निर्णयों के अनुरूप 25 सितम्बर, 1975 को बोनस भुगतान (संशोधन) अध्यादेश जारी कर दिया गया।

"न्यूनतम बोनस की जो दर इस अधिनियम के तहत 4% है उसे सन् 1974 के किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष के लिए भी बरकरार रखा गया है। लेकिन अल्प वेतन पाने वाले मजदूरों को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से कुल न्यूनतम बोनस की राशि क्रमशः 40 रुपये और 25 रुपये से बढ़ाकर 100 रुपये और 60 रुपये कर दी गई। बाद के वर्षों के लिए न्यूनतम बोनस का भुगतान 4 वर्ष के चक्र में उपलब्ध अधिशेष पर आधारित होगा। अगर अधिशेष बहुत कम है तब भी न्यूनतम बोनस का भुगतान किया जाएगा। लेकिन अगर कोई अधिशेष नहीं है तो कोई बोनस देय नहीं होगा।"

हर वर्ष त्यौहारों के अवसर पर बोनस को लेकर बहुत अधिक औद्योगिक विवाद खड़े हो जाते थे और परिस्थितियों के दबाव के सामने उस अवसर पर तदर्थ फैसले कर लिए जाते थे। इस कारण इस मामले पर स्थिरता लाने की तुरन्त आवश्यकता को देखते हुए, जैसा कि बोनस आयोग ने भी कहा था और किसी वजह से ही बोनस के बारे में कानून लागू करने की आवश्यकता महसूस की गई थी, अधिनियम की धारा 34 (3) को निकाल दिया गया। जिन संस्थानों पर बोनस कानून लागू होता था, उनमें आयकर अधिनियम के तहत कटौतियों की अनुमति केवल बोनस कानून के अधीन दिए गए बोनस पर ही प्रदान की गई थी।

बैंकों को बोनस की श्रेणी से अलग कर दिया गया। बैंकों, जीवन बीमा निगम, भारतीय ग्राम बीमा निगम, बन्दरगाह व डाक तथा अन्य गैर प्रतियोगी सार्वजनिक संस्थानों में बोनस के बदले अनुग्रह भुगतान की अनुमति दी गई। इस भुगतान की अधिकतम दर 10% रखी गई।

अधिनियम में मौजूदा 20% की वर्तमान अधिकतम सीमा बरकरार रखी गई। यह भी व्यवस्था की गई कि अधिनियम के तहत अगर कर्मचारी अपने मालिकों से लाभ पर आधारित वार्षिक देय बोनस की अदायगी के बारे में कोई समझौता करते हैं, तो उस स्थिति में भी बोनस 20% से ज्यादा नहीं होगा।

अधिनियम से सरकार को यह अधिकार भी मिला है कि वह कम से कम दो महीने का नोटिस देकर ऐसे किसी भी संस्थान को, जिसमें 10 से कम कर्मचारी काम नहीं करते, अपनी अधिसूचना में उल्लिखित लेखा वर्ष के लिए अधिनियम के प्रावधानों को लागू कर सकती है। यह उल्लेखनीय है कि वर्तमान कानून गैर-कारखाना इकाइयों के सन्दर्भ में उन्हीं संस्थानों पर लागू होता था, जहाँ कम से कम 20 व्यक्ति काम करते हों।

बोनस : अन्तिम फैसला (अगस्त, 1977)[1]

18 अगस्त को जनता पार्टी की कार्यकारिणी की सिफारिश पर केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने यह फैसला किया कि सन् 1976 के वर्ष का बोनस आपातकाल से पहले की तरह 8 33% से कम नहीं होगा। इन्दिरा सरकार ने बोनस को विलम्बित अदायगी स्वीकार करते हुए न्यूनतम बोनस का प्रतिशत 8·33 निश्चित किया था। लेकिन आपातकाल लागू होने पर महँगी कृषि नीति को सन्तुलित करने, मुद्रा प्रसार पर अंकुश लगाने और सार्वजनिक क्षेत्र का घाटा कम करने के लिए न्यूनतम बोनस समाप्त कर दिया गया। जनता पार्टी ने चुनाव घोषणापत्र में पुरानी दर से बोनस का वादा किया था।

1980 से 1985 तक की स्थिति[2]

कर्मचारियों से सम्बन्धित लाभ में बँटवारे का अधिकार बोनस भुगतान अधिनियम, 1965 में निश्चित किया गया है। बोनस भुगतान (द्वितीय संशोधन) अधिनियम 1980 के अनुसार अधिनियम में कम से कम बोनस 8 33 प्रतिशत या 100 रुपये, जो अधिक हो देने की व्यवस्था है। चाहे इसके लिए विनिहित बचत की व्यवस्था उपलब्ध हो या नहीं। वार्षिक मजदूरी का अधिकतम बोनस 20 प्रतिशत एक निश्चित फार्मूले के अनुसार ही भुगतान योग्य है। बोनस का भुगतान विनिहत बचत के स्थान पर उत्पादन/उत्पादकता से जुड़े हुए एक अन्य फार्मूले के अनुसार नियोजक एवं मजदूरों के बीच आपसी समझौते के द्वारा किया जा सकता है। भुगतान में अपनाई जाने वाली कोई भी अन्य पद्धति नियम के विरुद्ध होगी। यह

1 दिनमान, अगस्त सितम्बर, 1977.
2 भारत 1985, पृ० 563.

अधिनियम सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमो पर लागू नही होता सिवाय उनके जो निजी क्षेत्र के उपक्रमो के साथ प्रतियोगिता कर रहे हो। यह अधिनियम लाभ के लिए काम न करने वाले सस्थानो जैसे भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम और विभागीय उपक्रम आदि पर भी लागू नही होता। तथापि यह सभी बैंको पर लागू होता है।

बोनस भुगतान अधिनियम, 1965 की धारा 32 (iv) के अनुसार केन्द्र सरकार या राज्य सरकारो के किसी विभाग तथा स्थानीय प्राधिकरण द्वारा प्रबन्धित उद्योगो मे लगे हुए कर्मचारी इस भुगतान के अन्तर्गत नही आते। यद्यपि रेल, डाक-तार और कुछ रक्षा सस्थानों तथा इसी प्रकार के अन्य सस्थानो के कर्मचारियो को उत्पादन सम्बन्धी बोनस देने का फैसला किया गया है। रेल, डाक और तार विभाग के कर्मचारियो को इसका भुगतान किया जा चुका है परन्तु अन्य विभागो के कर्मचारियों के लिए एक योजना विचाराधीन रही।

अपने बजट भाषण मे वित्त मन्त्री द्वारा दिए गए आश्वासन के सन्दर्भ मे ससद् के दोनो सदनो मे बोनस भुगतान अधिनियम की धारा 12 को हटाने के लिए एक विधेयक पास किया गया। इस धारा को हटाने से वे कर्मचारी भी, जिनकी मासिक आय/मजदूरी 750 रुपये से अधिक 1600 किन्तु रुपये से कम है, अपनी आय/मजदूरी के अनुसार बोनस के हकदार होगे। विभिन्न सगठनो से 1600 रुपये की ऊपरी सीमा बढाने/हटाने के लिए आवेदन प्राप्त हुए। श्रम मन्त्री ने ससद् को आश्वासन दिया कि शीघ्र ही बोनस भुगतान अधिनियम, 1966 मे विस्तृत सशोधन पेश किया जाएगा।

रिपोर्ट 1985-86[1]

बोनस सदाय अधिनियम, 1965 मे पात्र कर्मचारियो को 8 33 प्रतिशत की दर से न्यूनतम सांविधिक बोनस देने की व्यवस्था की गई है, परन्तु यदि आवटनीय अधिशेष उपलब्ध हो तो 20 प्रतिशत तक बोनस दिया जा सकता है।

वर्ष 1985-86 के दौरान, अधिनियम की धारा 12 का बोनस सदाय (सशोधन) अधिनियम, 1985 द्वारा लोप किया गया ताकि प्रतिमाह 750 रुपये से 1600 रुपये के बीच वेतन/मजदूरी पाने वाले कर्मचारी अपने वास्तविक वेतन/मजदूरी के आधार पर बोनस प्राप्त कर सकें। तथापि 27-9-85 को एक अध्यादेश जारी करके उक्त सशोधन को वर्ष 1984 मे किसी भी दिन आरम्भ होने वाले लेखा वर्ष से लागू किया गया था।

इसके बाद बोनस की पात्रता के लिए प्रतिमाह 1600 रुपये की परिलब्धियो की अधिकतम सीमा को बढाने हेतु श्रम मत्रालय को अनेक अभ्यावेदन प्राप्त हुए। समय-समय पर मजदूरी दरो मे सशोधन होने के फलस्वरूप कई कुशल और अति कुशल कर्मचारी, उत्पादकता मे जिनका भारी योगदान था, बोनस के लिए पात्र नही थे और इस तरह वे उक्त अधिनियम के सीमा क्षेत्र से बाहर चले गए थे। चूंकि इस

1 भारत सरकार की श्रम मत्रालय वार्षिक रिपोर्ट 1985-86, भाग-1, पृ० 11.

मुद्दे से श्रमिक वर्ग में अशान्ति फैल रही थी और व्यापक असंतोष बढ़ रहा था, इसलिए श्रम मन्त्रालय ने महसूस किया कि बोनस की पात्रता के लिए अधिकतम सीमा में संशोधन किया जाना अपेक्षित है और यह परिवर्तन श्रमिक वर्ग के उन लोगों का सहयोग प्राप्त करने के लिए तुरन्त किया जाना चाहिए। तत्पश्चात्, सरकार ने, वित्तीय उलझनों की जाँच करने के पश्चात् बोनस की पात्रता के लिए मजदूरी की अधिकतम सीमा को 1600 रुपये प्रतिमाह से 2500 रुपये प्रतिमाह बढ़ाने का निश्चय किया। तथापि प्रतिमाह 1600 रुपये और 2500 रुपये के बीच मजदूरी या वेतन प्राप्त करने वाले कर्मचारियों के सम्बन्ध में बोनस की गणना इस तरह की जाएगी मानो उनका वेतन या मजदूरी प्रतिमाह 1600 रु. थी, इस निर्णय को लागू करने के लिए, बोनस संदाय (द्वितीय संशोधन) अध्यादेश, 1985 (1985 का 8) 7 नवम्बर, 1985 को प्रख्यापित किया गया था।

उपरोक्त दो अध्यादेशों को बदलने के उद्देश्य से, बोनस संदाय (द्वितीय संशोधन) विधेयक, 1985 मानसून सत्र के दौरान दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया और राष्ट्रपति ने उक्त विधेयक को अपनी मंजूरी 19–12–1985 को दी थी।

श्रम मंत्रालय के अनुसार 1985–86 में मजदूरी नीति और उत्पादकता

राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी की आवश्यकता पर 25–26 नवम्बर को भारतीय श्रम सम्मेलन में चर्चा हुई। सम्मेलन में यह मतैक्यता थी कि ऐसे समय तक जब तक यह व्यवहार्य हो, क्षेत्रीय न्यूनतम मजदूरी नियत करना वांछनीय होगा जिसके बारे में केन्द्रीय सरकार दिशा-निर्देश निर्धारित करेगी। यह भी सहमति हुई कि न्यूनतम मजदूरी में नियमित अवधि में संशोधन किया जाना चाहिए और इन्हें जीवन-निर्वाह लागत से सम्बद्ध करना चाहिए।

मजदूरी सैल सरकारी तथा निजी क्षेत्रों में दी जा रही मजदूरी दरों तथा भत्तों के बारे में आँकड़ों और मजदूरी के ढाँचे से सम्बन्धित जानकारी को एकत्र करने तथा उसे संकलित करने का काम करता रहा ताकि उससे न्यूनतम मजदूरी दरों के विशेष सदर्भ में मजदूरी नीति तैयार करने एवं इसे कार्यान्वयन करने, मजदूरी के स्तर में विद्यमान विषमताओं को दूर करने, निर्वाह लागत में वृद्धि और जोखिम वाले कार्य के लिए मुआवजा देने, अधिक उत्पादकता के लिए प्रोत्साहन देने आदि में मदद मिले। मजदूरी सैल ने श्रम ब्यूरो, केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन और राज्य सरकारों द्वारा संकलित उपभोक्ता मूल्य सूचकांक श्रृंखलाओं का रिकार्ड रखा और मजदूरी नीति से सम्बन्धित विभिन्न मामलों में प्रयोग के लिए 'मजदूरी समझौता बैंक' की व्यवस्था जारी रखी।

श्रम मंत्रालय को सात उद्योगों में गठित त्रिपक्षीय उत्पादकता बोर्डों से सहयोजित किया गया।

मजदूरी सैल ने ऐसे मामलों में कार्यवाही की, जिनका प्रबन्ध अधिग्रहण करने, राष्ट्रीयकरण करने और रुग्ण यूनिटों को अच्छे यूनिटों के साथ मिला दिए जाने पर कर्मचारियों के हित पर प्रभाव पड़ा हो।

मजदूरी का प्रमापीकरण
(Standardisation of Wages)

हमारे देश के श्रमिकों की एक महत्त्वपूर्ण समस्या उनकी मजदूरी में प्रमापीकरण का अभाव है। एक ही उद्योग तथा एक ही औद्योगिक केन्द्र पर एक ही प्रकार के व्यवसाय मे विभिन्न मजदूरी की दरें पाई जाती हैं। इस प्रकार मजदूरी केवल एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे ही भिन्न नही होती है बल्कि एक उद्योग से दूसरे उद्योग, एक कारखाने से दूसरे कारखाने तथा एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय मे भी मजदूरी की दरे भिन्न-भिन्न पाई जाती हैं। मजदूरी स्तर बम्बई, प बगाल, दिल्ली आदि स्थानो पर ऊँचा है जबकि असम और उडीसा मे यह नीचा है। इस प्रकार श्रमिको की मूल मजदूरी (Basic wages) मे अन्तर नही पाया जाता है बल्कि उनके महँगाई भत्ते तथा जीवन निर्वाह लागत मे भी भिन्नता पाई जाती है।

मजदूरी मे प्रमापीकरण के अभाव के कारण मजदूरी की ये विभिन्न दरें कई दोषो को उत्पन्न करने वाली होती हैं—

1 एक उद्योग से दूसरे उद्योग, एक औद्योगिक केन्द्र से दूसरे औद्योगिक केन्द्र मे मजदूरी मे विभिन्नता के कारण श्रमिको मे प्रवासी प्रवृत्ति (Migratory tendency in workers) देखने को मिलती है। कम मजदूरी वाले उद्योग को छोडकर श्रमिक अधिक मजदूरी वाले उद्योग मे चले जाते है। इससे स्थायी श्रम-शक्ति (Stable labour force) के मार्ग मे बाधा उत्पन्न होती है।

2 एक ही औद्योगिक केन्द्र पर एक उद्योग मे कम और दूसरे उद्योग मे अधिक मजदूरी होने के कारण कम मजदूरी वाले श्रमिको के दिमाग मे असन्तोष घर कर जाता है जिससे हडतालो, धीमे कार्य करने की आदत आदि को प्रोत्साहन मिलता है जो आगे औद्योगिक झगडो को जन्म देते है।

3 मजदूरी मे भिन्नताओ के कारण अलग-अलग वर्गों के लिए प्रशासन, प्रबन्ध एव सगठन का अलग-अलग ढांचा तैयार किया जाता है। अलग-अलग प्रशासन, प्रबन्ध एव सगठन के कारण समय, धन एव श्रम का अपव्यय होता है।

इन दोषो को ध्यान मे रखते हुए हमे मजदूरी की भिन्नताओं को समाप्त करना पडेगा। मजदूरी के प्रमापीकरण के अन्तर्गत हम यह देखते है कि एक ही उद्योग मे समान कार्य करने वाले श्रमिको को समान ही मजदूरी दी जाए। इसका अर्थ यह नही है कि सभी श्रमिको को समान मजदूरी दी जाए। इसका अर्थ है कि श्रमिकों को उचित और वांछनीय मजदूरी दी जानी चाहिए जिसे कि समान रूप से क्रियान्वित किया जा सके।

मजदूरी का प्रमापीकरण तभी सम्भव हो सकता है जबकि श्रमिको और मालिको के प्रतिनिधि सहयोग और सद्भावना के वातावरण मे परस्पर मिलकर निश्चित प्रमापीकरण का स्तर तय करें। एक हद तक मजदूरी के प्रमापीकरण की समस्या को मजदूरो की न्यूनतम मजदूरी द्वारा दूर किया जा सकता है।

4 ब्रिटेन, अमेरिका और भारत में मजदूरी का राजकीय नियमन; भारत में औद्योगिक एवं कृषि मजदूरों की मजदूरी; भारत में श्रमिकों का जीवन-स्तर

(State Regulations of Wages in U.K., U.S A. and India; Wages of Industrial and Agricultural Workers in India; Standard of Living of Workers in India)

मजदूरी का राजकीय नियमन
(State Regulations of Wage)

श्रमिको को अपना श्रम बेचने के लिए स्वयं को उपस्थित करना पडता है। पहले साहसी आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक दृष्टि अच्छी स्थिति मे होने के कारण रोजगार की शर्तों आदि का निर्धारण स्वय करता था और परिणामस्वरूप श्रमिक का बहुत अधिक शोषण होता था। हमारे देश मे ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने से हस्तशिल्पी व कृषि श्रमिको मे बेरोजगारी फैल गई। उस समय मजदूरी को निश्चित करने हेतु कोई श्रम सघ भी नही थे। इसमे मजदूरी के निम्न स्तर पाए जाते थे।[1] 19वी शताब्दी के अन्त मे पूँजीपतियो ने मजदूरी-निर्धारण मे 'वस्तु दृष्टिकोण' (Commodity Approach) को छोड दिया। इसके स्थान पर श्रम उत्पादन तथा सामूहिक सौदाकारी को आधार नही माना गया। बीसवी सदी म श्रमिक को एक मानवीय साधन माना गया और कल्याणकारी राज्य की धारणा के विकास के साथ सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु मजदूरी-निर्धारण मे विभिन्न सरकारों ने हस्तक्षेप आरम्भ किया।[2]

1 *Giri, V. V.* Labour Problems in Indian Industry, p 220
2 *Vaid, K. N.* : State and Labour in India, p. 89.

जैसा कि डॉ भगोलीवाल ने लिखा है—यह धारणा कि राज्य द्वारा हस्तक्षेप जरूरी है, दो मान्यताओ (Assumptions) पर आधारित है—

(i) श्रमिको के लिए स्वास्थ्य और मर्यादा (Health and Decency) के एक अच्छे स्तर पर रहना तथा औद्योगिक प्रशासन मे आजादी से हिस्सा लेना सामाजिक दृष्टि मे ठीक है, एव

(ii) राज्य को अपने नागरिको के आर्थिक सम्बन्धों मे वहाँ हस्तक्षेप करना चाहिए जहाँ पूरे किए जाने लायक आदर्श नही होते ।

वे महत्त्वपूर्ण बातें, जिनसे मजदूरियो का राज्य द्वारा नियमन आवश्यक है, डॉ. भगोलीवाल के अनुसार इस प्रकार हैं—

"(1) मजदूरी नियमन इसलिए जरूरी होता है कि श्रम बाजार अपूर्ण (Imperfect) होते है तथा श्रमिको का शोषण हो सकता है और होता है ।

(2) श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति सभी बाजारो मे जहाँ उनकी पूर्ति ज्यादा होती है, कम होती है । अत. उनका हमेशा मे ही शोषण हो सकता है और उनका शोषण (Swealing) पाया भी जाता है ।

(3) मजदूरियो के नियमन मे राज्य का हस्तक्षेप आर्थिक स्थायित्व की दृष्टि से भी जरूरी होना है । खास तौर मे पश्चिमी देशो मे वस्तुओ एव सेवाओ की माँग से भारी कमी थोडे से व्यक्तियो के हाथो मे, जिनकी उपभोग प्रवृत्ति (Propensity to Consume) कमजोर होती है, क्रय-शक्ति के सकेन्द्रण (Concentration of Purchasing Power) का सीधा नतीजा है । माँग मे स्थायित्व तब तक नही हो सकता जब तक कि क्रय-शक्ति उन व्यक्तियो के पास से, जिन्हे उसकी आवश्यकता नही है, उन लोगो के पास, जिन्हें कुछ वस्तुएँ खरीदने के लिए और ज्यादा क्रय-शक्ति की जरूरत है, नही पहुँच पाती । इस तरह मजदूरी का नियमन उन्हे ऊँची करने की दृष्टि से भी जरूरी हो सकता है । एक ऊँची मजदूरी वाली अर्थ-व्यवस्था की विशेषताएँ ज्यादा उत्पादकता, अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध माँग एव कीमतो से ज्यादा स्थायित्व, ज्यादा लाभ, ज्यादा विनियोजन, राष्ट्रीय साधनो से ज्यादा अच्छे उपयोग तथा इस तरह के दूसरे लाभ हैं ।

(4) राज्य द्वारा मजदूरियो के नियमन की जरूरत एक 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) के आदर्शो के कारण भी होती है जिसमे राज्य हर नागरिक को न्यूनतम सुविधाएँ (Minimum Amenities) देने की जिम्मेदारी लेता है । पाँचवे, मजदूरी नियमित करने के लिए राज्य का हस्तक्षेप स्वास्थ्य, उत्पादकता एव आय के बँटवारे मे सुधारो द्वारा श्रमिको की कुशलता बढाने के लिए हो सकता है ।

(5) राज्य द्वारा मजदूरियो का नियमन श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता तथा औसतन मजदूरियों के वास्तविक स्तर के बीच पाए जाने वाले अन्तर (Gap) के कारण जरूरी और ठीक हो सकता है । चूँकि न्यूनतम मजदूरियो का श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता के स्तर के करीब निश्चित किया जाना खास तौर से सीमान्त

उत्पादकता की अनिश्चित प्रकृति के कारण मुमकिन नहीं मालूम होता, कानूनी कार्यवाही न्यूनतम मजदूरियों को ज्यादा से ज्यादा बाजार दर में, यदि वह श्रमिकों के बीच प्रतिस्पर्द्धा के कारण बहुत ज्यादा शोषण की प्रवृत्ति रखती है, कुछ ऊँचा उठा सकती है।"[1]

हाल ही के वर्षों में मजदूरियों के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप के पीछे एक नई प्रवृत्ति का विकास हुआ है। "अब मजदूरी का राज्य द्वारा नियमन कुछ जगहों पर शोषण की दशाओं को दूर करने, औद्योगिक शान्ति बढाने और बढ़ती हुई कीमतों को रोकने के लिए ही नहीं किया जाता वरन् वह राष्ट्रीय आय के बँटवारे, आर्थिक विकास और बेकारी दूर करने के कार्यक्रमों से भी सम्बन्धित है। बहुत से देशों ने इन व्यापक राष्ट्रीय नीतियों के मुताबिक मजदूरी नीतियाँ अपनाई हैं।"

वास्तव में मजदूरी के तीन महत्त्वपूर्ण आर्थिक कार्य हैं[2] जो राज्य के हस्तक्षेप अथवा राज्य द्वारा मजदूरी नियमन की माँग करते हैं—

1. मजदूरी उद्योग के उत्पादन को आय के रूप में श्रमिकों में वितरित करती है। समाज का अधिकांश हिस्सा श्रमिकों का है।

2. मजदूरी लागत के रूप में अर्थ-व्यवस्था में साधनों को विभिन्न उत्पादन स्रोतों में आवण्टन करने की क्रिया को प्रभावित करती है।

3 मजदूरी कीमत स्तर एवं रोजगार (Price Level and Employment) को निर्धारित करती है।

मजदूरी निर्धारण करने के सिद्धान्तों की आवश्यकता
(Need for Principles of Wage Fixation)

हमारे देश में मजदूरी-निर्धारण हेतु सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है क्योंकि यहाँ की परिस्थितियाँ विभिन्न विकसित देशों जैसे अमेरिका, इग्लैण्ड से भिन्न है।

1. हमारे श्रमिकों के असंगठित और अशिक्षित होने तथा अस्थायी श्रम शक्ति (Unstable labour force) आदि के कारण नियोक्ताओं की तुलना में श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति कमजोर (Weak bargaining power of workers) है।[3] इससे उनका शोषण किया जाता है। अत इस दुर्बल सामूहिक सौदाकारी की स्थिति में मजदूरी-निर्धारण में सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है।

2. कुछ उद्योगों अथवा संस्थानों में श्रमिकों को बहुत ही कम मजदूरी दी जाती है क्योंकि श्रमिकों की पूर्ति उनकी माँग की तुलना में अत्यधिक होती है। इस शोषण को समाप्त करने हेतु मजदूरी का नियमन सरकार द्वारा नितान्त आवश्यक है।

1 टी. एन. भगोलीवाल : श्रम-अर्थशास्त्र एवं सामाजिक सुरक्षा, पृष्ठ 408-409.
2 *Srivastava, G. L.* : Collective Bargaining & Labour Management Relations in India, p 315.
3 *Vaid, K N* : State & Labour in India, p 89.

3. आर्थिक स्थिरता (Economic Stability) बनाए रखने हेतु भी मजदूरी का नियमन सरकार द्वारा आवश्यक है। विकसित देशो की समस्या प्रभावपूर्ण मांग का कम होना तथा भारत जैसे विकासशील देशो में प्रभावपूर्ण मांग की अधिकता (Excess of Effective Demand) का पाया जाना है। विकसित देशो मे मजदूरी बढ़ाकर अर्थात् अधिक क्रय शक्ति वाले लोगों से कम क्रय शक्ति वाले लोगो की ओर क्रय शक्ति का स्थानान्तरण करके आर्थिक स्थिरता रखी जा सकती है। अधिक ऊँची मजदूरी के कारण उत्पादकता में वृद्धि, अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध, मांग और कीमतो की स्थिरता, अधिक लाभ, अधिक विनियोग, राष्ट्रीय साधनो का अत्यधिक उपयोग आदि रूपो मे लाभ प्राप्त होता है।

4. सामाजिक न्याय (Social Justice) प्रदान करने हेतु भी सरकारी नियमन आवश्यक है। सभी श्रमिको को उनके उत्पादन मे योगदान के अनुसार मजदूरी दी जानी चाहिए। समान कार्य के लिए समान मजदूरी दी जाए।

5 कल्याणकारी राज्य के आदर्श को पूरा करने के लिए प्रत्येक नागरिक की कुछ न्यूनतम आवश्यकताओ हेतु मजदूरी नियमन करना चाहिए। आधुनिक राज्य का कार्य न केवल आन्तरिक शान्ति व्यवस्था करना एवं बाह्य आक्रमणो से देश की रक्षा करना है, बल्कि प्रत्येक नागरिक की न्यूनतम आवश्यकताओ को पूरा करने हेतु कानून बनाने पड़ते हैं जिससे कि न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी न दी जाए।

6 श्रमिको की कार्यकुशलता तथा उनको दी जाने वाली मजदूरी मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। अत इस दक्षता में वृद्धि करने के लिए मजदूरी का सरकारी नियमन आवश्यक है। बढ़ी हुई मजदूरी से श्रमिक का स्वास्थ्य, उत्पादकता तथा आय का वितरण सुधरता है।

7. औद्योगिक शान्ति बनाए रखने हेतु मजदूरी का सरकारी नियमन आवश्यक है। अधिकांश औद्योगिक विवादो का कारण मजदूरी होता है। अतः मजदूरी का सरकारी नियमन विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत किया जाता है जिससे हड़ताल, तालाबन्दी आदि रूपो मे औद्योगिक विवाद उत्पन्न न हो सके।

राजकीय हस्तक्षेप की रीतियाँ
(Methods of State Intervention)

मजदूरी नियमन करने हेतु सरकारी हस्तक्षेप, अर्थ-व्यवस्था मे कुछ दिए हुए उद्देश्यों को पूरा करने हेतु आवश्यक है। यह हस्तक्षेप किसी एक प्रदेश मे स्थित उद्योगों अथवा किसी एक उद्योग अथवा सभी उद्योगो के विषय मे हो सकता है। सामान्यतया मजदूरी नियमन की तीन रीतियाँ काम मे लाई जाती हैं। ये निम्नलिखित हैं[1]—

1 सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining)—यह मजदूरी नियमन का सबसे महत्त्वपूर्ण तरीका माना जाता है, लेकिन इसकी सफलता के लिए

1 *Srivastava, G. L* : Collective Bargaining & Labour Management Relations in India, p. 316.

सुदृढ़, सुसंगठित श्रम संगठन (Strong and Well-organised Trade Union) का होना आवश्यक है। हमारे देश में सुदृढ़, सुसंगठित श्रम संघों का अभाव होने के कारण यह तरीका मजदूरी के नियमन में उपयुक्त नहीं होगा।

2. नियोक्ता अथवा श्रमिकों द्वारा एक-पक्षीय मजदूरी नियमन (One-sided Regulation of Wages either by Employers or Employees)—इसके अन्तर्गत मजदूरी या तो नियोक्ताओं द्वारा निश्चित की जाती है अथवा श्रमिकों द्वारा। इस तरीके का उदाहरण प्रथम महायुद्ध के पश्चात् बम्बई मिल मालिक संघ (Bombay Mill Owner's Association) द्वारा बम्बई हड़ताल जाँच समिति, 1926–29 (Bombay Strike Enquiry Committee, 1926–29) के सम्मुख मजदूरी के प्रमापीकरण की योजना प्रस्तुत करना था जो कि स्वीकार नहीं की गई।

3. मजदूरी का सरकारी नियमन (State Regulation of Wages)—इस तरीके के अन्तर्गत सरकार स्वयं अथवा किसी समिति के द्वारा विभिन्न उद्योगों हेतु मजदूरी निश्चित कर देती है जिसका क्रियान्वयन अधिनियम के तहत किया जाता है। उदाहरण के लिए भारत में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (Minimum Wages Act of 1948) के अन्तर्गत विभिन्न उद्योगों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी गई है। इससे कम मजदूरी सम्बन्धित उद्योग में नहीं दी जा सकती है।

उपरोक्त सरकारी हस्तक्षेप अथवा मजदूरी नियमन के तरीकों को हम मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित कर सकते हैं[1]—

1 प्रत्यक्ष तरीका (Direct Method)—इसमें सरकार स्वयं अथवा किसी समिति अथवा बोर्ड के माध्यम से न्यूनतम मजदूरी विभिन्न उद्योगों में निर्धारित कर देती है जिसका क्रियान्वयन किसी अधिनियम के तहत किया जाता है। उदाहरणार्थ, भारतीय श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के तहत न्यूनतम मजदूरी देय होती है।

2. अप्रत्यक्ष तरीका (Indirect Method)—सरकार द्वारा सार्वजनिक उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी जाती है और विभिन्न उद्योगों में मजदूरी से सम्बन्धित समझौते सम्पन्न कर लिए जाते हैं। इसका प्रभाव निजी साहसियों पर भी पड़ने लगता है और वहाँ भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की माँग की जाती है।

मजदूरी नियमन के सिद्धान्त
(Principles of Wage Regulation)

मजदूरी से सम्बन्धित निर्णयों में कनाडा सरकार ने सात तत्वों को प्रमुखता दी है, जो अग्रलिखित हैं[2]—

1 *Bhagoliwal, T. N* : Economics of Labour & Social Welfare, p. 291.
2 *Gadgil, D. R* : Regulation of Wages and Other Problems of Industrial Labour in India, 1954, p 46.

1. सामान्य आर्थिक दशाएं (General Economic Conditions)
2. नियोक्ता की वित्तीय स्थिति (Financial Condition of the Employer)
3. निर्वाह लागत (Cost of Living)
4. जीवन स्तर (Standard of Living)
5 समान व्यवसाय (स्थानीय) में तुलनात्मक मजदूरी (Comparative wages in similar trades in similar localities)
6. श्रम की सेवाओं का मूल्य (Value of Services of Labour)
7. आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण के व्यापक सिद्धान्त (Broad Principles of Economic and Social Welfare)

भारत में उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट, 1949 (Report of the Fair Wages Committee, 1949) के अनुसार मजदूरी का निर्धारण निम्न तत्वों के आधार पर किया जाना चाहिए—

1 श्रम की उत्पादकता (Productivity)
2 समान स्थानीय व्यवसायों में पाई जाने वाली मजदूरी दरें (Wage rates prevailing in similar occupations in the neighbouring localities)
3. राष्ट्रीय आय का स्तर एवं इसका वितरण (Level of the National Income and its Distribution)
4 राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उद्योग का स्थान (The Place of Industry in the National Economy)

मजदूरी की विचारधारा
(Concept of Wages)

मजदूरी से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करने पर हम मजदूरी की विभिन्न विचारधाराओं के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। हमारे देश में मजदूरी से सम्बन्धित विभिन्न विचारधाराएँ पाई जाती है—

1 वैधानिक न्यूनतम मजदूरी (Statutory Minimum Wages)—इसके अन्तर्गत सरकार अधिनियम पास करके न्यूनतम मजदूरी निश्चित करती है और उसके क्रियान्वयन हेतु विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। उदाहरणार्थ भारत में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (Minimum Wages Act of 1948) के अन्तर्गत इस प्रकार की मजदूरी निर्धारित की जाती है।

2. आधारभूत या मूल न्यूनतम मजदूरी (Bare or Basic Minimum Wages)—इस विचारधारा का प्रादुर्भाव हमारे देश में मजदूरी-निर्धारण में विभिन्न न्यायालयों द्वारा घोषित निर्णयों से हुआ है।

3. न्यूनतम मजदूरी (Minimum Wage)
4. उचित मजदूरी (Fair Wage)
5. पर्याप्त मजदूरी (Living Wage)

इन तीनों विचारधाराओं का प्रादुर्भाव उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट (Report of the Committee on Fair Wages) से हुआ। इन विचारधाराओं की व्याख्या विभिन्न रूपों में की गई है।

6. आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी (Need-based Minimum Wages)–इस विचारधारा का प्रादुर्भाव भारतीय श्रम सम्मेलन (Indian Labour Conference) की 15वीं बैठक, जो जुलाई 1975 में हुई थी, से हुआ था।

न्यूनतम, उचित एवं पर्याप्त मजदूरी की विचारधाराएँ
(The Concepts of Minimum, Fair and Living Wages)

उचित मजदूरी समिति के अन्तर्गत विभिन्न मजदूरी के स्तरों को विभिन्न विचारधाराओं के नाम से सम्बोधित किया जाता है। समिति के अनुसार न्यूनतम मजदूरी उचित मजदूरी की निम्न सीमा है। न्यूनतम मजदूरी से अधिक उचित मजदूरी है तथा उचित मजदूरी की अधिकतम सीमा पर्याप्त मजदूरी है। मजदूरी के ये विभिन्न स्तर स्थिर नहीं हैं वरन् आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के अनुसार परिवर्तनीय हैं।

न्यूनतम मजदूरी
(Minimum Wages)

अधिकांश औद्योगिक देशों में श्रमिकों को जो मजदूरी दी जाती है वह इतनी निम्न स्तर की होती है कि जीवन-निर्वाह भी नहीं हो पाता है। इससे वर्ग-संघर्ष बढ़ता है, श्रमिकों की कार्यकुशलता घटती है और परिणामस्वरूप उत्पादन में कमी आती है। ऐसी स्थिति में एक कल्याणकारी सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह प्रत्येक श्रमिक की न्यूनतम आवश्यकताएँ—भोजन, वस्त्र एवं मकान–पूरी करे। इस उद्देश्य को पूरा करने हेतु ही इस विचारधारा को प्रोत्साहन मिला है।

अर्थ (Meaning)—न्यूनतम मजदूरी की विचारधारा विभिन्न देशों में मजदूरी के विभिन्न स्तरों के विषय में बताती है। भारत सरकार द्वारा नियुक्त उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट के अनुसार "हमारे देश में राष्ट्रीय आय का स्तर इतना निम्न है कि पर्याप्त मजदूरी की विचारधारा के अनुसार न्यूनतम मजदूरी किसी विधान द्वारा निश्चित करना सम्भव नहीं है। न्यूनतम मजदूरी से न केवल जीवन-निर्वाह ही हो सके बल्कि इससे श्रमिकों की दक्षता को भी बनाए रखा जा सके। इसलिए न्यूनतम मजदूरी में शिक्षा, चिकित्सा और अन्य सुविधाओं आदि के मिलने का प्रावधान होना चाहिए।"[1]

यह मजदूरों को दिया जाने वाला न्यूनतम पारिश्रमिक (Minimum Remuneration) है जिससे कम मजदूरी न तो दी जाती है और न ली ही जाती है। सरकार कानून द्वारा यह न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देती है जिससे कम मजदूरी देना दण्डनीय होता है।

1 Report of the Committee on Fair Wages, 1948, p. 8–9.

न्यूनतम मजदूरी का महत्त्व (Importance of Minimum Wages)—न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण एक महत्त्वपूर्ण कार्य है क्योंकि इससे औद्योगिक श्रमिकों की कार्यकुशलता, स्वास्थ्य, जीवन-स्तर तथा नैतिकता प्रभावित होती है। न्यूनतम मजदूरी का महत्त्व निम्नलिखित रूपों मे देखा जा सकता है—

1. सामाजिक न्याय (Social Justice)—श्रमिकों को इतनी मजदूरी जरूर दी जानी चाहिए जो उनकी कार्यकुशलता को बनाए रखे। यह सरकार का दायित्व है कि प्रत्येक नागरिक (जिसमे श्रमिक भी आते है) को न्यूनतम आवश्यकताओं हेतु न्यूनतम मजदूरी मिलनी चाहिए। श्रमिकों का शोषण आधुनिक समय मे सामाजिक अन्याय समझा जाता है।

2 समाज में स्थिरता (Stability in Society)—समाज मे स्थिरता तभी रह सकती है जब सभी लोगो की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी हो जाती है। जब अत्यधिक गरीबी (Extreme Poverty) और अत्यधिक सम्पन्नता होती है तो समाज मे वर्ग-संघर्ष उत्पन्न होता है और सामाजिक क्रान्ति (Social Revolution) को बढ़ावा मिलता है जो कि सामाजिक स्थिरता मे बाधक होती है। गरीबी ही समस्त सामाजिक दोषो की जननी है (Poverty is the mother of all social evils)। अतः न्यूनतम मजदूरी देने से श्रमिकों की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करके देश मे सामाजिक क्रान्ति से होने वाले दुष्परिणामों को रोका जा सकता है।

3. औद्योगिक शान्ति (Industrial Peace)—औद्योगिक शान्ति बनाए रखने हेतु भी श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी दी जानी चाहिए। यदि श्रमिक किसी उद्योग मे कार्य करता है और उसे मजदूरी नियोक्ता की इच्छानुसार इतनी ही दी जाती है कि उसकी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती हैं तो इससे उद्योग में नियोक्ता तथा श्रमिकों के बीच मधुर सम्बन्ध नहीं रहते है। आए दिन हड़तालें, धीरे कार्य करने की प्रवृत्ति आदि को प्रोत्साहन मिलता है जिससे औद्योगिक शान्ति उत्पन्न होती है। तीव्र औद्योगीकरण मे औद्योगिक अशान्ति विशेष बाधक होती है।

4 उद्योग के लाभ में श्रमिकों का कानूनन हिस्सा (Rightful share in the prosperity of the Industry)—आधुनिक समय मे श्रमिक का वस्तु दृष्टिकोण (Commodity Approach) समाप्त हो गया है। श्रमिक अब न केवल उत्पादन का मानवीय साधन ही है बल्कि औद्योगीकरण हेतु उसका सहयोग होना भी जरूरी है। उद्योग की उन्नति श्रमिक के सहयोग का परिणाम है। जो भी लाभ होता है उसमे उसे लाभ का हिस्सा मिलना चाहिए। उदाहरणार्थ भारत मे बोनस प्रदायगी अधिनियम, 1965 (Payment of Bonus Act, 1965) के अन्तर्गत उद्योग के लाभ में से श्रमिक की मजदूरी का न्यूनतम 8·33% एव अधिकतम 20% भाग बोनस के रूप मे दिया जाता है। अतः जिन उद्योगो मे श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति कमजोर है वहाँ कानून द्वारा श्रमिको को लाभ मे से हिस्सा दिया जाना चाहिए।

5 जीवन-स्तर एवं कार्यकुशलता में वृद्धि (Raising the standard of living and the efficiency)—यदि श्रमिक को उचित न्यूनतम मजदूरी दी जाती

है तो इससे उसका जीवन-स्तर उन्नत होता है, कार्यकुशलता बढ़ती है और परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होती है। इससे न केवल श्रमिकों व नियोक्ताओं को ही लाभ प्राप्त होता है बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि तथा समाज को अच्छी किस्म की वस्तुओं की पूर्ति होने से लाभ होता है।

भारत एक विकासशील देश है जहाँ श्रमिकों को जो मजदूरी मिलती है वह बहुत ही कम है। कम मजदूरी होने के कारण श्रमिकों का जीवन-स्तर और उत्पादकता का स्तर निम्न है। उनकी न्यूनतम आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पाती अतः जीवन-स्तर एवं उत्पादकता में वृद्धि के लिए भारतीय श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी का भुगतान आवश्यक है। भारतीय श्रमिकों की नियोक्ताओं की तुलना में सौदाकारी शक्ति दुर्बल है क्योंकि भारतीय श्रम संघ सुदृढ़ एवं सुसगठित नहीं है इसलिए भी सरकार द्वारा न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण आवश्यक है। इसी प्रकार श्रमिकों को उनके उत्पादन के अनुसार मजदूरी नहीं दी जाती है और उनका शोषण होता है। उनकी सीमान्त उत्पादकता के मूल्य से कम मजदूरी दी जाती है। अतः श्रमिकों को उनकी उत्पादकता के मूल्य के अनुसार मजदूरी दिलाने के लिए भी मजदूरी का निर्धारण आवश्यक है।

न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य
(Objects of Minimum Wages)

न्यूनतम मजदूरी से न केवल श्रमिकों को ही लाभ होता है बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र के हित में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना आवश्यक है। न्यूनतम मजदूरी के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

1. उद्योग में अत्यन्त कठिन श्रम पर प्रतिबन्ध (To Prevent Sweating in Industry)—कुछ उद्योग ऐसे पाए जाते हैं जहाँ पर श्रमिकों को असंगठित तथा दुर्बल सौदाकारी शक्ति वाले होने के कारण अधिक घण्टे कार्य करना पड़ता है, कार्य की दशाएँ भी खराब होती हैं और मजदूरी भी अत्यधिक कम दी जाती है और उनका शोषण किया जाता है। अतः उद्योगों में श्रमिकों द्वारा अत्यन्त कठिन श्रम कराए जाने पर प्रतिबन्ध लगाने हेतु न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाती है।

2. श्रमिकों के शोषण पर प्रतिबन्ध (To Prevent Exploitation of Worker)—श्रमिकों को उत्पादन में योगदान से कम मजदूरी दी जाती है जिससे उनका शोषण होता है। इस शोषण पर प्रतिबन्ध लगाने हेतु कार्य के घण्टे निर्धारित किए जाते हैं और न्यूनतम मजदूरी निश्चित की जाती है।

3. औद्योगिक शान्ति की स्थापना (To Promote Industrial Peace)—श्रमिकों को उचित मजदूरी न देकर अत्यधिक कम मजदूरी देने से व अधिक घण्टों तक कार्य कराने तथा खराब दशाओं में कार्य करवाने से श्रमिकों में असन्तोष उत्पन्न हो जाता है। इससे हड़तालों, तालाबन्दियों,आदि रूपों में औद्योगिक अशान्ति फैलती है। अतः औद्योगिक शान्ति बनाए रखने के लिए श्रमिकों के कार्य के घण्टे निश्चित

करना, कार्य की दशाओं मे सुधार करना तथा न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना आवश्यक है।

4. श्रमिकों की कार्य-क्षमता में वृद्धि (To Increase the Efficiency of Workers)—श्रमिकों का स्वास्थ्य तथा उनकी कार्य-क्षमता मजदूरी पर निर्भर करती है। यदि श्रमिकों को उचित मजदूरी दी जाती तो श्रमिकों का जीवन-स्तर उन्नत होता है, स्वास्थ्य अच्छा रहता है और उनकी कार्य-क्षमता मे वृद्धि होती है। इसके विपरीत यदि श्रमिकों को उचित मजदूरी से कम मजदूरी दी जाती है तो उनका जीवन-स्तर निम्न रहता है और उनकी कार्यकुशलता कम होने से उत्पादन भी कम होता है। अत. कार्यकुशलता मे वृद्धि करने हेतु न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना आवश्यक है।

5. कार्य की दशाओं में सुधार (To Improve the Conditions of Work)—न्यूनतम मजदूरी द्वारा न केवल श्रमिकों के शोषण को समाप्त करके न्यूनतम मजदूरी ही दिलाई जाती है बल्कि इसके साथ ही कार्य के घण्टे, विश्राम, साप्ताहिक छुट्टी तथा कार्य की दशाओं मे भी सुधार किया जाता है। आधुनिकीकरण तथा विवेकीकरण की योजनाओं से उद्योग के प्रबन्ध मे सुधार सम्भव होता है।

6 अन्य उद्देश्य (Other Objects)—उपरोक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने का उद्देश्य राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करना होता है। श्रम सगठन सुदृढ एवं सुसगठित करने तथा देश मे शान्ति बनाए रखने के लिए भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की आवश्यकता है।

न्यूनतम मजदूरी के क्रियान्वयन मे कठिनाइयाँ
(Difficulties in Enforcing Minimum Wages)

न्यूनतम मजदूरी से सम्बन्धित प्रश्न बड़ा जटिल है क्योंकि न्यूनतम मजदूरी निर्धारण करने मे कई कठिनाइयाँ आती है। एक स्थान से दूसरे स्थान, एक उद्योग से दूसरे उद्योग, एक श्रमिक मे दूसरे श्रमिक तथा एक पुरुष श्रमिक से एक स्त्री श्रमिक आदि से समय-समय पर विभिन्न परिस्थितियाँ पाई जाती हैं।[1] श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, किस प्रकार के जीवन-स्तर को ध्यान मे रखा जाए क्योंकि एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक श्रमिक वर्ग से दूसरे श्रमिक वर्ग का जीवन-स्तर भिन्न-भिन्न पाया जाता है। न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय श्रमिक परिवार के आकार का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। श्रमिक के परिवार मे उसकी पत्नी व बच्चे ही शामिल किए जाएँगे अथवा अन्य उसके सम्बन्धी भी ? मजदूरी निर्धारित करने के लिए कोई समिति नियुक्त की जाएगी अथवा किसी अध्यादेश के आधार पर ही मजदूरी का निर्धारण हो जाएगा ? अतः मजदूरी-निर्धारण मे जीवन-स्तर, श्रमिक परिवार का आकार, समिति अथवा आयोग आदि के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते है।

1 *Bhagoliwal, T. N.*: Economics of Labour and Social Welfare, p. 293.

उत्तर प्रदेश श्रम जांच समिति (U P. Labour Enquiry Committee) के अनुसार जीवन-स्तर के चार प्रकार है—

1 गरीबी स्तर (Poverty Level)—इस स्तर के अन्तर्गत श्रमिक अपनी कार्यकुशलता बनाए रखने के लिए न्यूनतम आवश्यकताएँ भी नही जुटा सकता है। श्रमिक की आर्थिक स्थिति काफी दुर्बल होने से उसको न्यूनतम आवश्यकताएँ–रोटी, कपड़ा और मकान (Food, Clothing & Shelter) भी पूरी नही हो पाती हैं। इसके परिणामस्वरूप उसकी कार्यकुशलता घट जाती है और उत्पादन भी घटने लगता है।

2 न्यूनतम जीवन-निर्वाह स्तर (Minimum Subsistence Level)—इसके अन्तर्गत श्रमिक अपनी आय से शारीरिक दक्षता को बनाए रख सकता है किन्तु अन्य किसी प्रकार के व्यय के लिए उसकी आय कम पड़ती है।

3. जीवन-निर्वाह से अधिक स्तर (Subsistence Plus Level)—इस प्रकार जीवन-स्तर के अन्तर्गत श्रमिक न केवल अपनी शारीरिक दक्षता को ही बनाए रखने मे समर्थ होता है बल्कि वह अन्य सामाजिक आवश्यकताएँ भी पूरी कर सकता है, जैसे चिकित्सा तथा शिक्षा की न्यूनतम आवश्यकताएँ, आदि।

4. सुविधाजनक स्तर (Comfort Level)—इस स्तर मे श्रमिक सुविधाजनक ढग से अपना जीवन बिता सकता है। प्रो श्रीवास्तव के अनुसार, इस प्रकार के जीवन-स्तर के अन्तर्गत अच्छे रहने लायक मकान, मनोरजन, बच्चो के लिए ऊँची शिक्षा, महँगी दवाइयां और अच्छे भोजन आदि के लिए पर्याप्त कोष होना आवश्यक है।[1] उत्तर प्रदेश श्रम जांच समिति ने न्यूनतम मजदूरी-निर्धारण के लिए जीवन निर्वाह से अधिक (Subsistence plus level) का स्तर निश्चित किया है जो कि उचित ही प्रतीत होता है। इस स्तर को आधार मानकर यदि मजदूरी निश्चित कर दी जाती है तो इससे श्रमिकों की न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी हो सकेंगी और उसका स्वास्थ्य तथा दक्षता भी बनी रह सकेगी।

जहाँ तक न्यूनतम मजदूरी-निर्धारण हेतु श्रमिको के परिवार के आकार का प्रश्न है उसमे श्रमिक की पत्नी और तीन छोटे बच्चों को सम्मिलित करना चाहिए। श्रमिक को ही नही, बल्कि उसकी पत्नी व बच्चो को भी उचित जीवन-स्तर हेतु मजदूरी दी जानी चाहिए जो कि एक सभ्य समाज के लिए वांछनीय है।

श्रमिक के परिवार के आकार तथा जीवन-स्तर को निश्चित करने के पश्चात् न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का प्रश्न आता है कि एक श्रमिक को कितनी न्यूनतम मजदूरी दी जाए?

न्यूनतम मजदूरी-निर्धारण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) के एक अध्ययन द्वारा दो रीतियो को आधार माना गया है—

1. शारीरिक स्वास्थ्य, आवास आदि क्षेत्रों के विशेषज्ञो द्वारा निर्धारित आधारों को ध्यान मे रखकर श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जानी चाहिए।

1 *Srivastava, G. L.* : Industrial Peace and Labour in India, p. 1??

2. जनसंख्या के विभिन्न वर्गों के लिए विभिन्न आय-स्तरों के लिए प्रमापित बजटों (Standard Budgets) को आधार माना जाना चाहिए।

इन दोनों रीतियों को संयुक्त रूप से आधार मानकर न्यूनतम मजदूरी निर्धारण करना अधिक उपयुक्त होगा।

जहाँ तक न्यूनतम मजदूरी-निर्धारण से सम्बन्धित मशीनरी का प्रश्न है, इसे केन्द्रीय सरकार निश्चित कर सकती है। राज्य सरकारें इन्हें आधार मानकर स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन करके न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर सकती हैं।

न्यूनतम मजदूरी-निर्धारण में निर्वाह लागत का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। इस समस्या को दूर करने के लिए लागत सूचकांक (Cost of Living Indices) तैयार किए जा सकते हैं तथा कीमतों में होने वाले परिवर्तनों को इस आधार पर मालूम किया जा सकता है और उसी के अनुसार न्यूनतम मजदूरी में परिवर्तन किए जा सकते हैं।

प्रो. के. एन. वैद के अनुसार "पर्याप्त मजदूरी को प्राप्त करना प्रत्येक सभ्य समाज का उद्देश्य है, जबकि सभी के लिए न्यूनतम मजदूरी देना सरकार की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी है।"[1]

न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय विभिन्न तत्त्वों को सन्तुलित रूप में काम में लेना होगा। उदाहरणार्थ, मानवीय आवश्यकताएँ, परिवार के कमाने वालों की संख्या, निर्वाह लागत और समान कार्य हेतु दी जाने वाली मजदूरी दरें आदि को ध्यान में रखकर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना उचित एवं वांछनीय होगा।

जुलाई, 1957 में भारतीय श्रम सम्मेलन में न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण के आधार के बारे में सर्वप्रथम प्रस्ताव पास किया गया और यह बताया गया कि न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण मानवीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आवश्यकताओं पर आधारित न्यूनतम मजदूरी (Need-based Minimum Wages) निर्धारित करनी चाहिए। इस सम्मेलन में न्यूनतम मजदूरी समितियों (Minimum Wage Committees), वेतन मण्डलों (Wage Boards) और अधिकरणों (Adjudicators) आदि मजदूरी निर्धारण करने वाली मशीनरी हेतु न्यूनतम मजदूरी के लिए निम्न आधार स्वीकार किए गए[2]—

1. श्रमिक के परिवार में तीन उपभोग इकाइयों (Three Consumption Units) को शामिल करना चाहिए। श्रमिक की पत्नी तथा उसके बच्चों द्वारा अर्जित आय को ध्यान में नहीं रखना चाहिए।

2. डॉ. आयकरोइड द्वारा बताई गई कैलोरीज के आधार पर ही भोजन या खाद्य की आवश्यकता (Food requirements) के बारे में गणना करनी होगी।

3. कपड़े की आवश्यकता (Clothing requirements) के अन्तर्गत प्रति इकाई उपभोग 18 गज होना चाहिए और मिलाकर 72 गज कपड़ा प्रति वर्ष दिया जाना चाहिए।

1 *Vaid, K. N.* : State and Labour in India, p. 90.
2 *Saxena, R. C.* : Labour Problems and Social Welfare, p. 550.

4 मकान किराया सरकारी औद्योगिक गृह-योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली सुविधा के आधार पर दिया जाना चाहिए।

5. ईंधन, बिजली तथा अन्य व्यय की मदो के लिए न्यूनतम मजदूरी का 20% रखा जाना चाहिए।

इसके साथ ही प्रस्ताव में यह बताया गया कि इन आधारों पर निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से यदि कहीं मजदूरी कम है तो इसके लिए वहाँ के सम्बन्धित अधिकारियों को इसके बारे में स्पष्टीकरण देना होगा। जहाँ तक उचित मजदूरी का प्रश्न है उसके लिए वेतन मण्डलों को उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट को ध्यान में रख कर मजदूरी का निर्धारण करना होगा।

यह प्रस्ताव सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया क्योंकि सर्वप्रथम न्यूनतम मजदूरी निर्धारण के लिए ठोस प्रस्ताव पास कर स्वीकार किए गए। मजदूरी मण्डल (Wage Boards) मजदूरी निर्धारित करते समय इन प्रस्तावों को ध्यान में रखते हैं।

पर्याप्त मजदूरी
(Living Wages)

पर्याप्त मजदूरी, मजदूरी का वह स्तर है जो किसी श्रमिक की अनिवार्य व आरामदायक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त हो। मजदूरी से श्रमिक अपनी तथा अपने परिवार की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ होना है ताकि एक सभ्य समाज के नागरिक के रूप में आराम से जीवन व्यतीत कर सके।

इस प्रकार पर्याप्त मजदूरी वह मजदूरी है जो कि श्रमिक व उसके परिवार की भोजन, कपड़ा व मकान सम्बन्धी आवश्यकताओं को ही पूरा नहीं करती है बल्कि इसमें बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य से सुरक्षा, सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति और वृद्धावस्था हेतु बीमा आदि के लिए भी सुविधाएँ उपलब्ध हो जाती हैं।[1]

क्वीन्सलैण्ड औद्योगिक समझौता तथा पंचनिर्णय अधिनियम (Queensland Industrial Conciliation and Arbitration Act) के अनुसार एक पुरुष श्रमिक को कम से कम इतना पारिश्रमिक (Remuneration) अवश्य देना चाहिए जिससे कि वह स्वयं, अपनी स्त्री तथा तीन बच्चों के परिवार को उचित आराम के साथ रखने में समर्थ हो सके। यहाँ यह माना गया है कि पुरुष श्रमिक को ही अपने परिवार के अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना पड़ता है।

उत्तर प्रदेश श्रम जाँच समिति, 1946 (U. P. Labour Enquiry Committee, 1946) के अनुसार पर्याप्त मजदूरी वह मजदूरी का स्तर है जिसके अन्तर्गत श्रमिक का पारिश्रमिक उतना पर्याप्त होना चाहिए कि वह जीवन-निर्वाह पर व्यय करने के उपरान्त इतना धन बचा ले कि अन्य सामाजिक आवश्यकताओं जैसे— यात्रा, मनोरंजन, दवा, पत्र-व्यवहार आदि की सन्तुष्टि कर सके।

1 *Vaid, K N* : State and Labour in India, p. 90

उचित मजदूरी समिति, 1948 (Fair Wage Committee, 1948) के अनुसार पर्याप्त मजदूरी के अन्तर्गत पुरुष श्रमिक व उनके परिवार की न्यूनतम आवश्यकताएँ, जैसे—भोजन, वस्त्र और मकान आदि ही पूरी नही, बल्कि यह इतनी होनी चाहिए कि उसमें बच्चो की शिक्षा, बीमारी से रक्षा, सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति और वृद्धावस्था सहित अन्य दुर्भाग्यपूर्ण अवस्थाओ मे बीमा आदि पूरे हो सकें। समिति ने यह भी सिफारिश की कि पर्याप्त मजदूरी निर्धारित करते समय राष्ट्रीय आय और उद्योग की भुगतान क्षमता को भी ध्यान मे रखा जाए। इसके साथ ही पर्याप्त मजदूरी के लक्ष्य को पूरा करना अन्तिम लक्ष्य (Ultimate Goal) होना चाहिए। उचित मजदूरी समिति ने मजदूरी निर्धारण की अधिकतम या उच्च सीमा पर्याप्त मजदूरी तथा निम्नतम सीमा तक न्यूनतम मजदूरी निश्चित की।

उचित मजदूरी (Fair Wages)—उचित मजदूरी की समस्या काफी महत्त्वपूर्ण है जिसके बारे मे विभिन्न देशो के अर्थशास्त्रियो ने विचार किया है। युद्धोत्तर काल मे श्रमिको व मालिको के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करने हेतु कई प्रयास किए गए। इसके लिए श्रमिको एव मालिको के व्यवहार तथा दृष्टिकोण मे परिवर्तन ही आवश्यक नही है बल्कि श्रमिको को भी कुछ पारिश्रमिक के रूप मे अधिक मिलना चाहिए जिससे कि आपसी सद्भावना व सहयोग का वातावरण तैयार किया जा सके। लाभ सहभागिता (Profit sharing) तथा उचित मजदूरी सम्बन्धी विचार इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण है। सन् 1917 मे औद्योगिक सम्मेलन मे एक औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution) पास किया गया था जिसमे श्रमिको को उचित मजदूरी दिलाने की सिफारिश की गई। इस प्रस्ताव को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए भारत सरकार ने उचित मजदूरी-निर्धारण एव क्रियान्वयन हेतु सन् 1948 मे एक उचित मजदूरी समिति (Fair Wage Committee) नियुक्त की। इसकी रिपोर्ट सन् 1949 मे प्रकाशित की गई। इस समिति की सिफारिशो के आधार पर एक बिल तैयार किया गया और इसे सन् 1950 मे ससद् मे पेश किया गया, लेकिन यह पास नही किया जा सका।

उचित मजदूरी समिति के अनुसार उचित मजदूरी की न्यूनतम सीमा न्यूनतम मजदूरी तथा उच्चतम सीमा पर्याप्त मजदूरी को माना जाना चाहिए। उच्चतम सीमा का निर्धारण उद्योग की भुगतान-क्षमता (Capacity of Industry to Pay) के आधार पर होना चाहिए। उद्योग की भुगतान क्षमता निम्न तत्वों पर निर्भर करती है—

1. श्रम की उत्पादकता (Productivity of Labour),
2. उसी उद्योग अथवा पडोसी उद्योग मे प्रचलित मजदूरी दर (Prevailing rates of wages in the same or neighbouring localities),
3. राष्ट्रीय आय का स्तर एव इसका वितरण (Level of National income and its distribution), और
4. देश की अर्थ-व्यवस्था मे उद्योग का स्थान (Place of the Industry in the economy of the country)।

उचित मजदूरी समिति के अधिकांश सदस्यों का मत था कि उचित मजदूरी का निर्धारण न्यूनतम मजदूरी तथा पर्याप्त मजदूरी के बीच में होना चाहिए। उचित मजदूरी को पर्याप्त मजदूरी प्राप्त करने का एक प्रगतिशील कदम माना गया है (Fair wage is a step towards progressive realisation of the living wage)।

प्रो. पीगू (Prof A C. Pigou) के अनुसार, "जिस प्रकार के व्यक्तियों के बीच जो एक-दूसरे के समान नहीं हैं, उसी प्रकार मजदूरी के सम्बन्ध में उचित से हमारा आशय यह है कि आकस्मिक लाभ तथा हानियों को ध्यान में रखते हुए, जो कुशलता के अनुपात में, किसी एक व्यक्ति की कुशलता का माप उसके वास्तविक उत्पादन से किया जाए।"[1]

उचित मजदूरी का निर्धारण
(Determination of Fair Wages)

उचित मजदूरी समिति की सिफारिश के अनुसार उचित मजदूरी न्यूनतम व पर्याप्त मजदूरी की सीमाओं में निर्धारित की जाएगी और यह सीमा उद्योग की भुगतान-क्षमता पर निर्भर करती है तथा स्वयं उद्योग की भुगतान-क्षमता श्रमिक की कार्यक्षमता, उद्योग में प्रचलित मजदूरी दरों, राष्ट्रीय आय का स्तर एवं वितरण तथा अर्थ-व्यवस्था में उद्योग का स्थान आदि पर निर्भर करती है।

कठिनाइयाँ (Difficulties)—उचित मजदूरी निर्धारण करने के आधार उचित मजदूरी समिति ने दिए हैं लेकिन इस निर्धारण में कई कठिनाइयाँ आती हैं जो निम्नलिखित हैं—

1. उद्योग की भुगतान-क्षमता के निर्धारण में कठिनाई (Difficulty in determining the capacity to pay of the Industry)—उचित मजदूरी समिति के अनुसार उचित मजदूरी की अधिकतम सीमा उद्योग की देय क्षमता (Capacity of Industry to pay) पर आधारित होनी चाहिए। सैद्धान्तिक रूप से यह सही है कि उद्योग की देय क्षमता के आधार पर ही उचित मजदूरी की अधिकतम सीमा निर्धारित की जाए। नियोक्ता इस बात का विरोध करते हैं तथा कहते हैं कि उद्योगों की देय क्षमता कम होने से अधिक मजदूरी नहीं दी जा सकती। दूसरी ओर श्रमिकों का कथन है कि अधिक मजदूरी देने से श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ती है, उत्पादन बढ़ता है, प्रति इकाई उत्पादन लागत कम आती है, वस्तु की माँग बढ़ती है। किन्तु उद्योग की देय क्षमता का निर्धारण करना एक कठिन समस्या है। उचित मजदूरी समिति के अनुसार "उद्योग की देय क्षमता का निर्धारण करने के लिए किसी विशिष्ट इकाई अथवा देश के समस्त उद्योगों की क्षमता को आधार मानना त्रुटिपूर्ण होगा। न्यायोचित आधार तो यह होगा कि निर्धारित क्षेत्र के

1 *Pigou, A C.*: Economics of Welfare, p 551.

किसी विशिष्ट उद्योग की क्षमता को आधार माना जाए, तथा जहाँ तक सम्भव हो सके, उस क्षेत्र की समस्त सम्बन्धित औद्योगिक इकाइयों के लिए समान मजदूरी निर्धारित करनी चाहिए। स्पष्टतः मजदूरी निर्धारण करने वाले बोर्ड के लिए प्रत्येक औद्योगिक इकाई की देय क्षमता का माप करना सम्भव न होगा।"

उद्योग की देय क्षमता को मापने के लिए उद्योग का लाभ-हानि, उद्योग का क्रय मूल्य, उत्पादन की मात्रा, बेरोजगारी आदि का ध्यान में रखना पड़ेगा, सैद्धान्तिक दृष्टि से यह सही है, लेकिन व्यवहार में इसे लागू करना कठिन है। उचित मजदूरी समिति के अनुसार उचित मजदूरी अपने आप में ही उचित होनी चाहिए। वर्तमान स्तर पर न केवल रोजगार का स्तर बना रहे बल्कि मजदूरी स्तरों से उत्पादन क्षमता भी बनाई रखी जा सके। इस महत्वपूर्ण विचार को ध्यान में रखकर ही वेतन मण्डलों (Wage Boards) को उद्योग की देय-क्षमता का अनुमान लगाना होगा। किसी एक विशिष्ट इकाई अथवा देश के सभी उद्योगों की भुगतान देय-क्षमता को आधार मानना भी गलत होगा। किसी विशिष्ट प्रदेश में किसी विशिष्ट उद्योग की देय क्षमता एक अच्छी कसौटी हो सकती है और जहाँ तक सम्भव हो सके उस प्रदेश में उद्योग की समस्त इकाइयों में एक ही मजदूरी निश्चित की जानी चाहिए।

2. **औद्योगिक उत्पादकता के निर्धारण में कठिनाई**—उचित मजदूरी समिति के कथनानुसार श्रम उत्पादकता तथा मजदूरी में घनिष्ठ सम्बन्ध है। किसी उद्योग की उत्पादकता न केवल श्रमिकों की उत्पादकता पर ही निर्भर है बल्कि इसके अतिरिक्त अन्य तत्व जैसे—प्रबन्ध-कुशलता, वित्तीय व तकनीकी क्षमता आदि भी इसे प्रभावित करते हैं। श्रम उत्पादकता का अध्ययन करते समय समस्त तत्वों को ध्यान में रखना होगा। वर्तमान मजदूरी का स्तर श्रमिक की कार्यकुशलता बनाए रखने के लिए पर्याप्त नहीं है। अतः न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करके पर्याप्त मजदूरी की ओर बढ़ना होगा जिससे श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि हो सके और उत्पादन बढ़े।

3. **उचित मजदूरी को लागू करने में कठिनाई**—समयानुसार मजदूरी देते समय श्रमिक की कार्यक्षमता को ध्यान में रखकर ही मजदूरी का निर्धारण किया जाता है, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक श्रमिक उस नियत कार्यक्षमता के अनुसार ही कार्य करे। इसके अनुसार अधिक कार्यकुशल को अधिक और कम कार्यकुशल को कम मजदूरी मिलनी चाहिए लेकिन यह व्यवहार में नहीं पाया जाता है। जिन उद्योगों में कार्य की दशाएँ अच्छी हैं तथा जिनमें खराब दशाएँ हैं तो मजदूरी भी अलग-अलग होनी चाहिए लेकिन ऐसा नहीं हो पाता है।

अतः उचित मजदूरी निर्धारित करते समय हमें राष्ट्रीय आय के स्तर और इसके वितरण को ध्यान में रखना होगा। प्रचलित मजदूरी दरें भी ध्यान में रखनी होंगी। लेकिन असंगठित श्रमिकों की प्रचलित मजदूरी बहुत ही नीची हो तो

इसे बढाना होगा। यह वृद्धि श्रमिको की कार्यकुशलता को ध्यान में रखकर करनी होगी।

प्रो. वी. बी. सिंह के कथनानुसार, "किसी भी देश मे वास्तविक मजदूरी स्तर उस देश के आर्थिक विकास के स्तर पर निर्भर करता है। फिर भी मजदूरी नियमन और मजदूरी निर्धारण मशीनरी को ऐसा मजदूरी ढांचा तैयार करना होगा जो उचित हो और देश की आर्थिक क्रिया के स्तर के अनुसार हो।"[1]

भारत में मजदूरी का राजकीय नियमन
(State Regulation of Wages in India)

मजदूरी का नियमन

मजदूरी का भुगतान समय-समय पर संशोधित मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 द्वारा नियन्त्रित होता है। मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 सिक्किम के अतिरिक्त सारे देश पर लागू होते है। मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 फैक्टरी अधिनियम, 1948 मे फैक्टरी घोषित संस्थानों सहित किसी भी फैक्टरी, रेलवे एवं औद्योगिक संस्थानो जैसे ट्राम-वे या मोटर परिवहन सेवा, वायु परिवहन सेवा, बन्दरगाह, अन्तर्देशीय पोत, खान, खदान या तेल क्षेत्र, बागान, कर्मशाला (जहां वस्तुएं उत्पादित होती हैं) तथा भवनो, सडको, पुलो और नहरो आदि के निर्माण, विकास तथा अनुरक्षण कार्य करने वाले संस्थानो मे नियुक्त व्यक्तियो पर लागू होता है।

यह अधिनियम केवल उन पर लागू होता है जो प्रति माह औसतन 1600 रुपए से कम मजदूरी प्राप्त करते हो।

श्रमिको द्वारा कमाई गई मजदूरी को मालिक रोक नही सकते, न ही वे अनधिकृत रूप मे कटौतियां कर सकते है। श्रमिको की मजदूरी का भुगतान निश्चित दिवस के पूर्व कर देना चाहिए। केवल उन्ही कृत्यो या अवहेलनाओं के लिए जुर्माने किए जाते हैं जो सम्बद्ध सरकार द्वारा मान्य है। कुल जुर्माने की राशि काम की अवधि मे दी जाने वाली मजदूरी के तीन प्रतिशत से अधिक नही हो सकती। यदि मजदूरी की अदायगी देर से की जाती है या गलत कटौतियां की जाती हैं तो मजदूर या उनके संघ अपना दावा प्रस्तुत कर सकते हैं। निर्धारित रोजगारो मे समयोपरि भुगतान न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अनुसार किया जाता है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत सरकार विशिष्ट धन्धो मे कार्य कर रहे कर्मचारियो की न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर सकती है। इस

1 *Singh, V. B.* : An Introduction to the Study of Indian Labour Problems, p. 87

अधिनियम में उपयुक्त समयान्तरों के बाद जो 5 वर्ष से अधिक नहीं होना चाहिए, पूर्व-निर्धारित न्यूनतम मजदूरी की समीक्षा एवं संशोधन का प्रावधान है। जुलाई, 1980 में हुए श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन ने यह सिफारिश की थी कि अधिक से अधिक दो वर्ष के अन्तराल पर, या उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के 50 अंक बढ़ने पर दोनों में से जो भी पूर्व हो, न्यूनतम वेतन में संशोधन किया जाए।

श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम

समाचारपत्रों के संगठनों में काम कर रहे व्यक्तियों तथा श्रमजीवी पत्रकारों की सेवा शर्तों को नियमित करने के लिए 1955 में श्रमजीवी पत्रकार तथा अन्य कर्मचारी (सेवा-पूर्ति का नियमन) तथा अन्य सुविधाएँ अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम को एक विशिष्ट धारा द्वारा औद्योगिक विवाद अधिनियम की धाराओं में कुछ संशोधनों को करके श्रमजीवी पत्रकारों पर लागू किया गया। 26 जुलाई, 1981 को अध्यादेश द्वारा अधिनियम में संशोधन किया गया जिसका उद्देश्य 'श्रमजीवी पत्रकार' शब्द की परिभाषा में प्रवर्द्धन करके अंशकालिक संवाददाताओं को शामिल करना और समाचारपत्र संस्थानों द्वारा समाचारपत्र कर्मचारियों (अंशकालिक संवाददाताओं सहित) की बर्खास्तगी (सेवामुक्ति) छँटनी की रोकथाम करना है।

13 अगस्त, 1980 से अर्थात् जिस दिन ट्रिब्यूनल ने अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की, संशोधन को पूर्व-व्याप्ति दी गई। अध्यादेश को तदनन्तर अधिनियम में परिवर्तित किया गया जिसे 18 सितम्बर, 1981 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई।

पत्रकारों तथा गैर-पत्रकार समाचारपत्र कर्मचारियों के लिए सरकार ने मजदूरी बोर्ड स्थापित करने का निश्चय किया है। संसद् में इस विषय पर 29 मार्च, 1985 को एक वक्तव्य जारी किया गया। तदनुसार मजदूरी बोर्डों की स्थापना पर कार्य चल रहा है।

पालेकर न्यायाधिकरण

सरकार के श्रमजीवी पत्रकारों और समाचारपत्रों के संगठनों में काम कर रहे अन्य कर्मचारियों के वेतन की दरों को निर्धारित करने के लिए श्रमजीवी पत्रकार व अन्य कर्मचारी (सेवा की शर्तें) तथा अन्य सुविधाएँ अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश श्री डी. जी. पालेकर की अध्यक्षता में फरवरी, 1979 में एक न्यायाधिकरण की स्थापना की थी। न्यायाधिकरण ने 13 अगस्त, 1980 को अपनी सिफारिशें सरकार को दे दी थीं।

सरकार ने महँगाई भत्ता सम्बन्धी सिफारिश को छोड़ अन्य सभी सिफारिशों को मान लिया है। इसमें कुछ संशोधन करके आदेश जारी कर दिए गए हैं जो प्रकाशित हो चुके हैं। न्यायाधिकरण द्वारा निर्दिष्ट फार्मूले के अनुसार सरकार ने महँगाई भत्ते में सभी सम्बद्ध व्यक्तियों के विचार जानने के पश्चात् संशोधन किया

है। संशोधित महँगाई भत्ते की दरों सम्बन्धी आदेश 20 जुलाई, 1981 को प्रकाशित हो चुके हैं।

सिफारिशों के लागू होने तथा लागू करने से सम्बन्धित समस्याओं को देखने के लिए मंत्रियों की कमेटी नियुक्त की गई है। कमेटी ने कई बैठकें की तथा सम्बन्धित संस्थाओं को आवश्यक निर्देश दिए। अब इस कमेटी का स्थान एक त्रिपक्षीय कमेटी ने ले लिया है। राज्य स्तर पर ऐसी ही त्रिपक्षीय कमेटी स्थापित करने के लिए राज्य सरकारों से अनुरोध किया गया है। अब तक मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, गुजरात, पश्चिमी बंगाल, गोआ, दमण व दीव ने राज्य स्तर पर त्रिपक्षीय कमेटियाँ स्थापित की हैं।

ठेका मजदूरी

ठेका मजदूर (नियमन तथा उन्मूलन) अधिनियम, 1970, जो फरवरी, 1971 से समूचे भारत में लागू किया गया, कुछ संस्थानों में ठेका मजदूर व्यवस्था का नियमन करता है तथा कुछ परिस्थितियों में उसका उन्मूलन करता है। मजदूरी की अदायगी न होने पर उसके लिए मुख्य मालिक को जिम्मेदार भी ठहराया जाता है।

स्त्री तथा पुरुष श्रमिकों के लिए समान पारिश्रमिक

समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 स्त्री तथा पुरुष श्रमिकों को समान कार्य या समान स्वरूप के कार्य के लिए समान पारिश्रमिक और रोजगार के मामले में स्त्रियों के साथ किसी प्रकार के भेदभाव के विरुद्ध व्यवस्था करता है। अधिनियम के उपबन्ध सभी प्रकार के रोजगारों पर लागू किए गए हैं। अधिनियम में सलाहकार समितियों के गठन की व्यवस्था है जो स्त्रियों को रोजगार के अधिक अवसर देने पर सलाह देंगी। ऐसी समितियाँ केन्द्रीय सरकार के अधीन तथा अधिकांश राज्य सरकारें और केन्द्र शासित प्रदेशों में स्थापित कर दी गई हैं।

स्त्री श्रमिक

स्त्री श्रमिकों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मामलों पर श्रम मन्त्रालय को सलाह देने के लिए एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति बनाई गई है जिसे स्त्री श्रमिक दल (ग्रुप ऑफ वूमेन वर्कर्स) कहा जाता है। नीतियाँ निर्धारित करते समय तथा स्त्री श्रमिकों के लिए योजना प्रायोजित करते समय इस दल की सिफारिशों को उचित महत्व दिया गया है। स्त्री श्रमिकों से सम्बन्धित परियोजनाओं के लिए वित्तीय सहायता भी दी जाती है।

बन्धुआ मजदूर

बन्धुआ मजदूरी प्रथा उन्मूलन कानून, 1976 के अन्तर्गत 25 अक्तूबर, 1975 से सारे देश में बन्धुआ मजदूरी की प्रथा समाप्त कर दी गई। यह कानून लागू होने पर सभी बन्धुआ मजदूर हर तरह की बन्धुआ मजदूरी के दायित्व से मुक्त हो गए और उनके कर्जों को माफ कर दिया गया। मुक्त कराए गए बन्धुआ मजदूरों का पुनर्वास बीस-सूत्री कार्यक्रम का अंग है।

इस कानून को सम्बद्ध राज्य सरकारें लागू कर रही है। बारह राज्यो मे बन्धुआ मजदूरी की प्रथा के प्रचलन की सूचना मिली है। ये राज्य है—आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा, राजस्थान, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और हरियाणा। फरवरी, 1985 तक 1,77,062 बन्धुआ मजदूरो का पता लगाकर उन्हें मुक्त करा दिया गया था। इनमे से 1,34,802 बन्धुआ मजदूरो का पुनर्वास कर दिया गया तथा 42,260 का पुनर्वास करना बाकी था। इन बन्धुआ मजदूरो को या तो केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना या राज्य सरकारो की योजनाओ के अन्तर्गत फिर से बसा दिया गया था।

श्रम मन्त्रालय द्वारा बन्धुआ मजदूरो का पता लगाने, उन्हें मुक्त कराने तथा उनके पुनर्वास के लिए चलाए जा रहे कार्यक्रमो का क्रियान्वयन लगातार सचालित और पुनरावलोकित करने का कार्य किया जा रहा है।

भारत मे मजदूरी के नियमन और निर्धारण की प्रमुख वैधानिक व्यवस्थाएँ, जिनका हम विस्तार से विवेचन करेंगे, ये है—

(क) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (विभिन्न सशोधनो सहित)
(ख) अधिकरण के अन्तर्गत मजदूरी नियमन
(ग) वेतन मण्डलो के अन्तर्गत मजदूरी नियमन
(घ) मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 (संशोधनो सहित)
(ङ) बाल श्रमिक (निषेध व नियमन) विधेयक, 1986

(क) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948
(Minimum Wages Act, 1948)

अधिनियम का उद्गम (Evolution)

हमारे देश मे एक शताब्दी से कार्य की दशाओ तथा कार्य के घण्टो पर सरकार का नियन्त्रण रहा है, लेकिन मजदूरी के नियमन का प्रयास देश की आजादी के पश्चात् ही किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I. L O.) की न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी कन्वेन्शन, 1928 को हमारे देश मे लागू करने के लिए शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) ने पहले निम्नतम मजदूरी तथा असगठित श्रमिको वाले उद्योगो मे न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए मशीनरी नियुक्त करने की सिफारिश की थी। सन् 1944 मे रेगे-कमेटी (Rege Committee or Labour Investigation Committee) की नियुक्ति की गई जिसने 35 उद्योगो के बारे मे अपनी रिपोर्ट पेश की। इस समिति ने भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था हेतु सिफारिश की। श्रम स्थायी समिति (Labour Standing Committee) की कई बैठको मे इस विषय पर विचार-विमर्श कर सन् 1946 मे न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी बिल पेश किया गया लेकिन विधान सम्बन्धी परिवर्तनो से इसमें देरी लग गई और अन्त मे मार्च, 1948 मे यह अधिनियम पास

किया गया। 6 फरवरी, 1948 को न्यूनतम वेतन विधेयक, नए रूप में, बाबू जगजीवनराम द्वारा विधेयक संविधान निर्मात्री परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत हुआ।

बिल के विवेचन की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए बाबूजी ने कहा—"जिन नियोजनों में मजदूर अपने को संगठित करने की दशा में नहीं हैं, अपनी शिकायतें दूर नहीं कर सकते, नियोजकों से अपनी माँगें नहीं मनवा सकते, उनके लिए ऐसे विधेयक की बड़ी आवश्यकता है। यह विवेचन उन उद्योगों के लिए इतना वांछनीय नहीं है जहाँ मजदूर अधिक संख्या में नियोजित हैं और जहाँ मजदूर आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओं को संगठन बनाने की सुगमता तथा सुविधाएँ हैं, जितने कि उन मजदूरों के लिए जो ग्रामीण क्षेत्रों में बिखरे पड़े हैं, जहाँ मजदूर कार्यकर्त्ता पहुँचने व संगठित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं तथा जिनके लिए वे कोई वास्तविक कार्य नहीं कर पाते। इस मत का यह अनिवार्य परिणाम है कि उद्योगों की बड़ी संख्या में, विशेषकर उनमें जो ग्रामीण क्षेत्रों अथवा छोटे नगरों में स्थापित हैं, मजदूर काम में लगे श्रम के अनुरूप मजदूरी नहीं पाते। ऐसे उद्योगों को हम लोकसभा में कमर-तोड़ (स्वेटेड) उद्योग कहते हैं। कमर-तोड़ उद्योगों में लगे मजदूरों की दशा को सुधारने के लिए कुछ करने हेतु यह बिल व्यवस्था करता है। अनुसूची जिसमें उद्योगों के नाम उल्लिखित हैं, पूर्ण नहीं है। मैं कहूँगा कि उक्त सूची केवल उदाहरणात्मक है। प्रान्तीय सरकारें जितने उद्योगों को अपने हाथों में लेना यथासम्भव समझती हैं अनुसूची में सम्मिलित कर सकती है। पहली अनुसूची (नियोजनों) के लिए इस कानून के प्रावधानों के कार्यान्वियन के लिए दो वर्ष रख रहे हैं। दूसरी सूची के लिए (जिसमें खेतिहर मजदूरों का सम्बन्ध है) तीन वर्षों की अवधि रखी जा रही है। यह विवेचन बड़ा आवश्यक है। इसे कानूनों की पंजिका में बहुत पहले सम्मिलित हो जाना चाहिए था।"

बहस का उत्तर देते हुए बाबू जगजीवनराम ने बताया कि "खेतिहर मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी की दरों के निर्धारण के बिना औद्योगिक विकास तथा उत्पादन में वृद्धि सम्भव नहीं।" उनके ही शब्दों में 'अभी तक हम कृषि के क्षेत्र में इस बात पर जोर देते हैं कि किसानों के लिए सिंचाई, उत्तम कोटि के औजार, खाद की उपलब्धि तथा बेहतर बीजों की सुविधा हो, किन्तु अभी तक बिना उसकी ओर ध्यान दिए काश्तकारों को मिली सभी सुविधाएँ उत्पादन की वृद्धि में सहायक न होंगी।" भूमि के दो प्लाट देखें। एक उस व्यक्ति का जो खुद काश्त करता है तथा दूसरा उस व्यक्ति का जो मजदूरी पर आदमी लगा कर खेती कराता है। "उस खेत में, बाबू जगजीवनराम के अनुसार, जिसमें कृषक स्वयं काश्त करता है, कम से कम एक मन अन्न ज्यादा पैदा होता है। हम कल्पना नहीं कर सकते कि (दूसरों से काश्त करा कर) हम खाद्यान्नों में कितनी बड़ी क्षति उठा रहे हैं। यह इसलिए होता है कि खेतिहर मजदूरों की मजदूरी बहुत कम है। वे खेत के उत्पादन में किसी प्रकार की कोई दिलचस्पी नहीं लेते, उन्हें उससे कोई मतलब नहीं। खेत में चाहे अधिक अन्न हो अथवा सूखा पड़े। वह जानता है कि उसको दिन भर के कठिन परिश्रम के लिए

डेढ़ सेर अथवा दो सेर से अधिक अनाज नहीं मिलता है। हल से खरोंची हुई जमीन से अधिक वह जमीन उत्पादन देती है जिसमें हल धँसा कर चला हो। जब मजदूर को हल को धँसा कर चलाने में वही मजदूरी मिलती है जितनी कि जमीन को उसके द्वारा खरोंचने से, तो वह क्यों अधिक शक्ति लगा कर हल जोते? वह तब अधिक श्रम क्यों करे? जगजीवनराम बाबू की दृष्टि में यह बिल क्रान्तिकारी था क्योंकि उन्हें विश्वास था कि उसके बन जाने पर देश गल्ले के मामले में आत्मनिर्भर हो जाएगा।"

श्री जगजीवनराम को न्यूनतम वेतन बिल प्रस्तुत कर, 'देश में सामाजिक क्रान्ति' के पहले प्रयास के सृष्टा बनने पर, श्री रंगा ने बधाई दी। बिल पर बोलते हुए उन्होंने कहा, "मुझे कुल मिलाकर इतना ही कहना है कि यह बिल इतना क्रान्तिकारी है कि उसके लिए किसी भी सरकार को विशेषकर हमारी सरकार को अभिमान हो सकता है।"

अधिनियम की सृष्टि, उसकी मुख्य व्यवस्थाएँ

6 फरवरी, 1948 को (विधायन) संविधान निर्मात्री परिषद् ने दिन भर की बहस के उपरान्त बिल को स्वीकार किया। 15 मार्च, 1948 को वह कानून बना। कृषि क्षेत्र में उसका कार्यान्वयन तीन वर्षों बाद अर्थात् मार्च, 1951 से होना था, किन्तु अधिनियम के क्रियान्वयन में देश और प्रदेशों की सरकारों को मार्ग में आने वाली बाधाओं को हटाने में अनेक वर्ष लग गए और अन्त में तृतीय संविधान संशोधन द्वारा न्यूनतम वेतन अधिनियम के कार्यान्वयन की अन्तिम अवधि 31 दिसम्बर, 1959 निर्धारित हुई।

डॉ. टी एन. भगोलीवाल ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की विशेष व्यवस्थाएँ संक्षेप में इस प्रकार बताई हैं—

(i) यह शोषित (Sweated) श्रम वाले उद्योगों में या उन उद्योगों में जहाँ श्रमिकों के शोषण के मौके पाए जाते हैं, न्यूनतम मजदूरियाँ नियत करने की व्यवस्था करता है। ऐसे किसी उद्योग के बारे में न्यूनतम मजदूरी नियत नहीं की जाती जिसमें सारे राज्य में 1000 से कम श्रमिक नियुक्त हों (1957 के संशोधन अधिनियम ने इस सीमा को काफी ढीला कर दिया है)।

(ii) अधिनियम में विभिन्न व्यवसायों एवं श्रमिकों के विभिन्न वर्गों के लिए ठीक इस तरह की दरें निर्धारित करने की व्यवस्था है।

(अ) समयानुसार काम की न्यूनतम मजदूरी-दर जिसे न्यूनतम समय-दर' (A minimum time-rate) कहा जाएगा;

(ब) कार्यानुसार मजदूरी की न्यूनतम-दर जिसे 'कार्यानुसार न्यूनतम-दर' (A minimum piece-rate) कहा जाएगा,

(स) उन श्रमिकों के लिए जो कार्यानुसार मजदूरी पर लगाए गए हैं, पारिश्रमिक की एक न्यूनतम-दर का निर्धारण समयानुसार न्यूनतम-दर दिलाने की दृष्टि से करना जिसे 'सुरक्षित समय-दर' (Guaranteed time-rate) कहा जाएगा; तथा

(द) अधिक समय (Overtime) काम करने के सम्बन्ध में एक न्यूनतम-दर (चाहे वह समय-दर अथवा कार्यानुसार दर हो) जिसे 'अधिक समय दर' (An overtime rate) कहा जाएगा। उपयुक्त सरकार द्वारा निर्धारित या संशोधित मजदूरी की न्यूनतम-दरों में ये बातें शामिल होंगी—

(अ) मजदूरी की मूल (Basic) दर तथा खास भत्ता (अधिनियम में इसे रहन-सहन भत्ते (Cost of living allowances) के रूप में बताया गया है जिसकी दर का समायोजन ऐसे मध्यान्तरों (Intervals) और ऐसे ढंगों से किया जाएगा जो उपयुक्त सरकार निर्देश करे;

(ब) रहन-सहन भत्ते के साथ या बिना उसके मजदूरी की मूल (Basic) दर तथा जरूरी वस्तुओं की रियायती बिक्री की रियायतों (Concessions) का नकद मूल्य,

(स) वह दर जिसमें मूल (Basic) दर, रहन-सहन भत्ता तथा रियायतों का नकद मूल्य आदि सब शामिल हैं। आम तौर से अधिनियम के अन्तर्गत देय (Payable) मजदूरी का भुगतान नगदी (Cash) में करने की व्यवस्था है किन्तु इसने उपयुक्त सरकार को न्यूनतम मजदूरी के जिन्स (Kind) में ही पूरे या आंशिक रूप से भुगतान का अधिकार दिया है।

(iii) उपयुक्त सरकार इस तरह निर्धारित न्यूनतम मजदूरी दरों पर समय-समय पर पुनर्विचार (Review) करेगी। पुनर्विचार के बीच का समय 5 वर्ष से ज्यादा नहीं होगा। फिर से विचार करने पर यदि जरूरी समझे तो उपयुक्त सरकार न्यूनतम मजदूरी-दरों में संशोधन करेगी। यदि किसी कारण से उपयुक्त सरकार न्यूनतम मजदूरी-दरों में 5 वर्ष के मध्यान्तर पर फिर से विचार न कर सके तो ऐसा 5 वर्ष खत्म होने के बाद भी किया जा सकता है। जब तक न्यूनतम मजदूरी-दरों में इस तरह से कोई संशोधन नहीं होता तब तक 5 वर्ष की अवधि खत्म होने के पहले जो दरें चालू थी, वही दरें लागू रहेंगी।

(iv) उपयुक्त सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि न्यूनतम मजदूरी की दरें नियत करने के बारे में जाँच करने और सलाह देने के लिए समितियाँ नियुक्त करें। परामर्श समितियों (Advisory Committees) की नियुक्ति समन्वय कार्य (Co-ordination Work) और उसके बाद मजदूरी दर के संशोधन के लिए की जाती है। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को सलाह देने और राज्य परामर्श बोर्डों के कार्य को मिलाने लिए केन्द्रीय सरकार एक केन्द्रीय परामर्श बोर्ड की नियुक्ति करेगी।

जैसा कि डॉ॰ अगोलीवाल ने लिखा है कि—"सभी राज्य सरकारों द्वारा 1948 के अधिनियम की अनुसूची के भाग 1 में दिए गए सभी उद्योगों के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरियाँ निर्धारित कर दी गई हैं। कुछ राज्य सरकारों ने इस अधिनियम को कुछ ऐसे दूसरे उद्योगों पर लागू कर दिया है जो अनुसूची के भाग 1 में दिए हैं। राज्यों में न्यूनतम मजदूरियाँ 31 दिसम्बर, 1949 तक निर्धारित कर दी गई थी क्योंकि 1957 के संशोधन अधिनियम में यही आखिरी तारीख तय की गई थी।

एक केन्द्रीय परामर्श बोर्ड और राज्यो मे परामर्श अधिकारी (Authorities) भी नियुक्त किए गए। चूंकि सभी अनुसूचित उद्योगों मे दिसम्बर, 1959 तक सभी राज्य सरकारो द्वारा न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नही की जा सकी थी, इसलिए मार्च, 1961 मे अधिनियम में एक नया संशोधन किया गया जिसने किसी उद्योग मे राज्य सरकारो द्वारा शुरू मे न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण की अन्तिम तारीख की सीमा को खत्म कर दिया।"

"न्यूनतम मजदूरी कानून बनाने के खिलाफ इस देश मे शायद ही कोई आपत्ति उठाई जा सकती है। यद्यपि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का खास उद्देश्य बहुत नीची मजदूरियो के भुगतान के द्वारा श्रमिक का शोषण रोकना था, इसके अन्तर्गत वे रोजगार भी शामिल किए गए हैं जिनमे श्रमिक या तो असगठित है या जहाँ उनका सगठन कमजोर है। वर्ष बीतने पर राज्य सरकारो द्वारा मूल (Original) अनुसूची मे स्थानीय जरूरतो के मुताबिक बहुत से नए रोजगार बढाए गए हैं। अधिनियम के क्षेत्र के इस तरह बढने मे उसके लागू करने मे कठिनाइयाँ सामने आई हैं।"

मजदूरियो मे क्षेत्रय अन्तरो एवं किसी एक क्षेत्र मे ही समय-समय पर विभिन्न परिस्थितियों के मुताबिक अन्तर तक के सम्बन्ध मे यह विचार व्यक्त किया गया है कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारण मे कोई स्थिर (Rigid) मापदण्ड (Criteria) निर्धारित करना न तो ठीक है और न जरूरी है। आवश्यक रूप से यह लोचपूर्ण (Flexible) होगा।

अधिनियम के दोष

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम श्रमिको के हितों की रक्षा मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है तथापि इसके कुछ निम्नलिखित दोष विचारणीय हैं—

1 अधिनियम के अन्तर्गत समय-समय पर यद्यपि अनेक रोजगार सम्मिलित किए गए हैं तथापि इसका औद्योगिक क्षेत्र अभी बहुत सकुचित है। अनेक महत्त्वपूर्ण और असंगठित उद्योगो का समावेश होना आवश्यक है।

2 अधिनियम के प्रयोग मे शिथिलता है। राज्य सरकारो द्वारा अधिनियम का प्रयोग जिस ढग से हुआ है यदि एक राज्य मे किसी उद्योग को इस अधिनियम के अन्तर्गत लिया जाता है तो दूसरे राज्य मे उसे छोड दिया जाता है। यह स्थिति श्रमिको मे असन्तोष का एक कारण बनती है।

3. अधिनियम मे कुछ असगत छूटें दी गई हैं। उदाहरणार्थ ऐसी छूटें दी जाना उचित प्रतीत नही होता कि उस उद्योग मे न्यूनतम मजदूरी की दर निर्धारित करने की आवश्यकता नही है जिसमें सम्पूर्ण राज्य मे 1000 से अधिक श्रमिक काम कर रहे हों।

4. परामर्शदात्री समिति को अधिक प्रभावशाली बनाया जाना आवश्यक है। समितियों के कार्यो से अभी तक ऐसा प्रतीत हुआ है कि दरों के निर्धारण मे मानों उनका कोई विशेष हाथ न रहा हो।

5. अधिनियम के अनुसार 'राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी' के निर्धारण की व्यवस्था नहीं है।

6. ऐसे प्रमुख व्यवसायों पर अधिनियम लागू नहीं होता जिनके श्रमिकों की दशा बहुत खराब है।

7. एक ही राज्य के विभिन्न भागों और विभिन्न राज्यों में मजदूरी की दरों में समानता नहीं है, एकीकरण का अभाव है।

(ख) अधिकरण के अन्तर्गत मजदूरी नियमन
(Wage Regulation Under Adjudication)

हमारे देश में औद्योगिक विवादों को निपटाने हेतु अधिकरण मशीनरी (Adjudication Machinery) काम में लाई जाती है। जब मजदूरी के सम्बन्ध में श्रमिकों व मालिकों के बीच झगड़ा होता है तब भी इसके द्वारा विवाद निपटाया जाता है। यह मशीनरी असंगठित और कम संख्या में काम करने वाले उद्योगों के श्रमिकों की मजदूरी का विवाद नहीं निपटाती है। जब भी विवादों को निपटाने के लिए अधिकरणकर्ता (Adjudicator) की नियुक्ति की जाती है तब उसे राज्य सरकार सिद्धान्ततः प्रस्तुत करती है जिनके आधार पर विवाद को निपटाता है। जो भी फैसले (Awards) दिए जाते हैं उनके क्रियान्वयन की जिम्मेदारी सरकार की है तथा इस प्रकार के फैसले समय-समय पर दिए गए हैं जिनमें एकरूपता (Uniformity) नहीं पाई जाती है। जितने भी अवार्ड्स (Awards) दिए जाते है कि वे उचित मजदूरी समिति (Committee on Fair Wages) की सिफारिशों के आधार पर दिए जाते हैं। अधिकांश निर्णयों में उद्योग की देय क्षमता (Capacity to pay of an Industry) का ध्यान रखा गया है। श्रम-संस्थान (Labour Bureau) के अनुसार "अब यह सभी सामान्य रूप से स्वीकार करते हैं कि न्यूनतम सीमा निर्धारित करते समय उद्योग की देय-क्षमता को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं है।" विभिन्न ट्रिब्यूनल्स द्वारा न्यूनतम मजदूरी आदि के निर्धारण में श्रमिकों की दक्षता, राष्ट्रीय आय का स्तर एवं उसके वितरण आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है। कई विवादों में अकुशल (Unskilled) श्रमिकों की मजदूरी का निर्धारण कर दिया गया है तथा कुशल (Skilled) और अर्द्ध-कुशल (Semiskilled) श्रमिकों की मजदूरी का निर्धारण करने का कार्य प्रबन्धकों व श्रमिकों पर छोड़ दिया गया है।

(ग) वेतन मण्डलों के अन्तर्गत मजदूरी नियमन
(Wage Regulation Under Wage Boards)

प्रथम पंचवर्षीय योजना में यह विचार किया गया कि उचित मजदूरी के निर्धारण हेतु स्थाई एवं निष्पक्ष वेतन मण्डलों की स्थापना की जानी चाहिए जो कि समय-समय पर मजदूरी से सम्बन्धित आँकड़ो, जाँच आदि का कार्य करके मजदूरी-निर्धारण का कार्य करते रहेंगे, लेकिन इसके बारे में कोई ठोस कदम नहीं

उठाया गया। वैसे हमारे देश मे स्वतन्त्रता से पूर्व भी बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, 1946 (Bombay Industrial Relations Act of 1946) के तहत मजदूरी-निर्धारण हेतु ऐसे वेतन मण्डल विद्यमान थे। दूसरी पचवर्षीय योजना मे भी इस प्रकार की मशीनरी को मजदूरी-निर्धारण हेतु स्वीकार किया गया। "तीसरी पंचवर्षीय योजना मे भी यह बताया गया कि प्रबन्धको व श्रमिको के प्रतिनिधियों ने यह स्वीकार कर लिया है कि वेतन मण्डल की बहुमत सिफारिशो को पूर्ण रूप से लागू करना चाहिए।"[1]

विभिन्न उद्योगो के लिए वेतन मण्डल नियुक्त करने का सुझाव सबसे पहले केन्द्रीय श्रम मन्त्री ने भारतीय श्रम सम्मेलन (Indian Labour Conference) मे 1957 मे दिया था। 1958 की अनुशासन सहिता (Code of Discipline. 1958) मे इन प्रस्तावो को सम्मिलित किया गया है। वेतन मण्डल एक कानूनी सस्था नही है। इसे जिस उद्योग के लिए नियुक्त किया जाता है उसमे स्वतन्त्र रूप से मजदूरी निर्धारित की जाती है। "यद्यपि इन मण्डलो की नियुक्ति श्रमिको व प्रबन्धको के पारस्परिक समझौते के आधार पर होनी चाहिए, लेकिन वास्तविक जीवन मे इनकी नियुक्ति की माँग श्रम सघो द्वारा की जाती है। सामान्यतया एक वेतन मण्डल मे श्रमिको व मालिको के दो-दो प्रतिनिधि, दो स्वतन्त्र व्यक्ति (एक ससद सदस्य तथा दूसरा अर्थशास्त्री) किसी महत्वपूर्ण सार्वजनिक व्यक्ति की अध्यक्षता मे नियुक्त किया जाता है।"[2] यह एक त्रिपक्षीय सस्था (Tripartite Body) है। इसमे सदस्यो की कुल सख्या 7 से 9 तक होती है। वेतन मण्डल का अध्यक्ष साधारणतया कोई जज होता है।

एक वेतन मण्डल का कार्य जिस उद्योग हेतु नियुक्त किया गया है, उसमे मजदूरी-निर्धारण का कार्य करना होता है। उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों को मध्येनजर रखते हुए उद्योग मे मजदूरी निर्धारित की जाती है। अन्य बातें जो वेतन मण्डल ध्यान में रखता है, वे हैं—

1 एक विकासशील देश मे उद्योगों की आवश्यकताएँ।
2 कार्यानुसार मजदूरी देने की पद्धति।
3 विभिन्न प्रदेशो तथा क्षेत्रो में उद्योग की विशेष विशेषताएँ।
4 मण्डल के अन्तर्गत आने वाले श्रमिको की श्रेणियाँ।
5. उद्योग मे कार्य के घण्टे।

कुछ वेतन मण्डलो को मजदूरी-निर्धारण के अतिरिक्त बोनस अथवा ग्रेच्युटी के भुगतान के बारे मे सिफारिशें करने को कहा गया था।

1957 से ही भारत सरकार ने केन्द्रीय वेतन मण्डलो की नियुक्तियाँ की। सबसे पहले सूती वस्त्र उद्योग हेतु वेतन मण्डल नियुक्त किया गया। इसके बाद चीनी, सीमेन्ट, जूट, लौह एव इस्पात, कॉफी, चाय, रबड, कोयले की खानो, पत्रकारो,

1 Third Five Year Plan, p. 256.
2 *Vaid, K. N.*, State and Labour in India, p. 101.

भारी रसायन एवं उर्वरक, इंजीनियरिंग, बन्दरगाहो, चमड़ा, विद्युत् और सड़क यातायात आदि उद्योग में वेतन मण्डल स्थापित कर दिए गए। ये सभी वेतन मण्डल अब कार्यशील नहीं हैं क्योंकि उन्होंने अपनी अन्तिम रिपोर्ट दे दी है। इन सभी वेतन मण्डलो को विभिन्न श्रमिकों की श्रेणियों का निर्धारण, उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के आधार पर मजदूरी-निर्धारण, कार्यानुसार मजदूरी की उचितता आदि के बारे मे सिफारिशें करने को कहा गया था।

वेतन मण्डलो की नियुक्तियाँ ऐच्छिक फैसले को प्रोत्साहन देने के लिए की गई थी। यह आशा की गई थी कि इनकी सिफारिशो को बहुमत से श्रमिक तथा नियोक्ता स्वीकार करेंगे। ऐच्छिक पंच फैसले के सिद्धान्त को सफलता नही मिली क्योंकि मालिकों ने वेतन मण्डल की सिफारिशो को लागू करने मे बाधा डाली। इस स्थिति को ध्यान मे रखते हुए सरकार ने वेतन मण्डलो की सिफारिशो को कानूनन रूप से लागू करने का अधिकार प्रदान कर दिया।

वेतन मण्डलों द्वारा की गई सिफारिशों को सरकार जाँचती है और फिर उनका प्रशासन करती है। सामान्यतया बहुमत से दी गई सिफारिशो को क्रियान्वित किया जाता है। कुछ मामलो मे इनका संशोधन करके लागू कर देने का अभ्यास रहा है। इसकी आलोचना की गई है कि यह प्रक्रिया श्रमिको के पक्ष मे गई है। समय-समय पर इन सिफारिशो के लागू करने के सम्बन्ध मे केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो से रिपोर्ट माँगी जाती है। इन सिफारिशों को लागू करने का कार्य केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की औद्योगिक सम्बद्ध मशीनरी (Industrial Relations Machinery) द्वारा किया जाता है।

वेतन मण्डलो की सीमाएँ
(Limitations of Wage Boards)

वेतन मण्डल ऐच्छिक पंच निर्णय के सिद्धान्त को प्रोत्साहन देने हेतु एक तरीका काम मे लाया गया। वेतन मण्डलो की सिफारिशो तथा उनके क्रियान्वयन की निम्नलिखित सीमाएँ है[1]—

1 श्रम संघ वेतन मण्डलों को अनिवार्य अधिकरण तथा सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रिया के विस्तार का एक प्रतिस्थापन माना जाता है। नियोक्ता भी इनकी सिफारिशों को लागू करने मे उत्साह नही रखते हैं।

2 वेतन मण्डलो का कार्य उचित मजदूरी की गणना व निर्धारण करना है लेकिन व्यवहार मे देखा गया है कि इन्होंने उचित मजदूरी जिसका सम्बन्ध उद्योग की देय क्षमता से है, की अपेक्षा की है।

3. वेतन मण्डलों ने मजदूरी-निर्धारण मे श्रमिको और मालिको के साथ समझौता मशीनरी के रूप में कार्य किया है न कि एक मजदूरी-निर्धारण मशीनरी के रूप मे।

1 *Vaid, K. N.* State and Labour in India, p. 103.

4. महँगाई भत्ते को मूल मजदूरी मे मिलाने के रूप मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। सूती वस्त्र उद्योग मे महँगाई भत्ते का 75% मूल मजदूरी में मिला दिया गया है।

5. वेतन मण्डल उचित मजदूरी समिति द्वारा दी गई सिफारिशो के आधार पर मजदूरी निर्धारित करते हैं और बाद मे भारतीय श्रम सम्मेलन की 15वी बैठक मे किए गए प्रस्तावो को भी ध्यान मे रखा जाता है, लेकिन इन दोनो मे ही स्पष्टता देखने को नही मिलती। सूती वस्त्र उद्योग मे मजदूरी मे अन्तर (Wage Differentials) की ओर कोई ध्यान नही दिया गया।

6 विभिन्न वेतन मण्डलो ने जो वेतन-ढांचे दिए है उनमे समन्वय का अभाव है। विभिन्न क्षेत्रो मे अलग मजदूरी दरें है। इन वेतन मण्डलो ने न तो आवश्यकता पर आधारित मजदूरी (Need-based Wage) का ही निर्धारण किया है और न मजदूरी मे पाए जाने वाले अन्तरों (Wage Differentials) को ही दूर किया गया है। इसके कारण श्रमिको मे आपसी ईर्ष्या की भावना को जन्म दिया गया है।

राष्ट्रीय श्रम उद्योग के सम्मुख वेतन मण्डलो द्वारा निर्धारित मजदूरी के सम्बन्ध मे विभिन्न पक्षो ने निम्न विचार प्रस्तुत किए है—

1 नियोक्ताओ के सगठन ने यह बताया है कि विभिन्न प्रकार के उद्योगो मे मजदूरी-निर्धारण एक ही मशीनरी द्वारा निर्धारित करना उचित नही है। उद्योग की प्रकृति को ध्यान मे रखते हुए मजदूरी निर्धारण का कार्य वेतन मण्डल, अधिकरण अथवा सामूहिक सौदाकारी द्वारा किया जा सकता है। यदि एक उद्योग समरूप (Homogenous) नही है तो उसमे वेतन मण्डल नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। इसके साथ ही अन्य सगठन ने बताया कि वेतन मण्डल की सिफारिशो मे एकमत होने पर ही उनको क्रियान्वित करना चाहिए।

2. श्रम सगठनो ने राष्ट्रीय श्रम आयोग को वेतन मण्डल के क्रियान्वयन के विषय मे अपना असन्तोष बताया है। उनका कहना है कि जिन उद्योगों मे सगठित श्रमिक हैं, सघ को मान्यता है तो वहाँ वेतन मण्डल द्वारा मजदूरी-निर्धारण न करके सामूहिक सौदाकारी द्वारा होना चाहिए। कुछ सगठनो ने यह भी बताया है कि सिफारिशो को लागू करने मे काफी देर लगती है और कुछ वृद्धि के रूप में उनको वेतन मिलने लगता है। श्रम सगठनो का कहना है कि वेतन मण्डल की सिफारिशें 5 महीने में प्राप्त हो जानी चाहिए और वेतन मण्डल का गठन कानूनन होना चाहिए।

राष्ट्रीय श्रम आयोग, 1969 (National Commission on Labour, 1969) ने वेतन मण्डलो के बारे मे निम्न सिफारिशें दी थी[1]—

1 वेतन मण्डल मे स्वतन्त्र व्यक्तियो को शामिल नही करना चाहिए। यदि जरूरी ही हो तो एक अर्थशास्त्री को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

1 Report of the National Commission on Labour, 1969, See Chapter on 'Wages.'

2 वेतन मण्डल के अध्यक्ष की नियुक्ति दोनो पक्षों—श्रमिक व प्रबन्धक की सहमति से होनी चाहिए। यह सहमति नही हो तो पच निर्णय द्वारा नियुक्ति की जाए। एक व्यक्ति को एक समय मे दो से अधिक मण्डलो का अध्यक्ष नियुक्त नही करना चाहिए।

3. वेतन मण्डल को अपनी सिफारिशें नियुक्ति से एक वर्ष की अवधि मे देने को कहा जाना चाहिए। सिफारिशो को लागू करने की तिथि भी मण्डल द्वारा दी जानी चाहिए।

4 एक वेतन मण्डल की सिफारिशे पांच वर्ष के लिए लागू रहनी चाहिए।

5 केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय द्वारा एक केन्द्रीय वेतन मण्डल विभाग (Central Wage Board Division) की स्थाई रूप से स्थापना करनी चाहिए जो कि सभी वेतन मण्डलो का कार्य देखना रहेगा। इसका कार्य वेतन मण्डलों को आवश्यक कर्मचारी, आंकड़े और आवश्यक सूचनाओ की पूर्ति होगा।

6 वेतन मण्डलो के कार्य विधि हेतु एक मैनुअल तैयार किया जाना चाहिए।

(घ) मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936
(Payment of Wages Act, 1936)

उद्योगो मे काम करने वाले विशेष वर्गों के व्यक्तियो को मजदूरी के भुगतान का नियमन करने हेतु एक अधिनियम बनाया गया जिसे मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 कहा जाता है। श्रमिकों को मजदूरी समय पर नही देना तथा उसमे से कई कटौतियां आदि करना, इस अधिनियम के पूर्व प्रचलित था। इस अधिनियम द्वारा कोई भी नियोक्ता अपने श्रमिकों को निर्धारित अवधि मे बिना अनधिकृत कटौतियो के मजदूरी का भुगतान करेगा। कई प्रकार की अनधिकृत कटौतियां, जैसे—अनुशासनात्मक कारणों से जुर्माना, नियोक्ता को होने वाले नुकसान हेतु जुर्माना, कच्चा माल, औजार आदि हेतु कटौतियां और अन्य गैर-कानूनी कटौतियां अनुचित थी।

शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) की सिफारिशों के आधार पर मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 पास किया गया। यह अधिनियम मजदूरी का दो रूपों मे नियमन करता है—(1) मजदूरी देने की तिथि, और (2) मजदूरी मे मे होने वाली कटौतियां। यह अधिनियम प्रत्येक कारखाने तथा रेलवे के उन श्रमिको पर लागू होता है जिनकी औसत मासिक मजदूरी 1000 रु. से कम है (नवम्बर 1975 के संशोधन से पूर्व यह सीमा 400 रु से कम की थी)। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकार किसी भी उद्योग अथवा संस्थान के श्रमिकों पर तीन महीने का नोटिस निकाल कर लागू कर सकती है। यह अधिनियम सन् 1948 में कोयले की खानो पर, सन् 1951 मे समस्त खानों पर, सन् 1957 मे निर्माणकारी उद्योगों पर, सन् 1962 में तेल क्षेत्रो पर तथा सन् 1964 में नागरिक वायु परिवहन सेवाओं, मोटर परिवहन सेवाओं तथा वे संस्थान जो

कारखाना अधिनियम 1948 की धारा 85 के तहत आते हैं, पर लागू कर दिया गया है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी भुगतान की अवधि एक माह रखी गई है। जिन संस्थानों तथा उद्योगों में 1000 से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ मजदूरी का भुगतान, भुगतान-अवधि के 10 दिन में तथा 1000 से कम श्रमिक होने पर 7 दिन के अन्दर भुगतान करना अनिवार्य है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्नलिखित कटौतियों को ही अधिकृत कटौतियाँ (Authorised Deductions) माना गया है तथा बाकी कटौतियों हेतु नियोक्ता पर न्यायालय में विवाद चलाया जा सकता है। अधिकृत कटौतियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) जुर्माने की राशि, (2) कार्य पर अनुपस्थित रहने पर कटौती, (3) हानि अथवा क्षति के कारण कटौती, (4) मालिक, सरकार अथवा आवास बोर्ड प्रदत्त आवास सुविधाओं व सेवाओं हेतु कटौती, (5) अग्रिम दी गई राशि हेतु कटौती, (6) आय कर या प्रॉविडेन्ट फण्ड हेतु कटौती, (7) कोयले की खानों में वर्दी व जूते हेतु कटौती, (8) राष्ट्रीय सुरक्षा कोष या सुरक्षा बचत कोष हेतु कटौती, (9) साइकिल खरीदने, भवन-निर्माण हेतु ऋण लेने तथा श्रम-कल्याण निधि में से ऋण लेने पर कटौती करना।

जुर्माने की राशि 3 पैसे प्रति रुपया से अधिक नहीं होगी। जुर्माना रजिस्टर भी मालिक को रखना होगा।

अधिनियम के अन्तर्गत दावा करने की अवधि 6 माह से बढ़ाकर 12 माह कर दी गई है। इस अधिनियम के क्रियान्वयन का कार्य श्रम विभाग के श्रम निरीक्षकों द्वारा किया जाता है।

आलोचना

श्रम जाँच समिति (Labour Investigation Committee) के अनुसार मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 में कई दोष पाए जाते है जिनके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग को पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हो पाया है तथा नियोक्ता भी इस अधिनियम के क्रियान्वयन में अनियमितताएँ बरतते है। इसकी निम्नलिखित रूपों में आलोचना की जा सकती है—

1. बड़े-बड़े उद्योगों व संस्थानों में अधिनियम की विभिन्न धाराओं को पूर्ण रूप से लागू किया जाता है लेकिन ठेके के श्रमिकों तथा छोटे छोटे उद्योगों व संस्थानों में जहाँ उचित लेखे-जोखे नहीं रखे जाते हैं वहाँ पर इस अधिनियम का उल्लंघन किया जाता है।

2 श्रम जाँच समिति (Labour Investigation Committee) के अनुसार इस अधिनियम के लागू करने में निम्न उल्लंघन पाए जाते है[1]—

(i) अनधिकृत कटौतियाँ (Unauthorised Deductions),

1 Labour Investigation Committee, 1946, p 49

(ii) अधिनियम से सम्बन्धित रजिस्टर न रखना (Non-recording of Over-time Wages),

(iii) मजदूरी के भुगतान में देरी (Delay in Payment of Wages),

(iv) बोनस तथा महँगाई भत्ते का भुगतान न करना (Non-payment of Bonus & Dearness Allowance),

(v) रजिस्टर न रखना (Non-maintenance of Registers) आदि।

3. अधिनियम के अन्तर्गत दावों को सुनने हेतु परगना अधिकारी (SDO's) को भी अधिकार प्रदान किए गए हैं। उनके पास अन्य मामले तथा प्रशासनिक कार्यों का भार अधिक होने से इस प्रकार के दावों की तुरन्त सुनवाई तथा फैसला नहीं हो पाता है जिससे समय पर श्रमिकों को राहत नहीं मिल पाती है। अतः इन विवादों को शीघ्र निपटाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

4. श्रम-निरीक्षकों की संख्या उनके क्षेत्र व कार्य को देखते हुए कम है। निरीक्षण नियमित रूप से नहीं हो पाते हैं। अतः श्रम-निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए।

5 मालिकों पर जो जुर्माना किया जाता है वह करीब 52 रु० अथवा 100 रु० से अधिक नहीं होता है जबकि विवाद हेतु श्रम निरीक्षक के न्यायालय में आने-जाने में ही हजारों रुपये यात्रा-भत्ता आदि में व्यय हो जाते हैं।

6 नियोक्ता इस अधिनियम से बचने के लिए श्रमिकों को स्थायी नहीं होने देते, उन्हें बलात् छुट्टी (Forced Leave) देते हैं, आदि अनुचित व्यवहारों से अधिनियम से बचते हैं। उत्तर प्रदेश श्रम जाँच समिति (U P Labour Enquiry Committee) के अनुसार, "अधिकांश श्रम संघों द्वारा यह शिकायत है कि मजदूरी में कमी की जाती है, विभिन्न कटौतियाँ की जाती हैं जिससे भविष्य में जाकर श्रमिकों की वास्तविक आमदनी घट जाती है।"[1]

लेकिन मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 का क्रियान्वयन अब पहले से काफी सुधरा है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग (National Commission on Labour) के अनुसार इस अधिनियम से श्रमिक वर्ग को काफी लाभ प्राप्त हुआ है। पहले की भाँति अब श्रमिकों को देरी से मजदूरी देना तथा उसमें से अनधिकृत कटौतियाँ (Unauthorised Deductions) आदि की प्रवृत्ति कम हो गई है। श्रमिक-संघों के विकास, श्रमिकों की शिक्षा, मालिकों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन तथा सरकार का कल्याणकारी राज्य के रूप में महत्त्व बढ़ने से मजदूरी नियमित रूप से दी जाने लगी है तथा अनधिकृत कटौतियाँ भी काफी कम हुई हैं। फिर भी हम देखते हैं कि जहाँ पर श्रमिक बिखरे हुए तथा असंगठित हैं तथा जहाँ अशिक्षित श्रमिक हैं, नियोक्ता पुरानी विचारधारा वाले हैं, श्रम निरीक्षक अकुशल व भ्रष्ट हैं, वहाँ पर आज भी श्रमिकों का शोषण देर से मजदूरी तथा अनधिकृत कटौतियों के रूप में होता है।

1 U. P. Labour Enquiry Committee, p. 40.

यह सरकार का उत्तरदायित्व है कि क्रियान्वयन करने वाली मशीनरी को सुदृढ व ईमानदार बनाए और समय-समय पर मशीनरी द्वारा किए गए क्रियान्वयन का लेखा-जोखा ले।

अधिनियम मे संशोधन

जैसा कि कहा जा चुका है, नवम्बर, 1975 मे एक अध्यादेश जारी करके अधिनियम उन श्रमिको पर लागू कर दिया गया जिनकी औसत मासिक मजदूरी 1000 रु से कम है। इस सशोधन से पूर्व 400 रु प्रतिमास की मजदूरी सीमा थी। श्रम मन्त्रालय की सन् 1976–77 की रिपोर्ट के अनुसार अधिनियम मे और भी अन्य सशोधन कर दिए गए है। रिपोर्ट मे उल्लेख है—

"सन् 1936 के मुख्य अधिनियम मे सशोधन करके अन्य बातो के साथ-साथ मजदूरी का भुगतान चैक द्वारा करने या सम्बन्धित कर्मचारियो द्वारा लिखित प्राधिकार देने पर उनकी मजदूरी उनके बैंक लेखो मे जमा करने की व्यवस्था की गई। यह आशंका व्यक्त की गई कि ऐसे मामले हो सकते है जहाँ कर्मचारियो पर यह दबाव डाला जा सकता है कि वे अपनी मजदूरी भुगतान के केवल इन वैकल्पिक तरीकों द्वारा ही स्वीकार करें। हालांकि कर्मचारियो के लिए इन तरीको द्वारा मजदूरी लेना अनिवार्य नही है। केन्द्रीय सरकार ने प्रशासनिक मन्त्रालयो के माध्यम से केन्द्रीय सरकार के सभी उपक्रमो एवं सभी राज्य सरकारो को निर्देश जारी करके इस प्रकार की आशकाओ को दूर करने और इस प्रकार की सम्भाव्य घटनाओ को रोकने के लिए तथा यह सुनिश्चित करने के लिए तत्काल कार्यवाही की गई है कि सशोधित अधिनियम मे परिकल्पित मजदूरी की वैकल्पिक प्रणालियो को किसी प्रकार का दबाव न डालकर केवल श्रमिको की सलाह और सहमति से शिक्षा तथा अनुरोध की प्रक्रिया द्वारा अपनाया जाता है। बैंकिंग विभाग से भी अनुरोध किया गया है कि वह जहाँ तक सम्भव हो सके, यह सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक कार्यवाही करे कि चैक और/या कर्मचारियों के बैंक लेखो मे उनकी मजदूरी भुगतान की व्यवस्था करने वाले नए विधान को लागू करने के लिए श्रमिको के लिए विशेषकर खनन क्षेत्रों मे पर्याप्त बैंकिंग सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं।"

(ड) बाल श्रमिक (निषध व नियमन) विधेयक, 1986

लक्ष्य के कारण

यह विधेयक 1986 का 31वाँ विधेयक है। इसके द्वारा कुछ विशेष प्रकार की नौकरियों मे 14 वर्ष व 15 वर्ष से कम आयु के बच्चो को रोजगार देना निषिद्ध या नियमित किया गया है। पूर्व निर्मित कई कानूनो म ऐसे प्रावधान तो थे किन्तु कार्य विधि नही प्रदान की गई थी। अत इस कानून के द्वारा बाल श्रमिको की कार्य दशा का नियमन किया गया है जिससे उनका शोषण न किया जा सके।

विधेयक के मुख्य उद्देश्य

(1) विशेष प्रकार के कामो से उन बच्चो के रोजगार का निषेध जो 14 वर्ष से कम आयु के हैं।

(2) नौकरी या प्रक्रियाओं में प्रबन्ध सुधार व निर्णय की कार्यविधि की स्थापना।

(3) विशेष रोजगार मे बाल श्रमिको की कार्य शर्तों पर निर्णय।

(4) बाल श्रमिको सम्बन्धी नियमो के उल्लंघन पर दण्ड की व्यवस्था।

(5) विभिन्न कानूनो मे 'बच्चो' की परिभाषा में एकरूपता स्थापित करना।

कानून का प्रवर्तन—विधेयक के प्रावधान तुरन्त लागू होंगे। केवल भाग 3 के प्रावधान तभी लागू हो सकेंगे जब केन्द्र सरकार बजट मे विभिन्न राज्यों के लिए इसकी घोषणा कर दे।

परिभाषाएँ—विधेयक की धारा 2 मे सरकार, बच्चा, दिन आदि शब्दों को परिभाषित किया गया है। 'बच्चा' उसे समझा जाएगा जिसने अपनी आयु के 14 वर्ष पूरे नही किए हैं।

बाल श्रमिकों को रोजगार देना निषिद्ध—धारा 3 बच्चों के रोजगार को निषिद्ध करती है। निषेध के क्षेत्र विधेयक की अनुसूची 'क' व 'ख' मे वर्णित हैं। सक्षेप मे यह परिवहन रेलवे यार्ड व गोदामो मे विशेष कार्यों से सम्बन्धित है। सरकार की अनुमति से तकनीकी सलाहकार समिति अनुसूची के कार्य क्षेत्रों का नियमन कर सकेगी यह भी प्रावधान विधेयक मे दिया गया है।

बच्चों के काम की शर्तों का नियन्त्रण—(i) विधेयक के भाग 3 मे इस सम्बन्ध मे प्रावधान किए गए हैं। इसमे काम घण्टे 6 तक निर्धारित किए गए हैं जिनमें उसके विश्राम तथा प्रतीक्षा का समय भी सम्मिलित है। 3 घण्टे के बाद 1 घण्टा अनिवार्य विश्राम दिया जाएगा। (ii) रात्रि में 7 बजे से सुबह [illegible] के मध्य रोजगार निषिद्ध है। (iii) ओवर टाइम या एक ही दिन में एक से अधिक प्रतिष्ठान मे काम करना निषिद्ध है। (iv) साप्ताहिक छुट्टी (सप्ताह मे एक बार) अनिवार्य होगी। प्रत्येक प्रतिष्ठान इसे उपयुक्त स्थान पर प्रदर्शित करेगा।

प्रतिष्ठानों द्वारा सूचना—ऐसे सभी प्रतिष्ठान जहाँ बच्चे कार्यरत हैं सम्पूर्ण विवरण पदाधिकारी को भेजेंगे। यह 30 दिन में सूचित करना आवश्यक होगा। यह नियम ऐसे प्रतिष्ठानों पर लागू नही होगा जो स्कूल में सरकारी अनुमति से या परिवार के सदस्यो द्वारा चलाया जाता है।

आयु सम्बन्धी विवाद—चिकित्साधिकारी द्वारा प्रमाण पत्र मे ऐसे विवाद निर्धारित होंगे। प्रत्येक प्रतिष्ठान बाल श्रमिक सम्बन्धी विवरणिका प्रत्येक समय निरीक्षक के निरीक्षण हेतु रखेगा।

स्वास्थ्य सम्बन्धी—नियम/उपनियम बनाए जा सकेंगे जो समय-समय पर ऐसे प्रतिष्ठानो पर लागू होंगे। इन नियमों मे धूल, धुआँ, सफाई प्रदूषण व अन्य खतरों से निवारणों हेतु प्रबन्धो के नियम निर्धारित किए जाएँगे।

दण्ड का प्रावधान—विधेयक के भाग–4 मे दण्ड का प्रावधान है—(i) धारा 3 की व्यवस्था (रोजगार निषेध) के उल्लघन पर (न्यूनतम 3 माह की कैद जिसे 1 वर्ष तक बढाया जा सकता है तथा न्यूनतम 10,000 रुपये अर्थदण्ड जिसे 20,000 रुपये तक बढाया जा सकता है) दण्ड का प्रावधान है। (ii) अपराध की पुनरावृत्ति पर न्यूनतम 6 माह की कैद (जिसे 2 वर्ष तक बढाया जा सकता है) का प्रावधान है। (iii) उपबन्धित सूचना देना या विवरणिका रखने मे चूक करने पर या गलत विवरण देने पर 1 माह तक की कैद तथा 10,000 रुपये के अर्थदण्ड या दोनो से दण्डित किए जाने का प्रावधान है।

कार्यविधि—(i) कोई व्यक्ति, पुलिस अधिकारी या इन्सपेक्टर किसी भी अपराध की शिकायत सम्बन्धित क्षेत्राधिकार के मजिस्ट्रेट से कर सकेगा। (ii) आयु के लिए चिकित्साधिकारी का प्रमाण पत्र तथा तथ्य के लिए बच्चा स्वय सक्षम गवाह हो सकेगा। (iii) मामले की सुनवाई प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट करेगे। (iv) विधेयक द्वारा नियुक्त इन्सपेक्टर भारतीय दण्ड सहिता मे वर्णित 'सरकारी नौकर' समझा जाएगा।

नियम बनाने का अधिकार—गजट मे अधिसूचित कर उपयुक्त सरकार नियम बनाने को अधिकृत है।

अन्य कानूनो पर प्रभाव—इस विधेयक के द्वारा

(अ) बच्चो को रोजगार कानून, 1938 रद्द कर दिया गया है।

(ब) निम्न कानूनो को सशोधित किया गया है—

(i) न्यूनतम वेतन कानून, 1948 की धारा 2;

(ii) बागान श्रमिक कानून, 1951 के भाग 2 धारा (क) व (ग), भाग 24, भाग 26,

(iii) व्यापारिक जहाजरानी कानून, 1958 का भाग 109,

(iv) मोटर परिवहन कर्मचारी कानून, 1961 के भाग 2 की धारा 'क' व 'ग'।

समीक्षा

इस विधेयक द्वारा बालश्रम का निषेध करने के साथ-साथ नियमन भी किया गया है। अर्थात् जिन उद्योगो, संस्थानो या कार्यों मे बाल श्रमिको को कार्य करने की अनुमति है उनमे कार्य की दशाएँ व शर्तें निश्चित कर दी गई हैं।

विधेयक की इसी आधार पर आलोचना की गई है कि यह बाल श्रम को पूर्ण निषिद्ध करने के स्थान पर उसे प्रोत्साहित करेगा बल्कि यहाँ तक कहा जा रहा है कि एक कुरीति के उन्मूलन के स्थान पर इसका नियमन कर दिया गया है। यह आलोचना उचित नही है। बाल श्रम को पूर्ण निषिद्ध किया भी नही जा सकता क्योकि एक सीमा के अन्तर्गत लोगो की परिस्थितियो के अनुकूल उनके जीवन यापन हेतु पारिश्रमिक प्राप्त करने से उन्हे वचित कर देना अव्यावहारिक ही नही

अनुचित भी है। फिर बच्चो को उनकी आयु के अनुरूप कार्य दशाओ को नियमित कर देना भी इस विधेयक का सफल प्रयास हो सकता है।[1]

कृषि उद्योग में न्यूनतम मजदूरी

आपात् स्थिति की घोषणा और 20 सूत्री कार्यक्रम आरम्भ किए जाने के बाद तथा श्रम मन्त्री सम्मेलन (जुलाई, 1975) के 26वें अधिवेशन मे लिए गए निर्णय के अनुसरण मे लगभग सभी राज्यो ने 1976 के दौरान या उसके बाद कृषि मे न्यूनतम मजदूरी दरो में संशोधन किया। असम और महाराष्ट्र ने संशोधन करने के लिए आवश्यक कार्यवाही करना प्रारम्भ कर दिया। पश्चिम बगाल और पजाब मे न्यूनतम मजदूरी दरो को उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के साथ लिंक करने की पद्धति है और बिहार ने खाद्यान्न की मात्रा के अनुसार मजदूरी दरें अधिसूचित की हैं, जिससे कीमतो मे वृद्धि के कारण मजदूरी दरो का क्षरण नही होता। केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले कृषि उद्योग के रोजगार के सम्बन्ध में भी सितम्बर, 1976 मे न्यूनतम मजदूरी दरें अधिसूचित की। संशोधित मजदूरी दरें भिन्न-भिन्न क्षेत्रो के अनुसार निम्न प्रकार रखी गई[2]—

अकुशल श्रमिक	4.45 रुपये से 6.50 रुपये प्रतिदिन
अर्द्धकुशल श्रमिक	5.56 रुपये से 8.12 रुपये प्रतिदिन
कुशल-लिपिक श्रमिक	7.12 रुपये से 10.40 रुपये प्रतिदिन
उच्च कुशलता प्राप्त श्रमिक	8.90 रुपये से 13.00 रुपये प्रतिदिन

उल्लेखनीय है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 की दूसरी अनुसूची मे ही कृषि श्रमिको की न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण सम्मिलित है। कृषि में न्यूनतम मजदूरी दरो का निर्धारण अधिकांशतः राज्य सरकारो द्वारा किया जाता है। इस प्रकार की शिकायतें की जाती रही हैं कि कुछ मामलों मे मजदूरी की दरें काफी कम हैं। अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी दरो के लागू न किए जाने के बारे मे भी शिकायतें हुई हैं। केन्द्र सरकार राज्य सरकारो को सलाह देती रही है कि वे पुनर्रीक्षण का काम करें ताकि मजदूरी की उचित दरें सुनिश्चित हो और साथ ही उनको कारगर ढग से लागू करने के लिए कार्यवाही भी की जाए। केन्द्रीय सरकार के फार्मों, सैनिक फार्मों तथा बहुत सी अन्य सस्थाओ से सम्बन्धित फार्मों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी गई है।

वस्तुतः औद्योगिक श्रमिको की तुलना में कृषि श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना बड़ा कठिन है, क्योंकि—

1. कृषि श्रमिको के मजदूरी सम्बन्धी आंकडे सरलता से उपलब्ध नही हो पाते,

1 प्रतियोगिता विकास : फरवरी, 1987, पृष्ठ 30.

2 श्रम मन्त्रालय, भारत सरकार : वार्षिक रिपोर्ट 1976-77.

2 कृषि श्रमिकों के मजदूरी के कार्य के घण्टे निश्चित करने कठिन हैं क्योंकि अलग-अलग कार्य के लिए अलग-अलग समय लग जाता है,

3. मजदूरी का भुगतान ग्रामीण क्षेत्रों में नकदी के साथ-साथ वस्तु में भी किया जाता है,

4 भारतीय किसान अशिक्षित हैं अतः मजदूरी, उत्पादन, कार्य के घण्टे आदि के सम्बन्ध में रिकार्ड नहीं रख सकते, एवं

5. इस सम्बन्ध में ऐसे संस्थानों की भी कमी है जो कृषि श्रमिकों की मजदूरी सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्र करने का अभियान चलाएँ।

देश में कृषि श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने में एक बड़ी बाधा इसलिए आती है कि अधिकांश जोतें छोटी हैं जिन पर न्यूनतम मजदूरी अधिनियम लागू करना अवांछनीय है। दूसरी ओर बड़ी जोतों पर इसे लागू करने से जोतों के अपखण्डन का भय रहता है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को कृषि-क्षेत्र में व्यावहारिक बनाने के लिए आर्थिक जोतों और कृषि श्रमिकों के संगठित होने की योजना पर तेजी से अमल करना होगा।

नए बीस-सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत कार्यान्वयन[1]

नए बीस-सूत्री कार्यक्रम की मद संख्या 5 के कार्यान्वयन के अन्तर्गत कृषि में नियोजन के लिए न्यूनतम मजदूरी सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम और लक्षद्वीप को छोड़कर शेष सभी राज्य सरकारों व संघ-राज्य क्षेत्रों ने निर्धारित की है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 अभी सिक्किम में लागू किया जाना है लेकिन अरुणाचल प्रदेश में न्यूनतम मजदूरी को प्रशासन के आदेशों के अधीन निर्धारित किया गया है। यह सूचित किया गया है कि मिजोरम और लक्षद्वीप में कृषि श्रमिकों की संख्या नगण्य है, इसलिए वहाँ न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना अनिवार्य नहीं समझा गया है।

जुलाई, 1980 में हुए श्रम मन्त्री सम्मेलन के 31वें सत्र में सिफारिश की गई कि कम से कम दो वर्षों में एक बार या उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में 50 प्वाइंटों की वृद्धि होने पर इनमें से जो भी पहले हो, न्यूनतम मजदूरी की पुनरीक्षा की जानी चाहिए और यदि आवश्यक हो तो उनमें संशोधन किया जाना चाहिए। तदनुसार राज्य सरकारों व संघ-राज्य क्षेत्र प्रशासनों से अनुरोध किया गया कि वे कृषि में नियोजन के सम्बन्ध में न्यूनतम मजदूरी की पुनरीक्षा करने के लिए आवश्यक कदम उठाएँ। *इस मामले की तेजी से पैरवी भी की गई। इन प्रयासों के फलस्वरूप* 1980 से 27 राज्य सरकारों/संघ-राज्य क्षेत्र प्रशासनों ने न्यूनतम मजदूरी दरों में संशोधन किया है। केन्द्रीय सरकार ने कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में 1980 से न्यूनतम मजदूरी दरों में पाँच बार संशोधन किया है। इन दरों में अन्तिम बार संशोधन 12 फरवरी, 1985 को किया गया था।

1 भारत सरकार, श्रम मन्त्रालय: वार्षिक रिपोर्ट 1985-86, पृष्ठ 5.

कृषि में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 को बेहतर और प्रभावी ढंग से लागू करने के उद्देश्य से, मन्त्रालय के वरिष्ठ अधिकारी विभिन्न राज्यों का दौरा कर रहे हैं ताकि न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने व उनमे संशोधन करने तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 को लागू करने के लिए की गई व्यवस्था का गहन अध्ययन किया जा सके और उनमें सुधार करने के उपायों के सुझाव दिए जा सकें। श्रम मंत्रालय के अधीन श्रम ब्यूरो भी कुछ राज्यों में कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में न्यूनतम मजदूरी को लागू करने में हुई प्रगति सम्बन्धी मूल्यांकन अध्ययन कर रहा है।

श्रम सम्बन्धी 20-सूत्री कार्यक्रम के कार्यान्वियन की पुनरीक्षा करने के लिए श्रम सचिव की अध्यक्षता में अन्तर्विभागीय बैठकें नियमित रूप से की जाती हैं। इस बैठक में योजना आयोग, गृह मन्त्रालय, ग्रामीण विकास विभाग और तीन राज्यों के प्रतिनिधियों को बारी-बारी से आमंत्रित किया जाता है। अब तक ऐसी 19 बैठकें की जा चुकी हैं।

चार राज्यों अर्थात् राजस्थान, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और मणिपुर में कृषि में न्यूनतम मजदूरी दरों को लागू करने के लिए राज्यों में प्रवर्तन तन्त्र सुदृढ़ करने हेतु प्रायोगिक आधार पर केन्द्र द्वारा सचालित एक योजना शुरू की जा चुकी है। इस योजना में उन ब्लाकों में 200 ग्रामीण श्रमिक निरीक्षक नियुक्त करने की परिकल्पना की गई है जिनमें अनुसूचित जाति/अनसूचित जनजाति के 70 प्रतिशत से अधिक कृषि श्रमिक हैं। इस योजना को धीरे-धीरे अन्य राज्यों में लागू करने का प्रस्ताव है।

ग्रामीण श्रमिकों की स्थिति

भारत सरकार के वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ 'भारत 1985' में ग्रामीण श्रमिकों के सम्बन्ध में जो विवरण दिया गया है, वह इस प्रकार है—

समय-समय पर किए गए विभिन्न अध्ययनों और ग्रामीण श्रमिकों से की गई पूछताछ से पता चला है कि विभिन्न कानूनी और अन्य योजनाओं का लाभ ग्रामीण इलाकों तक नहीं पहुँचा है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण श्रमिकों में संगठन की कमी है। सरकार ने महसूस किया कि ग्रामीण श्रमिक उचित ढंग से शिक्षित और संगठित होकर ही आर्थिक विकास से सामाजिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। अतः ग्रामीण श्रमिकों को संगठित करने के लिए खण्ड स्तर पर मानव संयोजकों की नियुक्त करने के लिए एक योजना तैयार की गई है। राज्य सरकारें इस योजना को लागू कर रही हैं और प्रत्येक संयोजक को 200 रुपये प्रतिमाह मानदेय और 50 रुपये प्रतिमाह यात्रा भत्ता दिया जाता है। संयोजक श्रमिकों को उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में शिक्षित करते हैं और उन्हें बताते हैं कि संगठन का क्या महत्त्व है। इससे श्रमिकों को सहकारी समितियों, मजदूर संघों और अन्य प्रकार के संगठन कायम करने में मदद मिलती है।

1983-84 के दौरान यह योजना 9 राज्यों के 595 खण्डों पर लागू कर दी गई। इनमें से 415 खण्डों में यह योजना पहले ही लागू कर दी गई थी।

1984-85 के दौरान 14 राज्यो के 1,000 खण्डो मे यह योजना लागू की गई है । इसमे पहले वाले खण्ड भी शामिल है । अब तक 777 मानद ग्रामीण संयोजक नियुक्त किए गए है ।

सरकार ने अब तक चार अखिल भारतीय ग्रामीण श्रमिक सर्वेक्षण किए हैं। पहले दो सर्वेक्षण, जिन्हे खेतिहर श्रमिक सर्वेक्षण के नाम से जाना जाता है, 1950-51 तथा 1956-57 मे किए गए। अन्य सर्वेक्षण, जिन्हे ग्रामीण श्रमिक सर्वेक्षण के नाम से जाना जाता है, 1963-65 मे तथा 1974-75 मे किए गए। अन्तिम दो सर्वेक्षणो का कार्यक्षेत्र बढा दिया गया तथा उसमे सभी ग्रामीण क्षेत्रो के घरेलू श्रमिक भी शामिल कर लिए गए।

ग्रामीण श्रमिक सर्वेक्षण के मुख्य उद्देश्य के अन्तर्काल मे ग्रामीण खेतिहर मजदूरो के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की तुलनात्मक सारणी तैयार करना और कृषि/ग्रामीण घरेलू श्रम की महत्वपूर्ण आर्थिक-सामाजिक विशेषताओ के विश्वसनीय तथा अद्यतन अनुमान तैयार करना तथा उनके प्रवाह एव परिवर्तन का अध्ययन करना है। इन सर्वेक्षणो मे एकत्रित आंकडे जनसांख्यकीय सरचना, रोजगार तथा बेरोजगारी की सीमा, आय, घरेलू उपभोग खर्चे, ऋणो आदि के साथ-साथ नवीनतम सर्वेक्षण खेतिहर मजदूरो मे शिक्षा, मजदूर सघ तथा अन्य न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (तथा इसके अधीन निश्चित की गई मजदूरी) से सम्बन्धित हैं।

जून, 1975 मे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 29वें दौर के साथ दूसरे ग्रामीण सर्वेक्षण के क्षेत्रगत कार्य का समाकलन किया गया। क्षेत्रो से प्राप्त सर्वेक्षणो की छँटनी के पूरा हो जाने पर सारणियाँ बनाने का काम शुरू किया गया। इनके आधार पर सभी रिपोर्टें (तीन सक्षिप्त तथा चार विस्तृत) जारी कर दी गई है।

ग्रामीण श्रमिक सर्वेक्षण का एन. एम एस ओ. के प्रत्येक पाँच साल मे परिवर्तित रोजगार-बेरोजगार सर्वेक्षण के साथ समाकलन कर दिया गया है। तदनुसार रोजगार-बेरोजगार सर्वेक्षण, (32वां चक्र जुलाई, 1977 से जून, 1978 तक) मे ग्रामीण खेतिहर तथा घरेलू श्रमिको से सम्बन्धित लगभग सभी महत्वपूर्ण पहलू शामिल थे जो ग्रामीण श्रमिक सर्वेक्षण 1974-75 मे आते थे। इस दौरान सकलित आंकडो पर कार्य चल रहा है। 1983 के दौरान (एन एस एस ओ. का 38वां चक्र) सम्पूर्ण प्रबन्ध के अधीन अनुवर्ती चक्र चल रहा है।

कृषि श्रमिकों की कम मजदूरी के कारण

देश के सभी राज्यो मे कृषि मजदूरी की स्थिति दयनीय है। कृषि श्रमिको को कम मजदूरी मिलने के प्रधान कारणो को डॉ सक्सेना ने इस प्रकार गिनाया है—

(i) बच्चो को मजदूरी न करने के सम्बन्ध मे किसी सन्नियम का अभाव,

(ii) जमीदार, जागीरदार, मालगुजारी, इत्यादि भू-पतियो द्वारा ऋण का देना और उनको जीवन भर दबाए रखना,

(iii) कृषि श्रमिको के सगठन के अभाव और उनका अलग-अलग गाँवो में बिखरा होना,

(iv) उनको केवल कृषि के मौसम मे ही मजदूरी मिलना,

(v) छोटे वर्ग मे जन्म लेने के कारण सामाजिक दबाव, तथा

(vi) कृषि श्रमिको मे अशिक्षा, अज्ञानता एव रूढिवादिता।

कृषि श्रमिकों का निम्न जीवन स्तर और उनमें सुधार की आवश्यकता

भारत मे कृषि श्रमिको का जीवन-स्तर बहुत नीचा है। निम्न आय और ऋणग्रस्तता के कारण भारतीय कृषि श्रमिक सदियो से दयनीय जीवन बिता रहे हैं। कृषि-श्रम, जो मुख्यतः आर्थिक एव सामाजिक दृष्टि मे पिछड़े वर्गों द्वारा उपलब्ध कराया जाता है, निम्नलिखित चार वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

(क) जमीदारो मे बँधे हुए भूमिहीन श्रमिक,

(ख) व्यक्तिगत रूप मे स्वतन्त्र, किन्तु पूर्णतः औरो के लिए काम करने वाले भूमिहीन श्रमिक,

(ग) छोटे किसान जिनके अधीन अत्यन्त छोटे-छोटे खेत है, ये अपना अधिकांश समय औरों के लिए काम करने मे लगाते हैं, और

(घ) वे किसान जो आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त जोतो के स्वामी हैं किन्तु जिनके एक-दो लडके या आश्रित अन्य समृद्ध किसानो के यहाँ काम करते हैं।

जैसा कि रुद्रदत्त एव सुन्दरम् ने लिखा है कि—

इनमे प्रथम वर्ग के श्रमिकों की स्थिति बहुत कुछ दासो या गुलामों की सी है। इन्हे बन्धुआ श्रम (Bonded Labour) भी कहते है। इन्हे आम तौर पर मजदूरी पैसे के रूप मे नही, वस्तु के रूप मे मिलती है। इन्हे मालिको के लिए काम करना पड़ता है। ये अपने स्वामी की नौकरी छोड़कर अन्य स्वामी के अधीन काम करने के लिए स्वतन्त्र नही होते। इन्हें बेगार भी करनी पड़ती है। कभी-कभी इन्हें अपने स्वामियो को नकद धन और मुर्गे, बकरियाँ आदि भी भेंट करने पड़ते हैं। उपर्युक्त वर्गों मे, दूसरे और तीसरे वर्ग के श्रमिको का काफी महत्त्व है। भूमिहीन श्रमिको की समस्या सर्वाधिक विकट समस्या है।

कृषि श्रमिकों के निम्न जीवन-स्तर का चित्र खींचते हुए डॉ. सक्सेना ने लिखा है कि—एक समय रूखा-सूखा खाने वाले, टूटी-फूटी साधारण कुटिया में निवास करने वाले, ऋणग्रस्त एव कई घण्टो तक अस्वस्थ परिस्थितियो मे काम करने वाले श्रमिकों में हम जीवन बसर करने की ही आशा मात्र कर सकते हैं। कृषि श्रमिको के पारिवारिक बजटो के अध्ययन से स्पष्ट पता लगता है कि मात्रा एव गुण दोनों ही दृष्टियो से उनका भोजन अत्यन्त निम्न कोटि का होता है। अपनी आय का 75% ये भोजन पर ही व्यय कर देते हैं। ऐसी परिस्थितियों मे आरामदायक पदार्थों पर व्यय करना उनके लिए आकाश के चाँद को पृथ्वी पर लाने के

समान असम्भव है। विलासिता के पदार्थों का उपभोग उनके लिए स्वप्न मात्र है। 1980-81 मे कृषि मजदूरी परिवार का औसत वार्षिक उपभोग व्यय 618 रुपये था। परिवार की औसत वार्षिक आय के 433 रुपये होने के फलस्वरूप प्रत्येक परिवार को 181 रुपये का घाटा रहा जो बहुत कुछ पिछली बचतो तथा ऋणों आदि से पूरा हुआ।

कृषि श्रमिकों के निम्न जीवन-स्तर के कारण

कुल मिलाकर कृषि श्रमिको के निम्न जीवन-स्तर अथवा उनकी हीन आर्थिक दशा के कारण ये हैं—

1. अधिकांश कृषि श्रमिक सुदीर्घकाल से उपेक्षित और दलित जातियों के सदस्य हैं। निम्न सामाजिक स्थिति के कारण भी दबंग बनने का साहस नही रहा और उनकी स्थिति सदियों से निरीह मूक पशुओं की सी रही है।

2. कृषि श्रमिक अनपढ़, अजागरूक और असगठित है। वे अपने को श्रम सघो के रूप मे सगठित नही कर पाए हैं। फलस्वरूप श्रम सघो के लाभो से वचित हैं और मजदूरी के सवाल को लेकर सौदेबाजी नही कर पाते।

3 कृषि श्रमिक ऋण ग्रस्त हैं। 'कृषि श्रम जाँच समिति' के अनुसार भारत मे कृषि श्रमिको के लगभग 45% परिवार ऋण ग्रस्त हैं और प्रति परिवार औसत ऋण का अनुमान 105 रुपये है। समिति के अनुमान के अनुसार कृषि श्रमिको का कुल ऋण यद्यपि लगभग 8 लाख रुपये है, किन्तु वास्तव में उनकी ऋणग्रस्तता इससे कई गुना अधिक है।

4. कृषि श्रमिको को पूरे वर्ष लगातार काम नही मिल पाता। द्वितीय श्रम जाँच के अनुसार कृषि श्रमिको को साल में 197 दिन ही काम मिल पाता है, और शेष समय उन्हे बेकार रहना पडता है। ग्रामीण क्षेत्रो मे अल्प रोजगार के अलावा बेकारी भी है। अल्प रोजगार और बेकारी दोनो भारतीय कृषि श्रमिको की कम आय तथा हीन आर्थिक स्थिति के लिए उत्तरदायी है।

5. ग्रामीण क्षेत्रो मे गैर-कृषि व्यवसायो की कमी भी श्रमिको की कम मजदूरी तथा हीन आर्थिक दशा का मुख्य कारण है। गाँवो मे आबादी बढ़ने के साथ-साथ भूमिहीन श्रमिकों की सख्या तेजी से बढ रही है जबकि गैर-कृषि व्यवसायो की कमी और भौगोलिक गतिशीलता मे कमी के कारण भूमि पर आबादी का दबाव अधिकाधिक होता जा रहा है।

कृषि श्रमिको की दशा सुधारने के लिए सुझाव

कृषि श्रमिकों की दशाओ मे सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। इस दिशा मे विभिन्न क्षेत्रो मे समय-समय पर विभिन्न सुझाव दिए जाते रहे है, जिनमे से कुछ मुख्य ये है—

1 कृषि दासता, जो भारत के बहुत से भागो मे विद्यमान है, समाप्त की जानी चाहिए। बन्धुआ श्रम के उन्मूलन और 20 सूत्री आर्थिक-कार्यक्रम के अधीन

जो उपाय किए जा रहे हैं उनमे कृषि दासता समाप्त होने के आसार काफी बढ गए हैं।

2 कृषि महिला श्रमिकों को सरक्षण दिया जाना आवश्यक है। इग्लैण्ड, रूस, अमेरिका, कनाडा आदि विकसित देशो मे कृषि महिला श्रमिकों के कल्याण के लिए अनेक वैधानिक व्यवस्थाएँ की गई हैं और भारत मे भी उन्ही आधारो पर व्यवस्था होनी चाहिए। जैसा कि डॉ सक्सेना ने लिखा है कि बालक के जन्म से दो माह पूर्व और 1 माह बाद तक महिला श्रमिको से कोई काम नहीं लिया जाना चाहिए। बच्चे को दूध पिलाने तथा खिलाने के लिए बीच में कम से कम आधे घण्टे का अवकाश देना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रो मे बाल कल्याण एव प्रसूति केन्द्रों की सख्या मे भी वृद्धि होनी चाहिए। यही नही गर्भ धारण के काल मे सरकार की ओर से नि:शुल्क चिकित्सा तथा कुछ आर्थिक सहायता की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

3 कृषि बाल श्रमिको का शोषण रोकने के लिए उन्हे समुचित सरक्षण दिया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध मे डॉ सक्सेना ने ये सुझाव दिए हैं–(i) कठिन कार्यों के बाल श्रम के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। इसी प्रकार खतरे के कामों मे भी बाल श्रम का उपयोग नही होना चाहिए, (ii) बच्चे को सप्ताह मे एक दिन का अवकाश दिया जाना चाहिए, (iii) शिक्षा सम्बन्धी व्यवस्था ऐसी हो कि 6 वर्ष से ऊपर की आयु वाले बच्चो के लिए पढना अनिवार्य हो, (iv) बच्चो के लिए स्कूलो मे एक निश्चित उपस्थिति अनिवार्य होनी चाहिए, (v) स्कूलो के पढाई के घण्टो मे बच्चो को काम पर लगाए जाने का पूरा प्रतिबन्ध होना चाहिए, (vi) फसल बोने और काटने के समय ग्रामीण पाठशालाओं व स्कूलो को बन्द कर देना चाहिए।

4 कृषि क्षेत्र मे न्यूनतम मजदूरी नियमो को बढिया ढग से लागू किया जाना चाहिए। पंजाब को छोडकर देश के अन्य भागों मे कृषि श्रमिको को बहुत कम मजदूरी मिलती है। केवल न्यूनतम मजदूरी अधिनियम बना देना ही काफी नही है, उसे लागू करने के उपाय प्रभावी रूप मे किए जाने चाहिए। यह बात ध्यान मे रखनी होगी कि अधिकाँश राज्यो मे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम बन चुके हैं किन्तु उन्हे उचित रूप से लागू करने मे अनेक कठिनाइयाँ हो रही है।

5. भूमिहीन कृषि श्रमिकों को पुनः बसाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए। जैसा कि रुद्रदत्त एवं सुन्दरम् ने लिखा है—कृषि श्रमिकों को भूमि देना आवश्यक है। इसके अनेक ढग हो सकते हैं, जिनमें एक यह है कि नई सुधारी भूमि केवल बाँट दी जाए। दूसरा उपाय यह है कि विद्यमान भूमि को ही सब लोगों मे फिर बाँट दिया जाए। ऐसा स्वेच्छा से ही हो सकता है और बलात् भी। भू-दान आन्दोलन का उद्देश्य भू-पतियों मे स्वैच्छिक रूप में जमीन दिलाना है। अन्य उपाय है—जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण और

सरकारी खेती। इन उपायो से भूमिहीन श्रमिक भूमि प्राप्त करके अपनी आर्थिक दशा सुधार सकते है।

6. कृषि कार्य बढाया जाना चाहिए और इसके लिए सघन खेती तथा सिंचाई विस्तार दोनो की अत्यन्त आवश्यकता है। इन उपायो से दोहरी फसल होने लगेगी फलस्वरूप श्रमिको को पूरे वर्ष काम मिल सकेगा। श्रमिक की उत्पादिता मे भी वृद्धि होगी जिससे उसकी मजदूरी भी बढेगी। ग्रामोद्योगो का प्रसार भी बहुत आवश्यक है ताकि ग्रामीण जनता को काम मिल सके।

7 सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमो का विस्तार किया जाना चाहिए। सरकार को गाँवो मे अपनी परियोजनाएँ इस ढग से अमल मे लानी चाहिए कि रीते मौसम (Off season) मे खाली श्रमिको को काम मिल सके।

8. सरकारी खेती का विकास किया जाना चाहिए ताकि छोटे-बडे किसानो मे पाई जाने वाली विषमता मिट सके।

खेतिहर मजदूरों पर सरकारी कार्यनीति और कार्यान्वयन की एक समीक्षा

भारतीय अर्थव्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता गाँवो मे रहने वाली एक बहुत बडी जनसख्या है जो मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर रहती है। शहरो के प्रति बढते ग्रामीण अनुराग के बावजूद आज भी एक बडा हिस्सा गाँवो में रहता है। ग्रामीण समाज मे एक बहुत बडा अनुपात ग्रामीण श्रमिक का होता है जिसमे से अधिकांशतः खेतिहर मजदूर होते है। यह श्रमिक आमतौर से गाँवो के निम्न व कमजोर वर्गों के होते है। ये लोग फसलो के उत्पादन का कार्य करते हैं।

समय के साथ इनकी सख्या मे कोई गिरावट नही आई अपितु यह बढती ही चली गई। 1961 मे देश मे 3 15 करोड खेतिहर मजदूर थे जो कि 1971 मे 4 75 करोड तक पहुँच गए अर्थात् 10 वर्षों मे 1 60 करोड खेतिहर मजदूरो मे वृद्धि हुई। इसके बाद 1981 मे यह सख्या बढकर 5 4 करोड तक पहुँच गई। हालांकि यह सख्या बहुत है पर सन्तोष की बात यही रही कि बढोतरी की संख्या 1961–71 की अवधि से काफी कम हो गई। वैसे इसमे एक बडा योगदान 1971 की जनगणना मे ली गई श्रमिक परिभाषा का भी रहा। 1961 मे अपने पुरुषो के साथ खेतो पर काम करने वाली महिलाओ को कृषक वर्ग मे रखा गया था जबकि 1971 मे उन्हे मूल रूप से गृहिणी माना गया जिनका कि सहायक व्यवसाय कृषि था। फिर भी हमे इस बात को नही भूलना चाहिए कि 1971 से 1981 के मध्य जनसख्या मे 24 71 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जनसख्या 54·79 करोड से बढकर 68 79 करोड तक जा पहुँची।

इसके बाद आते है बहुत छोटे किसान, जिनकी आय का प्रमुख साधन कृषि जोतो के बहुत छोटे होने के कारण मजदूरी है। अतः वे दूसरे की भूमि पर

मजदूरी करते हैं या दूसरों की भूमि को ठेके पर लेकर खेती करते हैं या बटाई पर खेती करते हैं। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने उन्हें भी खेतिहर मजदूर माना है। इनकी संख्या 1961 में 9.95 करोड़ थी जो 1971 में घटकर 7.82 करोड़ रह गई पर अगले दस वर्षों में उसमें फिर वृद्धि हुई और यह संख्या 9.14 करोड़ पर जा पहुँची।

हालांकि यह भारत की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा है पर उसमें अभी वे लोग शामिल नहीं हैं जो इन पर आश्रित हैं। सो कुल मिलाकर इनकी संख्या बहुत ही अधिक हो जाती है। इसके बावजूद ये आज अत्यन्त गरीबी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इनकी स्थिति बहुत ही कमजोर व दयनीय है। जिन्दगी के हर क्षेत्र में इन्हें भारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। देश की पिछड़ी अर्थव्यवस्था का यह अत्यन्त पिछड़ा हुआ हिस्सा है। इनकी समस्याओं का हल ढूंढे बिना देश की अर्थव्यवस्था में सुधार लाना असम्भव है।

आज अगर इनको ध्यान से देखा जाए तो इनके ऊपर समस्याओं का पहाड़ खड़ा हुआ है। बहुत-सी जगह इनकी हालत गुलामों से बदतर होती जा रही है। इनसे जानवरों की तरह काम लेकर अत्यन्त कम मजदूरी दी जा रही है जो कि इन्हें नकद व वस्तुओं के रूप में मिलती है। हालांकि सरकार ने न्यूनतम मजदूरी तय कर रखी है फिर भी इसका पालन बहुत कम लोग ही करते हैं। वैसे अभी हाल ही में स्थायी श्रम समिति ने देश के सभी भागों में समान मजदूरी की बात मान ली है। समिति की दो दिनों तक चली बैठक में अन्तत श्रम राज्य-मन्त्री पी. ए. संगमा ने कहा कि वर्तमान मौजूद श्रम-शक्ति में 10 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र हैं और इस फैसले से उन्हें निश्चित ही लाभ पहुँचेगा। उन्होंने बताया कि न्यूनतम मजदूरी में समानता के लिए क्षेत्र को 6 भागों में बाँटा गया है। केन्द्र सरकार ने राज्यों को न्यूनतम मजदूरी तय करने के सम्बन्ध में कुछ दिशा-निर्देश दिए हैं। केन्द्रानुसार न्यूनतम मजदूरी गरीबी रेखा के ऊपर होनी चाहिए। जिन राज्यों में अभी दरों को नया नहीं किया गया है उन्हें तुरन्त करने को कहा है। साथ ही न्यूनतम मजदूरी कानून को प्रभावी ढंग से लागू करने का निर्देश भी दिया है। किन्तु अब सवाल यही उठता है कि सरकार द्वारा किए गए इस फैसले को आखिर कितनी गम्भीरता से लिया जाता है। केवल मात्र घोषणा करने व निर्देश देने से तो समस्या हल नहीं होती। इस दिशा में जल्दी ही कोई ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

अब आया जाए इन लोगों की कार्यदशाओं पर जो कि बहुत ही ज्यादा असुविधाजनक हैं। बड़ी ही कठिन परिस्थितियों में इन्हें काम करना पड़ता है। कार्य-घण्टे अनिश्चित होते हैं। अवकाश व अन्य सुविधाओं का अभाव रहता है। साथ ही इन लोगों का जीवन स्तर भी काफी नीचा है। ये लोग अपनी आय का 75 प्रतिशत से भी अधिक भाग खाद्य पदार्थों पर ही खर्च कर देते हैं। कपड़े, मकान, चिकित्सा व अन्य सुविधाओं का अभाव तो सदैव ही बना रहता है।

एक और समस्या ऋणग्रस्तता है। अधिकांशत खेतिहर मजदूरो को अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए ऋण लेना पडता है। वैसे आमतौर पर ये लोग ऋण सामाजिक रीति-रिवाजो जैसे विवाह, भोज, जन्मोत्सव इत्यादि को पूरा करने के लिए लेते हैं। इन लोगो मे अधिकांशतः दलित व उपेक्षित जातियो के सदस्य होते हैं जिससे इनकी सामाजिक स्थिति बहुत नीची होती है।

हालांकि स्थिति बुरी है पर इसका तात्पर्य यह नही कि सरकार इनके लिए कुछ नही कर रही है। सरकार ने इनके लिए समय-समय पर विभिन्न प्रकार की योजनाओ व कार्यक्रमो का निर्माण किया है।

आजादी के बाद से ही इस दिशा मे प्रयत्न शुरू हो गए थे। 1951 मे प्रथम खेतिहर श्रम जाँच समिति बनी जिसने ग्रामीण समस्याओ का विस्तृत अध्ययन किया व फसलो के उत्पादन कर रहे व्यक्तियो को खेतिहर मजदूर बताया। 1956–57 मे द्वितीय खेतिहर श्रम जांच समिति ने इस श्रेणी मे उन मजदूरो को भी शामिल कर लिया जो खेती के अतिरिक्त अन्य कार्य जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन, बागवानी इत्यादि करते हैं।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद 1948 मे कृषि-सुधार समिति की सिफारिश के आधार पर प्रथम पचवर्षीय योजना मे मध्यस्थो को समाप्त कर दिया गया। अब तक तो सभी राज्यो मे अधिनियमो के माध्यम से मध्यस्थो का अन्त हो चुका है। फलस्वरूप 2 करोड से अधिक काश्तकार भूमि के स्वयं मालिक बन गए हैं। ये मध्यस्थ देश [redacted] 40 प्रतिशत क्षेत्र मे फैले हुए थे। मध्यस्थो की समाप्ति से काश्तकारो की सामाजिक व आर्थिक स्थिति मे सुधार हुआ है। मध्यस्थो की समाप्ति से लगभग 57 7 लाख हैक्टेयर भूमि को एक करोड काश्तकारो मे बाँटा गया है। मध्यस्थो को भूमि के बदले क्षतिपूर्ति का भुगतान कुछ नकद व कुछ बाण्डो के रूप मे किया गया है। विशेषत छोटे किसानो को नकदी मे भुगतान किया गया। बाण्डो मे 2 5 प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज भी दिया गया है।

कृषि विकास को ध्यान मे रखते हुए भारत मे लगभग सभी राज्यो मे काश्तकारी कानूनो मे सुधार किए गए हैं। उन सुधारो मे भू-स्वामित्व की सुरक्षा लगान मे कमी, स्थायी सुधारो हेतु मुआवजे की व्यवस्था की गई है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे योजना आयोग ने सिफारिश की थी कि अधिकतम लगान कुल उपज का 1/4 या 1/5 भाग तक हो। द्वितीय व तृतीय योजनाओ मे भी इस पर अधिक बल दिया गया। परिणामस्वरूप लगभग सभी राज्यो ने कानून में सशोधन कर लगान की दरें कम कर दी व लगान की अधिकतम दर निश्चित कर दी। सभी राज्यो मे दर एक समान नही है।

जमींदारो के दबाव से ऐच्छिक परित्याग के बहाने काश्तकारो की बेदखली हुई। इस बेदखली को रोकने व भू-धारक को सुरक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न राज्यो द्वारा कानून बना लिए गए व भू-धारक को सुरक्षा प्रदान कर उसे स्थाई स्वामित्व अधिकार प्रदान किया गया। इससे एक तरफ समान सामाजिक वितरण मे सहायता मिली।

दूसरी ओर उत्पादन में भी वृद्धि हुई। लगान के प्रभावी नियमन के लिए काश्तकारों को पट्टेदारी की सुरक्षा प्रदान की गई। द्वितीय योजना में कहा गया कि ऐसे क्षेत्रों में जहाँ भूमि का पुनर्ग्रहण सम्भव नहीं, काश्तकार को भूमि का मालिक बना दिया जाए। काश्तकार को भू-स्वामी बनाने के लिए अनेक प्रकार से व्यवस्था की व सुरक्षा प्रदान करने की दृष्टि से भूमि के पुनर्वितरण को यथासम्भव सीमित रखा गया। इस प्रयत्न से कृषि मजदूर व किसानों को सर्वाधिक लाभ मिला।

भूमि के न्यायपूर्ण वितरण हेतु कृषि जोतों की सीमा का निर्धारण किया गया व इस सीमा निर्धारण से जो अतिरिक्त भूमि प्राप्त हुई उसे भूमिहीन कृषकों तथा बेदखल कृषकों में बाँटा गया।

स्वतन्त्रता के बाद कृषि पुनर्गठन कार्यक्रमों में चकबन्दी भूदान आन्दोलन कानून व्यवस्था व सरकारी कृषि आते हैं। चकबन्दी के अन्तर्गत भूमि के बिखरे हुए टुकड़ों को एकत्रित किया गया। यह हमारी कृषि का मुख्य दोष है। इससे कृषि उत्पादन में बाधा तो पहुँचती ही है साथ ही किसान का समय व श्रम भी बरबाद होता है। स्वतन्त्रता के बाद कानूनी रूप से अनिवार्य चकबन्दी का कार्य कई राज्यों में प्रारम्भ किया गया।

योजना आयोग ने इस बात पर भी जोर दिया कि राज्यों द्वारा भूमि तत्वों तथा अधिकारों का सही रिकार्ड रखा जाना चाहिए तथा राजस्व विभाग के प्रशासन को मजबूत रखना चाहिए। कई राज्यों में भूमि बन्दोबस्त विभाग की स्थापना की गई। योजनाओं में भूमि प्रबन्ध सुधार पर पर्याप्त जोर दिया गया जिसके फलस्वरूप बंजर भूमि के उपयोग उत्तम बीजों व अधिक उपज देने वाली फसलों का प्रयोग बढ़ा।

छोटे-छोटे भूमि के टुकड़ों को मिलाकर संयुक्त खेती करना व इससे वैज्ञानिक उपकरणों व सुविधाओं का प्रयोग अधिक लाभदायक होता है। सरकार ने ऐच्छिक सहकारी खेती को बढ़ावा देने के लिए वित्तीय सहायता, लगान व आयकर में रियायतें दी व एक राष्ट्रीय कृषि सलाहकार बोर्ड का निर्माण किया। पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी कृषि पर अधिक जोर दिया गया।

विभिन्न राज्यों में भी इन्हें काफी प्रोत्साहन मिला। मध्य प्रदेश में दण्डकारण्य विकास अधिकारी ने विस्थापित व्यक्तियों को बसाने के लिए सहकारी कृषि समितियों को संगठित किया। मैसूर राज्य में तुंगभद्रा सिंचाई परियोजना के क्षेत्र में इनका विकास हुआ। आन्ध्र प्रदेश में पूर्वी गोदावरी व कृष्णा जिले में सहकारी कृषि समितियों के विकास के लिए मास्टर प्लान बनाया गया।

भूमिहीन मजदूरों को बसाने हेतु 1951 में आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व भूदान आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। इसमें स्वेच्छा से प्रत्येक भू-स्वामी से 1/6 भूमि दान में माँगी गई। हालाँकि इसमें जो भूमि प्राप्त हुई उसमें से अधिकांश भूमि बंजर, सिंचाई-रहित व झगड़े की है।

जनता पार्टी के विघटन के बाद इन्दिरा गाँधी के सत्तारूढ़ होने पर 20-सूत्री कार्यक्रमों में भूमि सुधारों की जगह राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम व एकीकृत ग्राम

विकास पर जोर दिया गया जिन्हे कि ग्रामीण जनता को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का प्रमुख साधन माना गया।

उस समय 1981–82 तक सभी राज्यो ने काश्तकारो को भूमि स्वामी बनाने का कानून बनाने की घोषणा की थी पर कही भी ऐसा नही हुआ। 31 मार्च, 1983 तक हदबन्दी (चकबन्दी) से बची हुई भूमि को पूर्ण रूप से वितरण करने को कहा था। उसकी तारीख भी 31 मार्च, 1985 तक बढा दी पर तब भी यह कार्यक्रम पूर्ण नही हुआ। वैसे पाँचवी व छठी पचवर्षीय योजना मे कृषि भूमि की हदबन्दी सम्बन्धी कानून लागू हो चुके है फिर भी इसमे हद का अधिक होना एक बहुत बडा दोष है। सातवी पंचवर्षीय योजना की एक जानकारी के अनुसार देश का भूमि भण्डार 1 करोड 70 लाख हैक्टेयर कृषि योग्य परती भूमि व 2 करोड हैक्टयर पुरानी और वर्तमान बजर भूमि को शामिल करने से बढाया जा सकता है। इस तरह करीब 3·5 करोड से 4 करोड हैक्टेयर तक कृषि योग्य भूमि उपलब्ध हो सकती है। भूमिहीन मजदूरो के लिए निश्चय ही यह वरदान साबित हो सकती है। हाल ही मे प्रधान मन्त्री द्वारा घोषित 20-सूत्री कार्यक्रम मे एक बार पुन भूमि सुधारो को प्रमुखता प्रदान की गई है। यह निश्चय ही बहुत खुशी की बात है।

इस प्रकार स्वतन्त्रता-प्राप्ति से लेकर अभी तक विकास के उद्देश्य से भूमि-सुधारो के लिए हर तरह से प्रयत्न किए गए किन्तु वे परिणाम सामने नही आए जो आने चाहिए थे, क्योकि उनमे बहुत-सी कमियाँ रह गई थी।

पहली बात तो भूमि सुधार के सम्बन्ध मे जो अनेक नियम बनाए गए थे वे दोषपूर्ण है। कानून के अनुसार जमीदारी-प्रथा को समाप्त कर खेतिहर मजदूरो को भूमि का मालिक बनाया गया लेकिन वास्तव मे आज भी वह भूमि का मालिक नही है। आज सरकारी कर्मचारी, नेतागण, महाजन, व्यापारी तथा उद्योगपति नए जमीदारो के रूप मे उभर रहे है।

भूमि सुधार हेतु सरकार ने कानूनी व्यवस्था तो बना दी है लेकिन उसका क्रियान्वयन सही रूप से नही हो पाया है व इसके द्वारा बनाए गए कानून भी भिन्न-भिन्न राज्यो मे भिन्न-भिन्न है। जोत की सीमा भी प्रत्येक राज्य मे अलग-अलग निश्चित की गई है। चकबन्दी कानून भी अनिवार्य न होकर ऐच्छिक बनाए गए है। खुदकाश्त के अधिकार मे यह व्यवस्था की गई है कि यदि जमीदार चाहे तो खुदकाश्त के लिए अपनी जमीन वापिस ले सकता है। हालाँकि इसमे कई बार सुधार करने को कहा गया है व समय-समय पर इसमे सुधार भी हुआ है पर उसकी गति बहुत ही धीमी है। आप धीमी गति का अन्दाजा इसी बात से लगा सकते है कि बिहार मे 1948 मे भारत के अन्तर सर्वप्रथम एक कानून बना जो कि 22 वर्षों बाद कार्यरूप मे लागू किया गया।

जनता भूमि सुधार कार्यक्रम से बचने की कोशिश करती है। काश्तकारो की अशिक्षा के कारण वे न तो कानून जानते हैं और न अपने शोषण से बचने के लिए

कानून की शरण लेते है । इस कारण बाडतकारो के शोषण का सही पता नही लग पाता है ।

लाल फीताशाही व नौकरशाही के कारण भी भूमि सुधार कार्यक्रमो को क्रियान्वित नही किया जा सका है । देश का प्रशासन भ्रष्टाचारी होने से कानून बने ही रह जाते है । विभिन्न राजनीतिक पक्षो मे भू-सुधार के कार्यक्रमो के सम्बन्ध मे विभिन्न दृष्टिकोण होने से कार्यक्रमो का क्रियान्वयन नही हो पाया है । जैसे चौधरी चरणसिंह का मानना है कि छठे और सातवे दशक के भूमि सुधारो के बाद अब गाँवो मे भूमि वितरण की कोई खास गुंजाइश नहीं है । किन्तु ऐसा नही है । मैंने ऊपर ही सातवी पचवर्षीय योजना के 'एप्रोच पेपर' द्वारा दी गई जानकारी बताई है । देश मे अभी तो साडे तीन से चार करोड हैक्टेयर तक कृषि योग्य भूमि उपलब्ध हो सकती है जो कि कुल कृषि योग्य भूमि का 25 प्रतिशत हिस्सा हो सकती है । सो जब तक ठोस रूप मे एक विचारधारा नही होगी, कार्यक्रम सफल नही होगे।

देश मे जोत की न्यूनतम सीमाएँ निर्धारित करने सम्बन्धी कानून नही बनाए जाने के कारण भूमि के उप विभाजन, अपखण्डन, हस्तान्तरण आदि की समस्या आज भी बनी हुई है ।

वैसे दोष तो हर व्यवस्था मे निकाले जा सकते है । बस जरूरत इसी बात की है कि भूमि सुधार मे व्याप्त भ्रष्टाचार को कठोरता के साथ समाप्त किया जाए। सरकार को कड़ाई से नियमो का पालन करना चाहिए । वास्तविक खेतिहर मजदूरो को भूमि दिलवानी चाहिए । भूमि सुधारो को लागू करने मे किसी भी प्रकार का विलम्ब न किया जाए । सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि ऐसा सब कुछ करने से पहले सरकार किसी भी तरह के राजनीतिक लाभ की परवाह न करे ।[1]

बन्धुआ मजदूर : मुक्ति की चुनौतियाँ[2]

केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय के भूतपूर्व महानिदेशक (श्रमिक कल्याण) श्री लक्ष्मीधर मिश्र ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त आयोग के सदस्य के रूप मे बन्धुआ मजदूर प्रणाली के अन्वेषण के लिए ग्यारह राज्यो का दौरा किया । उन्होने अपने लेख मे बन्धुआ मजदूर प्रणाली के सामाजिक, आर्थिक आदि पहलुओं पर प्रकाश डाला है और इनके कानूनी निहितार्थो का भी वर्णन किया है । उनके विचार मे बन्धुआ मजदूरों की पहचान के लिए जो प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए और वास्तव मे अपनाई जा रही है, उसमे बहुत बडा अन्तर है। श्री मिश्र ने बन्धुआ मजदूरो के मुक्ति-कार्यक्रम के कार्यान्वयन की त्रुटियो की ओर सकेत किया है और बन्धुआ मजदूरी से मुक्त किए गए लोगो के पुनर्वास के लिए सामुदायिक दृष्टि अपनाने का सुझाव दिया है। श्री मिश्र के विचार, उन्ही के शब्दों में, इस प्रकार है—

1 शरद उपाध्याय : योजना, 1–15 जून, 1987, पृष्ठ 7-9
2 योजना, मई, 1978.

"श्रम मन्त्रालय मे महानिदेशक (श्रमिक कल्याण) के रूप मे मुझे 1982-83 से 1984-85 के बीच बन्धुआ मजदूरी की हानिकारक प्रणाली (जो सामाजिक दृष्टि से मार्मिक और आर्थिक दृष्टि से चुनौती भरी है) के अध्ययन के सिलसिले मे आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उडीसा, राजस्थान, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश के ग्यारह राज्यो का दौरा करने का मौका मिला। मैंने इस क्रम मे विभिन्न वर्गों के लोगों से बात की जैसे—कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश के जीथम, गुजरात और मध्य प्रदेश के हाली, बिहार के कामिया, उडीसा के गोठी, राजस्थान के सागरी, तमिलनाडु के पाँडियाल, केरल के आदिया, पाँडिया और कट्टनायकम्, जौनसार बाबर उत्तर प्रदेश के कोलटा आदि। सर्वोच्च न्यायालय के सामाजिक और कानूनी जाँच आयुक्त की हैसियत से मुझे विजयवाडा और फरीदाबाद के खदान मजदूरो की शोचनीय स्थितियो के अध्ययन का भी अवसर मिला। अपने इस कार्य के दौरान मैंने इन लोगो से हार्दिक सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की जो आमतौर पर सकोची और अन्तर्मुखी होते हैं और बाहर की दुनिया से प्राय अलग रहते हैं। मै उनसे उस भाषा मे बोलता था जिसे वे समझ सकते थे और इस तरह मैंने एक विश्वास का वातावरण बना लिया था जिसमे वे अपनी बात खुल कर कह सकते थे। इस वार्तालाप से जो निष्कर्ष निकला वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। निष्कर्ष यह कि सरकारी और गैर-सरकारी सस्थाओ के निष्ठापूर्ण प्रयासो के बावजूद समाज के ये अभागे सदस्य सभ्यता मे बहिष्कृत हो रहे हैं। बन्धुआ मजदूरी की परिभाषा पर वर्षों से जोरदार बहस हो रही है जैसे जीथम और हाली उस परिभाषा के अन्तर्गत आते हैं या नही किन्तु उन अभागे लोगो (बन्धुआ मजदूरो) की स्थिति सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से हीनतर होती गई है। उनकी गरीबी और शोषण की कहानी शायद ही सामने आती है। इसके क्या कारण हो सकते है ?

कानून का विकास

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने 1919 मे बेगार उन्मूलन समझौता स्वीकृत किया था। किन्तु हमने बेगार उन्मूलन से सम्बन्धित सांविधानिक निर्देश (अनुच्छेद 23) के अनुसरण मे 30-11-1954 को इसे औपचारिक रूप से अपनाया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के समझौते को अपनाने से हमारे ऊपर दायित्व यह आया कि हम राष्ट्रीय कानून बनाकर इसके उपबन्धो को लागू करें। समझौते के महान् उद्देश्यो को लागू करने के लिए राज्य के स्तर पर कानून बनाने के छुटपुट प्रयास हुए थे जैसे उडीसा का ऋण (उन्मूलन) अधिनियम, 1961 आदि। किन्तु इनका प्रभाव बहुत सीमित रहा। भूतपूर्व प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा 1 जुलाई, 1975 को बीस-सूत्री कार्यक्रम की घोषणा के बाद केन्द्र के स्तर पर इस सम्बन्ध मे गम्भीर प्रयास शुरू हुए। पुराने बीस सूत्री कार्यक्रम की मद 5 के अन्तर्गत कहा गया कि बन्धुआ मजदूरो का उन्मूलन किया,

जाता है और जिस रूप में भी यह है उसे गैर-कानूनी घोषित किया जाता है। इस घोषणा ने उन निहित स्वार्थों का दिल दहला दिया होगा जो अब तक बन्धुआ मजदूर प्रणाली को जारी रखे हुए थे। इस जोरदार कार्रवाई के परिणामस्वरूप 25 अक्तूबर, 1975 को बन्धुआ मजदूर प्रणाली (उन्मूलन) अध्यादेश जारी किया गया जिसकी जगह फरवरी, 1976 में संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित बन्धुआ मजदूर प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम ने ली जो उसी तारीख से लागू होता था जिस तारीख को राष्ट्रपति का अध्यादेश जारी किया गया था। इस कानून के उदात्त लक्ष्यों और उन्हें प्राप्त करने के रास्ते की अनेक कठिनाइयों का बहुत अच्छा वर्णन श्रम मन्त्री ने 27 जनवरी, 1976 को विधेयक प्रस्तुत करते हुए इन शब्दों में किया—"बन्धुआ मजदूरी से मुक्त किए गए लोगों के पास न उत्पादन के साधन होंगे और न उन्हें ऋण सुविधा होगी। इनके पास कोई हुनर भी नहीं होगा जिसके बल पर वे अपनी जीविका कमा सकें। अगर उसे किसी लाभदायक काम में लगाया जाएगा तो भी उत्पादन शुरू होने तक उसे कोई आमदनी नहीं होगी। चूंकि वह आधिपत्य और गुलामी की दुनिया से ही परिचित होगा। अतः अपने अधिकारों के प्रति वह जागरूक नहीं होगा। कभी-कभी वह आर्थिक बहाली की कठिन प्रक्रिया से गुजरने के लिए भी तैयार नहीं होगा और वापस अपनी गुलामी में जाना चाहेगा।"

हर कानून अपने समय की उपज होता है और वह उस समय के सामाजिक वातावरण, राजनीतिक मूल्यों और आर्थिक दर्शन को प्रतिबिम्बित करता है। लेकिन कानून महज एक चौखट होता है लक्ष्य का सवाहक और एक दृष्टि का संकेतक। यह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक बुराइयों अथवा प्रणाली की कमजोरियों के लिए रामबाण औषध नहीं हो सकती। अत इन कारणों का विश्लेषण करना समीचीन होगा जो इस कानून के महान् उद्देश्यों को पूरा करने में बाधक सिद्ध हुए।

बन्धुआ मजदूरी क्या है?

सबसे पहला सबसे महत्वपूर्ण कारण है बन्धुआ मजदूर, बन्धुआ मजदूरी और बन्धुआ मजदूर प्रणाली की परिभाषा के सम्बन्ध में सन्देह और भ्रान्तियाँ बनी हुई हैं। बावजूद इस बात के कि कानून में इसकी व्याख्या बहुत साफ है और सर्वोच्च न्यायालय ने फरवरी, 1982 की याचिका संख्या 2135 पर 16 दिसम्बर, 1983 को जो ऐतिहासिक फैसला दिया था उसमें इसकी व्यापक उदार और विस्तृत व्याख्या की थी। इसके अतिरिक्त कानून में इसकी जो व्याख्या जोड़ी गई थी उसमें कहा गया था कि ठेका मजदूर और प्रवासी मजदूर भी बन्धुआ मजदूर प्रणाली के अन्तर्गत आ सकते हैं, यदि वे निर्धारित कसौटी पर ठीक उतरते हों। व्यवहार में बन्धुआ मजदूर प्रणाली, कर्ज देने वाले और कर्ज लेने वाले के सम्बन्ध का ही रूप है। कर्ज लेने वाला अपनी दिन प्रतिदिन की आर्थिक मजबूरियों के कारण उधार लेता है और कर्ज देने वाला जो शर्तें रखता है उन्हें वह मन्जूर कर लेता है। इस करार

को सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त के रूप में वह अपनी या अपने परिवार के किसी एक या सभी सदस्यों की सेवा को एक निश्चित या अनिश्चित अवधि के लिए गिरवी रख देता है। असमान शर्तों पर हुए इस करार से जो सम्बन्ध बनता है उसके कुछ निश्चित परिणाम होते हैं। किसी भी श्रम या सेवा का बाजार भाव पर उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिए किन्तु बन्धुआ प्रणाली में सेवा, कर्ज के बदले में या कर्ज के सूद के एवज में दी जाती है। यह पारिश्रमिक न्यूनतम वेतन अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से या बाजार की मजदूरी दर से कम होता है।

देनदार और लेनदार के सम्बन्ध में असमान शर्तों का पहला परिणाम होता है, देनदार को मजदूरी न मिलना या न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी मिलना। इसके और भी परिणाम हो सकते हैं, जैसे—

(क) भारत के किसी भी क्षेत्र में जाने की स्वतन्त्रता मजदूर को न मिलना।

(ख) किसी अन्य रोजगार को चुनने की स्वतन्त्रता न होना।

(ग) अपनी मेहनत की या मेहनत के उत्पाद की उचित कीमत प्राप्त करने का हक न होना। ये परिणाम व्यक्तिगत रूप में भी हो सकते हैं और सामूहिक रूप में भी। बन्धुआ मजदूरी के अस्तित्व के निर्धारण के लिए इतना काफी है कि वहाँ देनदार और लेनदार का सम्बन्ध हो और देनदार ने अपनी या अपने परिवार के किसी एक या सभी सदस्यों की सेवाएँ किसी निर्धारित या अनिर्धारित समय के लिए गिरवी रखी हो जिसका उपर्युक्त परिणामों में से कोई एक परिणाम होता हो। यह जरूरी नहीं कि सभी परिणाम एक साथ होते हों।

दूसरे, इस प्रणाली के जन्म, विकास और इसके जारी रहने के सिर्फ एक कारण नहीं, कई है, जैसे—जाति, फिरके और धर्म की कृत्रिम बातों पर आधारित अत्यधिक श्रेणीबद्ध सामाजिक ढाँचा, उस अत्यधिक असभ्य और अनैतिक जमींदारी प्रथा द्वारा छोड़े गए घाव जो अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लाई गई और जिसने अनिवासी जमींदारी और क्रूर लगान की बुराइयाँ लाईं भूमि और अन्य सम्पत्ति का अनुचित वितरण स्थिर रोजगार के साधनों का अभाव भूमि और मिट्टी का अलाभकर स्वरूप जिसके कारण भूमि निवेश की आय और उत्पादकता कम होती है, रोजमर्रा के उपभोग या विवाह आदि उत्सवों के लिए जमीन गिरवी रख कर कर्ज लेने की प्रथा जिससे छोटे और सीमान्त किसान भूमिहीन कृषि मजदूर बनने को बाध्य होते हैं। बटाईदारों का पंजीकरण न होना और जिन लोगों का कर्ज लेने वाले की भूमि तथा अन्य सारी सम्पत्ति पर कब्जा होता है उनके छल के कारण उनका लगातार निर्धन होते जाना।

ऐसी स्थिति में बन्धुआ मजदूरों की पहिचान का काम उतना सरल नहीं होता जैसा कि किसी चुनाव में पक्की स्याही के निशान और मतदाताओं की पहचान

करना या जनांकिकीय के काम में आदमियों को गिनना। बन्धुआ मजदूरों की पहचान वास्तव में अस्तित्वहीन की खोज है क्योंकि यह व्यक्ति भले ही मानव के रूप में है लेकिन जिसे वर्गों के सामाजिक भेदभाव ने और आर्थिक शोषण ने (जिसे समाज ने अबूझ कारणों से बर्दाश्त किया है) अस्तित्वहीन बना दिया है।

खोज की कार्य-प्रणाली का अभाव

जाहिर है इस तरह के अस्तित्वहीन की खोज की प्रक्रिया उस सामाजिक वातावरण में आसान नहीं है जिस पर इस जिला और सबडिवीजन के स्तर पर कानून के उपबन्धों को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी जिला मजिस्ट्रेट और चौकसी समितियों की होगी लेकिन उसमें ठीक-ठीक कार्य-पद्धति निर्धारित नहीं की गई है। सन्तोष की बात है कि आन्ध्र प्रदेश समाज कल्याण विभाग के वर्तमान मुख्य सचिव श्री एस. आर. शंकरन ने बड़ी सूझ-बूझ और कल्पना से 1976 में ही एक कार्य पद्धति तैयार की थी और उसे आन्ध्र प्रदेश के सभी समाहर्ताओं को उनके मार्ग-दर्शन के लिए परिचालित किया था। इस कार्य पद्धति में तेलुगु भाषा में एक प्रश्नावली है जिसमें कुछ सरल और महत्वपूर्ण सवाल हैं जो खोज करने वाले अधिकारियों को गाँव के हरिजनवाड़े में आकर कृषि मजदूरों के समूह से पूछने होते हैं। जिनमें अधिकांश अनुसूचित जातियों के भूमिहीन बटाईदार होते हैं। सवाल लोगों की समझ में आने वाली भाषा में बिल्कुल अनौपचारिक ढंग से, सामान्य बातचीत की शैली में पूछे जाते हैं ताकि उनके ठीक उत्तर मिल सकें और उनके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकें।

सर्वोच्च न्यायालय के जाँच आयुक्त के रूप में मेरा अपना अनुभव बताता है कि बन्धुआ मजदूरों की पहचान के लिए जो कार्य पद्धति अपनाई जानी चाहिए और जो वास्तव में अपनाई जाती है, उसमें बड़ा अन्तर है। समाज के निचले वर्गों के बन्धुआ मजदूर सकोचो और अपने में सिमटे हुए होते हैं और अन्वेषण करने वालों के सामने अपनी कहानी सुनाने के लिए आसानी से आगे नहीं आते हैं। जब बन्धुआ मजदूर यह महसूस करता है कि उसके हित और प्रश्नकर्ता के हित एक ही हैं तभी क्षेत्र, सामाजिक स्तर और भाषा की कृत्रिम दीवार टूटती है और वे सहजता तथा स्वतन्त्रता के साथ प्रश्नों का जवाब देने के लिए आगे आते हैं।

किन्तु वास्तविक व्यवहार में, चूँकि कानून ने कोई औपचारिक कार्य पद्धति निर्धारित नहीं की है अतः मजदूरों के साथ तादात्म्य स्थापित करने का काम अधिकतर नौकरशाही के निचले कर्मचारियों पर छोड़ दिया जाता है। चूँकि ये कर्मचारी ग्रामीण शिक्षित वर्ग के लोग होते हैं, यह उम्मीद करना बेकार होता है कि वे इस नाजुक और कठिन काम को भली प्रकार कर पाएँगे। अतः हमें एक वैकल्पिक व्यवस्था के बारे में सोचना पड़ेगा जो इन अस्तित्वहीनों की खोज करे और उन्हें विश्वास दिलाए कि वे अन्य लोगों की तरह ही स्वतन्त्र देश के नागरिक

हैं, उनके कुछ मूलभूत अधिकार है तथा अपने जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरा करने का उनका हक है। इस काम के लिए जनता के स्तर पर काम करने वाली ऐसी असंख्य संस्थाओं का सहयोग महत्त्वपूर्ण होगा जो मानवता की संकुचित एवं कृत्रिम दीवारों को तोड़ने जनसाधारण को चुप्पी और निर्भरता की संस्कृति से उठाने तथा उनमें सम्मान के साथ जीने की भावना जगाने के लिए काम कर रही हैं।

मुक्ति की कार्य विधि

इसी से सम्बन्धित है गुलामी की जंजीरों से मुक्ति की संकल्पना और उस मुक्ति के लिए अपनाई जाने वाली कार्य विधि। यह देखा गया है कि अब तक शिनाख्त बन्धुआ मजदूरों की मुक्ति के लिए औपचारिक गैर-लचीली और कानून परक विधि ही अपनाई जाती है और सामान्य कार्य विधि से साक्ष्य लिए जाते हैं। प्रथम दृष्टि और कानून की नजरों में भी इसमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं है किन्तु इसमें साक्ष्य की लम्बी प्रक्रिया के कारण मुकदमा लम्बा खिंचता है। बन्धुआ मजदूर के हित में नहीं होता, क्योंकि अपनी गरीबी, निरक्षरता और पिछड़ेपन के कारण उसमें हृदयहीन कानूनी प्रक्रिया की कठिनाइयों को सहन करने की क्षमता नहीं होती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता, बेरोजगारी, भूमिहीनता को देखते हुए जितने बन्धुआ मजदूरों की पहचान की जानी चाहिए और जितनों की पहचान हुई है, उसके बीच बड़ा अन्तर होने का कारण भी यही है। श्रम मन्त्रालय में उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार 30 जून, 1986 तक 11 राज्यों में दो लाख से अधिक बन्धुआ मजदूरों की पहचान हो चुकी थी किन्तु यह निश्चित नहीं है कि इन सभी को मुक्त किया जा चुका है और सभी को औपचारिक मुक्ति का प्रमाण पत्र दिया जा चुका है या नहीं।

जरूरत है नई दृष्टि की

मेरे विचार में सही और अधिक व्यावहारिक दृष्टि यह होगी कि सम्बन्धित अभिकरणों से रिपोर्ट मिलने के बाद तुरन्त परीक्षण हो ताकि पहचान और मुक्ति साथ-साथ हो सके। इन सभी संक्षिप्त परीक्षणों के दौरान बन्धुआ मजदूर को मालिक से अलग रखा जाए ताकि मजदूर को विश्वास में लिया जा सके और वह खुलकर अपने बारे में बता सके जिसके आधार पर सुनवाई करने वाला मजिस्ट्रेट यह निष्कर्ष निकाल सके कि वह बन्धुआ मजदूर है और वह उसे तुरन्त स्वतन्त्र कर सके। अगर मजिस्ट्रेट के आदेश के बाद भी मालिक आनाकानी करे तो उसके खिलाफ बन्धुआ मजदूरी (उन्मूलन) अधिनियम के अन्तर्गत मुकदमा चलाया जाए। इन नई कार्यविधि की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सुनवाई करने वाले मजिस्ट्रेट में कितनी सूझ-बूझ और संवेदनशीलता है तथा वह इस प्रणाली के मूल रूप को और इसके समर्थकों एवं विरोधियों को कहाँ तक समझता है। इस तरह के

न्यायिक अधिकारियों की कमी नहीं होगी (अधिनियम की धारा 21 के तहत राज्य सरकारों को कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति करनी होती है), किन्तु यह जरूरी है कि वरिष्ठ अदालतों द्वारा स्पष्ट निर्देश दिए जाएँ ताकि परीक्षण सहित कानून के उपबन्धों का प्रवर्तन वर्तमान सामाजिक और आर्थिक स्थिति के अनुरूप हो।

समर्पण की भावना आवश्यक

जिला और सब डिविजनल मजिस्ट्रेट तथा उनकी अध्यक्षता मे काम करने वाली सतर्कता समितियाँ (अधिनियम की धारा 13 के अन्तर्गत) बन्धुआ मजदूरी प्रथा की पहचान के लिए नींव के पत्थर है। इस सारे काम की सफलता उनकी सूझ-बूझ और समर्पण की भावना पर निर्भर है। यदि वे स्वय समस्या के प्रति सवेदनशील होगे तो वे दूसरे लोगों को भी सवेदनशील बना सकते हैं। दुर्भाग्य से, कानून के इस महत्वपूर्ण उपबन्ध का पर्याप्त उपयोग नही किया गया है। इसमें सन्देह नही कि कुछ राज्यो ने राष्ट्रीय कानून बनने के बाद सतर्कता समितियाँ बनाने की दिशा मे काम किया है। ये समितियाँ (जिनका कार्यकाल एक साल से बढाकर दो साल कर दिया गया है) अधिकांश राज्यों मे निष्क्रिय हो गई हैं। कुछ राज्यो ने सतर्कता समितियाँ बनाई ही नही, इस आधार पर कि उनके राज्य बन्धुआ मजदूर नही हैं। इस तरह का निष्कर्ष तभी निकाला जाना चाहिए जबकि जिला और सब-डिविजन स्तर पर सतर्कता समितियाँ बनें और उन्हे काफी समय तक काम करने का मौका मिले। कुछ राज्यो मे समितियाँ तो बनी हैं, किन्तु उन्होने इस काम को बहुत आकस्मिक और रुटीन तरीके से लिया है और अभी तक कोई ठोस काम नही किया है। इस तदर्थवाद के सम्बन्ध मे स्पष्ट निर्देश जारी किए जाने चाहिए। जिला और सब-डिविजन के स्तरो पर और उससे भी नीचे के स्तर पर प्रशासन की सामयिक प्रतिबद्धता और नेतृत्व से बहुत अच्छे परिणाम निकल सकते हैं।

स्वतन्त्र किए गए व्यक्तियो का पुनर्वास

घटनाक्रम और प्राथमिकता क्रम मे इसके बाद आता है स्वतन्त्र किए गए बन्धुआ मजदूरों का पुनर्वास जो 14 जनवरी, 1982 को घोषित बीस सूत्री कार्यक्रम के सूत्र 6 के अन्तर्गत आता है। बन्धुआ मजदूर की पहचान और मुक्ति का मतलब है उस मजदूर के लिए आजादी की नई जिन्दगी लेकिन उस आदमी के साथ असुरक्षा और अनिश्चितता की दुनिया भी जुडी है जिसका सामना वह मजदूर स्वंय नही कर सकता। गुलामी और सुरक्षा (काल्पनिक) की दुनिया और आजादी तथा असुरक्षा की दुनिया के बीच चुनाव करना मुश्किल होता है। ऐसी स्थिति में स्वतन्त्र कराए गए मजदूर को कोई सहारा नही मिलेगा तो वह वापस अपने मालिक के पास जाना चाहेगा।

पुनर्वास भौतिक भी होता है और मनोवैज्ञानिक भी। भौतिक पुनर्वास आर्थिक होता है जबकि मनोवैज्ञानिक पुनर्वास बार-बार आश्वस्त करने की

प्रक्रिया से होता है। दोनो साथ-साथ होने चाहिए। मनोवैज्ञानिक पुनर्वास के लिए पहली शर्त है कि मजदूर को पुराने माहौल से अलग किया जाए और ऐसे माहौल मे रखा जाए जहाँ वह भूतपूर्व बन्धुआ मजदूर मालिको के हानिकारक प्रभाव से बचा रहे। अगर उन्हे बार-बार यह आश्वासन नही दिया जाएगा कि अब उसके भाग्य का नियमन कर्ज नही करेगा तो उसके वापस बन्धुआ मजदूरी मे जाने की सम्भावना बनी रहेगी।

पुनर्वास का स्वरूप

मूल रूप से पुनर्वास के तीन चरण है। मुक्ति के बाद सबसे पहले तो उसके भौतिक निर्वाह की व्यवस्था करना जरूरी है। उसे नया जीवन शुरू करने के लिए अल्पकालिक मदद दी जानी होगी जैसे मकान बनाने के लिए प्लाट और आर्थिक सहायता देना, खेती के लिए जमीन, बैल, खेती के औजार तथा अन्य साधन जुटाना, लाभदायक रोजगार के अवसर जुटाना, और सरकार द्वारा स्वीकृत न्यूनतम मजदूरी नियमित रूप से दिलाने की व्यवस्था करना। अन्त मे दीर्घकालीन उपाय किए जाने चाहिए जैसे भूमि का विकास (सिचाई की सुविधा सहित), अल्पकालिक और मध्यकालिक ऋण की व्यवस्था करना, पशु-पालन और पशु-चिकित्सा की पूरी व्यवस्था करना जिसमे उत्पादक परिसम्पत्तियों का बीमा भी शामिल है,ट्रायसम के माध्यम से वर्तमान कौशलो के विकास तथा नए कौशलो को प्राप्त करने का प्रशिक्षण देना, छोटे कृषि-उत्पादो और वन-उत्पादो के लिए लाभकर कीमत की सुरक्षा प्रदान करना, प्रौढ सदस्यों की अनौपचारिक साक्षरता और बच्चो की औपचारिक साक्षरता की व्यवस्था करना, परिवार के सदस्यो के लिए स्वास्थ्य चिकित्सा, रोग निरोध तथा पौष्टिक आहार का प्रबन्ध करना और अन्त मे इन बन्धुआ मजदूरो के नागरिक अधिकारो की रक्षा करना जो अपने जन्म के कारण सामाजिक भेदभाव के शिकार रहे थे।

यदि बन्धुआ मजदूरी की पहचान अस्तित्वहीन की खोज है तो उनका पुनर्वास गरीबी के दलदल और अभाव की गुलामी से उन्हे उबारना और उन्हे अस्तित्ववान मानव का दर्जा देना है ताकि वे मानव जाति की मुख्य धारा के साथ अपने को जोड सकें और मानव जीवन की गरिमा, सुन्दरता और उपादेयता का अनुभव प्राप्त कर सकें। प्रश्न है कि यह सब काम कैसे किए जाने चाहिए और कैसे किए जा रहे हैं। दूसरे शब्दो मे स्थायी पुनर्वास के लक्ष्य को प्राप्त करने मे सरकार और दूसरी एजेन्सियो के कार्यक्रम कहाँ तक पर्याप्त तथा कारगर हैं?

कार्यक्रम कारगर हो

वर्ष 1982–83, 1983–84 और 1984–85 मे इस महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्यक्रम की गुणात्मक समीक्षा के लिए किए गए 11 (ग्यारह) राज्यों के दौरे मे मुझे कुछ उत्साहजनक बातें भी दिखाई दी और कुछ निराशाजनक भी। पहले

में उत्साहवर्द्धक पहलुओं की चर्चा करूँगा। उत्तर प्रदेश में सरकार ने पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत आदिवासी परियोजना प्राधिकरण के माध्यम से अनेक परियोजना कायकर्त्ता नियुक्त किए हैं। इन कार्यकर्त्ताओं ने स्वतन्त्र हुए बन्धुआ मजदूरों की आवश्यकताओं, इच्छाओं और आकाँक्षाओं तथा आदिवासी परियोजना प्राधिकरण के बीच पुल का काम किया है और टिहरी गढ़वाल, उत्तराकाशी तथा देहरादून के जौनसार बावर के कोल्टाओं के रहन-सहन में स्पष्ट परिवर्तन तथा जागरूकता आई है। उनका उदाहरण अन्य राज्य सरकारों द्वारा अनुकरणीय है। केरल में यद्यपि बन्धुआ मजदूर प्रथा बड़े पैमाने पर है, भूमि उपनिवेशन योजना के माध्यम से, स्वतन्त्र किए बन्धुआ मजदूरों के पुनर्वास के लिए बड़ी लगन से प्रयास किया जा रहा है। इसके लिए एक ही सूत्र का उपयोग किया गया है—जैसे मजदूरों की जरूरत और रुझान के अनुसार विकास के लिए आवश्यक साधन जुटाना। केरल की योजना को उड़ीसा में निर्धन ग्रामीणों के आर्थिक पुनर्वास योजना के अन्तर्गत शामिल कर लिया गया है। यह योजना समन्वय का बहुत अच्छा आदर्श है। इसके कई घटक हैं जैसे भूमि पर आधारित, गैर-भूमि पर आधारित और कला शिल्प कौशल पर आधारित। उल्लेखनीय है कि उड़ीसा एक मात्र राज्य है जहाँ बन्धुआ मजदूरों की पहचान के लिए ग्राम सभाओं के माध्यम से सारे गाँव वालों का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। उड़ीसा के कार्य की एक और उल्लेखनीय बात यह है कि 1979–80 के अन्त तक राज्य में 350 बन्धुआ मजदूरों का पता लगाया गया। देश में जिन 43,687 बन्धुआ मजदूरों की पहचान की गई थी, उनमें से 1985-86 तक 42,421 को स्वतन्त्र कराया जा चुका है और 30,256 को पुनर्स्थापित किया जा चुका है। आन्ध्र प्रदेश की सरकार ने पुनर्वास के लिए समेकित दृष्टि अपनाई है। इस कठिन काम को करते समय उसने कई स्रोतों से साधनों को इकट्ठा करके बड़ी सूझबूझ के साथ समेकित किया है। एक ही काम के लिए नहीं, उन विविध कामों के लिए जो पुनर्वास को स्तरीय और उपादेय बनाते हैं। रंगारेड्डी में 'सामुदायिक मुर्गीपालन कम्पलेक्स में उसने पुनर्वास के लिए समूहगत रास्ता अपनाया है और यह समेकित दृष्टि का सर्वोत्तम आदर्श है। राजस्थान में यह कार्यक्रम कम वर्षा, अनुपजाऊ भूमि और लगातार सूखे के खतरे की कठिन स्थितियों में चलाया जा रहा है। यद्यपि राज्य और जिला स्तर के कुछ अधिकारियों में इस कार्यक्रम के प्रति अद्भुत उत्साह और समर्पण की भावना छिपी है और उन्होंने लाभान्वित व्यक्तियों की आय आजीविका तथा जीवन स्तर पर कार्यक्रम का ठोस प्रभाव पैदा करने का प्रयास किया है। केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय ने, जिसने 1978–79 (30 मई, 1978) में इन केन्द्र प्रायोजित योजनाओं को शुरू किया था, अब इनके क्षेत्र, कार्यक्रम और कार्यविधि को सशोधित करके उन्हें बहुत सरल और उदार बना दिया है। 1983–84 से पहले इन योजनाओं को केन्द्रीय स्क्रीनिंग कमेटी की समीक्षा के लिए दिल्ली भेजा जाता था किन्तु अब राज्य सरकार

की स्क्रीनिंग कमेटी इनकी जाँच करती है और इन्हें मंजूरी देती है। इस प्रक्रिया को और विकेन्द्रित करने के लिए जिला स्तर के अधिकारियों को यह अधिकार सौंपने पर विचार किया जा रहा है। पहले स्वीकृत राशि को कई किश्तों में दिया जाता था किन्तु अब एक ही किश्त में सारी राशि उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जा रही है। मुक्त कराए गए प्रत्येक बन्धुआ मजदूर के लिए अनुदान की राशि को 4,000 रुपये से बढ़ाकर 6,250 रुपये किया जा रहा है।

कमियाँ

ये सभी सकारात्मक और अभिनव परिवर्तन, कार्यक्रम के क्रियान्वयन में गुणात्मक परिवर्तन लाते हैं और कार्य-विधि को सरल बनाते हैं। किन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि इनमें अभीष्ट परिणाम प्राप्त किए जा सकें हैं। अतः मैं यहाँ कार्यक्रम के क्रियान्वयन से सम्बन्धित कुछ चिन्ताजनक पहलुओं की चर्चा करना चाहता हूँ।

समर्पण की भावना की कमी

पहली बात तो यह है कि इस कार्यक्रम को किसी मन्त्रालय / विभाग के अलग-अलग कार्यक्रम के रूप में लिया जाता है और इसके प्रति नैमित्तिक रवैया अपनाया जाता है जबकि इसके प्रति सामाजिक प्रतिबद्धता का रवैया अपनाया जाना चाहिए जैसा कि राष्ट्रीय कार्यक्रम के प्रति अपनाया जाता है।

प्रतिकूल वातावरण

जिस वातावरण में इस कार्यक्रम को क्रियान्वित किया जाता है वह अनुकूल नहीं होता है। यह देखा गया है कि जो तत्व बन्धुआ मजदूर प्रथा का पोषण करते रहे हैं, वे ही गाँव के जीवन और उनकी अर्थ-व्यवस्था पर हावी हैं। स्वभावतः वे उस व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए आसानी से तैयार नहीं होते जिसमें मुक्त किए गए बन्धुआ मजदूरों को बन्धुआ मजदूर मालिकों के समान दर्जा और स्वतन्त्र आर्थिक हैसियत मिलती है। बहुत सम्भव है कि जहाँ ये तत्व हावी हैं वहाँ पुनर्वास के कार्यक्रम सफल न हों अथवा प्रारम्भ में कुछ सफलता के बाद बेपटरी-टांय फिस हो जाए।

लक्ष्य को पूरा करने में जल्दबाजी

राजस्व और विकास विभाग के कर्मचारियों को अनेक कार्यक्रमों में लाद दिया गया है जैसे समेकित ग्राम विकास कार्यक्रम, एन. आर. ई. पी., आर. एल. ई. पी. पी., ट्राइसेम, भूमिहीनों को भूमि का वितरण, भूमि-सीमा का प्रवर्तन, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के सामाजिक तथा आर्थिक विकास की योजनाएँ आदि। इनमें से अधिकांश कार्यक्रम समयबद्ध हैं और लक्ष्य अभिमुख हैं। इन कार्यक्रमों को समय पर पूरा करने के लिए इन अधिकारियों को बहुत बड़ी राशि सौंपी गई है। इन समयबद्ध कार्यक्रमों को पूरा करने के उत्साह में, अधिकारीगण मानवोचित सीमाओं के अन्दर जल्दबाजी में पुनर्वास की योजनाओं को

बनाते हैं। इस प्रकार लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों की रुचियों, क्षमताओं तथा जरूरतों को ध्यान में नहीं रख पाते हैं। इस कारण लाभान्वित होने वाले व्यक्ति उनके लिए बनाए गए अनेक कार्यक्रमों के प्रयोग के लिए गिनीपिग (परीक्षण जन्तु) बन जाते हैं। इस तरह ये कार्यक्रम लक्ष्यगत समूह अभिमुख होने के बजाय लक्ष्य अभिमुख बन जाते हैं।

असन्तोषजनक मूल ढाँचा

परिसम्पत्ति पर आधारित कार्यक्रमों के सफल कार्यान्वयन के लिए कृषि, सिंचाई, वन, मत्स्य-पालन, पशु-पालन और पशु चिकित्सा विभागों के अधिकारियों से पूर्ण प्रोत्साहन और संरक्षण मिलना बहुत जरूरी है। किन्तु अस्पतालों और औषधालयों की कमी, आवश्यक संख्या में प्रशिक्षित कर्मचारियों का न होना, औषधियों आदि की कमी, लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों को (जो अधिकतर अनजान और अनपढ़ होते हैं) अपनी परिसम्पत्तियों के उचित रख-रखाव के योग्य बनाने के लिए संगठित प्रयासों के अभाव आदि कारणों से उन्हें लम्बे समय तक पशु-पालन की सुरक्षा प्रदान नहीं की जा सकी है जिसका परिणाम होता है कि उत्पादक परिसम्पत्तियाँ बोझ बन जाती हैं।

बिचौलियों का जाल

पाँचवें, पुनर्वास के प्रयास वहाँ सफल नहीं हो सकते जहाँ मूल ढाँचे का अभाव हो और बहुत से बिचौलिए परजीवियों की तरह काम करके पुनर्वास के अधिकांश लाभों को अपने लिए समेट लेते हैं। यह भी देखा गया है कि लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों के एक समूह को मिलने वाली सहायता की अनेक इकाइयाँ जब एक ही बिन्दु पर एकत्रित हो जाती हैं तो इन इकाइयों का प्रतियोगी स्वरूप नष्ट हो जाता है और निवेश पर होने वाली आमदनी घट जाती है। जरूरत इस बात की है कि आगे और पीछे की कड़ियों को जोड़ते हुए तथा उपलब्ध मूल ढाँचे के स्वरूप को देखते हुए सावधानी और सूझ-बूझ के साथ योजना बनाई जाए।

कठिन सामाजिक वातावरण

स्वतन्त्र कराए गए बन्धुआ मजदूर समाज के निम्नतम स्तर से आते हैं और ये अत्यन्त निर्धन होते हैं। वे स्वयं उस योजना का चुनाव नहीं कर सकते जो उनके लिए सबसे ज्यादा लाभदायक होती है। उनकी इस अक्षमता की अभिव्यक्ति इस रवैये में होती है—"आप जो देना चाहें दे दें।" ऐसी स्थिति में पुनर्वास योजनाएँ बनाने वालों को चाहिए कि वे अपने को बन्धुआ मजदूरी के स्थान पर मानकर ऐसी योजनाएँ बनाए जो उनको स्वीकार हो तथा उनका सबसे अधिक हित साधने वाली हों। दुर्भाग्य से इस तरह का तन्त्र आज वास्तविकता से अधिक कल्पना की चीज है।

दयनीय स्थिति

मुक्त कराए गए बन्धुआ मजदूरों के सामाजिक और आर्थिक पुनर्वास का काम किस कठिन सामाजिक वातावरण में हो रहा है, इसके दो उदाहरण आगे दिए

जा रहे है। दोनो उदाहरण बन्धुआ मजदूर मालिको की अजीब समझ और कानून के एक दशक बाद भी बन्धुआ मजदूरो की दयनीय स्थिति के सम्बन्ध मे मेरे व्यक्तिगत अनुभव है।

मैं और श्रम मन्त्रालय मे मेरे एक सहयोगी दिसम्बर, 1982 मे बिहार मे डाल्टनगंज (पलामू जिला मुख्यालय) लौट रहे थे। हम सिमरा गाँव (डाल्टनगंज से 19 किलोमीटर दूर) गए थे और वहाँ हमने अपनी आखो से कुछ मुक्त किए गए बन्धुआ मजदूरो की सामाजिक तथा आर्थिक दयनीय स्थिति को देखा था। मेरे मन मे यह याद अब भी ताजा है। सिमरा मे मुक्त बन्धुआ मजदूरो के कुल 50 परिवार थे। 1975–76 मे बन्धुआ मजदूरी मे मुक्त होने के बाद उन्हे कुछ भैंसे और बकरियाँ दी गई थी। इन परिसम्पत्तियो के दिए जाने के लगभग एक दशक बाद उनकी स्थिति या तो पहले जैसे ही थी या पहले से भी खराब थी। खेती के लिए उन्हें जो जमीन दी गई थी वह खारी थी और वर्षा मे उजाड़ पड़ी हुई थी। भूतपूर्व बन्धुआ मजदूर मालिक इन अभागे लोगो के खिलाफ इस तरह एक-जुट थे कि उनका सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार ही कर दिया था। उनके बच्चे मुख्य बस्ती मे बने स्कूल मे नही जा सकते थे। उनके ढोर निकटवर्ती जगल मे चरने नही जा सकते थे क्योकि उन्हें जमीदारो के धान के खेतों से होकर गुजरना पड़ता था। कुछ परिवारो से बातचीत के दौरान हमे एक ऐसा व्यक्ति मिला जो भूतपूर्व मालिको की मार-पिटाई से बिलकुल अपाहिज हो गया था। जब वह डाल्टनगज के अस्पताल मे गया तो उनका इलाज नही किया गया क्योकि डॉक्टर की माँग को वह पूरा नही कर सकता था। इस करुण-कथा को सुनने के बाद हम डाल्टनगज लौट रहे थे कि ऊँची जातियों के जमीदारो के एक दल ने हमारी गाडी को रोका। हमारा परिचय प्राप्त करने के बाद वे हमसे बोले, "ओ साहिब, आप सुबह-सुबह ठण्ड और धूल मे इन कम्बख्त लोगो से मिलने के लिए इतनी दूर दिल्ली से चल कर क्यों आए? ये लोग पिछले जन्म से ही हमारे बन्धुआ थे और अब भी हैं। आपके सारे कानून और संस्थाएँ इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को नहीं बदल सकती हैं।"

दूसरा उदाहरण पटना के निकट फतुआ विकास खण्ड के दौर का है। हम कुछ मुक्त बन्धुआ मजदूरो को (जो खेत मजदूर भी थे) न्यूतम मजदूरी न दिए जाने की जाँच करने गए थे। जमीदार के साथ हमारी जो बातचीत हुई वह उनके प्रतिक्रियावादी रवैये को दिखाती थी। उन्होने कहा, "उन्हे न्यूनतम मजदूरी मांगने का क्या हक है? उन्हें सरकार की तरफ से सहायता मे कितनी ही चीजे मिली हुई है। अगर वे हमारे बन्धुआ न होते तो क्या ये चीजें उन्हे मिल सकती थी? इन चीजो के लिए उन्हें हमारा अहसानमन्द होना चाहिए और न्यूनतम मजदूरी नहीं माँगनी चाहिए।"

सामूहिक विकास की आवश्यकता

ये तथ्य बताते हैं कि अलग-अलग व्यक्तियो के पुनर्वास की अपेक्षा सामूहिक पुनर्वास का रास्ता अधिक उपयोगी है। अलग-अलग व्यक्तियो के पुनर्वास मे कई

कठिनाइयाँ हैं क्योंकि बन्धुआ मजदूर समाज के निम्न तबके से आते हैं और अपने जन्म तथा सामाजिक स्थिति के कारण जीवन की कई सुविधाओं से वे वंचित होते हैं। समाज के प्रभावी वर्ग उनके खिलाफ तथा उनके परिवार के सदस्यों के खिलाफ जो संगठित हमले करते हैं उनका सामना वे नहीं कर पाते हैं। उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति ऐसी होती है कि बैंक भी उनकी सहायता नहीं कर पाते। अज्ञान और निरक्षरता के कारण उनमें अपने अधिकारों की माँग करने तथा विकास के लाभों को प्राप्त करने की क्षमता नहीं होती।

इसके लाभ

इसके विपरीत सामूहिक दृष्टि से कई लाभ हैं। सर्वप्रथम लाभान्वित होने वाले अनेक व्यक्तियों को शिनाख्त करने और एक बिन्दु पर इकट्ठा करने से सामाजिक समेकन की प्रक्रिया आगे बढ़ेगी। दूसरे, अनेक एजेंसियों के साधनों को एक जगह इकट्ठा करके गुणात्मक और स्थायी पुनर्वास के समान उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। तीसरे, बड़े पैमाने की किफायतों और वैज्ञानिक प्रबन्ध के कारण निवेश का बेहतर प्रतिफल प्राप्त किया जा सकता है। चौथे, कई विभाग और अभिकरण सामूहिक प्रयास में भाग ले सकते हैं तथा बैंकों आदि का सहयोग भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

भूमि पर आधारित, परिसम्पत्ति पर आधारित और हुनर/कौशल पर आधारित सामूहिक प्रयास की सफलता लिए कुछ पूर्व-शर्तें जरूरी हैं। पहली पूर्व शर्त है लाभान्वित किए जाने वाले व्यक्तियों का चुनाव और उस जगह का चुनाव जहाँ उन्हें बसाया जाना है। दूसरी है सरकार के विभिन्न विभागों का स्वैच्छिक सहयोग। कृषि, सिंचाई, पशु-पालन, पशु-चिकित्सा, वन, मत्स्य-पालन विभागों का सहयोग सामूहिक पुनर्वास के प्रयास की सफलता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। तीसरे, लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों में जागरूकता पैदा करना और इस प्रयास में स्वेच्छा से भाग लेने के लिए उन्हें तैयार करना भी जरूरी है। चौथे, इस सामूहिक प्रयास के कार्यान्वयन के लिए जो भी व्यवस्थातन्त्र हो उसका रवैया इस कार्यक्रम के प्रति तथा लाभान्वित होने वाले व्यक्तियों के प्रति सकारात्मक संवेदनशील और मानवीय हो। इस कार्यक्रम के साथ तथा लाभान्वित होने वाले लोगों के साथ उस व्यवस्था-तन्त्र का तादात्म्य स्थापित हो और वह उनके सुख-दुख में और सफलता-असफलता में अपने को भागीदार समझे। प्रसन्नता की बात है कि आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, केरल, कर्नाटक जैसे राज्यों ने (सीमित पैमाने पर) इस सामूहिक या समेकित विधि का अच्छा प्रयास किया है। इसे सारे भारत में अपनाया जाना चाहिए।

लोकहित में मुकदमें

अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं लोकहित के वादों का जिक्र करना चाहता हूँ जिन्हें स्वयंसेवी संस्थाएँ और सामाजिक कार्यकर्ता उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में ले जाते हैं। मैं बन्धुआ मजदूरों की पहचान मुक्ति तथा पुनर्वास के काम में

इन वादो के प्रभाव का भी सक्षेप मे उल्लेख करना चाहता हूँ। उन्हे ये मामले ग्रदालतो मे इसलिए ले जाने पडते हैं कि कानून लागू करने वाले ग्रभिकरण सवेदनशून्य और निष्प्रभावी होते हैं। इस प्रक्रिया मे ग्रन्याय और ग्रत्याचार की हृदय विदारक कहानियाँ सामने ग्राती है। 1984 की याचिका सख्या 8143 (प्रसिद्ध एशियाड का मामला) और 1982 की याचिका सख्या 2135 (प्रसिद्ध फरीदाबाद पत्थर खदान का मामला) मे ग्रदालत के निर्णय सफल लोकहित वादो के इतिहास में मील के पत्थर हैं। किन्तु प्रश्न यह रह जाता है कि क्या बन्धुग्रा मजदूरो की पहचान, मुक्ति और पुनर्वास की समस्या का यह ग्रन्तिम समाधान है ?

ऐसी स्वयसेवी संस्थाएँ और सामाजिक कार्यकर्त्ता दल बहुत कम हैं जो पूरे उत्साह और सकल्प के साथ उच्च न्यायालयो मे इन मामलो को ले जा सकते है। किन्तु साथ ही यह समस्या बहुत बडी है और यह उम्मीद नही की जा सकती कि स्वयसेवी सस्थाएँ और सामाजिक कार्यकर्त्ताग्रो के दल सारे देश मे सभी बन्धुग्रा मजदूरों तक पहुँच सकेंगे और उनके मामलो को उत्साह के साथ लड सकेंगे। ग्रदालतो की भी ग्रपनी सीमाएँ है, जहाँ परम्परागत मामले बहुत बडी सख्या मे विचाराधीन रहते हैं। ग्रतः इस समस्या का समाधान यह नही है कि बन्धुग्रा मजदूरो की मुक्ति और पुनर्वास के लिए लोकहित वादो की सख्या बढे बल्कि इस बात मे है कि कानून लागू करने वाले जडतन्त्र को ग्रधिक सक्रिय बनाया जाए जिसके लिए सही व्यक्तियो को सही जगह नियुक्त करना, उन्हे जमकर काम करने का ग्रवसर देना और सोद्देश्य के निमित्त समर्पित भावना से काम करने के लिए उन्हे प्रोत्साहन देना ग्रावश्यक है। वर्तमान कानूनतन्त्र को ग्रपनी सकुचित दृष्टि छोडनी चाहिए और लोकहित के वादो को उठाने वाली सस्थाग्रो को सन्देह की नजर से नही देखना चाहिए, ग्रपितु जीवन की ग्रावश्यकताग्रो को स्वीकार करना चाहिए। लोकहित वादो से तभी ग्रच्छे परिणाम निकल सकते हैं जब सदियो से ग्रन्यायपूर्ण तथा बेलगाम समाज व्यवस्था के शिकार इन ग्रभागे लोगो के प्रति हमारे रवैये में मूलभूत बदलाव ग्राएगा।"

बन्धुग्रा मजदूरों की ग्रनुमानित संख्या

बन्धक श्रमिक उन्मूलन सम्बन्धी कानूनों पर पूरी तरह कार्यान्वयन करने के लिए प्रथम चरण है—बन्धुग्रा श्रमिक का पता लगाना। बन्धुग्रा मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) ग्रधिनियम 1976 के प्रावधानो पर ग्रमल करने की जिम्मेदारी जिला मजिस्ट्रेटों तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट ग्रधीनस्थ ग्रधिकारियों पर होती है। राज्य सरकारो से प्राप्त रिपोर्टों के ग्रनुसार नवम्बर, 1985 तक 2,13,465 बन्धुग्रा मजदूरो का पता लगा लिया गया था। देश के विभिन्न राज्यो में बन्धुग्रा मजदूरो की कुल संख्या के ग्रनुमानों मे पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। ग्रनुमानो के प्रमुख स्रोत हैं—(1) गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान तथा राष्ट्रीय श्रम संस्थान एवं (2) एन० एस० एम० ग्रो० का सर्वेक्षण।

गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान (गाँधी पीस फाउण्डेशन) ने (मई, 1978 से दिसम्बर, 1978 तक) अनुमान लगाया कि 10 राज्यों में बन्धुआ मजदूरों की कुल संख्या 26·17 लाख है। एक सर्वेक्षण में कुछ तकनीकी खामियाँ थी। एन. एस एस ओ के 32वें दौर के सर्वेक्षण (जुलाई, 1977 से जून, 1978) में अनुमान लगाया गया था कि 15 राज्यों में ऐसे व्यक्तियों की संख्या 3 45 लाख है। दूसरी ओर, जैसा कि पहले उल्लिखित है, नवम्बर, 1986 तक राज्य सरकारों ने जो वास्तविक रूप से पता लगाया वह संख्या 2,13,465 रही। इनकी राज्यवार संख्या निम्नलिखित है—

बन्धुआ मजदूरों की राज्यवार संख्या

क्र.स.	राज्य	30-11-86 तक राज्य सरकार द्वारा पता लगाई गई संख्या	राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा अनुमानित संख्या	गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान द्वारा अनुमानित संख्या
1	2	3	4	5
1	आन्ध्र प्रदेश	24,788	7,300	3,25,000
2	बिहार	11,729	1,02,400	1,11,000
3	असम	–	4,400	–
4	गुजरात	62	4,200	1,71,000
5	हरियाणा	295	12,900	–
6	हिमाचल प्रदेश	–	–	–
7	जम्मू-कश्मीर	–	900	–
8	कर्नाटक	62,689	14,100	1,93,000
9	केरल	823	400	–
10	मध्य प्रदेश	5,627	1,16,200	5,00,000
11	महाराष्ट्र	740	4,300	1,00,000
12	मणिपुर	–	–	–
13	मेघालय	–	–	–
14	नागालैण्ड	–	–	–
15	उड़ीसा	43,947	5,400	3,50,000
16	पंजाब	–	4,300	–
17	राजस्थान	6,890	2,400	67,000
18	तमिलनाडु	33,180	12,500	2,50,000
19	त्रिपुरा	–	–	–
20	उत्तर प्रदेश	22,695	31,700	5,50,000
21	पश्चिम बंगाल	–	21,600	–
22	सभी केन्द्र शासित प्रदेश	–	–	–
	कुल	2 13,465	3,45,000	26,17,000

इंग्लैण्ड में मजदूरी का नियमन
(Regulation of Wages in U. K.)

यद्यपि इंग्लैण्ड मे रोजगार की दशाएँ तथा शर्तें बिना सरकारी हस्तक्षेप के ऐच्छिक पचफैसले से सामूहिक सौदाकारी द्वारा तय की जाती हैं, फिर भी सरकार ने कुछ व्यवसायो अथवा उद्योगों मे मजदूरी, छुट्टियों आदि का कानूनी नियमन किया है जहाँ कि श्रमिक अथवा नियोजक असगठित हैं। इस प्रकार के कानूनी नियमन के अन्तर्गत लगभग 3½ मिलियन श्रमिक आते हैं। इस शताब्दी के प्रारम्भ मे विभिन्न वेतन मण्डल (Wage Boards) विद्यमान थे। मजदूरी परिषद् अधिनियम, 1945 (Wages Councils Act of 1945) ने इन विद्यमान व्यापार मण्डलो (Trade Boards) को समाप्त करके वेतन परिषदों (Wages Councils) की स्थापना की। इन वेतन परिषदों को काफी व्यापक अधिकार प्रदान किए गए। इन परिषदो द्वारा साप्ताहिक गारण्टीयुक्त मजदूरी तथा वेतन सहित छुट्टियाँ देने का अधिकार है।

जिन मुख्य अधिनियमो द्वारा मजदूरी और कार्य के घण्टो का कानूनन नियमन किया जाता है, उनमे हैं—मजदूरी परिषद् अधिनियम, 1945 से 1948 (Wages Councils Acts, 1945 to 1948), केटरिंग मजदूरी अधिनियम, 1943 (Catering Wages Act, 1943), कृषि मजदूरी अधिनियम, 1948 (Agricultural Wages Act of 1948) और कृषि मजदूरी (स्कॉटलैण्ड) अधिनियम, 1949 (Agricultural Scotland Act, 1949)।

व्यापार मजदूरी अधिनियम, 1909 और 1918 (Trade Boards Acts, 1909 & 1918) के अन्तर्गत व्यापार मण्डल (Trade Boards) स्थापित किए गए थे। मजदूरी परिषद् अधिनियम, 1945 (Wages Councils Act of 1945) के अन्तर्गत इन व्यापार-मण्डलो को समाप्त करके मजदूरी परिषद् (Wages Councils) की स्थापना की गई। इन मजदूरी परिषदो मे श्रमिकों व मालिकों के समान सख्या मे प्रतिनिधि होते हैं तथा साथ ही तीन स्वतन्त्र व्यक्ति, जिनमे से एक अध्यक्ष होते है। इन मजदूरी परिषदो को व्यापक अधिकार प्रदान किए गए है। ये परिषदें सम्बन्धित उद्योग मे कानूनन न्यूनतम पारिश्रमिक (Statutory Minimum Remuneration) और छुट्टियाँ जो दी जाती हैं, के सम्बन्ध मे निर्धारण हेतु अपने प्रस्ताव श्रम एव राष्ट्रीय सेवा मन्त्री (Minister of Labour & National Service) को देती हैं। मन्त्री को यह अधिकार प्राप्त है कि मजदूरी परिषद् द्वारा प्राप्त प्रस्तावो को आदेश देकर कानूनी रूप दे सकता है और मजदूरी का नियमन कानून के अन्तर्गत आ जाता है। इन आदेशो की पालना हेतु मजदूरी निरीक्षकों (Wages Inspectors) की नियुक्ति मन्त्रालय के अन्तर्गत की जाती है।

इसी तरह की मजदूरी-निर्धारण की व्यवस्था कृषि एव भोजनालयो मे की गई है। किसी भी सस्थान अथवा उद्योग मे मजदूरी परिषद् की स्थापना करने के पूर्व श्रम मन्त्री यह जाँच करता है कि इस प्रकार के लाभ श्रमिको व मालिकों के बीच समझौते से प्राप्त हो सकते हैं अथवा नहीं। यदि ये लाभ दोनो पक्षो के सगठनो

के समझौते के आधार पर प्राप्त नही होते है तो श्रम मन्त्री मजदूरी परिषदों की स्थापना कर देता है। श्रम मन्त्रालय इस प्रकार की जांच एक स्वतन्त्र आयोग द्वारा करवाता है जिसमे स्वतन्त्र व्यक्ति तथा जिस उद्योग अथवा संस्थान हेतु मजदूरी परिषदों की स्थापना करनी है, उनको छोड़कर अन्य उद्योगो के श्रमिक व नियोक्ता सगठनो के प्रतिनिधियो को शामिल किया जाता है।

इंग्लैण्ड की 1961 के औद्योगिक सम्बन्धों पर प्रकाशित एक हस्त-पुस्तिका (Hand Book) के अनुसार बहुमत से श्रमिक जिनकी सख्या 3 4 मिलियन है, इन मजदूरी परिषदो के अन्तर्गत आते हैं। ये मजदूरी परिषदें एक समझौता करवाने का कार्य करती है जिसमें स्वतन्त्र सदस्य समझौताकारी (Conciliators) के रूप में काम करते है। सबसे पहले सभी श्रमिक व मालिको के प्रतिनिधि समझौता करने का प्रयास करते है। स्वतन्त्र व्यक्ति इन परिषदो मे मत नही देते फिर भी समझौता बहुमत से प्राप्त किया जाता है।

अमेरिका में मजदूरी का नियमन
(Regulation of Wages in U S. A)

अमेरिका मे श्रमिको की सुरक्षा हेतु समय-समय पर श्रम-विधान बनाए गए हैं क्योंकि श्रमिको की आर्थिक स्थिति नियोक्ताओं की तुलना मे असमान है। नियोक्ता-श्रमिक सम्बन्धो मे सबसे बडी असमानता हमे सरविल श्रम (Servile Labour) कि विवाद मे देखने को मिलती है। रोजगार का युग 1863 मे दासता की समाप्ति से समाप्त हो गया। इससे कोई भी व्यक्ति अपने कर्ज के कारण जबरदस्ती कार्य के लिए नही रखा जा सकता। सब प्रकार के श्रम मे मालिक और नौकर (Master & Servant) वाला सम्बन्ध समाप्त हो गया। अब श्रम मे पैतृकवाद (Paternalism) पाया जाता है और विशेषकर घरेलू और कृषि श्रमिको के रूप मे देखने को मिलता है। अमेरिका मे मजदूरी आज सबसे महत्वपूर्ण सुरक्षित दायित्व माना जाता है। सन् 1849 मे श्रमिको की मजदूरी पर कुड़की लगाकर ऋण मे जमा करने की प्रवृत्ति को समाप्त कर दिया गया।

ऐच्छिक रूप से श्रमिक द्वारा अपनी मजदूरी को ऋणदाता को देने के लिए भी कई कार्यवाहियाँ करनी पडती हैं, जैसे लिखित में हों, पति अथवा पत्नी से स्वीकृति ली जाए और समझौते की एक प्रति भी हो। श्रमिक के घर की जगह तथा औजार ऋणदाता द्वारा जब्त नहीं किए जा सकते। श्रमिकों, द्वारा नियोक्ता की सम्पत्ति अथवा उसके ग्राहक की सम्पत्ति से मजदूरी प्राप्त की जा सकती है। निर्माण-कार्य मे लगे श्रमिको को मजदूरी न मिलने पर नियोक्ता की सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर सकते है।

मजदूरी से सम्बन्धित कानून न केवल अमेरिका में सघीय स्तर पर ही है बल्कि अमेरिका के सभी राज्यों मे विद्यमान है। नियोक्ता के दिवालिया होने पर सबसे पहले सम्पत्ति में से मजदूरी चुकाई जाएगी। सामान्य रूप से नियोक्ताओं ने

श्रमिकों की मजदूरी पर अधिक ध्यान दिया है और विधान सभाओं में भी समस्या, स्थान और मजदूरी भुगतान के तरीके आदि के नियमन में अधिक रुचि ली है। कुछ राज्यों में मजदूरी का भुगतान कार्यकाल में ही करने पर ज़ोर दिया जाता है।

न्यूनतम मजदूरी, अधिकतम कार्य के घण्टे और श्रमिक (Minimum Wages, Maximum Hours and Child Labour)

अमेरिका में श्रमिकों की मजदूरी कब, कहाँ और कैसे दी जाए इस तक ही श्रम कानून सीमित नहीं रहे बल्कि इस बात को भी कानूनों में सम्मिलित किया गया कि कितनी मजदूरी कितने समय के लिए और किस प्रकार के श्रमिक को दी जाए। कुछ कार्यों में बाल श्रमिक व स्त्री श्रमिकों को लगाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। अमेरिका में न्यूनतम मजदूरी, कार्य के घण्टे तथा बाल श्रमिकों की समाप्ति आदि पर विभिन्न प्रान्तों तथा म्यूनिसिपल संस्थाओं द्वारा अध्यादेश जारी किए गए हैं। प्रमुख संघीय विधान उचित श्रम प्रमाप अधिनियम, 1938 (Federal Fair Labour Standards Act, 1938) है जिसे हम मजदूरी और कार्य के घण्टे का कानून (Wage of Hours Law) भी कह सकते हैं। इसकी वाल्स हीले सार्वजनिक प्रसंविदा अधिनियम, 1936 (Walsh Healey Public Contracts Act, 1936) द्वारा सहायता की जाती है। इसके अन्तर्गत सरकार को मजदूरी, कार्य के घण्टे और कार्य की दशाओं का नियमन करने का अधिकार प्राप्त है। यह सरकारी ठेके के 10 हजार डॉलर या अधिक होने पर लागू होता है। बेकन-डेविस मजदूरी कानून, 1931 (Bacon-Davis Wage Law, 1931) के अन्तर्गत 2 हजार डॉलर से अधिक के ठेके निर्माण अथवा सार्वजनिक इमारतों की मरम्मत आदि आते हैं। कठोर कार्य वाले उद्योगों में स्त्री श्रमिकों हेतु 8 घण्टे प्रतिदिन व 48 घण्टे प्रति सप्ताह अधिकतम सीमा रखी गई है और कुछ आयु से नीचे वाले बच्चों हेतु अनिवार्य स्कूल जाना कर दिया है।

उचित श्रम प्रमाप अधिनियम, 1938 में निम्नलिखित प्रावधान रखे गए हैं[1]—

1. कुछ अपवादों को छोड़कर इसमें अन्तर्राज्यीय व्यापार में लगे सभी श्रमिकों को शामिल किया गया है।

2. अधिनियम का मूल उद्देश्य 40 सेन्ट प्रति घण्टा की न्यूनतम मजदूरी को निम्न प्रकार से सभी जगह लागू करना था—

(i) प्रथम वर्ष (1939) में प्रति घण्टा 25 सेन्ट कानूनन न्यूनतम मजदूरी करना।

(ii) अगले पाँच वर्षों में (1945) प्रति घण्टा 40 सेन्ट कानूनन न्यूनतम मजदूरी करना।

1 *Phelps Orme W.* . Introduction to Labour Economics, p. 452.

(iii) इसके पश्चात् प्रति घण्टा 40 सेन्ट कानूनन न्यूनतम मजदूरी करना। न्यूनतम मजदूरी मे इसके बाद संशोधन किया गया। सन् 1949 मे 75 सेन्ट, 1955 मे 1 डॉलर, 1961 मे 1.15 डॉलर, 1963 मे 1.25 डॉलर और सन् 1967 मे 1.75 डॉलर प्रति घण्टा न्यूनतम मजदूरी कर दी गई है।

3. इस अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी दरो पर अधिकतम कार्य के घन्टे 40 प्रति सप्ताह धीरे-धीरे प्राप्त किया जाए।

(i) प्रथम वर्ष 1939 में अधिकतम कार्य के घण्टे 44
(ii) दूसरे वर्ष 1940 मे अधिकतम कार्य के घण्टे 42
(iii) इसके पश्चात् अधिकतम कार्य के घण्टे 40
(iv) कार्य के इन घण्टो से अधिक कार्य करने पर निश्चित दर से $1\frac{1}{2}$ गुनी मजदूरी देनी होगी।

4. इस अधिनियम के अन्तर्गत 16 वर्ष से कम उम्र वाले बाल श्रमिक से कार्य लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा कठोर कार्य वाले उद्योगो मे यह उम्र 18 वर्ष से कम न हो।

अमेरिका में सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत प्रभावी मजदूरी दर वैधानिक न्यूनतम मजदूरी (Statutory Minimum Wage) से अधिक है। कही-कही यह न्यूनतम मजदूरी से दुगुनी है और इसमे निर्वाह लागत भी शामिल है। सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत शनिवार या रविवार को कार्य करने पर न्यूनतम मजदूरी दर की दुगुनी दर दिलाई जाती है। इसके साथ ही मजदूरी सहित दो सप्ताह की वर्ष में छुट्टी दी जाती है।

सामूहिक सौदाकारी विशेष रूप से बहुमत नियम के सिद्धान्त के अन्तर्गत श्रमिक संघों द्वारा उनके प्रतिनिधियो को मजदूरी कार्य की दशाओं और सौदाकारी इकाई मे व्यक्तिगत श्रमिक की शिकायत पर व्यापक अधिकार दिए गए है।

अमेरिका मे काफी समय तक विचारधारा यह नही रही कि मजदूरी और कार्य के घण्टो का नियमन करना अच्छा है बल्कि प्रश्न यह रहा कि न्यायाधीश इन पर स्वीकृति देंगे अथवा नही। काफी समय तक प्रान्तीय व संघीय सरकार के न्यायालयों मे इस प्रकार के कार्यों को असंविधानिक घोषित किया गया।

अब संविधानिक विधान के अन्तर्गत मजदूरी, कार्य के घण्टे, स्त्री श्रमिक व बाल श्रमिक के कार्य-क्षेत्र आदि पर विधानसभा और संसद् द्वारा नियमन किया जा सकता है और इसमे न्यायालय अब हस्तक्षेप नही करते। सन् 1936 से कोई भी महत्त्वपूर्ण संघीय मजदूरी नियमन कानून असंविधानिक घोषित नही किया गया है।

एक संघीय प्रकार की सरकार मे यह समस्या रहती है कि मजदूरी नियमन का क्षेत्र कौन-सा होगा ? यदि रोजगार स्थानीय है तो इसके लिए राज्य सरकार उत्तरदायी है। राष्ट्रीय सरकार सर्वोच्च होती है। जहाँ अनिश्चितता होती है वहाँ

न्यायालय निश्चय करता है और नियमन के कार्यक्रमों के महत्त्वपूर्ण निर्णय हुए हैं। उदाहरणार्थ प्रथम संघीय श्रम कानून असंविधानिक घोषित कर दिया गया। इसका आधार यह था कि स्थानीय कारखानों में कार्य करने वाले श्रमिक स्थानीय विषय हैं जो कि राज्य सरकार का क्षेत्र है (हेमर बनाम डांगेहार्ट केस में—in Hammer V/s Dangehart, U. S. 251, 1918)।

परिस्थितियों और परिवर्तनों के कारण अन्तर्राज्यीय व्यापार का विस्तार हुआ। सन् 1937 में सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रीय श्रम-सम्बन्ध मण्डल बनाम जोनस और लोफलिन स्टील कॉरपोरेशन (National Labour Relations Board V/s Jones & Laughlin Steel Corporation) विवाद में यह निर्णय दिया कि निर्माणकारी अन्तर्राज्यीय व्यापार के अन्तर्गत आता है। यह निर्णय गत 150 वर्षों के दिए गए निर्णयों से बिल्कुल विपरीत हुआ।

उचित श्रम प्रमाप अधिनियम और वाल्श हीले सार्वजनिक प्रसंविदा अधिनियम का क्रियान्वयन प्रशासकों के हाथ में है। ये प्रशासक अमेरिकी श्रम विभाग के मजदूरी और कार्य के घण्टे और सार्वजनिक प्रसंविदा मण्डलों के विभागाध्यक्ष हैं। उनका कार्य अधिनियम की व्याख्या करना, निरीक्षण और अनुपालना तथा संशोधन आदि के लिए संसद् को नीति सम्बन्धी सिफारिशें करना है। ये अधिनियम 24 मिलियन श्रमिकों पर लागू होते हैं। इनके द्वारा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम कार्य के घण्टे और बाल श्रमिकों पर रोक आदि का क्रियान्वयन किया जाता है।

मजदूरी, कार्य के घण्टे और सार्वजनिक प्रसंविदा मण्डलों की रिपोर्ट 1959 (Report of the Wage of Hour of Public Contracts Divisions) से यह ज्ञात हुआ कि कई व्यक्ति छोटे बच्चों से कार्य लेने को गैर-कानूनी नहीं समझते थे। सन् 1959 में 10,242 छोटे बच्चों को असंविधानिक रूप से रोजगार में लगा रखा था।

मानवीय दृष्टिकोण से न्यूनतम मजदूरी, अधिनियम कार्य घण्टे और बालश्रम के नियमन से अमेरिका में बहुत से कम मजदूरी प्राप्त करने वाले श्रमिकों को बहुत सहायता मिली है। बहुत से नियोक्ताओं ने अधिनियमों की अनुपालना शुरू कर दी तथा निरीक्षण और क्रियान्वयन के द्वारा बहुत से नियोक्ताओं को इसके अन्तर्गत लाया गया है। इससे बहुत से श्रमिकों की मजदूरी में कई सौ मिलियन डॉलर की वृद्धि हुई है। यह पूर्ण रोजगार और उच्च जीवन स्तर के समय हुआ।

मजदूरी और रोजगार की शर्तों को निर्धारित करने का तरीका घटते उत्पादन व गिरती मजदूरी के रूप में व्ययपूर्ण रहा है। सन् 1959 में इस्पात हड़ताल (Steel Strike) के कारण श्रम विवादों को अनिवार्य रूप से निपटाने हेतु कई प्रस्ताव रखे गए।

भारत में औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी
(Wages of Industrial Workers in India)

श्रमिक तथा उसके परिवार के सदस्यों का जीवन स्तर मजदूरी पर निर्भर करता है। श्रमिक को दी जाने वाली मजदूरी में मूल मजदूरी, महँगाई भत्ता तथा अन्य भत्ते सम्मिलित किए जाते हैं। मजदूरी वह धुरी है जिसके चारों ओर श्रम समस्याएँ चक्कर काटती हैं। अधिकांश श्रम समस्याओं का मूल कारण मजदूरी है। मजदूरी श्रमिक के जीवन स्तर, कार्यकुशलता व उत्पादन को प्रभावित करने वाला महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। कीमत स्तर में परिवर्तन होने के कारण निर्वाह लागत में भी वृद्धि हो जाती है और इसके परिणामस्वरूप मजदूरी में भी वृद्धि करनी पड़ती है। शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) ने श्रम सांख्यिकी (Labour Statistics) में सुधार हेतु सिफारिश की थी लेकिन खानों व बागान श्रमिकों को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। फिर भी श्रम संस्थान (Labour Bureau) द्वारा समय-समय पर रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों में सर्वेक्षण किए जाते हैं और इनका प्रकाशन 'Indian Labour Journal' में किया जाता है।

सर्वप्रथम मजदूरी से सम्बन्धित आँकड़ों का संग्रहण श्रम जाँच समिति, 1944 (Labour Investigation Committee, 1944) द्वारा किया गया। औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम पास होने के बाद मजदूरी गणना (Wage Census) की जाती है और इनके द्वारा श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी, प्रेरणात्मक भुगतान आदि के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित की जाती है।

भारत में मजदूरी की समस्या का महत्त्व
(Importance of Wage Problem in India)

भारतीय श्रमिक अशिक्षित, अज्ञानी व रूढ़िवादी हैं। वे अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को भली-भाँति समझने में प्रायः असमर्थ हैं। उनकी सामूहिक सौदाकारी शक्ति नियोक्ता की तुलना में कमजोर है। परिणामतः मालिकों द्वारा श्रमिकों का शोषण किया जाता है और उनको बहुत कम मजदूरी दी जाती है अतः मानवीय दृष्टिकोण से मजदूरी की समस्या का समाधान होना आवश्यक है। श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी बहुत कम है, मजदूरी भुगतान करने का तरीका दोषपूर्ण है, मजदूरी की दरें भी भिन्न-भिन्न पाई जाती हैं।

सरकारी दृष्टिकोण से भी मजदूरी की समस्या का समाधान आवश्यक है। सामाजिक न्याय प्रदान करना सरकार का दायित्व है अतः श्रमिकों को उचित मजदूरी दिलाकर मजदूरी समस्या का समाधान किया जाए। मालिकों की दृष्टि से भी मजदूरी की समस्या महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह उत्पादन मूल्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। औद्योगिक प्रगति के लिए औद्योगिक शान्ति आवश्यक है और औद्योगिक शान्ति प्राप्त करने के लिए श्रमिकों की मजदूरी में सुधार आवश्यक है।

प्रचलित मजदूरी दरों का भी मजदूरी समस्या के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। एक ही स्थान पर एक ही उद्योग की विभिन्न इकाइयों, विभिन्न उद्योगो मे विभिन्न मजदूरी, समान कार्य मे भी भिन्न-भिन्न मजदूरी प्रचलित है। अत. मजदूरी के समानीकरण और प्रमापीकरण (Equalisation & Standardisation of Wages) हेतु भी मजदूरी की समस्या का अध्ययन आवश्यक है। विश्व के सभी विकसित देशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I. L. O) द्वारा भी इस समस्या को महत्त्व दिया जाने लगा है। मजदूरी सभी पक्षो—श्रम, पूँजी, समाज एवं सरकार—को प्रभावित करती है अत इन सभी पक्षो द्वारा भी मजदूरी की समस्या का अध्ययन किया जाने लगा है।

ऐतिहासिक सिंहावलोकन

सन् 1880 से 1938 के बीच मजदूरी की दरो मे परिवर्तन का अनुमान Dr. Kuczynski द्वारा दिए गए निम्न सूचकांको से लगाया जा सकता है[1]—

विभिन्न उद्योगों में मजदूरी (1900=100)

वर्ष	सूती वस्त्र	जूट	रेल्वे	खान	धातु-श्रमिक	निर्माण-कार्य	बागान
1880-89	80	84	87	71	75	90	—
1890-99	90	87	95	81	89	89	100
1900-09	109	106	109	116	112	109	104
1910-19	142	128	139	176	138	133	122
1920-29	273	194	245	255	190	195	170
1930-39	242	148	286	191	171	160	121

उपरोक्त आँकडो से स्पष्ट है कि 19वी शताब्दी के अन्तिम दशको मे औद्योगिक श्रमिको की मजदूरी की दरो मे स्थिरता रही है। वर्तमान शताब्दी के प्रथम दशक मे सूती वस्त्र उद्योग व जूट उद्योग की दर अन्य उद्योगो मे श्रमिको की मजदूरी की दरो से कुछ अधिक थी।

दूसरे महायुद्ध के समाप्त होने पर श्रम की माँग मे कमी आई, किन्तु बाद मे आर्थिक पुनर्निर्माण के कार्य हेतु उनकी माँग मे वृद्धि हुई। मूल्य-स्तर मे वृद्धि होने से श्रमिको की माँग, वेतन, मजदूरी व महँगाई भत्ते मे वृद्धि हुई। यद्यपि मालिको ने इस बात का विरोध किया था लेकिन सरकार ने उद्योगपतियो को मजदूरी मे वृद्धि करने के लिए विवश कर दिया। इसी के परिणामस्वरूप सन् 1948 में *न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (Minimum Wages Act, 1948)* पास किया गया।

विभिन्न उद्योगो मे श्रमिको की सौदाकारी शक्ति और विभिन्न न्यायालयों के निर्णयो के परिणामस्वरूप उनकी मजदूरी मे निरन्तर वृद्धि हुई लेकिन यह वृद्धि समान रूप से नही हुई। उदाहरणार्थ—सूती वस्त्र मिलो मे 400 रु. मासिक से कम कमाने वाले श्रमिको की औसत वार्षिक आय सन् 1961 मे 1722 रु. से

1 Quoted in 'Our Economic Problems' by Wadia & Merchant, p. 458.

बढ़कर सन् 1969 में 2694 रु हो गई। यह वृद्धि 1½ गुनी थी। जूट मिलों में यह 1113 रु से बढ़कर 2251 रु हो गई अर्थात् यह दुगुनी हो गई।

हमारे देश के विभिन्न राज्यों में 400 रु. मासिक तक पाने वाले कारखाना श्रमिकों की औसत वार्षिक आय विभिन्न है और वह असमान रूप से बढ़ी है। निम्न लिखित सारणी में हमारे देश में विभिन्न राज्यों तथा केन्द्रशासित क्षेत्रों में 1975 तक 400 रुपये से कम माहवार पाने वाले तथा 1976 और उसके बाद 1000 रु. माहवार से कम पाने वाले कारखाना मजदूरों की औसत वार्षिक कमाई दिखाई गई है—

कारखाना मजदूरों की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय

राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	1975	1980	1981[1]	1982[2]
आन्ध्र प्रदेश	2824	5186	6095	6095
असम	2627	4494	5899	3999
बिहार	2158	5584	5760	5277
गुजरात	2749	8546	7447	7447
हरियाणा	3371	6401	7696	7544
हिमाचल प्रदेश	2745	4745	7022	7022
जम्मू और कश्मीर	2843	4069	5080	5157
कर्नाटक	2893	4903	7545	7545
केरल	2947	7146	6948	8192
मध्य प्रदेश	3942	7964	8295	8972
महाराष्ट्र	3459	7190	8762	8762
उड़ीसा	4194	6728	7497	8445
पंजाब	3089	5196	5645	5645
राजस्थान	3325	6698	7493	7493
तमिलनाडु	2543	6477	6845	7115
त्रिपुरा	2453	7937	7937	7937
उत्तर प्रदेश	3054	6376	6376	6376
पश्चिम बंगाल	3966	7977	8149	9208
अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह	3300	4096	6270	6331
दिल्ली	3239	6228	6035	10106
गोआ, दमण तथा दीव	3792	5211	11768	7222
पाण्डिचेरी	2615	8066	8694	5628
सम्पूर्ण भारत	3158	6097	7423	7711

1 अस्थायी

2 सारणी में रेलवे वर्कशाप, अल्पकालीन उद्योगों जिनमें खाद्य तम्बाकू, शराब और निर्माण आदि की फैक्टरी में काम करने वाले मजदूर शामिल नहीं हैं, किन्तु रक्षा प्रतिष्ठान सम्मिलित हैं।

भारतीय कारखानों में औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी

(Wages of Industrial Workers in Indian Factories)

श्रमिक की औसत प्रति व्यक्ति वार्षिक आय से सम्बन्धित आँकड़े मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 (Payment of Wages Act, 1936) के अन्तर्गत मिलते हैं। कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 2 (M) के तहत आँकडे एकत्रित करके श्रम संस्थान, शिमला (Labour Bureau, Simla) को भेजे जाते है और वहाँ इन आँकडो को Indian Labour Journal मे प्रकाशित किया जाता है। मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 के अन्तर्गत जो आँकड़े एकत्रित किए जाते है उनकी निम्नलिखित सीमाएँ है—

1. इस अधिनियम के अन्तर्गत 1,000 रु (नवम्बर, 1975 के संशोधन से पूर्व 400 रुपये) प्रतिमाह से कम पाने वाले श्रमिकों को सम्मिलित किया जाता है। लेकिन ये श्रमिक कारखाना अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत आने वाले श्रमिकों से भिन्न है।

2. मजदूरी की परिभाषा भी दोनो अधिनियमो के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न है।

मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 के अन्तर्गत आने वाले सभी कारखाने राज्य सरकारों को प्राथमिक सूचनाएँ नही भेजते हैं। केवल रिपोर्ट करने वाली इकाइयों द्वारा ही सूचना मिलती है अत आँकडो मे प्रतिवर्ष भिन्नता पाई जाती है।

1. सूती वस्त्र उद्योग—यह भारत का प्रमुख सगठित उद्योग है। इसमे लगभग 10 लाख श्रमिक कार्य करते हैं। इस उद्योग के प्रमुख केन्द्र अहमदाबाद, बम्बई, शोलापुर, मद्रास, कानपुर और दिल्ली है। इस उद्योग के विकास के साथ-साथ काम करने वाले श्रमिको की आय मे वृद्धि हुई है तथापि महँगाई के कारण वास्तविक आय मे विशेष सुधार नही हुआ है। अनेक उद्योगो की तुलना मे इस उद्योग की औसत आय पर्याप्त ऊँची है। इस उद्योग मे कार्य करने वाले श्रमिको की आय मे काफी वृद्धि हुई है, लेकिन महँगाई मे वृद्धि होने से उनकी वास्तविक आय मे विशेष सुधार नही हुआ है। यह उद्योग सगठित उद्योग है जो सन्तोषजनक मजदूरी स्तर पर सबसे अधिक रोजगार प्रदान करता है। इस उद्योग के भावी विकास के लिए पर्याप्त सम्भावनाएँ है।

2. जूट उद्योग—यह सबसे प्राचीन उद्योग है। मजदूरी से सम्बन्धित सूचना नही मिल पाती क्योकि एक तो उद्योग मे विभिन्न व्यवसाय है और प्रमापीकरण की योजना का अभाव भी है। श्रम जांच समिति द्वारा मजदूरी गणना का सर्वेक्षण किया गया था। इसके अनुसार मूल मजदूरी प. बगाल मे सबसे अधिक है तथा विशुद्ध आमदनी कानपुर मे सबसे अधिक है। इस उद्योग में लगभग 2½ लाख श्रमिक काम कर रहे हैं। इस उद्योग मे सूती वस्त्र उद्योग की तुलना मे प्रारम्भ मे औद्योगिक शान्ति रही है।

3. ऊन उद्योग—इस उद्योग की कई इकाइयों में मजदूरी में वृद्धि हुई है। महँगाई भत्ते की दरों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्नताएँ पाई जाती हैं। सबसे ऊँची मजदूरी बम्बई में है।

4. चीनी उद्योग (Sugar Industry)—गोरखपुर व दरभंगा की चीनी मिलों को छोड़कर चीनी उद्योग में मूल मजदूरी स्थिर रही है। सभी कारखानों में महँगाई भत्ते की निर्वाह लागत के अनुसार क्षतिपूर्ति कर दी है। ठेके के श्रमिकों को गन्ने को उतारने तथा चीनी को लदान करने के कार्य में लगाया जाता है जिनको नियमित श्रमिकों की तुलना में 5 से 10 प्रतिशत कम मजदूरी दी जाती है।

5 बागान उद्योग (Plantations Industry)—चाय, कहवा और रबड़ के बगीचों में काम करने वाले श्रमिक अर्द्ध-कृषक हैं और इस उद्योग में मजदूरी के भुगतान की पद्धति कारखाना उद्योग में उपलब्ध पद्धति से बहुत भिन्न है। असम के चाय-बागानों में कार्यानुसार मजदूरी दी जाती है। श्रमिकों को दिए जाने वाला कार्य का प्रमापीकरण नहीं हुआ है, लेकिन अधिकांश बागानों में श्रमिकों की मजदूरी समान है क्योंकि बागान मालिकों ने आपस में समझौता कर रखा है। दक्षिणी भारत के बागान उद्योग में समयानुसार एवं कार्यानुसार मजदूरी दी जाती है। चाय उद्योग में भारत में मजदूरी के साथ-साथ अन्य सुविधाएँ भी प्रदान की जाती हैं, जैसे—कृषि हेतु भूमि, नि:शुल्क आवास, डॉक्टरी चिकित्सा, ईंधन एवं चारे की सुविधाएँ, सस्ते खाद्यान्न एवं वस्त्रों की सुविधाएँ।

6. खनिज उद्योग—इस उद्योग में मजदूरी और आय के आँकड़ों की प्राप्ति का मुख्य स्रोत मुख्य खान निरीक्षक (Chief Inspector of Mines) की रिपोर्ट्स हैं। कोयला खान बोनस योजना, 1948 (Coal Mine Bonus Scheme, 1948) के अन्तर्गत आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और प. बंगाल में कार्य करने वाले श्रमिकों को जिनकी मजदूरी 300 रु. प्रति माह से कम है, मूल वेतन का एक तिहाई बोनस प्राप्त करने का अधिकार है।

7. परिवहन (Transport)—रेल कर्मचारियों को दिए जाने वाले पारिश्रमिक में वेतन, भत्ते, नि:शुल्क यात्रा, भविष्य निधि अंशदान, अपदान (Gratuity), पेन्शन लाभ और अनाज की दूकान सम्बन्धी रियायतें शामिल की जाती हैं। औसत वार्षिक आय तृतीय और चतुर्थ श्रेणियों के कर्मचारियों की दशा में पर्याप्त रूप से बढ़ गई।

मजदूरी की नवीनतम स्थिति (1985-86) पर सामूहिक दृष्टि

मजदूरी के सम्बन्ध में विभिन्न विधानों और विकासों का उल्लेख पूर्व पृष्ठों में विस्तार से किया जा चुका है और बहुत-सी अन्य बातों पर विचार अगले अध्यायों में किया जाएगा। इस सम्बन्ध में जो नवीनतम संशोधन, विकास और निर्णय हुए हैं उन पर सामूहिक रूप से यहाँ दृष्टि डालना उपयोगी होगा। यह 'सामूहिक दृष्टि' हमें यत्र-तत्र बिखरी बातों की एक ही स्थल पर जानकारी दे सकेगी। नवीनतम स्थिति पर

श्रम मन्त्रालय की 'वार्षिक रिपोर्ट 1985–86' में प्रस्तावनात्मक और सामान्य विवरण के रूप मे निम्नानुसार प्रकाश डाला गया है—

भारत की श्रम नीति का परिस्थितियों की विशिष्ट आवश्यकताओं के सन्दर्भ मे तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की अपेक्षाओं के अनुरूप विकास होता रहा। विशेषकर, स्वाधीनता के बाद देश के श्रमिकों के कल्याण के प्रति सरकार की दिलचस्पी इस तथ्य से स्पष्ट है कि समाज-सुरक्षा, सुरक्षा-कल्याण और अन्य मामलों मे अनेक विधायी अधिनियम वर्ष 1947 के बाद ही पारित किए गए अथवा सुधारे गए। इस वर्ष के दौरान, चार केन्द्रीय अधिनियमों मे संशोधन किया गया अर्थात् बोनस संदाय अधिनियम, 1965, बालक नियोजन अधिनियम, 1938, बन्धित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976 और ठेका श्रम (विनियमन और उत्पादन) अधिनियम, 1970। उन प्रस्तावों को छोड़कर जिनके लिए विधेयक पहले ही ससद मे पेश किए जा चुके हैं, अनेक अन्य विधायी प्रस्तावों पर अलग-अलग अवस्थाओं मे जाँच की जा रही है और वे विचाराधीन हैं।

भारत के प्रधान मन्त्री द्वारा 1982 मे एक नए 20-सूत्री कार्यक्रम की घोषणा के फलस्वरूप श्रम मन्त्रालय इस कार्यक्रम की दो मदों अर्थात् मद संख्या-5 और 6 के लिए उत्तरदायी है। मद सख्या-5 कृषि श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी दरों की पुनरीक्षा करने तथा उन्हे प्रभावी ढंग से लागू करने के बारे मे है जबकि मद संख्या-6 का सम्बन्ध बन्धुआ श्रमिकों के पुनर्वास से है। श्रम मन्त्रालय ने यह सुनिश्चित करने के लिए अपने प्रयास जारी रखे कि राज्य सरकारें/संघ-राज्य क्षेत्र प्रशासन कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी दरों मे न केवल समय-समय पर संशोधन करें परन्तु उन्हे उचित ढंग से लागू भी करें। वास्तव मे यह कृषि मे न्यूनतम मजदूरी दरों के पुनरीक्षण तथा प्रवर्तन सम्बन्धी सूचना को नियमित रूप से मानिटर करना रहता है। केन्द्रीय सरकार ने चार राज्यों (अर्थात् मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और मणिपुर) की सहायता प्रदान करने हेतु प्रायोगिक आधार पर केन्द्र द्वारा संचालित योजना को भी मन्जूरी दी है, ताकि वे कृषि मे न्यूनतम मजदूरी दरों के कार्यान्वयन के लिए प्रवर्तन तन्त्र को सुदृढ कर सकें। इस योजना मे उन विकास ब्लाकों मे 200 ग्रामीण श्रम निरीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था है, जहाँ अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति श्रमिकों की तादाद 70 प्रतिशत से अधिक है।

बन्धुआ श्रमिकों के उचित और स्थायी पुनर्वास का प्रयत्न करते समय, श्रम मन्त्रालय ने ग्रुप-उन्मुख दृष्टिकोण को ध्यान में रखा है। इसके अतिरिक्त, मुक्त कराए गए बन्धुआ श्रमिकों को केन्द्रीय बिन्दु (फोकल प्वाइंट) माना गया है, और पुनर्वास योजना बनाने तथा उसे लागू करने के दौरान उसके अधिमानों, अनुभूत आवश्यकताओं, अभिरुचि और कौशलों को ध्यान में रखा गया है। फिर भी यह

एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य विभिन्न स्रोतों अर्थात् आई. आर डी. पी. एन. आर ई पी., टी. आर. वाई. एस ई. एम., अनुसूचित जातियों के विकास के लिए विशिष्ट घटक (कम्पोनेंट) प्लान, अनुसूचित जातियों के विकास के लिए विशिष्ट केन्द्रीय सहायता, जनजातीय उपप्लान, सशोधित क्षेत्र विकास योजना, पिछड़े एवं परित्यक्त क्षेत्रों के विकास सम्बन्धी योजना, आदि से साधनों को एकत्र (पूल) करना है और सूझबूझ तथा कौशल के साथ उन्हें एकीकृत करना है ताकि बेहतर और अच्छी कोटि का पुनर्वास सुनिश्चित हो सके।

बन्धुआ श्रमिकों के पुनर्वास में राज्य सरकारों के प्रयासों को अनुपूरित करने के लिए, श्रम मन्त्रालय ने 1978–79 में केन्द्र द्वारा सचालित योजना शुरू की, जिसके अन्तर्गत बन्धुआ श्रमिकों के पुनर्वास के लिए राज्य सरकारों को बराबर-बराबर अनुदान (50.50) के आधार पर केन्द्रीय वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इस योजना में प्रत्येक बन्धुआ श्रमिकों पर अधिकतम 6250-00 रुपये तक की वित्तीय सहायता की परिकल्पना की गई है, जिसमें 500-00 रुपये नकद तथा शेष राशि जिस के रूप में दी जाती है। वित्तीय वर्ष 1985–86 के दौरान, योजना आयोग ने सम्बन्धित राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके, ग्यारह राज्यों के बारे में प्रारम्भ में 30,593 बन्धुआ श्रमिकों का लक्ष्य निर्धारित किया और इसके लिए 5 करोड़ रुपये का वित्तीय आवंटन किया। इस लक्ष्य के मुकाबले में, राज्य सरकारों ने अप्रेल, 1985 से दिसम्बर, 1985 की अवधि के दौरान 9,463 बन्धुआ श्रमिकों के पुनर्वास की सूचना दी है। बन्धुआ श्रमिकों के पुनर्वास की गति को बढ़ाने के लिए, पुनर्वास योजनाओं को मन्जूरी प्रदान करने तथा अनुदान राशि प्रदान करने की प्रक्रिया को 17 सितम्बर, 1985 से और सरल बना दिया गया है जिसके द्वारा राज्य सरकारों को अनुमति दी गई है कि वे पुनर्वास योजनाओं की स्वीकृति के आधार, जिला-स्तर पर स्क्रीनिंग समितियाँ गठित करके, जिला अधिकारी कलेक्टरों (डिवीजनल आयुक्तों) को सौंपें। इस प्रक्रिया से पहले, मंजूरी के अधिकार राज्य सरकारों के पास होते थे। यह भी प्रस्ताव है कि बन्धुआ श्रमिकों का पता लगाने के लिए स्वैच्छिक संगठनों को सहायता अनुदान की व्यवस्था करने हेतु एक योजना शुरू की जाए। धारणा यह है कि इस योजना को 'पीपल्स एक्शन फार डेवल (इण्डिया)' (पी ई डी आई) के माध्यम से लागू किया जाए, जो एक स्वायत्त निकाय है तथा ग्रामीण विकास मन्त्रालय के अधीन काम कर रहा है। वर्ष 1985-86 के दौरान इस योजना के लिए 10-00 लाख रुपये की व्यवस्था की गई है।

असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की ओर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया जा रहा है। लेकिन सरकार ने सगठित क्षेत्र के श्रमिकों की वास्तविक आय और कार्य-दशाओं में सुधार लाने की ओर से अपना ध्यान हटाया नहीं है। असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के हितों की रक्षा करने में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948, ठेका श्रम (विनियमन और उत्पादन) अधिनियम, 1970, अन्तर्राज्यिक प्रवासी कर्मकार (रोजगार का विनियमन और सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1966, बीड़ी कर्मकार

कल्याण निधि अधिनियम, 1976, उत्प्रवास अधिनियम, 1983, आदि दस्तावेजों का मुख्य हाथ रहा है। इन वर्षों के दौरान, इन कानूनों को बेहतर ढंग से लागू करने के लिए कई कदम उठाए गए हैं। भवन और निर्माण उद्योग के श्रमिकों की काम करने की दशाओं को विनियमित करने के लिए विधान पेश करने पर विचार किया जा रहा है।

बाल श्रमिकों और महिला श्रमिकों के कल्याण के सम्बन्ध में कई मंचों पर व्यापक विचार-विमर्श हुआ। नवम्बर, 1985 में हुए भारतीय श्रम सम्मेलन ने बाल श्रमिक सम्बन्धी व्यापक विधान की सिफारिश की खतरनाक जिसमें व्यवसायों में उनके रोजगार को प्रतिषिद्ध करने की व्यवस्था हो और जहां कहीं अन्यथा सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के कारण उन्हें नियोजित किया जाए वहां पर उनकी कार्य दशाओं को विनियमित किया जाए। इस बात की आवश्यकता को बाल श्रम सम्बन्धी केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने भी दोहराया तथा तदनुसार नए विधान को यथाशीघ्र पेश करने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। श्रम मन्त्रालय महिला श्रमिकों से सम्बन्धित श्रम कानूनों का भी पुनरीक्षण कर रहा है, ताकि जहां कहीं आवश्यक हो, विशेष संशोधन किए जा सकें।

कारखाना सलाह सेवा और श्रम विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय तथा खान सुरक्षा महानिदेशालय का सगठन औद्योगिक और खनन सुरक्षा पहलुओं पर ध्यान देता है। श्रम मन्त्रालय का सम्बन्ध पत्तनों और गोदियों में माल लादने और उतारने तथा खानों में नियोजित श्रमिकों के लिए नीति बनाने और सुरक्षा उपायों को लागू करने हेतु दिशा-निर्देश निर्धारित करने से है। यह सुरक्षा पुरस्कारों को भी प्रदान करता है। 1985-86 के दौरान, सरकार ने औद्योगिक श्रमिकों की सुरक्षा तथा उनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित मामलों के बारे में राज्य सरकारों और सघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों के श्रम सचिवों का विशेष सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में हुए विचार-विमर्श के अनुसार, सरकार ने सुरक्षा एवं स्वास्थ्य दुर्घटना कमी कार्रवाई योजना तैयार की जिसमें नियोजकों/श्रमिकों/ट्रेड यूनियनों और सरकारी विभागों, विशेष रूप से कारखाना निरीक्षणालयों के औद्योगिक सुरक्षा के क्षेत्र में उत्तरदायित्वों का उल्लेख किया गया था और इस योजना को नियोजकों तथा श्रमिकों के केन्द्रीय सगठनों, राज्य सरकारों, सघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों को उनका कड़ाई से पालन करने के लिए भेजा गया था। सरकार ने खान सुरक्षा सम्बन्धी छठा सम्मेलन भी आयोजित किया जिसमें खान दुर्घटनाओं में कमी तथा अपेक्षित सुविधाओं की व्यवस्था करके खान सुरक्षा निरीक्षणालयों को सुदृढ करने हेतु उपायों के बारे में विशेष सिफारिशें की गई थी।

1985 में, सरकार ने 'प्रधान मन्त्री के श्रम पुरस्कार' नामक एक योजना शुरू की जिसके अनुसार श्रमिकों को कार्य निष्पादन के विख्यात रिकार्ड, अत्यधिक कार्य निष्ठा, उत्पादकता के क्षेत्र में विशेष योगदान, प्रमाणित नव परिवर्तन लाने

की योग्यताएँ, सुध-बुध और असाधारण साहस, जिसमें ईमानदारी से अपनी ड्यूटी करते हुए, अपने जीवन का सर्वोच्च त्याग शामिल है, के सम्मान में ये पुरस्कार प्रदान किए जाएँगे। कुल मिलाकर ऐसे दस पुरस्कार हैं जिनकी घोषणा प्रति वर्ष स्वतन्त्रता दिवस की पूर्व सन्ध्या पर की जाएगी। इनकी चार श्रेणियाँ होंगी जैसे—'श्रम रत्न', 'श्रम भूषण', 'श्रम वीर' और 'श्रम श्री'/'श्रम देवी'। इन पुरस्कारों में श्रम रत्न के लिए एक लाख रुपये, श्रम भूषण के लिए 50,000 रुपये, श्रम वीर के लिए 30,000 रुपये और श्रम श्री/श्रम देवी के लिए 20,000 रुपये का नकद पुरस्कार है तथा प्रधानमन्त्री द्वारा हस्ताक्षरयुक्त 'सानद' भी है। पुरस्कार जीतने वालों का चयन करते समय यह सुनिश्चित किया जाता है कि उसमें महिलाओं और अपंग श्रमिकों को भी उचित प्रतिनिधित्व मिले जिन्होंने अपनी ड्यूटी करते समय महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

उत्प्रवास अधिनियम, 1983 जिसने 1922 के उत्प्रवास अधिनियम का स्थान ले लिया है, इस मन्त्रालय द्वारा लागू किया जा रहा है। इस अधिनियम में जो 30 दिसम्बर, 1983 को लागू हुआ और इसके अधीन बनाए गए नियमों में ऐसे भर्ती एजेण्टों के पंजीकरण और ऐसे नियोजकों (भारतीय और विदेशी दोनों) को परमिट देने की प्रणाली की परिकल्पना की गई है, जो सीधी भर्ती करना चाहते हैं। इस मन्त्रालय का यह प्रयास रहा है कि ऐसे उत्प्रवासी श्रमिकों को अधिक संरक्षण प्रदान किया जाए जो विदेशों में रोजगार अवसरों का लाभ उठाना चाहते हैं। भर्ती के सम्बन्ध में शोषणकारी प्रथाओं पर काबू पाने के लिए तथा एजेण्टों और नियोजकों की दोहरी जिम्मेदारी की प्रणाली को प्रोत्साहित करने के लिए अधिनियम में पर्याप्त दण्डात्मक उपायों की व्यवस्था की गई है। पिछले अनुभव को देखते हुए, इसे आवश्यक समझा गया और तदनुसार उत्प्रवासियों के लिए अनिवार्य बीमा योजना शुरू करने तथा इस उद्देश्य के लिए अधिनियम में उचित रूप से संशोधन करने का निर्णय लिया गया। आलोच्य वर्ष के दौरान, उल्लेखनीय उपलब्धि यह है कि भारत और कातार सरकारों के बीच द्विपक्षीय करार पर हस्ताक्षर किए गए। श्रमिकों का आयात करने वाले कुछ देशों अर्थात् यूनाइटेड अरब अमीरात, जोर्डन और ईराक ने इसी प्रकार के करारों पर हस्ताक्षर करने में गहरी दिलचस्पी दिखाई है। अन्य देशों में जनशक्ति निर्यात की सम्भावना का पता लगाने और अधिनियम तथा नियमों के अन्तर्गत निर्दिष्ट विभिन्न उपबन्धों के कार्यान्वयन पर नजर रखने के लिए केन्द्रीय सलाहकार समिति का गठन किया गया है।

मजदूरी बोर्डों के गठन द्वारा मजदूरी दरों के निर्धारण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई। न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) यू. एन. बाछावत की अध्यक्षता में श्रमजीवी पत्रकारों और गैर-पत्रकार समाचार-पत्र कर्मचारियों के लिए दो मजदूर बोर्ड तथा न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) जे. एम. टण्डन की अध्यक्षता में चीनी उद्योग के लिए

तीसरा मजदूरी बोर्ड जुलाई, 1985 में गठित किए गए थे। चीनी उद्योग के मजदूरी बोर्ड ने श्रमिकों को अन्तरिम मजदूरी दर के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें पहले ही प्रस्तुत कर दी है। इस वर्ष के दौरान बोनस संदाय अधिनियम, 1965 में दो बार संशोधन किया गया ताकि अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारी, जो प्रतिमास 2500 रुपये प्रतिमास तक वेतन/मजदूरी प्राप्त कर रहे हैं, 1984 में किसी भी दिन से शुरू होने वाले लेखा वर्ष से बोनस की अदायगी के पात्र बन सकें, लेकिन शर्त यह होगी कि 1600 रु और 2500 रु. प्रतिमाह के बीच मजदूरी/वेतन प्राप्त करने वाले कर्मचारियों के सम्बन्ध में बोनस की गणना इस प्रकार की जाएगी मानो उनकी मजदूरी/वेतन 1600 रु. प्रति माह हो।

समाज सुरक्षा एक ऐसा अन्य क्षेत्र है जहाँ मुख्य कार्य यह रहा है कि इसकी योजनाओं तथा कानूनों के बीमा क्षेत्र को बढ़ाया जाए और पहले से प्रदान की गई सुविधाओं में आवश्यक सुधार भी किए जाएँ। कैलेण्डर 1985 के दौरान, कर्मचारी राज्य बीमा योजना को सात नए औद्योगिक केन्द्रों पर लागू किया गया और इसके अन्तर्गत आने वाले अतिरिक्त कर्मचारियों की संख्या लगभग 46,000 थी (वर्तमान केन्द्रों में नए प्रवेश पाने वालों सहित)। इसी प्रकार, कर्मचारी भविष्य निधि योजना को लगभग 2200 नए प्रतिष्ठानों पर लागू किया गया जिनमें 2 लाख कर्मचारी शामिल थे (अक्तूबर, 1984 से सितम्बर, 1985 तक सीमा क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले वर्तमान प्रतिष्ठानों में नए सदस्यों सहित)। इसके अतिरिक्त, इस योजना के अन्तर्गत आने के लिए मजदूरी सीमा को 1–9–1985 से 1600 रु. से बढ़ाकर 2500 रु. प्रतिमाह कर दिया गया है। भवन निर्माण प्रयोजन हेतु भविष्य निधि में धन निकालने की सीमा को 24 माह की मजदूरी से बढ़ाकर 36 माह की मजदूरी कर दिया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि कर्मचारी राज्य बीमा निगम ने इस वर्ष के दौरान कर्मचारी राज्य बीमा लाभानुभोगियों के प्रयोग के लिए 450 पलंगों वाले चार अस्पताल शुरू किए। कर्मचारी परिवार पेंशन योजना के अन्तर्गत पेंशन पाने वाले अब 1–4–1985 से 60 रु. से 90 रु के बीच पेंशन में अनुपूरक वृद्धि पाने के हकदार हैं।

केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड ने श्रमिकों को ट्रेड संघवाद की तकनीकों में प्रशिक्षण देने, जनतान्त्रिक समाज में उनकी भूमिका और उसके दायित्वों तथा सामान्य जन नेतृत्व को प्रोत्साहन देने जैसे कार्यक्रम जारी रखे। इस वर्ष से कामकाजी बालकों और उनके माता-पिता की शिक्षा सम्बन्धी एक नई परियोजना शुरू की गई है। इस परियोजना के अन्तर्गत शिवाकाशी क्षेत्र के बाल श्रमिकों के लिए प्रथम पाठ्यक्रम 14–11–1985 को शुरू किया गया था। उच्चतम न्यायालय के निर्देश के अनुसार इस बोर्ड ने फरीदाबाद के निकट पत्थर खदानों के श्रमिकों के लिए शैक्षणिक कैम्पों का जनवरी, 1984 में आयोजन शुरू किया। 1985–86 के दौरान, इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कुल 558 श्रमिक प्रशिक्षित किए

गए। बोर्ड के विभिन्न कार्यक्रमों में महिला श्रमिकों के भाग लेने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। बोर्ड के कामकाज, संगठन तथा श्रमिक शिक्षा कार्यक्रमों के प्रभाव का जायजा लेने की दृष्टि से 9-11 जुलाई, 1985 को 'अगले दशक में श्रमिक शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय विचार गोष्ठी' का आयोजन किया गया।

देश में औद्योगिक सम्बन्ध स्थिति के बारे में सूचना श्रम मन्त्रालय के श्रम सम्बन्ध मानीटरिंग यूनिट द्वारा नियमित रूप से मानीटर की जाती है। कुल मिलाकर औद्योगिक सम्बन्ध स्थिति में खासा सुधार हुआ। हड़तालों तथा तालाबन्दियों के कारण हानि हुई, श्रम दिनों की संख्या में गिरावट आई। यह संख्या 1984 में 560·3 लाख थी जो घटकर 1985 में (जनवरी से नवम्बर) 273·1 लाख हो गई। इसी तरह, इस यूनिट को सूचित किए गए विवादों (हड़तालों और तालाबन्दियों) की संख्या में तेजी से कमी हुई। यह संख्या 1984 में 2094 (1689 हड़तालें और 405 तालाबन्दियाँ) थी जो घटकर 1985 (जनवरी से नवम्बर) में 1413 (1062 हड़तालें और 351 तालाबन्दियाँ) हो गई। यह सन्तोष की बात है कि केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध तन्त्र बम्बई पत्तन, भारतीय खाद्य निगम (बम्बई और मनमाड), कोचीन रिफाइनरीज् लिमिटेड, डाक विभाग, टेलीफोन विभाग, विशाखा रिफाइनरीज, कुद्रेमुख आयरन और कम्पनी लिमिटेड, केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग, मिनरल एक्सप्लोरेशन कारपोरेशन लिमिटेड, नेशनल मिनरल डेवलमैन्ट कारपोरेशन और न्यू मंगलौर पत्तन में विवादों का निपटारा करने तथा हड़तालों को रोकने में सफल रहा। त्रिपक्षीय सलाहकार पद्धति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से, कई वर्तमान औद्योगिक समितियों का पुनर्गठन किया गया है और वर्ष के दौरान इनकी बैठकें आयोजित की गईं।

1985–86 की अन्य प्रमुख घटना श्रम मन्त्री की अध्यक्षता में नवम्बर, 1985 में भारतीय श्रम सम्मेलन के 28वें अधिवेशन का आयोजन था, जिसने कुछ महत्त्वपूर्ण मसलों पर विचार-विमर्श किया और इसने स्थायी श्रम समिति को पुनः शुरू करने की सिफारिश की ताकि सम्बन्धित पत्रकारों के बीच लगातार बातचीत हो सके। यह आशा की जाती है कि इस पद्धति की व्यवस्था से औद्योगिक शान्ति और अर्थव्यवस्था में चहुँमुखी विकास का नया युग शुरू होगा।"

जीवन-स्तर की अवधारणा
(Concept of Standard of Living)

जीवन-स्तर का अर्थ
(Meaning of the Standard of Living)

जीवन-स्तर का क्या अर्थ है? इसकी परिभाषा देना बड़ा कठिन है। जीवन-स्तर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति, एक वर्ग से दूसरे वर्ग और एक देश से दूसरे देश में भिन्न-भिन्न पाया जाता है। किसी व्यक्ति के जीवन-स्तर को मापने का कोई निश्चित पैमाना नहीं है। जब हम यह कहें कि 'अ' देश में 'ब' देश से जीवन-स्तर

ऊँचा है तो इसका अर्थ यह है कि यह समस्त समाज का स्तर है जिसका निर्धारण उस देश की प्राकृतिक सम्पदा, जनसंख्या व उसकी कार्यकुशलता और औद्योगिक संगठन की अवस्था द्वारा होता है। जीवन-स्तर को परिभाषित करने हेतु हमे अनिवार्य सुविधाएं एवं विलासिताओं की वस्तुओ के उपयोग को ध्यान मे रखना पडता है। जिस समाज अथवा देश मे इनका उपभोग अधिक किया जाता है वहाँ जीवन-स्तर उन्नत होता है। अत किसी भी समाज अथवा व्यक्ति के जीवन-स्तर के विचार को जानने के लिए उस व्यक्ति का समाज मे स्थान, सामाजिक वातावरण, जलवायु आदि को ध्यान मे रखना पड़ेगा।

जीवन-स्तर दो प्रकार का हो सकता है—ऊँचा और नीचा। ऊँचा जीवन-स्तर वह है जिसमें मनुष्य अपनी अधिक से अधिक आवश्यकताओ (अनिवार्य सुविधाएँ और विलासिताएँ आदि) की सन्तुष्टि करता है—अर्थात् अच्छा भोजन, अच्छा मकान, अच्छे वस्त्र, बच्चो के लिए अच्छी शिक्षा की व्यवस्था, चिकित्सा की व्यवस्था आदि। इसके विपरीत नीचा जीवन-स्तर वह जीवन-स्तर है जिसके अन्तर्गत मनुष्य अपनी सीमित आय से बहुत ही कम आवश्यकताओ की पूर्ति कर पाता है।

जीवन-स्तर एक तुलनात्मक शब्द है। जब भी हम जीवन-स्तर का अध्ययन करते है तो एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य, एक समाज से दूसरे समाज और एक देश से दूसरे देश के जीवन-स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। भारतीय औद्योगिक श्रमिक का जीवन-स्तर कृषि श्रमिक से ऊँचा है अथवा नही, यह भी तुलनात्मक रूप मे ही जीवन-स्तर का अध्ययन होगा।

जीवन-स्तर के निर्धारक तत्त्व
(Determinants of Standard of Living)

किसी देश के समस्त व्यक्तियों का जीवन-स्तर समान नही होता। एक ही देश मे विभिन्न व्यक्तियो, वर्गों, समाजो तथा स्थानो का जीवन-स्तर भिन्न-भिन्न पाया जाता है। जीवन-स्तर मे समयानुसार परिवर्तन होता रहता है। तेजी मे ऊँची मौद्रिक आय होने पर भी लोगो का जीवन-स्तर निम्न होता है क्योकि अनिवार्य वस्तुएँ भी आसानी से सुलभ नही हो पाती हैं। वर्तमान समय मे भारत इसी दौर से गुजर रहा है। अत जीवन-स्तर को प्रभावित करने अथवा निर्धारित करने वाले तत्त्व अनेक हैं जिन्हें मोटे तौर पर वातावरण व व्यक्तिगत तत्त्वो के रूप मे विभाजित कर सकते हैं। वातावरण के अन्तर्गत समय, आय और वर्ग को शामिल किया जाता है।

1. भौगोलिक परिस्थितियाँ (Geographical Conditions)—जहाँ सर्दी अधिक पडती है वहाँ के निवासियो का जीवन-स्तर उस दूसरे देश के निवासियो के जीवन-स्तर से जहाँ गर्मी पडती है और सूती वस्त्र धारण किए जाते हैं, अलग होता है। भारत मे गंगा-सिन्धु के मैदान मे रहने वाले लोगो का जीवन-स्तर देश के अन्य निवासियों से ऊँचा पाया जाता है।

2. समय तत्त्व (Time Factor)—प्राचीन समय में आवश्यकताएँ सीमित थी लेकिन वर्तमान समय मे विज्ञान के क्षेत्र मे काफी उन्नति होने से सस्ती एवं जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण काफी होने लगा है। रेडियो, गैस का चूल्हा, रेफ्रीजरेशन आदि का उपयोग निरन्तर बढ रहा है। भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं का भी यही लक्ष्य रहा है कि अधिकाधिक उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन हो जिससे कि यहाँ के लोगों का जीवन-स्तर उन्नत हो सके।

3. सामाजिक रीति-रिवाज (Social Customs)—मनुष्य जिस समाज मे जन्म लेता है और रहता है, उस समाज के रीति-रिवाजो का उस पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ, भारत मे अधिकांश जीवन की कमाई मृत्यु-भोज, दहेज, विवाह, दावत और क्षणिक शान-शौकत पर व्यय कर दी जाती है और विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति बहुत कम सीमा तक हो पाती है। अत. जीवन-स्तर अधिकांशत निम्न पाया जाता है।

4. शिक्षा का विकास (Development of Education)—शिक्षा का प्रसार होने से व्यर्थ के व्यय को समाप्त कर दिया जाता है तथा सीमित आय को विवेकपूर्ण ढंग से व्यय करके अधिकतम सन्तोष प्राप्त किया जाता है जिससे जीवन-स्तर ऊँचा उठता है।

5 धार्मिक प्रभाव—भारतीय नागरिक 'सादा जीवन उच्च विचार' के आधार पर जीवन व्यतीत करता है लेकिन धार्मिक प्रभाव से कई अवसरों पर अपनी आय से अधिक व्यय कर देता है जैसे गगोज, नुकता प्रथा आदि पर।

6 आय तत्त्व (Income Factor)—जीवन-स्तर के निर्धारण मे आय तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्रय-शक्ति द्वारा उपभोग की मात्रा तथा किस्म प्रभावित होती है। यदि किसी व्यक्ति की आय का स्तर ऊँचा है तो अन्य बातें समान रहने पर उसका जीवन-स्तर ऊँचा होगा। इसके विपरीत उसका जीवन-स्तर नीचा होगा।

7. व्यय करने का तरीका (Method of Spending)—अविवेकपूर्ण ढग से व्यय करने पर उच्च आय वाले व्यक्ति को भी अधिक सन्तोष प्राप्त नही हो सकता जबकि दूसरी ओर उससे कम आय वाला व्यक्ति भी विवेकपूर्ण व्यय करके अपने सन्तोष को अधिकतम कर सकता है और इससे उसका जीवन-स्तर ऊँचा उठाया जा सकता है।

8. परिवहन के साधन (Means of Transport)—जीवन-स्तर को परिवहन के साधन भी प्रभावित करते हैं। जैसे-जैसे परिवहन के साधनों का विकास होता है, लोगो का सम्पर्क शहरी क्षेत्रो से होता है। उसकी उपभोग प्रवृत्ति बढती है जिससे जीवन-स्तर ऊँचा उठता है।

9. जीवन का दृष्टिकोण (Outlook of Life)—यदि एक देश अथवा समाज के जीवन का दृष्टिकोण भौतिकवादी है तो वहाँ विभिन्न वस्तुओं का उपभोग

किया जाएगा और उनका जीवन-स्तर उन्नत होगा। उदाहरणार्थ पश्चिमी राष्ट्रों के लोगों का दृष्टिकोण 'खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ' (Eat, drink and be merry) होने के कारण उनका जीवन-स्तर ऊँचा है तो भारत जैसे विकासशील देश में सादा जीवन व्यतीत करना जीवन-स्तर को ऊँचा नहीं उठाता क्योंकि सीमित *आवश्यकता की पूर्ति की जाती है।*

10. *स्वास्थ्य का प्रभाव—अच्छे स्वास्थ्य वाला व्यक्ति अच्छा खा सकता है* और अच्छा पहन सकता है, लेकिन एक अस्वस्थ व्यक्ति अच्छा नहीं खा सकता और न ही अच्छा पहन सकता है। अतः अच्छे स्वास्थ्य वाला व्यक्ति उच्च जीवन-स्तर वाला तथा अस्वस्थ व्यक्ति निम्न जीवन-स्तर वाला होता है।

11. परिवार का आकार (Size of the Family)—एक बड़ा परिवार जिसमें परिवार के सदस्यों की संख्या अधिक होती है अधिक उपभोग कर सकता और उसका जीवन-स्तर नीचा होगा। दूसरी ओर छोटे परिवार के सदस्यों का उपभोग-स्तर अधिक ऊँचा होता है।

12. ***कीमतें और निर्वाह लागत (Prices and Cost of Living)***—जीवन-स्तर पर कीमतों व निर्वाह लागत का भी प्रभाव पड़ता है। कीमतों में वृद्धि होने से निर्वाह लागत में वृद्धि होती है और वास्तविक मजदूरी में गिरावट आती है जिससे उपभोग कम होता है और फलस्वरूप जीवन-स्तर निम्न होता है। इसके विपरीत कीमतों में गिरावट आने से निर्वाह लागत भी घटती है। वास्तविक मजदूरी बढ़ने से अधिक उपभोग सम्भव होता है और जीवन-स्तर ऊँचा होता है।

अतः किसी भी देश के निवासियों अथवा किसी भी वर्ग के व्यक्तियों के जीवन-स्तर की समस्या का अध्ययन करने के लिए हमें इन विभिन्न तत्वों को ध्यान में रखना चाहिए।

जीवन-स्तर का माप
(Measurement of Standard of Living)

किसी भी देशवासियों, समाज, परिवार, वर्ग या व्यक्तियों का जीवन-स्तर उनके द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की मात्रा व गुण पर निर्भर करता है। अतः समाज के किसी वर्ग के जीवन-स्तर का माप करने के लिए आय और व्यय की मदों को जानना आवश्यक है। इसके लिए पारिवारिक बजट (Family Budget) तैयार करने पड़ते हैं। सभी व्यक्तियों के बजट तैयार करना सम्भव नहीं है। पूर्ण सर्वेक्षण (Census Survey) तथा प्रतिनिधि सर्वेक्षण (Sample Survey) के *आधार पर परिवार बजट तैयार किए जाते हैं। प्रतिनिधि सर्वेक्षण परिवार बजट* के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इसके अन्तर्गत कुछ प्रतिनिधि परिवारों का चुनाव किया जाता है जिसमें *सभी विशेषताओं वाले परिवार आने चाहिए।* प्रतिनिधि परिवारों का चयन सावधानी से करना चाहिए जिससे कि सभी परिवारों

का प्रतिनिधित्व किया जा सके। इन बजटो के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अमुक परिवारो या वर्ग वाले परिवार द्वारा अनिवार्य आरामदायक तथा विलासिता की वस्तुओ की मात्रा तथा गुण का किस अनुपात मे उपभोग किया गया है। इसी आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि किस वर्ग या समाज का जीवन-स्तर दूसरे वर्ग या समाज से ऊँचा है अथवा नीचा।

हमारे देश मे श्रमजीवियो के जीवन-स्तर का अनुमान लगाने के लिए इस रीति को अपनाया जा सकता है। किसी भी समाज या देश के निवासियो का जीवन-स्तर समान नही रहता। अलग-अलग आय वाले लोगो का जीवन-स्तर अलग-अलग होता है। कुछ व्यक्ति अधिक खर्च करते हैं तो अन्य कम खर्च करते हैं। कुछ अनिवार्य आवश्यकताओ पर अधिक व्यय करते हैं तो दूसरे आरामदायक और अन्य आवश्यताओ पर अधिक व्यय करते हैं। इन भिन्नताओ के कारण विभिन्न वर्गों के जीवन-स्तर मे भी भिन्नताएँ पाई जाती हैं। सन् 1921-22 मे बम्बई में औद्योगिक श्रमिकों के परिवार बजट के सम्बन्ध मे जाँच की गई थी, लेकिन विस्तृत जाँच भारत सरकार द्वारा निर्वाह लागत सूचकांक तैयार करने हेतु सन् 1943-45 मे परिवार बजट जाँचों (Family Budget Enquiries) द्वारा की गई। इसमें 28 केन्द्रो के 27,000 परिवार बजटो के सम्बन्ध मे अनुसन्धान किया गया था।

इसी प्रकार की जाँच सन् 1947 में असम, बंगाल और दक्षिणी भारत के कुछ चुने हुए बागानो के सम्बन्ध मे की गई। सन् 1945 मे भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार द्वारा केन्द्रीय सरकार के मध्यम श्रेणी के कर्मचारियो के निर्वाह लागत सूचकांक तैयार करने हेतु परिवार बजट जाँच का कार्य किया गया। भारतीय सांख्यिकी सस्थान, बम्बई (Indian Statistical Institute) द्वारा भी बम्बई के मध्यम वर्ग परिवारो के सम्बन्ध मे स्वास्थ्य एव खुराक सर्वेक्षण किया गया। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकारो एव श्रम सस्थान, शिमला (Labour Bureau, Simla) द्वारा महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रो एव परिवारो की परिवार बजट जाँच की गई। इस प्रकार की जाँच सन् 1946 व 1950 में श्रम सस्थान द्वारा बागानो के सम्बन्ध मे की गई। सन् 1950 मे डॉ अग्निहोत्री (Dr Agnihotri) द्वारा कानपुर मे 900 श्रमिको के परिवारो के सम्बन्ध मे जाँच की गई। सन् 1958 में श्रम सस्थान द्वारा 50 चुने हुए केन्द्रो पर कारखाना, खानो व बागानों मे लगे श्रमिको के सम्बन्ध मे परिवार जीवन सर्वेक्षण (Family Living Surveys) किए गए। यह श्रमिको के उपभोक्ता सूचकांक तैयार करने हेतु किया गया।

हाल ही के वर्षों मे देश से विभिन्न राज्यो मे परिवार बजट जाँच कार्यक्रम शुरू किया गया। जहाँ तक कृषि श्रमिको का सम्बन्ध है सन् 1950-51 व 1956-57 मे कृषि श्रमिक जाँच (Agricultural Labour Enquiries) की गई थी जिससे कृषि श्रमिको की आर्थिक स्थिति का पता चलता है।

सर्वेक्षण एवं जाँचो से हमे औद्योगिक श्रमिकों के जीवन-स्तर के सम्बन्ध में विस्तृत आँकड़े प्राप्त होते हैं। कार्य की दशाएँ, मजदूरी आदि मे एक स्थान से दूसरे स्थान, एक उद्योग से दूसरे उद्योग मे भिन्नता होने के कारण भारतीय श्रमिकों के सामान्य स्तर और निर्वाह लागत स्तर को जानना सम्भव नहीं है। परिवार बजट तैयार करना भी एक साधारण कार्य नहीं है। पारिवारिक बजट तैयार करते समय यह ध्यान मे रखना होगा कि परिवारो के सदस्यों की संख्या कितनी है? कितने सदस्य कमाने वाले पर निर्भर हैं आदि।

परिवार के व्यय को विभिन्न मदो जैसे—खाद्यान्न, वस्त्र, आवास, ईंधन एवं बिजली, अन्य मदें आदि के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्रित करने पड़ेंगे। अलग-अलग श्रमिक वर्गों की आय मे भिन्नता होने के कारण आय का व्यय किया जाने वाला भाग भी भिन्न-भिन्न होता है।

भारतीय श्रमिकों का जीवन-स्तर
(Standard of Living of Indian Workers)

भारतीय श्रमिको के जीवन-स्तर को जानने के लिए हमें निम्नलिखित बातों को ध्यान मे रखकर निष्कर्ष निकालना होगा कि जीवन-स्तर नीचा है अथवा ऊँचा है—

1. आय (Income)—प्रति व्यक्ति आय के आधार पर जीवन-स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। सन् 1961 मे 400 रु. मासिक से कम आय वाले श्रमिको की प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय 1540 रु. थी जो कि सन् 1969 में बढ़कर 2564 रु. हो गई। यह वृद्धि विश्व के विकसित देशो की तुलना मे कम है। वे अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते हैं अतः उनका जीवन-स्तर निम्न है। इसी अवधि मे (1961-69) मौद्रिक आय का सूचकांक (1961 = 100) 100 से बढ़कर 166 हो गया लेकिन वास्तविक आय सूचकांक 95 से घटकर 94 रह गया।

श्रम संस्थान (Labour Bureau) द्वारा अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक तैयार किया गया। योजनाकाल मे मूल्य निरन्तर बढे हैं। कीमत सूचकांक सन् *1961* में *126* से बढ़कर सन् *1970* मे *224* हो गया *(1949=100)*। अतः मूल्य वृद्धि से श्रमिकों का जीवन-स्तर गिरा है।

2. राष्ट्रीय आय का वितरण *(Distribution of National Income)*—भारतीय श्रमिकों की औसत वार्षिक आय *1500* रु से भी कम है। इतनी कम आय मे श्रमिक अपनी अनिवार्य आवश्यकताओ को पूरा करने में असमर्थ रहता है अतः जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है।

3. आयु (Age)—ऊँचे जीवन-स्तर से दीर्घ आयु होती है तथा निम्न जीवन-स्तर से अल्प आयु होती है। पश्चिमी राष्ट्रों—इंग्लैण्ड में पुरुष व स्त्री की क्रमशः औसत आयु 76 व 71 वर्ष है जबकि भारत मे यह क्रमशः 40 व 38 वर्ष ही है।

4. कार्यकुशलता (Efficiency)—ऊँचा जीवन-स्तर होने से श्रमिक की कार्यक्षमता भी अधिक होती है जबकि निम्न जीवन-स्तर वाला श्रमिक कम कार्यकुशल होता है। प्रो. रॉबर्ट के अनुसार अंग्रेज श्रमिक भारतीय श्रमिक की अपेक्षा 4 गुना अधिक कार्यकुशल है।

5. आधारभूत वस्तुओं की प्राप्ति (Availability of Necessary Goods)—गुणात्मक दृष्टि से भारतीय श्रमिकों को भोजन प्राप्त नही होता। भारतीय श्रमिकों के उपभोग्य पदार्थों के सम्बन्ध मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन (I. L O) वस्त्र उद्योग जाँच समिति तथा डॉ. राधाकमल मुकर्जी आदि द्वारा अध्ययन किया गया है। इनके अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि हमारे देश मे केवल 39% लोगों को पूर्ण भोजन मिलता है और शेष व्यक्ति भुखमरी मे रहते हैं। कपड़ा भी हमारे देश मे औसत उपभोग 10 मीटर होता है जबकि अमेरिका में यह 65 मीटर है। आवास की स्थिति भी दयनीय है।

6. परिवार बजट (Family Budget)—औद्योगिक श्रमिकों के सम्बन्ध मे समय-समय पर परिवार बजट तैयार किए गए हैं। उनके आधार पर भी निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। श्रमिकों की आय का 60 से 70% भाग भोजन पर ही व्यय हो जाता है। भोजन की मात्रा व गुण भी कम होते हैं। कपड़ों पर उसे 14% तक मकान पर 4 से 6% ईंधन व प्रकाश पर 5 से 7% व्यय किया जाता है। श्रमिकों के पास शिक्षा, चिकित्सा व मनोरंजन के लिए कुछ भी नहीं बचता। इससे श्रमिक का जीवन स्तर निम्न प्रायः है।

भारतीय श्रमिकों के निम्न जीवन-स्तर के कारण
(Causes of Low Standrad of Living of Indian Labour)

भारतीय श्रमिक के जीवन-स्तर के निम्न होने के निम्नलिखित कारण है—

1 निम्न आय और ऊँची निर्वाह लागत (Low Income & High Cost of Living)—भारतीय श्रमिको की आय अथवा मजदूरी इतनी कम है कि वह अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं को भी पूरा नही कर पाते। दूसरे महायुद्ध तथा इसके पश्चात् मजदूरी में कुछ सुधार हुआ किन्तु कीमतो में वृद्धि होने से निर्वाह लागत मे वृद्धि होने से वास्तविक आय कम हो गई। श्री सी. डी. देशमुख ने सन् 1947 मे कहा था कि भारत मजदूरी कीमत वृद्धि से पीड़ित है। श्रमिकों को दी जाने वाली अधिक मजदूरी अधिक निर्वाह लागत द्वारा समाप्त कर दी जाती है। एशिया के विभिन्न देशो मे निर्वाह लागत मे असामान्य अनुपात मे वृद्धि हुई है जबकि यूरोपीय देशों मे इतनी वृद्धि नही हुई है। यह आगे दी हुई तालिकाओं से देखा जा सकता है[1]—

1 *Tilak, V R. K.* : A Survey of Labour in India, p. 21.

निर्वाह लागत सूचकांक (आधार वर्ष 1937=100)

वर्ष	इंग्लैण्ड	अमेरिका	कनाडा	भारत
1939	103	97	100	100
1945	132	125	118	222
1948	108	167	153	286
1949	111	165	159	290

सन् 1959 में औसत सूचकांक (आधार वर्ष 1955=100)

देश	थोक मूल्य	निर्वाह लागत
भारत	126	128
कनाडा	105	106
मिस्र	117	106
जापान	101	104
नीदरलैण्ड	104	111
स्वीडन	105	114
स्विट्जरलैण्ड	100	103
इंग्लैण्ड	109	112
अमेरिका	107	109

भारतीय श्रमिको की वास्तविक आय और निर्वाह लागत सूचकांको की तुलना से यह पता चलता है कि उनका जीवन-स्तर गिरा है। महँगाई भत्ते में जितनी वृद्धि की गई है उससे ज्यादा सामान्य कीमत स्तर और निर्वाह लागत मे वृद्धि हुई है। सामान्य कीमत स्तर और निर्वाह लागत वृद्धि का जीवन-स्तर पर प्रभाव पड़ता है।

2. *जलवायु (Climate)—गर्म देशो मे लोगो का जीवन-स्तर नीचा होता* है क्योकि उनको अधिक कपडे नही पहनने पडते और न ही बडे मकानो की जरूरत पडती है जबकि ठण्डे देशो मे गर्म कपडे पहनने पडते हैं और बडे मकानो की आवश्यकता होती है।

3 *अशिक्षा एव रूढिवादिता*—भारतीय श्रमिक अशिक्षित होने के कारण वे भाग्यवादी हैं। उनमें प्रगति की भावना नही होती है। वे मेहनती नही हैं तथा विभिन्न रूढियों से ग्रस्त हैं। अभोज, मुकलावा, मृत्यु-भोज, विवाह आदि पर फिजूल खर्च होता है अत. उनका जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है।

4 *निम्न कार्यकुशलता (Low Efficiency)—श्रमिक की कार्यकुशलता* अधिक होने पर उत्पादन अधिक होता है। अधिक उत्पादन से ऊँची मजदूरी मिलती है और उससे जीवन-स्तर भी उन्नत होता है लेकिन भारतीय श्रमिक की कार्य-कुशलता कम होने से मजदूरी कम मिलती और कम मजदूरी से जीवन-स्तर भी निम्न होता है। सर क्लीमेंट सिम्पसन के अनुसार लंकाशायर का एक श्रमिक अपने जैसे 2 67 भारतीय श्रमिक के बराबर कार्य करता है।

5. असन्तुलित भोजन (Unbalanced Diet)—श्रमिक का स्वास्थ्य व कार्यक्षमता उसके द्वारा खाई गई खुराक पर निर्भर करते हैं। जब श्रमिक की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाती हैं तो इससे औद्योगिक अकुशलता, अनुपस्थिति, प्रवास, दुर्घटनाएँ आदि बुराई उत्पन्न होती हैं और इसके परिणामस्वरूप उसका जीवन-स्तर नीचा होता है। पर्याप्त भोजन नहीं मिल पाता है और जो भोजन मिलता है वह भी सन्तुलित नहीं होता है।

6. जनाधिक्य (Over Population)—हमारे देश की जनसंख्या $2\frac{1}{2}$% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रही है। अधिक जनसंख्या होने से कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति में से प्रति व्यक्ति आय कम प्राप्त होती है। इससे जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है।

7. खराब आवास योजना (Bad Housing Scheme)—भारतीय औद्योगिक नगरों में जनसंख्या का भार अधिक है। वहाँ आवास की समुचित व्यवस्था नहीं है। एक ही कमरे में कई व्यक्ति रहते हैं। परिवार साथ नहीं रख पाते हैं। इससे श्रमिकों के स्वास्थ्य पर खराब प्रभाव पड़ता है तथा वे अच्छा जीवन-स्तर बनाए रखने में असमर्थ होते हैं।

8. धन का असमान वितरण (Unequal Distribution of Wealth)—हमारे देश की राष्ट्रीय आय जनसंख्या की तुलना में कम है। इससे प्रति व्यक्ति आय कम होती है तथा आय व धन का वितरण भी असमान होने से धनी अधिक धनी और निर्धन अधिक निर्धन होते जा रहे हैं। इससे जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है।

जीवन-स्तर ऊँचा करने के उपाय
(Measures to Raise the Standard of Living)

भारतीय श्रमिकों के जीवन-स्तर को उन्नत करने के लिए निम्नांकित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1. आय में वृद्धि (Increase in Income)—जीवन-स्तर पर आय का गहरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिकों की आय बढ़ने पर उनका जीवन-स्तर भी बढ़ता है। श्रमिकों की मजदूरी ही समस्त श्रम-समस्याओं का केन्द्र बिन्दु है। राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ श्रमिकों की आय (मजदूरी) में भी वृद्धि की जानी चाहिए। निर्वाह लागत में वृद्धि कीमतों में वृद्धि का परिणाम है। इससे श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी कम हो जाती है। इससे वह कम वस्तुओं तथा सेवाओं का उपभोग कर पाता है अतः घटती हुई वास्तविक मजदूरी को रोकने के लिए निर्वाह लागत में वृद्धि के साथ-साथ मजदूरी में भी वृद्धि की जानी चाहिए। इसके साथ ही श्रमिकों को प्रेरणात्मक मजदूरी (Incentive Wages) भी दी जानी चाहिए। इस प्रकार श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि करके उनके जीवन-स्तर में वृद्धि की जा सकती है। आर्थिक नियोजन द्वारा उत्पादन तथा रोजगार दोनों में वृद्धि की जा सकती है और इस वृद्धि के परिणामस्वरूप जीवन-स्तर को ऊंचा किया जा सकता है।

2. आय व धन का समान वितरण (Equal Distribution of Income & Wealth)—राष्ट्रीय आय में वृद्धि के बावजूद भी समाज का जीवन-स्तर नीचा रह सकता है। आय व धन के दूषित वितरण को दूर करके निर्धनता व सम्पन्नता की खाई को कम किया जा सकता है और धनी व्यक्तियों की आय व धन का एक भाग निर्धन वर्ग पर व्यय किया जा सकता है। इससे निर्धन व्यक्तियों (श्रमिकों) के जीवन-स्तर में वृद्धि की जा सकती है।

3. परिवार नियोजन (Family Planning)—भारतीय श्रमिकों के जीवन-स्तर के निम्न होने का एक कारण उनके परिवार का बड़ा होना है। कमाने वाला एक तथा उस पर आश्रित सदस्यों की संख्या अधिक होती है जिससे उनकी अनिवार्य आवश्यकताएँ भी आसानी से पूरी नहीं हो सकती। उनका जीवन-स्तर भी इसलिए निम्न पाया जाता है अतः श्रमिकों के जीवन-स्तर में वृद्धि करने हेतु परिवार नियोजन अपनाकर छोटा परिवार रखना होगा।

4. शिक्षा का प्रसार (Spread of Education)—एक शिक्षित श्रमिक—अच्छा उत्पादक व अच्छा उपभोक्ता बन जाता है। भारतीय श्रमिकों में अधिकांश श्रमिक अशिक्षित, अज्ञानी व रूढ़िवादी है। भारत सरकार ने सन् 1958 में श्रमिकों की शिक्षा हेतु केन्द्रीय मण्डल (Central Board for Worker's Education) की स्थापना की है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रान्तों में क्षेत्रीय केन्द्र (Regional Centres) स्थापित किए गए। शिक्षा के प्रसार से अच्छे ढंग से श्रमिक कार्य करेगा और विवेकपूर्ण ढंग से व्यय करके अधिकतम सन्तोष प्राप्त करेगा। इससे जीवन-स्तर उन्नत होगा।

5. सामाजिक रीति-रिवाजों में सुधार (Improve in Social Customs)—भारतीय समाज एक पिछड़ा समाज है। इसमें कई रीति-रिवाज प्राचीन समय से ही चले आ रहे हैं। मृत्यु-भोज, गमोज, मुकलावा शादी आदि पर बेफिजूल व्यय करने से श्रमिकों की अनिवार्य आवश्यकताओं हेतु साधन बच नहीं पाते हैं और उनका जीवन-स्तर निम्न पाया जाता है। अतः इन सामाजिक बुराइयों को समाप्त करके श्रमिकों के जीवन-स्तर में सुधार लाया जा सकता है।

6 सन्तुलित बजट (Balanced Budget)—श्रमिकों को अपने आय तथा व्यय का बजट तैयार करना चाहिए। उनकी आय कितनी है तथा उसको किन-किन मदों पर व्यय किया जाएगा। जब प्राप्त आय को ढंग से व्यय किया जाएगा तो इससे श्रमिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति से अधिकतम सन्तोष प्राप्त हो सकेगा। पारिवारिक बजट को सन्तुलित रखने के लिए हमें भारतीय श्रमिकों में शिक्षा का प्रचार, प्रसार और सुविधाएँ प्रदान करनी होगी।

7. सन्तुलित एवं पर्याप्त भोजन (Balanced & Sufficient Diet)—श्रमिकों की कार्यकुशलता, उत्पादकता, मजदूरी व जीवन-स्तर सन्तुलित एवं पर्याप्त भोजन पर निर्भर करते हैं। भारतीय श्रमिक को न तो सन्तुलित भोजन मिलता है

और न ही पर्याप्त भोजन अतः श्रमिकों को सन्तुलित एवं पर्याप्त भोजन उपलब्ध करवाया जाना चाहिए। इससे श्रमिकों का जीवन-स्तर उन्नत होगा।

8. श्रम कल्याण और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना—भारतीय श्रमिकों के जीवन-स्तर मे वृद्धि करने के लिए श्रमिकों की कल्याणकारी क्रियाओं (Welfare Activities) में वृद्धि करनी चाहिए। इससे श्रमिकों की कार्यकुशलता मे वृद्धि होगी और जीवन-स्तर उन्नत होगा। इसके साथ ही श्रमिको को उनकी अनिश्चित आय को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करके दूर किया जा सकता है। इससे श्रमिक भविष्य के सम्बन्ध में निश्चित रहता है और वर्तमान में अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर पाता है। इससे उसका जीवन-स्तर उन्नत होगा।

इस प्रकार भारतीय श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा करने के लिए हमें कई कदम उठाने पड़ेंगे। डॉ. राधाकमल मुकर्जी के अनुसार किसी भी उद्योग की समृद्धि एवं सम्पन्नता उस उद्योग मे काम करने वाले कर्मचारियों की कार्यक्षमता एवं उनके समुन्नत जीवन-स्तर पर निर्भर करती है। सामाजिक सुरक्षा द्वारा यह सम्पन्नता पर्याप्त सीमा तक प्राप्त की जा सकती है।



5

मजदूरी नीति, रोजगार एवं आर्थिक विकास
(Wage Policy, Employment and Economic Development)

मजदूरी नीति
(Wage Policy)

भारत विश्व के आठ प्रमुख औद्योगिक राष्ट्रों में से एक है फिर भी यह एक अविकसित राष्ट्र है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से ही सरकार ने आर्थिक-विकास और सामाजिक पुनर्निर्माण हेतु कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं। इस प्रकार के विकास कार्यों का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य श्रमिकों की वास्तविक आय और उनके जीवन-स्तर में वृद्धि करना है। निम्न मजदूरी होने से श्रमिक की कार्य-क्षमता प्रभावित होती है और इसके परिणामस्वरूप श्रमिकों की कार्य-क्षमता निम्न पाई जाती है। इसके साथ ही निम्न आय से वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग कम होती है और बाजार भी संकुचित होता है।

मजदूरी नीति उद्योग के उत्पादन तथा राष्ट्रीय लाभांश का निर्धारण करती है, लेकिन इस नीति के अल्पकालीन व दीर्घकालीन उद्देश्यों के साथ-साथ निजी व सामाजिक उद्देश्यों में संघर्ष पाया जाता है। हमारा देश प्रजातन्त्र प्रणाली पर आधारित है इसलिए यहाँ एक उचित मजदूरी नीति के निर्धारण में बड़ी कठिनाई आती है। मजदूरी नीति, जिससे सन्तुष्ट और दक्ष श्रम शक्ति का विकास होता है, वह हमारी विकास सम्बन्धी योजनाओं की सफलता में हाथ बँटा सकती। मजदूरी नीति के प्रमुख उद्देश्यों की प्राप्ति *निम्नलिखित प्राथमिकताओं में निहित है*[1]—

1. पूर्ण रोजगार एवं सभी साधनों का इष्टतम आवण्टन (Full employment and optimum allocation of all resources),
2. आर्थिक स्थिरता की अधिकतम मात्रा (The highest degree of economic stability),

1 *Giri, V. V.:* Labour Problems in Indian Industry, p. 234.

3. समाज के सभी वर्गों हेतु अधिकतम आय सुरक्षा (Maximum income security for all sections of the community)।

इसके साथ ही एक मजदूरी नीति का उद्देश्य देश की आर्थिक स्थिति के अनुसार उच्चतम मजदूरी स्तर प्रदान करना होना चाहिए। आर्थिक विकास से देश की आर्थिक सम्पन्नता में से श्रमिक को उचित हिस्सा मिलना चाहिए। आर्थिक विकास से प्राप्त लाभ श्रमिकों को उनकी मजदूरी में वृद्धि के रूप में होने चाहिएँ।

भारतीय श्रमिक सम्बन्धी नीति के आधारभूत तत्त्व

भारतीय श्रमिक सम्बन्धी-नीति की विवेचना करने के पूर्व इसके आधारभूत तत्त्वों का अध्ययन आवश्यक है। प्रो. वान डी. कैनेडी ने एक लेख में इसको निम्नांकित 6 भागों में विभक्त कर व्याख्या करने का प्रयास किया है[1]—

(1) अंग्रेजी परम्परा की देन।
(2) पैतृकतावाद।
(3) श्रम-प्रबन्ध सौहार्द्र।
(4) विश्वास एवं मान्यता।
(5) उत्पादन की रूपरेखा।
(6) व्यक्तिगत कारक।

(1) अंग्रेजी परम्परा की देन—सर्वप्रथम अंग्रेजी शासन की देन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि भारतीय औद्योगिक सम्बन्ध में अंग्रेज शासकों ने औद्योगिक सम्बन्ध को जैसा चाहा वैसा बनाने का प्रयास किया। अंग्रेजों द्वारा प्रतिपादित शासकीय ढाँचे को ही सरकारी कामकाज की व्यवस्था में आज तक अपनाया जा रहा है। इतना ही नहीं, भारतीय श्रमिक अधिनियम एवं भारतीय संविधान भी अंग्रेजों द्वारा चालित माना गया है, इनमें भारतीयता की लेशमात्र झलक भी नहीं मिल पाती। श्रमिक क्षेत्रों में भी यह इसी प्रकार दिखाई पड़ता है।

(2) पैतृकतावाद—पैतृकतावाद की प्रवृत्ति ने भी भारतीय श्रमिक सम्बन्ध को दिशा दी है। श्रमिक अधिनियमों का अध्ययन करने पर इसमें पैतृकत्व का लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ता है। भारतीय श्रम-कल्याण अधिनियम को ही देखा जाए तो ऐसा ज्ञात होगा कि इसमें श्रमिकों को असहाय अथवा छोटा समझा गया और आंशिक रूप से उन्हें मात्र सन्तुष्ट कराने का ही प्रयास किया गया है। इसमें जो भी व्यवस्था हो, परन्तु सम्पूर्ण श्रमिक विवाद का मूल कारण सरकार एवं नियोक्ताओं का श्रमिकों के प्रति संकुचित दृष्टिकोण ही है। श्रमिकों के प्रति इसी पैतृकतावाद ने नियोक्ता श्रमिक सम्बन्ध को प्रभावित किया है। नियोक्ता सोचता है कि श्रमिक अपना संघ क्यों बनाते हैं, माँगें क्यों पेश करते हैं, भला इन सबकी उनको क्यों आवश्यकता पड़ी जबकि उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति नियोक्ता करते ही हैं। तत्कालीन श्रम-मन्त्री श्री बी. देसाई ने भी श्रमिक संघों की आवश्यकता पर बल दिया और इसके प्रति

1 डॉ देवेन्द्र प्रताप नारायणसिंह : औद्योगिक सम्बन्ध एवं श्रम-समस्याएँ, पृष्ठ 58-59.

अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए—जब राज्य श्रमिकों को सारी सुविधाएँ दे ही रहे हैं तो ऐसी अवस्था में उन्हें श्रमिक संघों के गठन का कोई अधिकार ही नहीं दिया जाना चाहिए। श्रमिक संघों का विकास मात्र मनोरंजन, शिक्षा, प्रशिक्षण आदि के लिए उपयोगी हो सकता है, न कि उद्योग संचालन के लिए।

(3) **श्रम-प्रबन्ध सौहार्द**—श्रम-प्रबन्ध सौहार्द औद्योगिक परियोजनाओं को चलाने के लिए आवश्यक है। आपसी भेदभाव को दूर करने के सभी सम्भव उपायों का अवलम्बन लेना चाहिए। एक मात्र गाँधीजी के आदर्शों की दुहाई देने से ही आपसी सम्बन्ध नहीं सुधर सकते। इसके लिए दोनों पक्षों को अपने-अपने स्वार्थों का त्याग कर उद्योग के आदर्शों को अपनाना चाहिए। श्री वान कैनेडी ने भी अपने लेखों द्वारा पुरानी विचारधारा का त्याग कर आज की प्रगतिवादी व्यवस्था का निर्माण करने पर बल दिया है और आशा की है कि औद्योगिक शक्ति उसी से सम्भव है। विधानों ने श्रमिक-प्रबन्ध भागीदारी व्यवस्था को प्रोत्साहित करने पर बल दिया है। श्री गुलजारीलाल नन्दा ने इस औद्योगिक सौहार्द की प्राप्ति के लिए सह-सहयोग एवं भागीदारी पर विशेष बल दिया था।

(4) **विश्वास एवं मान्यता**—मान्यताओं में विश्वास भारतीय व्यवस्था का स्वरूप माना जाता है। इस आधार पर सरकार को चाहिए कि वह श्रमिकों एवं नियोक्ताओं में आदर्श की भावना जाग्रत करे। यदि किसी विवाद का निवारण आपसी समझौते से न हो तो मिदलीय ब्लोतो, अथवा न्यायाधिकरण की व्यवस्था द्वारा विवाद का निराकरण करने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा होने से उद्योग में श्रमिक एवं नियोक्ता की आपसी वैमनस्यता की भावना को तिरोहित किया जा सकता है।

(5) **उत्पादन की रूपरेखा**—अच्छे उद्योग को बनाने के लिए उत्पादन की चिन्ता होना अनिवार्य है। यदि उत्पादकता बढ़ती है तो स्वाभाविक रूप से अच्छे सम्बन्धों का भी निर्माण किया जा सकता है। इसी उत्पादकता को बढ़ाने के लिए भारतीय योजनाओं का भी श्रीगणेश हुआ और इसी के लिए उत्पादकता समितियों का सहयोग लिया गया।

(6) **व्यक्तिगत कारक**—व्यक्तित्व के विकास से ही श्रम-सम्बन्धों एवं श्रमिक नीतियों का निर्माण किया जा सकता है। व्यक्तित्व के विकास से श्रमिकों के सोचने एवं कार्य करने में सहायता मिलती है। औद्योगिक व्यवस्था में शान्ति के प्रयास में श्री वी. वी. गिरि, श्री गुलजारीलाल नन्दा, श्री खण्डूभाई देसाई तथा श्री जगजीवन राम आदि के नाम उल्लेख्य हैं। इनके व्यक्तित्व का प्रभाव है कि श्रमिकों के उत्थान में प्रगति होती गई।

मजदूरी नीति के निर्माण में समस्याएँ
(Problems in the Formulation of a Wage Policy)

मजदूरी नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु एक उचित मजदूरी नीति का निर्माण करना होगा। इस नीति के निर्माण में अग्रांकित समस्याएँ उत्पन्न होती हैं[1]—

1 *Giri, V. V.*, Labour Problems in Indian Industry, p 235

1. मजदूरी निर्धारण एवं भुगतान (Wage Determination and Payment),
2. मजदूरी-स्तर एव मजदूरी सरचना (Wage Levels and Wage Structure), और
3. मजदूरी सुरक्षा (Wage Security)।

1. मजदूरी निर्धारण एवं भुगतान—विभिन्न देशो और उद्योगों में मजदूरी भुगतान के विभिन्न तरीके पाए जाते हैं। फिर भी मोटे तौर पर मजदूरी समयानुसार तथा कार्यानुसार दी जाती है। अलग-अलग मजदूरी भुगतान के तरीके के अलग-अलग गुण तथा दोष है। इन दोनो तरीको को मिलाकर विभिन्न प्रकार की प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियाँ (Incentive Wage Systems) तैयार की गई है।

यह माना जाता है कि मजदूरो मे प्रगतिशील स्थिति उत्पादकता मे वृद्धि होने पर निर्भर करती है। भारतीय उद्योगो मे अभी उत्पादकता की अधिकतम सीमा को प्राप्त करना सम्भव नही हुआ है। मजदूरी भुगतान का तरीका ऐसा होना चाहिए जिससे श्रमिको को प्रेरणा मिले और वे अधिक प्रयास से कार्य करें तथा बढते हुए उत्पादन मे उनका हिस्सा भी बढे। कार्यानुसार मजदूरी द्वारा ही यह सम्भव हो सकता।

कार्यानुसार मजदूरी भुगतान के तरीके के लिए समय और गति का अध्ययन करना पडेगा। कार्यभार का भी अध्ययन करना पडेगा। इस प्रकार इसमे कई कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।

वेतन मण्डलों (Wage Boards) द्वारा मजदूरी निर्धारित करते समय कार्यानुसार मजदूरी भुगतान का तरीका ढूँढना चाहिए, साथ ही श्रमिक के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए अधिकतम कार्य के घण्टे तथा न्यूनतम मजदूरी की गारण्टी दी जानी चाहिए। जो भी पद्धति निकाली जाए वह सरल, स्पष्ट और आसानी से प्रत्येक श्रमिक के समझ मे आनी चाहिए अन्यथा इससे सन्देह और औद्योगिक विवादो को प्रोत्साहन मिलेगा।

2 मजदूरी-स्तर और मजदूरी सरचना—किसी भी देश का आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण अधिक तभी सम्भव हो सकता है जब केवल मजदूरी-स्तर अधिकतम हो बल्कि विभिन्न उद्योगो और व्यवसायो मे सापेक्षिक मजदूरी इतनी होनी चाहिए कि इससे श्रम का विभिन्न उद्योगो व व्यवसायो मे ऐसा आवण्टन हो कि राष्ट्रीय उत्पादन अधिकतम हो सके, अर्थ-व्यवस्था के सभी साधनो को पूर्ण रोजगार प्राप्त हो सके और आर्थिक प्रगति की दर मे वांछनीय वृद्धि सम्भव हो सके।

मजदूरी नीति ऐसी होनी चाहिए कि विभिन्न उद्योगों, व्यवसायों व सस्थानों पर पुरुष व स्त्री श्रमिको की मजदूरी मे अधिक अन्तर नहीं हो। यदि इस प्रकार की भिन्नता है तो उसे दूर करना होगा।

हमारे देश मे मजदूरी मे भिन्नता विभिन्न केन्द्रो मे ही नही पाई जाती बल्कि एक स्थान के विभिन्न उद्योगो मे भी भिन्नता पाई जाती है।

हाल ही के वर्षों में विभिन्न अधिकरणों एवं न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत मज़दूरी-स्तरों में वृद्धि करने का प्रयास किया गया है। फिर भी कई उद्योगों तथा व्यवसायों में आज भी निर्वाह लागत के बराबर भी मजदूरी नहीं मिलती।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् कुछ उद्योगों में बोनस तथा लाभ सहभागिता के अन्तर्गत श्रमिकों को कुछ भुगतान दिया जाने लगा था। अब बोनस भुगतान अधिनियम, 1965 के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को उसकी कुल वार्षिक मजदूरी का न्यूनतम 8 33% तथा अधिकतम 20% बोनस के रूप में भुगतान किया जाता है।

3. मजदूरी सुरक्षा (Wage Security)—किसी भी श्रमिक को कितनी मजदूरी दी जाती है उसकी सुरक्षा अथवा गारण्टी देना जरूरी है। श्रमिक की मजदूरी की गारण्टी तीन प्रकार से दी जा सकती है[1]—

(i) गारण्टी मजदूरी (Guarantee Wage) के अन्तर्गत प्रत्येक नियोक्ता श्रमिक को निश्चित समय या अवधि हेतु मजदूरी देने की गारण्टी देता है चाहे कार्य हो या नहीं।

(ii) ले-ऑफ नोटिस मुआवजा (Lay-off Notice Compensation) के अन्तर्गत नियोक्ता एक दी हुई अवधि हेतु श्रमिकों से कार्य हटाने पर, जबकि कार्य नहीं हो तब उसके लिए ले-ऑफ का मुआवजा या क्षतिपूर्ति देनी होती है।

(iii) हटाने पर मजदूरी (Dismissal Wage) के अन्तर्गत श्रमिक को रोजगार से हटाने पर एक निश्चित अवधि के लिए मजदूरी दी जाती है।

हमारे देश में यह सम्भव नहीं है कि बेरोजगार व्यक्तियों को बीमा दिया जाए क्योंकि वित्तीय कठिनाइयाँ सरकार के सामने हैं। फिर भी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (Industrial Disputes Act of 1947) के अन्तर्गत ले-ऑफ तथा छँटनी के लिए क्षतिपूर्ति का प्रावधान है।

मजदूरी और आर्थिक विकास
(Wages & Economic Development)

किसी भी विकासशील देश में एक सुदृढ़ मजदूरी नीति का बड़ा महत्त्व है। भारत जैसे विकासशील देश में अर्थ-व्यवस्था के विकास के साथ-साथ श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती है और मजदूरी का सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था के क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ता है। मजदूरी समस्या को आर्थिक विकास की समस्या से पृथक् नहीं किया जा सकता।

आर्थिक विकास में मजदूरी का महत्त्व मजदूरी के दो आर्थिक कार्यों से उत्पन्न होता है। प्रथम कार्य आय के रूप में श्रमिक को पारिश्रमिक दिया जाता है जबकि दूसरी ओर लागत के रूप में नियोक्ताओं को इसका अध्ययन करना पड़ता है। अतः मजदूरी दो विरोधी उद्देश्यों वाले पक्षों—श्रमिक व नियोक्ताओं को प्रभावित करती

1. *Giri, V. V.*; Labour Problems in Indian Industry, p. 240.

है। मजदूरी कीमत-स्तर व रोजगार को भी प्रभावित करती है। सामान्य रूप से मजदूरी पूर्ण रोजगार के सभी उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक है, यदि मुद्रा-स्फीति उत्पन्न न हो तथा राजकोषीय, मौद्रिक एवं अन्य नीतियों को उचित तरीके से काम में लाया जाए।

मजदूरी नीति और आर्थिक विकास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। समष्टि आर्थिक स्तर के आधार पर मजदूरी नीति ऐसी हो कि इससे श्रमिकों के जीवन-स्तर, अतिरिक्त रोजगार एवं पूँजी निर्माण सम्बन्धी उद्देश्यों में प्रतिस्पर्द्धा न हो। अर्द्ध-समग्र स्तर पर मजदूरी नीति ऐसी होनी चाहिए कि एक ऐसी मजदूरी संरचना तैयार की जाए जो कि आर्थिक विकास के अनुकूल हो। इकाई स्तर पर मजदूरी नीति ऐसी होनी चाहिए कि यह उत्पादकता बढ़ाने और मजदूरों की किस्म सुधारने हेतु प्रेरणा देने वाली हो।[1]

विकासशील अर्थ-व्यवस्था में मजदूरी नीति
(Wage Policy in a Developing Economy)

एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था में तीव्र गति से आर्थिक विकास करने के लिए श्रम नीति का सुदृढ़ होना आवश्यक है। विकास के प्रारम्भ में मुद्रा-स्फीति उत्पन्न है जो भविष्य में देश की अर्थ-व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर सकती है। इस भयकर समस्या का सामना करने के लिए निम्न बातें ध्यान में रखनी होंगी—

1 मजदूरी, महँगाई, बोनस तथा अन्य प्रकार के भत्तों में अनुचित व अत्यधिक वृद्धि नहीं होनी चाहिए।

2. मजदूरी में वृद्धि तभी की जाए जब उत्पादकता में वृद्धि हो। ऐसा करने पर कीमतों में अधिक वृद्धि नहीं हो सकेगी।

3. मुद्रा-स्फीति के दबाव को कम करने लिए आवश्यक वस्तुएँ श्रमिकों को उपलब्ध कराई जानी चाहिए। एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था में तीव्र आर्थिक विकास तथा उत्पादकता में वृद्धि तभी सम्भव है जब सभी वर्ग कठिन परिश्रम करें। एक विकासशील देश में भी तीव्र गति से आर्थिक विकास प्राप्त करने हेतु आर्थिक नियोजन (Economic Planning) अपनाया जाता है। आर्थिक नियोजन का प्रमुख उद्देश्य देशवासियों के जीवन-स्तर को उन्नत करना है। हमारे देश में समाजवादी समाज की स्थापना हेतु आर्थिक नियोजन के मार्ग का चयन किया गया है। श्रमिक वर्ग सबसे निर्धन वर्ग है। आर्थिक विकास से प्राप्त फल पर सबसे पहला अधिकार उनका है। श्री वी. वी. गिरि के अनुसार, "एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति का उद्देश्य देश की आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार ऊँचा मजदूरी का स्तर प्राप्त करना है और इसके साथ ही इसके अन्तर्गत आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप बढ़ी हुई सम्पन्नता में से उचित हिस्सा श्रमिकों को दिया जाना चाहिए।"[2]

1. *Pant, S. C* Indian Labour Problems, p. 217.
2 *Giri, V. V.* Labour Problems in Indian Industry, p. 218.

किसी भी देश की मजदूरी नीति का अर्थ है वह नीति जिसके अन्तर्गत सामाजिक और आर्थिक नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सरकार मजदूरी-स्तर अथवा मजदूरी संरचना के लिए अधिनियम बनाती है। सरकार अपनी मजदूरी नीति द्वारा निम्न मजदूरी में वृद्धि करना उचित श्रम प्रमाप स्थापित करना और बढ़ती कीमतों के प्रभावों को कम करना आदि सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त कर सकती है।

समाज के आर्थिक कल्याण में वृद्धि करने हेतु भी मजदूरी नीति का होना आवश्यक है। आर्थिक कल्याण में वृद्धि तभी सम्भव है जब मजदूरी नीति आर्थिक विकास में सहायक हो। यदि मजदूरी नीति सहायक होगी तो इससे अर्थव्यवस्था में श्रम साधन का विभिन्न उद्योगों तथा व्यवसायों में इष्टतम आवण्टन होगा, पूर्ण रोजगार मिलेगा और उत्पादकता में वृद्धि होकर जीवन-स्तर उन्नत होगा। दीर्घकालीन आर्थिक विकास हेतु पूँजी निर्माण आवश्यक है जबकि अल्पकालीन उद्देश्य श्रमिकों के जीवन-स्तर में सुधार करना है। इन दोनों में आपस में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organisation) के एक प्रकाशन के अनुसार एक विकासशील अर्थव्यवस्था में मजदूरी नीति के निम्नांकित उद्देश्य दिए गए हैं[1]—

1. मजदूरी भुगतान में व्याप्त बुराइयों को दूर करना।

2. दुर्बल सौदाकारी वाले श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना और श्रम संघों एवं सामूहिक सौदाकारी के विकास को प्रोत्साहन देना।

3. आर्थिक विकासों के फलों (Fruits of Economic Development) में श्रमिकों को हिस्सा दिलाना। इसके साथ ही श्रमिक के उपभोग वस्तुओं पर किए जाने वाले व्यय को नियन्त्रित करना जिससे मुद्रा-स्फीति उत्पन्न न हो।

4 मानव शक्ति का अधिक कुशल आवंटन एवं उपयोग।

भारत जैसे विकासशील देश में श्रमिक अशिक्षित, असंगठित और अज्ञानी होने के कारण उनकी सौदाकारी शक्ति नियोक्ता की तुलना में दुर्बल होती है जिसके परिणामस्वरूप उनका शोषण किया जाता रहा है। न्यायालयों द्वारा भी प्रारम्भ में नियोक्ताओं का ही पक्ष लिया जाता रहा था। मजदूरी का निर्धारण श्रम की माँग व पूर्ति के आधार पर किया जाता था, लेकिन अब समय बदल गया है तथा श्रमिक को मानवीय साधन मानकर उसके साथ उचित व्यवहार किया जाने लगा है। श्रमिकों के शोषण को दूर करने के लिए सरकार ने श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी निश्चित की है तथा अब वेतन मण्डलों की स्थापना की जाने लगी है जो कि उचित मजदूरी का निर्धारण का कार्य करते हैं। कई उद्योगों में ऐसे वेतन मण्डलों (Wage Boards) की सिफारिशों को लागू किया गया है।

1 I L O. Problems of Wage Policy in Asian Countries, 1956, p 128

भारत जैसे देश मे एक सुदृढ मजदूरी नीति निम्न उद्देश्यो को पूरा करने के लिए आवश्यक है —

1 नियोजित अर्थव्यवस्था के उद्देश्यो तथा लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु मजदूरी नीति आवश्यक है जिससे कि औद्योगिक शान्ति बनाई रखी जा सके। अधिनियमों तथा अन्य सरकारी विधानो द्वारा औद्योगिक शान्ति पूर्ण रूप से प्राप्त नही की जा सकती है। इसके लिए एक उचित मजदूरी नीति आवश्यक है।

2. हमारे देश मे समाजवादी समाज की स्थापना हेतु सामाजिक न्याय प्रदान करना आवश्यक है। सामाजिक न्याय तभी प्रदान किया जा सकता है जब सभी लोगों को समान अवसर प्राप्त हों, सभी को समान आय प्रदान की जाए। इसके लिए एक समुचित मजदूरी नीति का होना जरूरी है।

3. हमारे देश मे सुदृढ एवं सुसंगठित श्रम सघ आन्दोलन का अभाव (Lack of strong and well-organised Labour Union Movement) है। एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति द्वारा श्रमिकों को संरक्षण देना सरकार का दायित्व है।

4 हमारे देश मे मजदूरी निर्धारण मे विभिन्न कानूनी, प्रशासनिक एवं अर्द्ध-न्यायिक इकाइयों की सहायता लेनी पड़ती है। अत: इस विभिन्नता को दूर करने के लिए निश्चित सिद्धान्तों तथा तरीको पर आधारित एक उचित राष्ट्रीय मजदूरी नीति का होना आवश्यक है।

पंचवर्षीय योजनाओं में मजदूरी नीति
(Wage Policy in Five Year Plans)

स्वतन्त्रता के पश्चात् अधिकांश श्रम कानून 1946–52 की अवधि मे बनाए गए। राज्य श्रम नीति का सम्बन्ध श्रम विधान बनाना, सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी उपाय, श्रम कल्याण केन्द्रो का संगठन, केन्द्र तथा राज्यों मे श्रम विभाग का विस्तार करना तथा अनिवार्य अधिनिर्णयन (Compulsory Arbitration) लागू करने से रहा है। औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव, 1947 (Industrial Truce Resolution of 1947) ने औद्योगिक विवादो को निपटाने हेतु कानून व मशीनरी का उपयोग, उचित मजदूरी निर्धारण करने की मशीनरी, पूँजी पर उचित प्रतिफल, श्रम समितियाँ और आवास समस्या की ओर ध्यान देने आदि के सम्बन्ध मे सिफारिश की।[1]

आर्थिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन अपनाया जाता है तथा आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए एक विवेकपूर्ण मजदूरी नीति होना आवश्यक है।

प्रथम पचवर्षीय योजना

प्रथम योजना मे इस बात पर जोर दिया गया कि योजना के सफल क्रियान्वयन हेतु लाभ और मजदूरी पर सरकार का नियन्त्रण रहना चाहिए। कीमतो, लाभो व मजदूरियों मे वृद्धि हुई है। मुद्रा स्फीति को रोकने हेतु लाभ व मजदूरी पर सरकारी

1 *Srivastava, G. L.* ' Collective Bargaining & Labour Management Relations in India, p 352.

नियन्त्रण आवश्यक है। मजदूरी में पाई जाने वाली विभिन्नताओं को दूर किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय आय में से श्रमिकों को उचित हिस्सा दिया जाना चाहिए। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 को प्रभावपूर्ण ढंग से क्रियान्वित करना चाहिए जिससे कि श्रमिकों के शोषण को समाप्त किया जा सके। योजना के अनुसार मजदूरी में वृद्धि उसी समय की जाए जबकि मजदूरी अत्यधिक कम है और युद्ध के पूर्व की वास्तविक मजदूरी स्तर को बनाए रखने के लिए उत्पादकता में वृद्धि होने पर मजदूरी में भी वृद्धि की जाए। योजना में मजदूरी नीति के सम्बन्ध में भविष्य में इन विचारों पर ध्यान रखने की सिफारिश की गई—

1. सभी मजदूरी अन्तरों को समाप्त करना सामाजिक नीति का एक अंग माना जाना चाहिए। राष्ट्रीय आय में से श्रमिक को उसका उचित हिस्सा दिया जाना चाहिए।

2. पर्याप्त मजदूरी स्तर को प्राप्त करने से पूर्व विभिन्न उद्योगों तथा व्यवसायों में पाए जाने वाले अन्तरों को जहाँ तक सम्भव हो कम से कम किया जाए।

3 मजदूरी प्रमापीकरण के कार्य को तीव्र गति से बड़े पैमाने पर चलाया जाए।

4 विभिन्न व्यवसायों में उद्योगों में कार्य भार को वैज्ञानिक आधार पर निर्धारित किया जाए।

5 महँगाई भत्ते का 50% वेतन में मिला दिया जाए।

6. योजना काल में न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1948 को प्रभावपूर्ण ढंग से क्रियान्वित किया जाए।

7 बोनस भुगतान से सम्बन्धित समस्या पर भी विचार करने की सिफारिश की गई।

8 मजदूरी निर्धारण हेतु केन्द्रीय तथा राज्य-स्तरों पर त्रिपक्षीय वेतन-मण्डलों की स्थापना करने की सिफारिश की गई। इनकी स्थापना मजदूरी समस्या को समाप्त करने हेतु स्थायी रूप से करने की सिफारिश की गई।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

दूसरी योजना के अन्तर्गत श्रम के महत्त्व को प्रथम योजना की भाँति ही स्वीकार किया गया। लेकिन इस योजना में मजदूरी नीति के एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर जोर दिया गया। यह पहलू श्रमिकों को उनकी आशाओं और भावी समाज के ढाँचे के अनुसार मजदूरी का भुगतान करने से सम्बन्धित था। मजदूरी के महत्त्व को जानने के लिए मजदूरी आयोग (Wage Commission) नियुक्त करने का विचार था। लेकिन पर्याप्त आँकड़ों व अन्य सूचनाओं के अभाव में यह विचार त्याग दिया गया। इसके स्थान पर मजदूरी गणना (Wage Census) करने पर जोर दिया गया। विभिन्न केन्द्रों पर निर्वाह लागत सूचकांकों के अनुसार मजदूरी में परिवर्तन करने के लिए जांच पर जोर दिया गया।

इस योजना के अन्तर्गत मजदूरी मे वृद्धि श्रम उत्पादकता मे वृद्धि होने पर ही सम्भव बताई गई । इसके लिए कार्यानुसार मजदूरी भुगतान की रीति अपनाने को कहा गया ।

सीमान्त इकाइयो (Marginal Units) द्वारा मजदूरी सरचना पर रोक लगाने के कारण उचित मजदूरी सिद्धान्तो के आधार पर उचित मजदूरी निर्धारित करना सम्भव नही हो पा रहा था, अत कहा गया कि इस प्रकार की इकाइयो को ऐच्छिक रूप से बड़ी इकाइयों मे मिला दिया जाना चाहिए । यदि जरूरी हो तो अनिवार्य रूप से इनको मिलाया जा सकता है । दूसरी योजना मे इस बात की भी सिफारिश की गई कि उद्योगो के बड़े-बड़े क्षेत्रों के लिए औद्योगिक विवादों (मजदूरों से सम्बन्धित) को हल करने के लिए मजदूरी बोर्ड कायम करने चाहिए । दूसरी योजना मे कई ऐसे मजदूरी बोर्ड स्थापित किए गए थे ।

तृतीय पंचवर्षीय योजना

तृतीय योजना मे इस बात पर जोर दिया गया कि प्रमुख उद्योगो में मजदूरी-निर्धारण का कार्य सामूहिक सौदाकारी, अधिनिर्णयन, सुलह एवं अधिकरणों द्वारा होगा । लेकिन जहाँ पर जरूरी होगा वहाँ पर मजदूरी-निर्धारण हेतु त्रिपक्षीय मजदूरी बोर्ड की स्थापना की जा सकेगी । उद्योग और कृषि क्षेत्र में निम्न आर्थिक स्थिति वाले श्रमिको को सुरक्षा प्रदान करने हेतु न्यूनतम मजदूरी प्रदान करने के दायित्व को स्वीकार किया गया । न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन हेतु निरीक्षण सम्बन्धी मशीनरी को सुदृढ करने की सिफारिश की गई । न्यूनतम मजदूरी के अतिरिक्त विभिन्न श्रमिक वर्गों हेतु उचित मजदूरी निर्धारित करने एवं उत्पादन तथा किस्म को सुधारने हेतु श्रमिको को प्रेरणात्मक मजदूरी (Incentive Wages) देने पर जोर दिया गया । बोनस भुगतान हेतु विभिन्न पक्षो को मिलाकर एक आयोग नियुक्त करने की सिफारिश की गई ।

भारतीय श्रम सम्मेलन 1957 द्वारा आवश्यकता पर आधारित मजदूरी तथा उचित मजदूरी समिति द्वारा दी गई सिफारिशों को मजदूरी-निर्धारण मे काम में लेने की सिफारिश की गई । योजना मे यह बताया गया कि श्रमिक वर्ग की मजदूरी तथा उच्च प्रबन्ध-स्तर के वेतनों मे काफी असमानता है । योजना में इस बात की सिफारिश की गई कि मजदूरी अन्तरो, श्रमिको की उत्पादकता की माप और उत्पादकता के हिस्से का वितरण आदि का अध्ययन किन-किन सिद्धान्तों पर आधारित हो ।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

चौथी योजना में इस बात को स्वीकार किया गया कि आर्थिक विकास की सफलता और विशेष रूप से चौथी पंचवर्षीय योजना के सन्दर्भ मे एक एकीकृत आय नीति (Intergrated Income Policy) सार्वजनिक व निजी क्षेत्रो के मार्गदर्शन हेतु तैयार की जानी चाहिए । मूल्य स्थिरता की समस्या को मजदूरी नीति का आधार

माना गया है। कीमतो में वृद्धि होने पर मजदूरी मे वृद्धि हेतु दबाव डाले जाते हैं। उचित मजदूरी प्राप्त करना दीर्घकालीन उद्देश्य है। लेकिन अल्पकालीन उद्देश्य बढती हुई कीमतो के श्रमिको से जीवन-स्तर पर पडने वाले बुरे प्रभाव से श्रमिको की रक्षा करना है। महँगाई भत्ते को निर्वाह लागत से जोडने हेतु निर्वाह लागत सूचकांकों हेतु कीमत आँकड़ो और सूचनाओ को एकत्रित करने की सिफारिश की गई। श्रमिकों की मजदूरी मे तीन तत्त्वो—वेतन, महँगाई भत्ता तथा उत्पादकता से जोडना—होंगे। मजदूरी को उत्पादकता से जोडने के लिए मजदूरी प्रमापीकरण तथा मजदूरी के अन्तरो को कम करने की सिफारिश की गई है। मजदूरी कार्यानुसार पद्धति के अन्तर्गत दी जानी चाहिए। सन् 1957 से कई उद्योगो मे मजदूरी बोर्ड (Wage Boards) की स्थापना की गई है और अन्य उद्योगो में भी इनकी स्थापना करने की सिफारिश की गई।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना

इस योजना मे भी मजदूरी नीति को सुदृढ बनाने की सिफारिश की गई है। श्रमिकों की मजदूरी में उनकी उत्पादकता के अनुसार वृद्धि करने की सिफारिश की गई। श्रमिको की मजदूरी बडे-बडे उद्योगो मे सामूहिक सौदाकारी, सुलह, अधिनिर्णयन और अधिकारियो द्वारा निर्धारित करने पर जोर दिया गया। अधिकाधिक प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धतियाँ (Incentive Wage Systems) अपनाने की सिफारिश की गई जिससे कि श्रमिको की कार्यकुशलता बढ सके, जीवन-स्तर उन्नत हो सके।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85)

पाँचवी पचवर्षीय योजना को जनता सरकार ने अवधि के एक वर्ष पूर्व ही समाप्त करके अपनी छठी पचवर्षीय योजना आवर्ती योजना (रोलिंग प्लान) के रूप मे शुरू की। लेकिन अस्थिरता और अनिश्चितता का वातावरण छाया रहा और जनवरी, 1980 मे सत्ता परिवर्तन होकर केन्द्र मे श्रीमती गांधी पुनः सत्तारूढ हो गई। जनता सरकार की छठी योजना के प्रथम दो वर्षों को दो वार्षिक योजनाएँ मान लिया गया, आवर्ती योजना प्रणाली को समाप्त कर दिया गया और पुरानी योजना प्रणाली के आधार पर ही श्रीमती गांधी ने छठी पचवर्षीय योजना (1980–85) लागू की। छठी योजना मे यह स्वीकारा गया कि "श्रम नीति का दर्शन और विषय-वस्तु सविधान मे निर्धारित राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों से प्राप्त की गई है। इसके साथ स्थिति की आवश्यकताओ और योजनाबद्ध आर्थिक विकास की आवश्यकताओ और सामाजिक न्याय की विशेष स्थिति को ध्यान मे रखते हुए इसको उनके अनुरूप बनाया गया है। यह त्रिपक्षीय विचार-विमर्श का मच है जिसमे कामदार, मालिक और सरकार के प्रतिनिधि विभिन्न स्तरो पर भाग लेते हैं। सभी पक्षो की साझेदारी से यह नीति सुदृढ होती है और यह राष्ट्रीय नीति का रूप ले लेती है। उत्पादन और काम करने की दशाओ मे सुधार करना और कुल

मिलाकर समुदाय के व्यापक हितों को बढ़ावा देने के लिए कामगारों और मालिकों के बीच सहयोग को बढ़ावा देना इसका मुख्य उद्देश्य है।"

छठी योजना के अन्तिम प्रारूप में पिछली अवधि की श्रम-नीति की समीक्षा करते हुए छठी योजना में उद्देश्य और कार्यनीति पर जो प्रकाश डाला गया, वह इस प्रकार है—

समीक्षा—औद्योगीकरण के आरम्भिक वर्षों में श्रम-नीति का मुख्य सम्बन्ध संगठित क्षेत्र में काम कर रहे श्रमिकों से था। इसमें अब अधिक ध्यान असंगठित क्षेत्र के हितों पर दिया जा रहा है परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि अब संगठित क्षेत्र के कामगार की काम करने की स्थिति में और उनकी वास्तविक आमदनी बढ़ाने की ओर सरकार ने ध्यान देना छोड़ दिया है।

पिछले दशक में इस दिशा में जो कानून बनाए गए है संविधान के निर्देशक सिद्धान्तों की उत्तरोत्तर पूर्ति करने के लिए श्रम-नीति में विविधीकरण के प्रमाण हैं। सन् 1970 से जो अधिक महत्त्वपूर्ण उपाय किए गए हैं, वे हैं—ठेके के मजदूर (विनियमन और उन्मूलन) अधिनियम, जिसमें ठेके के मजदूरों के रोजगार को नियमित करने और कुछ स्थितियों में उनको समाप्त करने की व्यवस्था की गई है, बन्धुआ काम प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, जिसमें बन्धुआ श्रम प्रणाली के उन्मूलन और ऋण के कारण जिन बन्धुआ श्रमिकों को बाँधा हुआ है उनको उन्मुक्त करना है, बीड़ी कामगार कल्याण अधिनियम, इसका उद्देश्य बीडी बनाने वाले कारखानों में काम कर रहे मजदूरों का कल्याण करना है, इसी प्रकार कच्चे लोहे, कच्चे मैंगनीज, चूना पत्थर और डोलोमाइट खान के कामगारों के कल्याण के लिए बनाए गए अधिनियम विक्रय संवर्धन कर्मचारी (सेवा शर्तें) अधिनियम, जिसमें वित्तीय संवर्धन कर्मचारियों की सेवाएँ विनियमित करने की व्यवस्था है, पुरुष और महिला कामगारों को एक समान मजदूरी देने के लिए एक समान मजदूरी अधिनियम और रोजगार के मामले में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव अपनाने के निराकरण, कर्मचारी परिवार पेंशन योजना, कर्मचारियों की जमा पूँजी से सम्बद्ध बीमा योजना और अन्तर-राज्य प्रव्रजन श्रमिक (रोजगार और सेवा शर्तों का विनियमन) अधिनियम। राज्य नीति के निर्देशक सिद्धान्तों के अधीन संविधान में एक नया अनुच्छेद 43-क भी जोड़ा गया है जिसमें प्रबन्ध में कामगारों की साझेदारी की व्यवस्था की गई है। इसका उद्देश्य श्रमिकों और प्रबन्ध में आपसी मेल-मिलाप बढ़ाना तथा उद्योग और कामगारों की समस्याओं के प्रति दोनों पक्षों द्वारा वस्तुपरक दृष्टिकोण अपनाने में सहायता देना है।

उद्देश्य और कार्य नीति—छठी योजना में इस सम्बन्ध में जो कार्यक्रम रखे गए हैं उनका उद्देश्य इन विभिन्न कानूनी व्यवस्थाओं में जो व्यवस्था की गई, उनको कारगर ढंग से कार्यान्वित करना, सबको कर्मचारी राज्य बीमा योजना, कर्मचारी

भविष्य निधि योजना और परिवार पेंशन योजना के अधीन लाना है। खेतिहर मजदूरों, कारीगरों, हाथकरघा बुनकरों, मछुओं, चमड़े का काम करने वालों और ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अन्य असंगठित कामगारों को लाभ पहुँचाने के लिए राज्य सरकारों को भी विशेष कार्यक्रम शुरू करने होंगे।

कामगारों की शिक्षा के लिए जो कार्यक्रम हैं उनका विस्तार करना, उनके स्तर में सुधार करना और व्यापक राष्ट्रीय हित में उनके प्रति जागरूकता पैदा करना होगा जिससे कामगारों के प्रतिनिधि आर्थिक और सामाजिक जीवन में कारगर भूमिका निभा सकें।

महिला कामगारों की मुख्य दो समस्याएँ हैं—पुरुष-महिला के आधार पर श्रम बाजार में उनके प्रति भेदभाव और उनकी दोहरी जिम्मेदारी-कामगार के रूप में और माता के रूप में। इसलिए महिला कामगारों के लिए कामगार शिक्षा देने के लिए विशेष कार्यक्रम बनाने होंगे। तेजी से बदलते हुए सामाजिक और आर्थिक परिवेश में युवा वर्ग को भी विशेष समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें परम्परागत मूल्य बनाए रखने तथा बदलते हुए काम की प्रणाली और जीवन-निर्वाह की दशाओं के मध्य उनमें एकरूपता प्राप्त करने की आवश्यकता है। इसलिए युवा वर्ग के कामगारों की शिक्षा के लिए भी विशेष कार्यक्रम बनाने आवश्यक हैं।

संगठित क्षेत्र में इन बातों पर मुख्य बल दिया जाएगा—(1) कर्मचारी राज्य बीमा, कर्मचारी भविष्य निधि और कर्मचारी परिवार पेंशन योजनाओं के काम में सुधार करना, (2) प्रबन्ध में साझेदारी देकर कामगारों और मालिकों के बीच सहयोग को प्रोत्साहित करना, और (3) सम्भावित औद्योगिक विवादों को निपटाने के लिए औद्योगिक सम्बन्ध तन्त्र को बढ़ाना और काम बन्द न होने देने के लिए तत्काल कार्यवाही करना।

ऊर्जा संकट की गम्भीरता, संयन्त्र और उपकरणों का पुराना पड़ना और अनेक उद्योगों में अधिक क्षमता होना कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जो छठी योजना की अवधि में उभरेंगी। इसके लिए यह आवश्यक है कि (1) तेल के उपयोग और तेल के उपयोग पर आधारित औद्योगिक कार्यों में मितव्ययिता की जाए और तेल की खपत को घटाया जाए, (2) संयन्त्रों और उपकरणों का ठीक प्रकार से रख-रखाव रखा जाए, (3) जो संयन्त्र उपकरण बहुत पुराने पड़ गए हैं और काम करने लायक नहीं रहे हैं या जिन्हें ऊर्जा के नए साधनों के उपयोग के लिए अनुकूलित करना होगा, उन्हें बदला जाए, और (4) श्रमिक अधिक उत्पादन करने योग्य बनें और अनेक प्रकार की कुशलताएँ प्राप्त करें। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम, काम की समय-सारिणी और प्रोत्साहन योजनाएँ बनानी होंगी।

मजदूरी कितनी दी जाए, इसका आकार इस समस्या से सम्बद्ध है कि निर्वाह योग्य मजदूरी कितनी होनी चाहिए। यद्यपि निर्वाह योग्य मजदूरी में भी इस बात का ध्यान रखा जाता है कि श्रमिक की उचित मजदूरी क्या हो। फिर भी इस

आर्थिक कुशलता और प्रोत्साहन पर भी ध्यान दिया जाता है। सामाजिक न्याय के प्रति समर्पित समाज मे मजदूरी की दर का निर्धारण केवल माँग और पूर्ति के ऊपर ही नहीं छोड़ा जा सकता। नीति का उद्देश्य यह है कि वर्तमान असमानताएँ कम की और मजदूरी की दर को और मजदूरी के भुगतान के सम्बन्ध में जो धांधलेबाजी होती है, उसे समाप्त किया जाए। इसके विपरीत स्वतन्त्र सगठन और सामूहिक सौदेबाजी के सिद्धान्तो के अनुरूप काम करने मे यह आवश्यक होगा कि सरकारी हस्तक्षेप कम से कम किया जाए और इसे केवल यह सुनिश्चित करने तक ही सीमित रखा जाए कि श्रमिको के कमजोर वर्ग का शोषण न हो। यहाँ पर नीति का काम है न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण और सशोधन करने की कसौटी बनाना और मजदूरी सम्बन्धी सरचना बनाना, परन्तु इस सम्बन्ध में सभी पक्षों को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे आपसी सहमति से अपनी मजदूरी का निर्धारण कर सकें।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था में दो पक्ष साथ-साथ काम करते है। एक पक्ष तो सुसंगठित क्षेत्रक का है और दूसरा पक्ष विकेन्द्रीकृत क्षेत्रक का है जिसमें अधिक लोग अपना काम-धन्धा करते है। इसलिए मजदूरी के अलावा अपना काम करने से कमाने वालों, अपना काम करने वालों, व्यावसायिक और इसी प्रकार के दूसरे काम करने वालो के बीच समानता लाने के लिए अथक प्रयास करने की जरूरत है। इस सन्दर्भ मे यदि अर्थ-व्यवस्था की संरचनात्मक विशेषताओं के अनुरूप एकीकृत आय नीति अपनाई जाए तो उससे अच्छे प्रतिफल प्राप्त करने की आशा की जा सकती है। इस प्रकार की नीति का कार्यान्वयन करने के लिए जो नीति तन्त्र होगा वह उससे बिलकुल भिन्न और जटिल होगा जिसे विकसित देशो ने अपनाया है। विकसित देशो मे मजदूरी सम्बन्धी नीति उनकी आन्तरिक समस्याओ अर्थात् बढती हुई कीमतो और भुगतान सन्तुलन को ध्यान मे रखकर बनाई जाती है। इन देशो का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि नकद भुगतान की जाने वाली मजदूरी की दर की वृद्धियाँ घटाकर उसे उत्पादकता के विकास के अनुरूप बनाया जाए जिससे मूल्य वृद्धि न हो। इसके अलावा उन देशो की बेरोजगारी की स्थिति हमारे देश से बिलकुल अलग है। भारत मे अभी भी मुख्य ध्यान रोजगार देने और न्यूनतम मजदूरी देने की ओर दिया जाता है जिससे अधिकांश जनसख्या गरीबी के स्तर से ऊपर आ जाए।

मजदूरी की नीति की जो खास समस्याएँ हैं उनका सम्बन्ध आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी, जीवन-निर्वाह की लागत बढाने पर मुआवजा देकर वास्तविक मजदूरी को संरक्षण देना, उत्पादकता मे वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहन देना, व्यावसायिक कठिनाइयों के लिए गुंजाइश रखना, कुशलताओ और उत्तर-दायित्वो के अनुसार विभिन्न मजदूरी और अन्य उपयुक्त कारण आवश्यक अन्य सुविधाएँ, बोनस और इसी प्रकार की अनुग्रह राशि का भुगतान, चिकित्सा भविष्य-निधि, उपदान, परिवार पेंशन आदि जैसी सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्थाएँ आदि पर निर्भर है।

न्यूनतम मजदूरी के स्तर मे इस प्रकार वृद्धि करनी चाहिए कि जिससे आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी का सिद्धान्त वास्तविकता मे परिणत हो जाए । वास्तविक मजदूरी को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि जीवन-निर्वाह सूचकांक की लागत को ठीक प्रकार से निश्चित किया जाए और जिन क्षेत्रो मे मजदूरी पर कर्मचारी रखे जा रहे है उन सबके लिए इस बारे मे एक सूत्र तैयार किया जाए। त्रिपक्षीय विचार-विमर्श के बाद इस बारे मे एक कसौटी निर्धारित करनी होगी कि किस प्रकार उत्पादकता को ध्यान से रखते हुए मजदूरी मे वृद्धि की जा सकती है । काम और काम की स्थिति के उत्तरदायित्वो को ध्यान मे रखते हुए विभिन्न प्रकार की मजदूरी निश्चित करने के लिए काम का वर्गीकरण और मूल्यांकन की तकनीक अपनानी होगी ।

मजदूरी निश्चित करते समय देने की क्षमता, उत्पादकता और लाभ उपभोग की स्थिति और जीवन-निर्वाह की लागत, मजदूरी निर्धारण की प्रणाली आदि कुछ बातों को ध्यान मे रखना होता है परन्तु इसके साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रो मे अर्थ-व्यवस्था मे जो विभिन्नता है उसका प्रभाव भी मजदूरी की असमानताओ मे दिखाई देता है, इसलिए यह आवश्यक ही प्रतीत होता है कि मजदूरी की युक्तिसगत प्रणाली पर राष्ट्रीय-मजदूरी नीति तय की जाए जिसमे मजदूरी की विभिन्नता केवल आर्थिक कसौटी पर मान्य होगी । इस सन्दर्भ मे कुछ मार्गदर्शी सिद्धान्त तय किए जा सकते हैं, परन्तु सामूहिक सौदेबाजी का महत्त्व भी यथावत् बने रहना चाहिए ।

बोनस का भुगतान और कुछ अन्य सामाजिक सुरक्षा लाभ कानूनी व्यवस्था के अन्तर्गत आए हैं । अभी हाल में रेलवे, डाक तार और कुछ विभागीय प्रतिष्ठानो ने उत्पादकता पर आधारित बोनस प्रणाली लागू की है । इसका लाभ यह है कि यह प्रोत्साहन प्रणाली उन क्षेत्रों मे भी शुरू की जा सकती है जहाँ लाभ के साथ भुगतान को जोडना सम्भव नही । इन प्रणालियो को सुसगत बनाकर स्पष्ट किया जाना चाहिए ।

इस सम्बन्ध मे एक उल्लेखनीय बात यह है कि राज्यो मे और एक राज्य के विभिन्न क्षेत्रो मे, एक उद्योग के विभिन्न व्यवसायों और संगठित एव असगठित उद्योगो के मध्य और शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रो के मध्य इन सभी मामलो मे बहुत ज्यादा विभिन्नता है । कृषि/ग्रामीण असगठित क्षेत्रक मे उत्पादकता का कम होना, सामाजिक-आर्थिक स्थिति जिसमे गरीबी का व्यापक रूप से विद्यमान होना, बेरोजगारी/अल्प रोजगार, लाभप्रद रोजगार प्राप्त करने के अवसरो का सीमित होना, कामगारों का संगठित न होना जिससे उनकी सौदा-क्षमता कम हो जाती है, इस बहुत अधिक असमानता के कुछ कारण हैं । न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 मे जो संरक्षण दिया गया है उससे कुछ सीमा तक ग्रामीण असगठित क्षेत्रकों मे शोषण को कम करने मे सहायता मिली है । आमदनी और रोजगार मे वृद्धि करने के बाद ही असगठित क्षेत्रक मे विद्यमान विषमताओ को कम किया जा सकता है ।

संगठित क्षेत्र में भी अधिक परिष्कृत शिल्पविज्ञान, इस्तेमाल करने वाले उद्योगों और वित्तीय संस्थानों और दूसरों के बीच असमानताएँ मौजूद हैं जिसके मुख्य कारण है–मजदूर संघों का अधिक कारगर ढग से काम करना, अधिक लाभ कमाना, उद्योग में निहित विशेषाधिकार और कठोरता से नियमों का पालन आदि। यदि न्यूनतम उत्पादकता के मानक से फैक्ट्रियों, खानों और बागानों में मजदूरी का कुछ भाग न्यूनतम उत्पादकता से जोड़ दिया जाए तो उपयुक्त होगा और जहाँ तक वित्तीय संस्थाओं और प्रतिष्ठानों का सम्बन्ध है, उन्हें काम के सम्मत मानकों और कार्य-निष्पादन से जोड़ दिया जाए।

किसी भी देश की आर्थिक प्रगति के लिए औद्योगिक शान्ति बनाए रखना अपरिहार्य है। आर्थिक प्रगति को औद्योगिक शान्ति से सम्बद्ध करने की सामान्य बात यह है कि इस प्रकार की शान्ति से कामगारों और प्रबन्ध में अधिक सहयोग बना रह सकता है। इसका प्रतिफल यह होता है कि उत्पादन अच्छा और अधिक होता है जिससे देश की चहुँमुखी प्रगति में योगदान होता है।

किसी उद्योग में औद्योगिक सम्बन्ध कैसे हैं इसका सबसे अच्छा सूचक हड़तालों और तालाबन्दी के कारण जितने श्रम-दिवसों की हानि हुई है उनके आँकड़े हैं। 1970 से 1979 तक इस प्रकार जितने श्रम-दिवसों की हानि हुई है वे इस प्रकार थे—

वर्ष	समय की हानि (लाख श्रम-दिवस)
1971	165
1972	205
1973	206
1974	403
1975	219
1976	127
1977	253
1978	283
1979 (अन्तिम)	439

1974 के वर्ष को छोड़कर जिसमें रेलवे की लम्बी हड़ताल हुई थी, पहले छः वर्षों में हुई श्रम-दिवसों की हानि सामान्य रूप से 220 लाख से कम थी। इसके बाद श्रम-दिवसों की हानि में निरन्तर वृद्धि होती गई और यह सबसे उच्च स्तर पर 439 लाख श्रम-दिवसों पर पहुँच गई। अधिकतर हड़ताल और तालाबन्दियों के कारण मजदूरी और भत्ते, बोनस, कार्मिक और छँटनी और काम की शर्तों के बारे में हुए विवाद थे। पारस्परिक समझौता, विवाचन और अधिनिर्णयन से विवादों को सुलझाने का प्रयत्न किया गया जो आंशिक रूप से ही सफल हुए।

औद्योगिक शान्ति स्वस्थ औद्योगिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है। यह बात केवल मजदूर और मालिक के ही हित की नही है बल्कि यह सारे समाज के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। अन्तिम रूप से विश्लेषण करने पर औद्योगिक सम्बन्धो की समस्या के बारे मे यही निष्कर्ष निकलता है कि यह मुख्य रूप से सम्बन्धित पक्षों के दृष्टिकोण और तौर-तरीकों पर निर्भर करती है। सहयोग की भावना का यह अर्थ है कि यद्यपि मालिक और मजदूर अपने-अपने हितो की रक्षा के लिए पूरी तरह स्वतन्त्र हैं परन्तु उन्हे समाज के हितों को भी ध्यान मे रखना चाहिए। औद्योगिक शान्ति के जो तीन आयाम है, इनका उन सबके सम्बन्ध मे समान रूप से महत्त्व है।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 मुख्य कानूनी आधार स्वरूप है जिसके अन्तर्गत विवादो को निपटाने के लिए मध्यस्थता, समझौता, विवाचन और अधिनिर्णयन की प्रक्रिया की व्यवस्था की गई है। आचार संहिताओं के माध्यम से भी स्वैच्छिक आधार पर औद्योगिक सम्बन्ध सुलझाने का प्रयत्न किया गया था परन्तु सामान्य विचार यह था कि विवादो को रोकने और समझौता कराने के लिए विद्यमान व्यवस्थाएँ काफी नही थी। श्रम आयोग की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद नए और विस्तृत औद्योगिक सम्बन्धो के बारे मे कानून बनाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु कुछ मूलभूत विषयो जैसे—तन्त्र और विवादो के निपटारे के लिए प्रक्रिया, श्रम सगठनो को मान्यता देने की प्रक्रिया और कसौटी अर्थात् किसी श्रमिक सगठन के प्रतिनिधित्व के बारे मे सम्बन्धित यूनियनो के शुल्क देने वाले सदस्यो की जाँच करके किया जाए या गुप्त मतपत्रो से किया जाए, सरकारी उद्यमो सहित क्या उद्योगो को हड़ताल करने का अधिकार है, औद्योगिक विवाद निपटाने मे सरकार की भूमिका आदि के बारे मे श्रम सगठनो द्वारा अलग-अलग अपनाए जाने के कारण ये सफल नही हो सके। यद्यपि सम्बन्धित पक्षो मे असहमति के क्षेत्र को कम करने के लिए और कानून और तन्त्र मे स्वीकार्य सुधार करने के प्रयत्न जारी रखे जाने चाहिए परन्तु औद्योगिक सम्बन्ध सुधारने के लिए आवश्यक समझे जाने वाले श्रम सगठनो से सम्बन्धित वर्तमान कानूनो, औद्योगिक विवाद और स्थाई आदेशो को कार्यरूप मे परिणत किया जाए और इन बातो के सम्बन्ध मे फैसला न होने तक न रोका जाए। इन परिवर्तनों से वर्तमान प्रक्रिया को सुप्रभावी बनाने और श्रमिको को शीघ्रता से न्याय दिलाने मे सफलता मिलेगी। इस समय जो कर्मचारी श्रमिक कानूनो के अन्तर्गत नही आते हैं, उन्हें भी सेवा की सुरक्षा देने के लिए श्रमिक कानूनो के अन्तर्गत लाने पर विचार किया जाना चाहिए।

यदि पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत जो बहुत अधिक निवेश किया जा रहा है उससे वांछित प्रतिफल प्राप्त होते हैं तो कुछ महत्त्वपूर्ण, उपाय करने मे देरी नहीं होनी चाहिए। उदाहरणार्थ—बिजली, ऊर्जा, कोयला, इस्पात और परिवेशन सहित बुनियादी क्षेत्रक को औद्योगिक सम्बन्धो की अनिश्चितताओ से यथासम्भव अलग रखना चाहिए। यदि पर्याप्त परामर्शदात्री तन्त्र और शिकायत दूर करने की प्रक्रियाएँ निर्धारित कर उनसे काम लेना शुरू कर दिया जाए तो इन उद्योगो मे हड़तालें और

तालाबन्दी बीते दिनों की बात हो जाएगी। अन्य क्षेत्रों में भी हड़ताल और तालाबन्दी तभी की जाएँ जब कोई अन्य उपाय न हो। मजदूर संगठनों के आपसी विवादों को निपटाने की भी ठीक-ठीक समुचित व्यवस्था की जाए और अवांछनीय तरीके और गैर-जिम्मेदारी का आचरण करने को हतोत्साहित किया जाए।

प्रबन्ध में कामगारों की सहभागिता—उद्यम स्तर पर कामगारों की प्रबन्ध में सहभागिता औद्योगिक सम्बन्ध प्रणाली में आवश्यक अंग बन गई है जो आधुनिक प्रबन्ध में एक प्रभावशाली साधन के रूप में कार्य करती है। इसे नियोक्ताओं और कामगारों—दोनों के बीच सहयोग की संस्कृति स्थापित करने के लिए एक साधन के रूप में परिवर्तित करना होगा जिससे कि देश को स्थाई औद्योगिक आधार के साथ मजबूत, आत्मविश्वासी और आत्मनिर्भर बनाने में सहायता मिल सके। कामगारों की सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए पहले भी कई उपाय किए गए हैं। यह कार्य सांविधिक कार्य समितियों की सीमित योजना से शुरू किया गया था और संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के रूप में स्वैच्छिक व्यवस्थाएँ की गई थी। राष्ट्रीयकृत बैंकों तथा चुने हुए केन्द्रीय सरकारी उद्यमों में सांविधिक व्यवस्था के रूप में कामगार निदेशक योजना और 1975 में निर्माण/खान उद्योगों के लिए कामगार की सहभागिता की एक स्वैच्छिक स्कीम तथा 1977 में सरकारी क्षेत्र में वाणिज्यिक और सेवा संगठनों के लिए 20 सूत्री कार्यक्रम के आवश्यक अंग के रूप में यह स्कीम शुरू की गई थी। 21 सदस्यों की एक समिति में नियोजकों, मजदूर संघों, सरकार और शिक्षाशास्त्रियों के प्रतिनिधि शामिल थे, उसने इस सम्बन्ध में गहराई से अध्ययन किया और अन्य बातों के साथ-साथ यह भी सिफारिश की कि कामगारों की सहभागिता की एक सांविधानिक स्कीम बनाई जाए जिसमें तीन श्रेणियों में विचार हो अर्थात् संयन्त्र में, भण्डारण के स्थान पर और नियम/बोर्ड स्तर पर/प्रचालन, आर्थिक और वित्तीय प्रचालन, कार्मिक, कल्याण और पार्यावरणीय क्षेत्रों में सम्बन्धित मामलों में सहभागिता के लिए एक व्यापक क्षेत्र की भी सिफारिश की है; यह माना गया है कि सामूहिक सौदा करने के क्षेत्र से बाहर किसी उद्यम में सम्बन्ध बनाए रखने के लिए एक बहुत बड़ा क्षेत्र है जिसमें नियोजक और कामगार विभिन्न हित समूहों और सम्पूर्ण उद्यम के सामान्य हितों के लाभ के लिए संयुक्त रूप से काम कर सकते हैं। सलाह-मशविरा करने और संयुक्त निर्णय करने की ऐसी प्रणाली द्वारा विभिन्न स्तरों पर संघर्षरहित कार्य संचालन सुनिश्चित किया जाएगा, नौकरी में सन्तोष की भावना उपलब्ध कराई जाएगी, कामगारों में छिपी हुई सृजनात्मक शक्ति का विस्तार होगा, उनके मनमुटाव कम होंगे और कामगारों में अच्छा कार्य करने के सामान्य आदर्श और प्रबन्ध व्यवस्था में समर्पण की भावना बढ़ेगी। किन्तु कामगारों और प्रबन्धक/पर्यवेक्षीय कार्मिकों के प्रशिक्षण के लिए कारगर व्यवस्था करनी आवश्यक है ताकि उद्यम के व्यापक हित में कामगारों की सहभागिता को सफल बनाने में उन्हें प्रोत्साहित किया जा सके: जिस पर दोनों पक्षों की भलाई

निर्भर करती है। इसका निरीक्षण और मूल्यांकन करने के लिए एक प्रभावशाली अभिकरण सहभागिता को सफल बनाने में बहुत सहायक होगा।

यह भी आवश्यक है कि त्रिपक्षीय परामर्शदात्री तन्त्र को बढ़ाया और व्यवस्थित किया जाए ताकि सभी इच्छुक सम्बन्धितों—मजदूर संघों, नियोजकों और सरकार के बीच पूरी तरह से विचार-विमर्श करने के बाद श्रमिक नीतियों और कार्यक्रमों का एक व्यापक आधार स्वरूप तैयार करना सम्भव हो सके। उद्योग स्तर पर स्थाई त्रिपक्षीय समितियाँ कठिनाइयों और कमियों का पता लगाने और उन्हें दूर करने के उपाय सुझाने के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं। इस प्रकार के मंचों/साधनों के नियमित और प्रभावी ढंग से काम करने से बातचीत करने का अवसर मिलेगा और उचित उद्देश्य में सहायता मिलेगी जो औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार लाने के लिए आवश्यक है। इस कार्य में सहायता देने के लिए संचार और सूचना सहभागिता प्रणालियों को बढ़ावा जाना चाहिए और उचित परामर्श के बाद निर्णय किए जाने पर यथाशीघ्र कार्यान्वित किए जाने चाहिए।

कृषि में मजदूरी का परिशोधन—ग्रामीण गरीब लोगों के कुछ वर्गों का स्तर ऊँचा उठाने के लिए जो एक और सुसगत पहलू है वह है न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के उपबन्धों को प्रभावी ढंग से लागू करना। इसमें यह व्यवस्था की गई है कि असंगठित क्षेत्रकों में कृषि और अन्य रोजगारों में मजदूरी की न्यूनतम दरें समय-समय पर निर्धारित की जाएँ और उनमें परिशोधन किया जाए। इस संरक्षण से खेतिहर मजदूरों और अन्य परिश्रम वाले रोजगारों में काम करने वाले कामगारों को ही मुख्य लाभ मिलता है। केन्द्रीय सरकार के अधीन के रोजगारों को छोड़कर, जो इन श्रेणियों के अधीन अधिक नहीं आते इस केन्द्रीय कानून को कार्यान्वित करना राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है। इस उपाय से सम्बन्धित मुख्य विषय हैं—नए रोजगारों को धीरे-धीरे इसके अन्दर लाना, उक्त अधिनियम के अधीन निर्धारित न्यूनतम दरों का आवधिक परिशोधन के होने में विलम्ब का निराकरण करना और विद्यमान उपबन्धों को कारगर ढंग से लागू करना। इस प्रतिफल को प्राप्त करने के लिए जिन सुधार सम्बन्धी कार्रवाई की सिफारिश की गई है वे हैं—प्रवर्तन तन्त्र को बढ़ाने की आवश्यकता, इस अधिनियम के अधीन लाने और परिशोधन सम्बन्धी प्रक्रिया को सरल बनाना, उपभोक्ता मूल्य सूचकांक से मजदूरी दर को जोड़ना, उक्त उपबन्धों के कार्यान्वयन के काम में ग्रामीण कामगारों के संगठनों को शामिल करना। सांविधिक उपबन्धों में आवश्यक संशोधन शीघ्र किए जाने की सम्भावना है। नियमों को लागू करने वाले तन्त्र को पर्याप्त रूप से बढ़ाने पर न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के उचित कार्यान्वयन की कारगर व्यवस्था करना सम्भव होगा। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि इन उपायों और इनके साथ राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और एकीकृत ग्रामीण विकास आदि के साथ इन कार्यक्रमों को चलाने से यह ग्रामीण गरीबों को बड़ी संख्या में गरीबी के स्तर से ऊपर उठाने के लिए एक समन्वित और परस्पर समर्थन देने के प्रयत्नों का प्रतिनिधित्व करेगा। कृषि कामगारों के लिए केन्द्रीय कानून बनाया जाएगा।

सातवीं योजना में हमारी श्रम नीति : कितनी सार्थक ?

सातवी योजना मे क्षमता के उपयोग, कुशलता और उत्पादकता के सुधार पर विशेष रूप से बल दिया गया है। उत्पादन प्रक्रिया मे पूर्ति और माँग दोनो पक्षो से श्रमिक का एक अटूट सम्बन्ध होता है। पूर्ति और माँग दोनों का तात्पर्य उत्पादन बढ़ने से है क्योंकि उच्च उत्पादकता से ही उच्च वेतन निश्चित किया जा सकता है, उत्पादन की लागत कम की जा सकती है। अतः श्रमिक की भूमिका को इस व्यापक परिप्रेक्ष्य मे देखा जाना चाहिए।

उत्पादकता का मानदण्ड ही अर्थ-व्यवस्था का परिचायक होता है और यही श्रम नीति की सफलता का आधार होता है। लेकिन उत्पादकता स्तरों का निर्धारण करने के लिए प्रौद्योगिकी की स्थिति और तकनीकी घटक बहुत आवश्यक है। यह भी सच है कि कामगारो का अनुशासन और प्रोत्साहन, उनकी कुशलता औद्योगिक सम्बन्ध और कामगारों की साझेदारी, काम की स्थिति और सुरक्षा सम्बन्धी उपाय भी इसमे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

औद्योगिक रुग्णता

औद्योगिक क्षेत्र की एक प्रमुख समस्या उनकी रुग्णता की है। प्रतियोगिता बढने से संरक्षण मे जीवित रहने वाले अधिकांश उद्योग जीर्ण हो जाते हैं। पटसन और सूती कपड़ा जैसे परम्परागत उद्योगों मे ही नही बल्कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्थापित कई सार्वजनिक और निजी उद्योगों में चिरकाल रुग्णता की समस्या बनी हुई है। अत: समय-समय पर संगठित क्षेत्रो में बडी संख्या मे कामगारो के पुनर्वास की समस्या उत्पन्न हो जाती है। यह ठीक है कि अधिकतम रोजगार सुलभ किए जाने चाहिए परन्तु मुख्य क्षेत्रों और रुग्ण औद्योगिक क्षेत्रों की उत्पादन प्रक्रियाओं में अद्यतन प्रौद्योगिकी को अपना कर श्रमिक उत्पादकता बढ़ाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार आने से हड़ताल और तालाबन्दी का मसला स्वत: ही सुलझ जाएगा पर यह तभी सम्भव है जब प्रबन्ध मे श्रमिकों की पर्याप्त भागीदारी हो और यूनियन गतिविधियाँ द्वेषभाव रहित और स्वस्थ दृष्टिकोण युक्त हो।

प्रशिक्षण

उत्पादकता बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर करती है कि विभिन्न स्तरों पर कामगारो को किस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षण उद्योग की आवश्यकता के अनुरूप हो कर सर्वोच्च किस्म का होना चाहिए। आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो मे प्रतियोगिता का मुकाबला करने के लिए सामान की गुणवत्ता बहुत आवश्यक है। नवीनतम प्रौद्योगिकी की जानकारी उपलब्ध कराने के लिए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानो का आधुनिकीकरण करना बहुत ही आवश्यक है। पुरानी मशीनरी व उपस्करों का परिवर्तन, नई तकनीकी शिक्षा और प्रशिक्षण के पुराने ढर्रे व नजरिए में पूर्ण बदलाव अपेक्षित है। यह

काम चरणबद्ध आधार पर किया जाएगा । सातवीं योजना में इसके लिए विशेष प्रावधान किया गया है और पहले चरण में वे पुराने औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के आधुनिकीकरण को प्राथमिकता दी जाएगी ।

वेतन नीति

सातवीं योजना में श्रम नीति का महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि एक उपयुक्त वेतन नीति तैयार की जाए । वेतन नीति के आधारभूत लक्ष्य हैं—उत्पादकता की वृद्धि के अनुसार वास्तविक आय के स्तरों में भी वृद्धि करना, उत्पादक रोजगारों को प्रोत्साहित करना, कुशलता में सुधार लाना, वांछित क्षेत्रों में कार्य करना और असमानताओं को कम करना । वेतन नीति अनेक आर्थिक और व्यावहारिक कारणों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें भत्ते, बोनस व सामाजिक सुरक्षा जैसे कई लाभकारी महत्त्वपूर्ण तत्त्व शामिल होते हैं ।

असंगठित शहरी व ग्रामीण श्रमिक

योजनावधि में ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में काम कर रहे असंगठित श्रमिकों के कल्याण और उनके काम व रहने की दशा में सुधार पर बल दिया जाएगा । इन श्रमिकों के रोजगार व वेतन के लिए कानूनी व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की जा रही है । इस दिशा में विद्यमान कानूनों विशेष रूप [redacted] ठेका श्रमिक (विनियमन और उन्मूलन) अधिनियम, 1970 तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 तथा अन्तर्राज्यीय प्रव्रजन कामगार रोजगार और सेवा शर्तों का विनियमन अधिनियम 1979 के कारगर कार्यान्वयन से भी असंगठित शहरी श्रमिकों की दशा सुधारने में काफी सहायता मिल सकती है ।

ग्रामीण असंगठित श्रमिकों में भूमिहीन श्रमिक, छोटे और सीमान्त किसान, ग्रामीण कारीगर, वन श्रमिक, बटाईदार, मछुआरे और स्वरोजगाररत बाडी श्रमिक, चमड़े और हथकरघा कारीगर शामिल होते हैं । काम में मन्दी का मौसम, अर्द्ध रोजगार, कम वेतन और शिक्षा और संगठन की कमी इनकी ज्वलंत समस्याएँ होती हैं । इनकी कार्यदशा में सुधार के लिए कई कार्यक्रम पहले ही शुरू किए जा चुके हैं लेकिन सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारने का काम बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है और इसके लिए बलिदान समर्पण और कठिन परिश्रम की आवश्यकता है । इन कामगारों की कुशलता को बढ़ाने और इनके प्रशिक्षण पर बल देने के अलावा उन्हें कार्यक्रमों की सही जानकारी देकर शिक्षित करना होगा और उन्हें कानूनी व्यवस्थाओं की जानकारी देकर भी शिक्षित करना होगा । इस दिशा में स्वयंसेवी संस्थाओं की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता ।

बन्धुआ मजदूर

सरकार देश से बन्धुआ मजदूरी को जड़ से मिटाने को कृत संकल्प है । सातवीं योजना में बन्धुआ मजदूर प्रणाली को मिटाने के उद्देश्य से कई प्रावधान किए गए हैं । इस अमानवीय कुप्रथा को जन्म देने वाली परिस्थितियों में भयंकर गरीबी है । बड़ी संख्या में असहाय व्यक्तियों को भरण-पोषण और सामाजिक

रीति-रिवाजों को निभाने के लिए ग्रामीण महाजनों पर ग्राश्रित होना पडता है ग्रौर उनसे प्राप्त यह कर्जा ही उन भोले ग्रामीणो के लिए कभी न मिटने वाली पीढी दर पीढी चलने वाली दासता की चक्की बन जाता है। सरकार ने संशोधित विधान के साथ व सच्चे ग्रर्थों में उनेक कदम उठाए है ग्रौर मुक्त हुए श्रमिकों के पुनर्वास के संरक्षणात्मक प्रयासो पर विशेष ध्यान दिया है। इस सम्बन्ध में विभिन्न श्रम कल्याण परियोजनाग्रो के लिए छठी ग्रौर सातवी योजना में निर्धारित राशि को देखने से इसका सहज ग्रनुमान लगाया जा सकता है—

योजना का परिव्यय तथा व्यय—श्रमिक ग्रौर श्रम कल्याण

(करोड़ रुपये मे)

	छठी योजना		सातवी योजना के लिए प्रस्तावित परिव्यय
	परिव्यय	प्रत्याशित व्यय	परिव्यय
केन्द्र	73 50	49 06	95·44
राज्य	111·92	148 55	219·75
संघ शासित क्षेत्र	9 22	12·38	18·53
कुल योग	199 64	199 99	333·72

बाल श्रमिक

श्रम क्षेत्र में तत्काल कार्रवाही की ग्रपेक्षा रखने वाली प्रमुख समस्या बाल मजदूरी की है। यह समस्या प्रमुख रूप से गरीबी की देन है ग्रौर वर्तमान ग्राथिक विकास की स्थिति मे इसका पूर्ण उन्मूलन भी सम्भव नही है। इस समस्या का निदान सामाजिक रूप से ग्रधिक उदार परिस्थितियो के निर्माण मे निहित है। संशोधित विधान के साथ सच्चे ग्रर्थों में उनके क्रियान्वयन के लिए ऐसी स्वयसेवी एजेन्सियो की ग्रावश्यकता है जो बाल श्रमिकों के स्वास्थ्य, पोषण तथा शिक्षण का ध्यान रखें। इन बच्चों के ग्रनौपचारिक शिक्षण-प्रशिक्षण पर भी बल दिया जाना चाहिए। लेकिन ये लक्ष्य तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जबकि उन परिवारों की ग्राथिक स्थिति को सुधारा जाए जिनके बच्चे मजदूरी करने के लिए जाते हैं ग्रौर यह बाध्यता उनका सबसे बडा शोषण करती है।

महिला श्रमिक

जहाँ तक महिला श्रमिको का प्रश्न है, उन्हे विशेष महत्त्व दिया जा रहा है तथा ग्राथिक विकास मे उन्हे सहगामी बनाने के लिए कई विशेष सुविधाएँ दी जा रही इस दिशा मे कई प्रयास किए जा रहे है।

समस्त ग्रामीण विकास कार्यक्रमो मे महिलाओं को विशेष लक्ष्य समुदाय माना जाएगा, पूँजी-सम्पत्ति कार्यक्रमो मे महिलाओ का समान अधिकार, विशेष व्यावसायिक प्रशिक्षण सुविधाओ का विस्तार, ऐसे तकनीकी उपस्कर तथा प्रणालियों को अधिक प्रोत्साहन जो महिलाओ की उदासीनता कम करें और उन्हे उत्पादकता बढाने मे अधिक सक्रिय कर सकें। इसके अलावा सातवी योजनावधि मे परिवार नियोजन केन्द्र, श्रमिक महिलाओ के लिए बाल अनुरक्षण केन्द्र, राज्य स्तर बढाने पर मार्केटिंग बस्तियाँ स्थापित करने और प्रबन्ध मे महिलाओ की भागीदारी के लिए विशेष उपायो का प्रावधान है। महिला मजदूरों के लिए समान वेतन, उनके लिए आवश्यक कार्य के घण्टे आदि से सम्बन्धित वर्तमान कानूनों मे सशोधन का भी प्रस्ताव है और इन कानूनों को अधिक विस्तृत किया जाएगा।

उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए 334 करोड रुपये के विनियोजन की एक विस्तृत योजना केन्द्र, राज्य तथा संघ शासित राज्यो के लिए विशेष रूप से सातवी योजना मे उपलब्ध कराई गई है। लेकिन योजनाएँ कितनी भी आकर्षक व लाभकारी क्यों न हो उनका सही लाभ केवल तभी सम्भव है जबकि व्यापक रूप से जागरूकता हो और ईमानदारी के साथ इनकी सफलता के लिए प्रयास किए जाएँ। केवल जादुई करिश्मा ही इन्हे सफल नही बना सकेगा। नागरिकों की दृढ़ इच्छा शक्ति भी एक महत्त्वपूर्ण निर्णायक है।[1]

मजदूरी नीति और राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट (1969)
(Wage Policy and Report (1969) of National Commission on Labour)

केन्द्रीय सरकार ने दिसम्बर, 1966 मे एक राष्ट्रीय श्रम आयोग श्री पी. बी. गजेन्द्रगढ़कर की अध्यक्षता मे स्थापित किया। आयोग ने अपनी रिपोर्ट अगस्त, 1969 मे दी जिसमे मजदूरी नीति से सम्बन्धित निम्नांकित सिफारिशें की गई[2]—

सरकार, नियोक्ता, श्रम सघो तथा स्वतन्त्र व्यक्तियो ने सहमति प्रकट की कि मजदूरी नीति ऐसी हो जिससे आर्थिक विकास की नीतियो को प्राप्त किया जा सके।

1 न्यूनतम मजदूरी के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए आयोग ने इसके निर्धारण हेतु उद्योग की मजदूरी देय क्षमता को ध्यान मे रखने की सिफारिश की। आयोग के अनुसार राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी (National Minimum Wage) न तो सारे देश के लिए उचित है और न ही वांछनीय।

1 योजना, मई, 1986 (श्रीमती चन्द्रकला शफीक)

2 Report of the National Commission on Labour, p. 225.

विभिन्न क्षेत्रों के लिए अलग-अलग प्रादेशिक न्यूनतम मजदूरी (Regional Minimum Wage) निश्चित करने की सिफारिश की।

2 आयोग ने सिफारिश की कि बिना उत्पादकता में वृद्धि के मजदूरों की वास्तविक मजदूरी मे निरन्तर वृद्धि सम्भव नहीं है। आयोग ने प्रेरणात्मक मजदूरी योजनाओं (Incentive Wage Systems) को लागू करने की सिफारिश की। जीवन निर्वाह लागत मे परिवर्तन के साथ-साथ मजदूरी मे भी परिवर्तन करना चाहिए।

3. मजदूरी बोर्ड (Wage Board) को मजदूरी निर्माण मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने के महत्त्व को स्वीकार किया गया। इसके साथ ही आयोग ने मजदूरी बोर्ड की सर्वसम्मत सिफारिशो को लागू करना कानूनन अनिवार्य बनाने की सिफारिश की।

4. कृषि श्रमिको के सम्बन्ध में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को प्रभावपूर्ण ढग से लागू करने की सिफारिश की। यह सबसे कम मजदूरी वाले क्षेत्रों में पहले लागू किया जाए।

5 नियोक्ताओं ने आयोग के सम्मुख यह विचार पेश किया कि औद्योगिक मजदूरी का कृषि मजदूरी और प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय से सम्बन्ध होना चाहिए। मजदूरी को उत्पादकता से जोड दिया जाए तथा उचित मजदूरी समिति की सिफारिशो के आधार पर मजदूरी का निर्धारण किया जाए।

6. श्रम सघो ने आयोग को कहा कि वास्तविक मजदूरी मे गिरावट को दूर किया जाए जिससे कि श्रमिकों का जीवन-स्तर बनाए रखा जा सके। यह तभी सम्भव हो सकता है जब मजदूरी को उत्पादकता से जोड दिया जाए।

7. राज्य सरकारो ने भी मजदूरी नीति मे परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर दिया। मजदूरी नीति श्रम के अनुकूल हो तथा उपभोक्ताओं के हित को भी ध्यान मे रखने वाली हो। सरकार ने यह वायदा किया कि श्रमिकों के जीवन-स्तर मे सुधार किया जाएगा तथा धन और आय के असमान वितरण को भी दूर किया जाएगा।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने मजदूरी से सम्बन्धित सभी अधिनियमो को मिला कर कोई एकीकृत अधिनियम (Integrated Act) पास करने की सिफारिश नहीं की। आवश्यकतानुसार न्यूनतम मजदूरी (Need-based Minimum Wage) निर्धारित करते समय किन-किन नियमो तथा सिद्धान्तो को ध्यान मे रखा जाए, कोई सिफारिश नही की गई।

श्रम और मजदूरी नीति को प्रभावित करने वाले सम्मेलन तथा अन्य महत्त्वपूर्ण मामले (1985-86)

भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट में 1985-86 वर्ष के दौरान श्रम और मजदूरी नीति को प्रभावित करने वाले विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों और बैठकों तथा राष्ट्रीय सम्मेलनो और बैठको का संक्षिप्त ब्यौरा

दिया गया है। इससे हमे विषय वस्तु की मूल्यवान जानकारी प्राप्त होती है। रिपोर्ट मे दिए गए अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय सम्मेलनों मे कुछ प्रमुख सम्मेलनो का विवरण इस प्रकार है—

अन्तर्राष्ट्रीय बैठकें/सम्मेलन

(क) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन--अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का 71वां अधिवेशन जेनेवा मे 7जून से 27जून,1985तक हुआ। इसके 151देशों के2000 सरकारी, नियोजकों और श्रमिको के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। भारत ने एक त्रिपक्षीय शिष्टमण्डल भेजा। महानिदेशक की रिपोर्ट का मुख्य प्रसंग, औद्योगिक सम्बन्ध और त्रिपक्षीयवाद के बारे मे था। प्रायः सभी प्रतिनिधियो ने सुदृढ औद्योगिक सम्बन्धो को प्रोत्साहन देने और त्रिपक्षीयवाद को मजबूत करने की आवश्यकता पर बल दिया। इस सम्मेलन ने दो वर्ष की अवधि 1986-87 के लिए सगठन के कार्यक्रम और 2530 लाख यू एस डॉलर की राशि के बजट को पारित किया। इस सम्मेलन की 17 जून को विशेष बैठक हुई जिसे भारत के प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी ने सम्बोधित किया।

इस सम्मेलन ने (क) व्यावसायिक स्वास्थ्य सेवा और (ख) श्रम सांख्यिकी सम्बन्धी दो अभिसमयो को स्वीकार किया। रोजगार मे पुरुषो और महिलाओ के लिए समान अवसर और समान व्यवहार के बारे मे आम चर्चा हुई। रंगभेद भाव पर भी गहन विचार-विमर्श हुआ जो प्रतिवर्ष सम्मेलन का एक स्थायी विषय होता है और दक्षिण अफ्रीका मे रंगभेद भाव की नीतियो से सम्बन्धित आई एल ओ. घोषणा पर की गई कार्यवाही सम्बन्धी निष्कर्षों को पारित किया गया।

इस सम्मेलन ने दो प्रस्ताव पारित किए। प्रथम प्रस्ताव मे कहा गया कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय और विशेषकर विकसित देशो और अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियो से अपील की कि वे अतिरिक्त साधनो का आवंटन करके और सहायता तथा सहयोग कार्यकलापो द्विपक्षीय और बहुपक्षीय दोनो को सुदृढ़ करके सूखे से प्रभावित अफ्रीकी देशों को अधिक मदद प्रदान करे। दूसरे प्रस्ताव मे इस सम्मेलन ने बढते हुए खतरो और गम्भीर दुर्घटनाओ की बढती हुई संख्या पर गहरी चिन्ता व्यक्त की जो खतरनाक पदार्थों तथा रासायनिक उत्पादो के प्रयोग से सम्बन्धित है। इस सम्मेलन ने सभी सदस्य देशो से अपील की कि वे श्रमिक और नियोजक सगठनो के साथ पूरा परामर्श करके खतरनाक ससाधनो के प्रयोग तथा जोखिमपूर्ण पदार्थों के उत्पादन, परिवहन, संचयन, हैन्डलिंग और विक्रय से सम्बन्धित खतरा निवारण के लिए समाकलित और व्यापक नीतियां स्वीकार करें। इसकी प्रस्तावना मे बहुराष्ट्रीय कम्पनियो और प्रमुख प्रबन्धतन्त्र के अपने सभी सहायक यूनिटो के प्रबन्ध के सगठन और नियन्त्रण के बारे मे बेसिक उत्तरदायित्व पर जोर डाला गया।

व्यावसायिक स्वास्थ्य सेवा अभिसमय और सिफारिश मे जिसे सम्मेलन ने पारित किया, निर्धारक और बहुउद्देश्यीय दृष्टिकोण को निर्दिष्ट किया गया जिनमें नियोजक और श्रमिक पूरी तरह सहयोग देते हैं। नए दस्तावेजो के अनुसार इन सेवाओ का उद्देश्य न केवल श्रमिको के स्वास्थ्य की देखभाल के लिए चिकित्सा ज्ञान प्रदान करना है बल्कि एक ऐसा चैनल बनाना है जिसके द्वारा अनेक विशिष्ट क्षेत्रो मे प्राप्त ज्ञान और अनुभव को सभी सम्बन्धित पक्षो के सहयोग से कार्य पर्यावरण मे सुधार करने हेतु व्यावहारिक कार्यवाही की ओर अभिमुख किया जा सके। अभिसमय का अनुसमर्थन करने वाले सदस्य देश सभी श्रमिकों के लिए जिनमे सार्वजनिक सेक्टर के श्रमिक और उत्पादन सहकारी समितियों के सदस्य शामिल हैं, आर्थिक कार्यकलापो की सभी शाखाओ मे और सभी उपक्रमो तथा उपक्रमो के विशिष्ट खतरो को ध्यान मे रखते हुए व्यावसायिक स्वास्थ्य सेवा का उत्तरोत्तर विकास करेंगे।

अभिसमय द्वारा निर्धारित सिद्धान्तो का स्मरण करने के पश्चात् सिफारिश मे निम्नलिखित क्षेत्रो मे इन सेवाओ के कार्यों का विस्तृत वर्णन किया गया है, कार्य पर्यावरण की निगरानी, श्रमिकों के स्वास्थ्य की निगरानी, सूचना, शिक्षा, प्रशिक्षण और परामर्श और प्रथमोपचार व्यवहार और स्वास्थ्य कार्यक्रम। इस सिफारिश में यह बताया गया कि राष्ट्रीय या बहुराष्ट्रीय उपक्रमो को जिनके एक से अधिक प्रतिष्ठान है, अपने सभी प्रतिष्ठानो मे, चाहे वह किसी भी जगह या देश मे स्थित हों, श्रमिको को बिना किसी भेदभाव के उच्चतम सेवा प्रदान करनी चाहिए।

सामाजिक और आर्थिक प्रगति की योजना बनाने और उसे मानीटर करने तथा औद्योगिक सम्बन्धो के लिए विश्वसनीय श्रम आँकडो की आवश्यकता की वजह से श्रम आँकडो सम्बन्धी अभिसमय और सिफारिश को सम्मेलन ने स्वीकार किया। इस क्षेत्र में पहले के दस्तावेजो मे संशोधन करते हुए इस अभिसमय से सदस्य देश श्रम आँकडो को नियमित रूप से एकत्र करने, सकलित करने और प्रकाशित करने के लिए वचनबद्ध हो जाएँगे जिनका उत्तरोत्तर विस्तार किया जाएगा ताकि इसके अन्तर्गत आर्थिक रूप से सक्रिय जनसख्या रोजगार, जहाँ सगत हो, बेरोजगारो और जहां सम्भव हो, स्पष्ट अल्प रोजगार, आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या की सरचना और उनका वितरण तथा औसत आय और कार्य घण्टो को लाया जा सके। यह सभी आँकडे पूरे देश को प्रतिनिधित्व करेंगे। इसके कार्यक्षेत्र मे मजदूरी ढाँचा और वितरण, श्रम लागत, उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, घरेलू व्यय, व्यावसायिक चोट और औद्योगिक विवाद भी आते हैं।

न केवल नियोजकों और श्रमिकों तथा उनके सगठनों स्वास्थ्य और श्रम प्राधिकरणों बल्कि सामान्य-लोगो द्वारा भी एस्बेस्टास धूल के कारण खतरनाक प्रभावो के बारे में व्यक्त की गई अत्यधिक चिन्ता के प्रत्युत्तर मे, सम्मेलन ने इस

खतरे के लिए व्यापक दृष्टिकोण हेतु आधार तैयार किया। यह मसौदा अभिसमय और सिफारिश के रूप में था ताकि इस पर और विचार-विमर्श किया जा सके और अगले वर्ष इसे पारित किया जा सके।

रोजगार में पुरुषों और महिलाओं के लिए समान अवसर और समान व्यवहार सम्बन्धी प्रस्ताव और निष्कर्षों को पारित करते हुए इस सम्मेलन ने कार्रवाही की घोषणा और प्लान की वैधता का पुन समर्थन किया ताकि यू. एन. डीकेड फॉर वूमैन के प्रारम्भ में 1975 में पारित इस समानता को बढ़ावा दिया जा सके और आई. एल ओ सदस्य राज्यों से अपील की कि वे इस क्षेत्र में अभिसमयों और सिफारिशों का अनुसमर्थन करें और उन्हें लागू करें। इन निष्कर्षों ने महिलाओं के रोजगार को बढ़ावा देने और उन्हें समान रोजगार के अवसर प्रदान करने के उपायों का समर्थन किया, चाहे आर्थिक विकास की दर और रोजगार बाजार की परिस्थितियां कुछ भी हो ताकि वे अपने देश के आर्थिक और सामाजिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकें। इस सम्मेलन ने समान पारितोषिक के सिद्धान्त को पूरी तरह से लागू करने की आवश्यकता तथा यह सुनिश्चित करने का पुन समर्थन किया कि कार्य वर्गीकरण और मूल्यांकन के मानदण्ड के कोई लिंग सम्बन्धी भेदभाव न हो।

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल ने सम्मेलन और इसकी समितियों के विचार-विमर्श में कारगर रूप से भाग लिया। भारत के प्रधानमन्त्री ने मुख्य भाषण दिया जिसमें अनेक महत्त्वपूर्ण मसलों पर प्रकाश डाला गया और सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी वर्गों ने इसका जोरदार स्वागत किया।

(ख) शासी निकाय की बैठकें—शासी निकाय और उसकी समितियों के तीन अधिवेशन हुए अर्थात् फरवरी-मार्च में, मई-जून में और नवम्बर, 1985 में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व श्रम सचिव ने किया तथा श्रम मन्त्रालय और भारत के स्थायी दूतावास के अधिकारियों ने उन्हें सहयोग दिया। शासी निकाय द्वारा विचार-विमर्श किए गए महत्त्वपूर्ण मसले और लिए गए निर्णय, अन्य बातों के साथ-साथ, द्विवर्ष 1986-87 के लिए बजट और कार्यक्रम को पारित करने, औद्योगिक प्रतिष्ठानों में प्रमुख जोखिम नियन्त्रण और बेहतर सुरक्षा उपायों पर अधिक जोर देने की आवश्यकता तथा कुछ सदस्य देशों द्वारा संघ बनाने की स्वतन्त्रता से सम्बन्धित आई एल ओ मानदण्डों का पालन न करने से सम्बन्धित थे। शासी निकाय ने यह भी निर्णय लिया कि आई एल ओ. कार्यकलापों के प्रयोजन हेतु इजराइल को यूरोपीयन क्षेत्र का एक सदस्य समझा जाए। इसने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के 73वें अधिवेशन की कार्य सूची को अन्तिम रूप भी दिया। शासी निकाय ने भेदभाव सम्बन्धी, औद्योगिक कार्यकलाप समिति, आपरेशनल प्रोग्राम समिति द्वारा सूचित किया गया आई. एल. ओ. कार्यकलापों की पुनरीक्षा की तथा टैक्नोलोजी सम्बन्धी सलाहकार समिति की रिपोर्ट की भी जांच की।

(ग) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की औद्योगिक समितियों की बैठकें—वर्ष 1985 के दौरान, आई. एल. ओ. की निम्नलिखित औद्योगिक और सदृश समितियों की बैठकें हुई। विचार-विमर्श की गई मुख्य मदें रोजगार, प्रशिक्षण, कार्यदशाओं, पारिश्रमिक, विशेष वर्ग के श्रमिकों की विशिष्ट समस्याओं का समाधान करने के साधनों, स्रोतों का अधिकतम उपयोग, रोजगार अवसरों का सृजन, रोजगार में पुरुषों और महिलाओं के लिए समान व्यवहार, अधिक तकनीक सहयोग की आवश्यकता आदि जैसे विषयों से सम्बन्धित थी। इन बैठकों में भाग लेने के लिए भारत सरकार द्वारा भेजे गए प्रतिनिधि मण्डल ने समितियों के विचार-विमर्श में कारगर रूप से भाग लिया।

(घ) कामनवेल्थ रोजगार और श्रम मन्त्रियों की बैठक (जिनेवा, 6 जून, 1985)—कामनवेल्थ रोजगार और श्रम मन्त्रियों की चौथी बैठक 6 जून, 1985 को जेनेवा में हुई। मन्त्रियों ने कार्यसूची में कई विषयों पर विचार-विमर्श किया और अधिकांश विकासशील देशों में बेरोजगार पर चिन्ता व्यक्त की तथा उप-सहारा अफ्रीका में स्थिति विशेष रूप से गम्भीर थी। मन्त्रियों ने इस बात पर जोर दिया कि संरक्षणवाद रोजगार अवसरों के लिए एक गम्भीर खतरा है और व्यापार बाधाओं को, विशेषकर विकसित देशों में, कम करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। आर्थिक विकास को बढ़ावा देने हेतु तकनीकी परिवर्तन की भूमिका पर बल दिया गया और महिलाओं के लिए समान रोजगार अवसरों सम्बन्धी नीतियाँ बनाने और उन्हें लागू करने को स्वीकार किया गया। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अन्तर-विभागीय पद्धति बनाने और उसके विकास को स्वीकार किया गया। कामनवेल्थ औद्योगिक प्रशिक्षण और अनुभव कार्यक्रम (का. औ. प्र. अ. का.) के बारे में मन्त्रियों ने यह सिफारिश की कि का. औ. प्र. अ. का. को तकनीकी सहायता के लिए कामनवेल्थ निधि के अन्दर स्थापित किया जाए।

(ड) दसवाँ एशियन और प्रशान्त महासागर श्रम मन्त्री सम्मेलन (मैलबोर्न, अक्टूबर, 1985)—दसवाँ एशियन और प्रशान्त महासागर श्रम मन्त्री सम्मेलन 1-4 अक्टूबर, 1985 तक आस्ट्रेलिया में मेलबोर्न में आयोजित किया गया था। सम्मेलन की कार्यसूची में दो मदें थी—अर्थात् युवकों पर राष्ट्रीय श्रम नीतियों का प्रभाव तथा एशियन और प्रशान्त महासागर क्षेत्र में श्रम तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में तकनीकी सहयोग को प्रोत्साहन देना।

युवकों से सम्बन्धित प्रथम मद के बारे में सम्मेलन का मुख्य निष्कर्ष यह था कि युवकों के लिए रोजगार अवसरों का निर्धारण करने के लिए दृढ़ और सतत् आर्थिक विकास अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कारक है और सदस्य-देशों को दीर्घकालीन रोजगार में अधिक से अधिक वृद्धि करने के लिए उचित नीति शुरू करनी चाहिए। सम्मेलनों ने यह भी महसूस किया कि युवकों को रोजगार अवसरों को प्रभावित करने में जन-संख्या वृद्धि एक महत्त्वपूर्ण कारक है और इस दबाव को कम करने के लिए, भाग लेने वाले सदस्यों को उपयुक्त परिवार नियोजन कार्यक्रम लागू करने चाहिए। इस

सम्मेलन ने मानव संसाधन विकास के महत्त्व की ओर विशेष ध्यान दिया और व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर बल दिया जिनमें 'ग्रॉत एण्ड ग्रॉफ द जॉब ट्रेनिंग' शामिल है। इस सम्मेलन ने यह भी सिफारिश की कि स्वरोजगार और छोटे उपक्रमों की स्थापना को प्रोत्साहन दिया जाए।

तकनीकी सहयोग के सम्बन्ध में, इस सम्मेलन ने इस आवश्यकता पर बल दिया कि आई. एल. ओ. इस क्षेत्र के कार्यक्रमों के लिए आवंटित साधनों के अनुपात में वृद्धि करे और तकनीकी सहयोग सहायता को विकेन्द्रित करने हेतु और कदम उठाए। विभिन्न क्षेत्रीय कार्यक्रमों और परियोजनाओं तथा यू. एन. डी. पी. और यू. एन. एफ. पी. ए. जैसी सम्बन्धित बहुपक्षीय एजेंसियों के बीच भी अधिक समन्वय पर बल दिया गया। इस सम्मेलन ने इस क्षेत्र में श्रम तथा सम्बन्धित क्षेत्रों में तकनीकी सहयोग की प्राथमिकताओं पर विचार-विमर्श किया और युवकों की जरूरतों, व्यावसायिक स्वास्थ्य, सुरक्षा, कार्यदशाएँ और पर्यावरण, मानव संसाधन विकास सहित रोजगार पर बल दिया जिनमें राष्ट्रीय विकास में महिलाओं के योगदान और प्रशासन को सुदृढ करना भी शामिल है।

(ख) आई. एल. ओ. क्षेत्रीय सम्मेलन का दसवां अधिवेशन (जकार्ता, 4-13 दिसम्बर, 1985)—आई एल ओ क्षेत्रीय सम्मेलन का दसवां अधिवेशन जकार्ता में 4-13 दिसम्बर, 1985 तक हुआ था। भारत का प्रतिनिधित्व केन्द्रीय श्रममन्त्री की अध्यक्षता वाले त्रिपक्षीय शिष्टमण्डल ने किया था। अन्तर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय निकायों ने पर्यवेक्षकों के अतिरिक्त 30 देशों की सरकारों, नियोजकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानदण्डों के अतिरिक्त, अपंग व्यक्तियों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण और व्यावसायिक पुनर्वास पर विचार-विमर्श किया। इस सम्मेलन ने व्यावसायिक प्रशिक्षण को 'सभी के लिए मूलभूत आवश्यकता' और क्षेत्र के लोगों के 'जीवन-स्तर का सुधार' करने हेतु अवसरों का पता लगाने की 'कुंजी' बताया। उन्नति तथा कल्याण में सच्चा योगदान करने के लिए इसे अधिकांश व्यक्तियों, यदि समस्त जनसख्या तक नहीं, के पास पहुँचना होगा तथा इसे कार्य आवश्यकताओं और विकास सम्भावना के अनुरूप होना होगा। विकलांग व्यक्तियों के उत्पादक रोजगार में एकीकरण को बढ़ावा देने के उपायों को अपनाते हुए, इस सम्मेलन ने अपंगता को 'सामाजिक, आर्थिक और मानवीय समस्या' बताया। इस सम्मेलन ने प्रतिबन्धित व्यापार पद्धतियों का मुकाबला करने, उत्पादकता में सुधार करने, प्रमुख औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोकने और ट्रेड यूनियन अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए उपाय करने का अनुरोध किया।

(ग) अन्तर्राष्ट्रीय समाज सुरक्षा एसोसिएशन (आई. एस. एस. ए.) की बैठक—भारत सरकार और कर्मचारी राज्य बीमा निगम, अन्तर्राष्ट्रीय समाज सुरक्षा एसोसिएशन, जेनेवा के सम्बद्ध सदस्य हैं जबकि कर्मचारी भविष्य निधि संगठन एक सह-सदस्य है। वर्ष 1985 के दौरान, विभिन्न बैठकों/सम्मेलनों/विचारगोष्ठियों में भाग लेने के लिए उनमे शिष्टमण्डल विदेश भेजे गए।

भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानको के कार्यान्वयन को बढावा देने के लिए त्रिपक्षीय सलाह मशविरे से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन अभिसमय सख्या 144 का 27 फरवरी, 1979 को अनुसमर्थन किया था। इस अभिसमय का अनुसमर्थन करने वाले देश उन प्रक्रियाओ को लागू करने के लिए वचनबद्ध है, जिनसे यह सुनिश्चित हो कि सरकार, नियोजको और श्रमिकों के प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यकलापो से सम्बन्धित मामलो पर आपस मे प्रभावी सलाह मशविरा करें। ये मामले इस प्रकार है—

(क) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन की कार्यसूची की मदों से सम्बन्धित प्रश्नावलियो के सम्बन्ध मे सरकार के उत्तर और सम्मेलन द्वारा विचार-विमर्श किए जाने वाले प्रस्तावित मूलपाठो पर सरकार की टिप्पणियाँ;

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के संविधान की धारा 19 के अनुसरण मे अभिसमयो और सिफारिशो की प्रस्तुति के सम्बन्ध मे सक्षम प्राधिकारी या प्राधिकारियो को प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्ताव;

(ग) समुचित अन्तरालो मे ऐसे अभिसमयो और ऐसी सिफारिशो की पुन जांच जिन्हे अभी लागू नही किया गया ताकि यह विचार किया जा सके कि उन्हे लागू करने और उनका अनुसमर्थन कर सकने के लिए (इनमे से जो भी उचित हो) क्या उपाय किए जा सकते हैं;

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सविधान की धारा 22 के अधीन अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को प्रस्तुत की जाने वाली रिपोर्टों से पैदा हुए प्रश्न; और

(ङ) अनुसमर्थित अभिसमयो के प्रत्याख्यान सम्बन्धी प्रस्ताव।

अभिसमयो मे यह अपेक्षा की गई है कि करारों द्वारा तय किए गए समुचित अन्तरालो मे परन्तु कम से कम वर्ष मे एक बार सलाह-मशविरा किया जाएगा। सक्षम प्राधिकारी के लिए यह भी जरूरी है कि वह सलाह-मशविरे से सम्बन्धित प्रक्रियाओ के कार्यकरण के बारे मे वार्षिक रिपोर्ट दे। यह रिपोर्ट अलग से जारी की जा सकती है या यह और अधिक औपचारिक सामान्य रिपोर्ट—उदाहरणार्थ श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट के एक अध्याय के रूप में भी हो सकती है।

राष्ट्रीय सम्मेलन

(क) राज्य श्रम मन्त्रियो का 35वां सम्मेलन—राज्य श्रम मन्त्रियों का 35वां सम्मेलन 11 मई, 1985 को नई दिल्ली मे केन्द्रीय राज्य श्रम मन्त्री की अध्यक्षता मे हुआ। सम्मेलन मे देश के वर्तमान औद्योगिक सम्बन्धो की स्थिति का सामान्य जायजा लिया गया और निम्नलिखित मुख्य सुझाव दिए गए—

1. तालाबन्दी के कारणो की औद्योगिक सम्बन्ध-तन्त्र द्वारा जांच की जानी चाहिए और ऐसी जांच के परिणामो का सकलन करने पर स्थिति का सही आंकलन करना चाहिए।

2. इस बात की जांच की जानी चाहिए कि क्या तालाबन्दी की परिभाषा

विस्तृत की जाए ताकि संक्रिया या व्यापार को अस्थाई तौर पर बन्द कर तालाबन्दी करने की परिपाटी से निपटा जाए ।

3. कामबन्दी, जबरी छुट्टी और छँटनी से सम्बन्धित मामलों में औद्योगिक विवाद अधिनियम के उपबन्धों को लागू करने के बारे में स्थगन आदेशों के विरुद्ध अपील करने के लिए उचित प्रशासनिक कदम उठाए जाने चाहिएँ ।

4. श्रम मामलों में न्याय-निर्णयन शीघ्र निपटाने के लिए उच्च अधिकार प्राप्त अधिकरणों की स्थापना की जानी चाहिए । स्वैच्छिक मध्यस्थता को प्रोत्साहन देने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए ।

5. औद्योगिक सम्बन्धों की स्थिति को मानीटर करने के लिए व्यवस्था को सुदृढ़ करना चाहिए ।

6. श्रमिकों की देय राशियों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए और इसके लिए सम्बन्धित अधिनियमों में उपयुक्त संशोधन किए जाएँ ।

7. श्रमिकों की देय राशियों की अदायगी सुनिश्चित करने के लिए समुचित बीमा योजना के ब्यौरे तैयार किए जाएँ ।

8. कम्पनी/यूनिटों के लेखों की वार्षिक लेखा-परीक्षा करते समय इस आशय का प्रमाणपत्र लेने की पद्धति की वार्धक्य/सेवानिवृत्ति की वचनबद्धता जैसे उपादान आदि के लिए अपेक्षित फण्ड्स विद्यमान हैं ।

9. मजदूरी/बोनस/उपदान, कर्मचारी राज्य बीमा निगम और केन्द्रीय भविष्य निधि की अदायगी से सम्बन्धित कानूनों को प्रभावी रूप से लागू किया जाना चाहिए ।

10. उपदान सदाय अधिनियम, 1972 के अन्तर्गत आने के लिए विद्यमान 1600 रुपये प्रतिमाह की अधिकतम सीमा को समाप्त किया जाए और इस अधिनियम के उपबन्धों को 10 से कम व्यक्तियों को नियोजित करने वाले प्रतिष्ठानों पर लागू करने के लिए समुचित सरकारों को शक्तियाँ प्रदान की जाए ।

11. अधिनियम के सीमादेय का विस्तार किया जाए ताकि काफी संख्या में महिला श्रमिकों को नियोजित करने वाले प्रतिष्ठानों को उसके अन्तर्गत लाया जा सके और इसके विस्तार को अधिक बढ़ाने के लिए त्रिपक्षीय विचार-विमर्श किया जाना चाहिए ।

12. कर्मचारी राज्य बीमा निगम को बाल श्रमिकों के स्वास्थ्य की देख-रेख के लिए कार्यक्रम शुरू करना चाहिए ।

13 राज्य सरकारों को शिथिल करने वाले प्रमाणन को कम करने की पूरी जिम्मेदारी लेनी चाहिए ।

14. उन प्रतिष्ठानों के खिलाफ दाण्डिक कार्रवाई चलानी चाहिए जिन्होंने श्रमिकों से निधियों की वसूली तो की है मगर उसे जमा नहीं कराया है और रुग्ण हो गए या बन्द कर दिए या समापनाधीन हैं ।

15. दाण्डिक अभियोजन चलाने के अलावा, देय राशियों की वसूली करने के लिए यथासम्भव शीघ्र कार्रवाई की जानी चाहिए।

16. दुर्घटनाओं और बीमारियों को रोकने के हित में, मुख्य कारखाना निरीक्षक को जोखिमपूर्ण उद्योग में कार्यकलाप बन्द करने के आदेश जारी करने की शक्तियाँ प्रदत्त की जानी चाहिएँ। जोखिमपूर्ण उद्योगों में सुरक्षा विनियमों का लगातार उल्लंघन करने पर अनिवार्यतः सजा दी जाए।

17. राज्य सरकार खतरनाक उत्पादन प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में मॉडल नियमों और अनुसूचियों में निर्धारित नियन्त्रण उपायों को राज्य कारखाना नियमों में शामिल कर इन सभी उपायों को अपनाएँगी।

18 राज्य/संघ-राज्य क्षेत्र सुरक्षा अधिकारियों की नियुक्ति के बारे में अपने नियमों की समीक्षा करेंगे, और यह सुनिश्चित करेंगे कि इनमें सुरक्षा अधिकारियों की अपेक्षित अर्हताएँ, कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व निर्धारित किए गए हैं।

19 टास्क और फोर्सों की रिपोर्ट के आधार पर, राज्य सरकारें जोखिमपूर्ण उद्योगों की एक सूची बनाएँगी और ब्यौरे कारखाना सलाह सेवा और श्रम विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय को भेजेंगी, जो ऐसे जोखिमपूर्ण उद्योगों की एक सामान्य सूची बनाएँगे ताकि अखिल भारतीय आधार पर आम हित के अध्ययन और सर्वेक्षण करने के लिए भविष्य की कार्रवाई योजना बनाई जा सके।

20. जोखिमपूर्ण रासायनिक उद्योगों में पर्यावरण की मानीटरिंग करने के लिए आवश्यक जन-शक्ति, उपकरणों और सुविधाओं सहित औद्योगिक स्वास्थ्य प्रयोगशालाओं को राज्यों में स्थापित करने और उन्हें सुदृढ़ करने के लिए केन्द्र द्वारा संचालित एक योजना बनाई जाए जिसमें 50% अंशदान राज्य सरकारें और 50% अंशदान केन्द्र सरकार करेगी।

21. विभिन्न क्षेत्रों से चुने हुए विशेषज्ञों की एक स्थायी समिति राज्य स्तर पर गठित की जाएगी जिसका संयोजक मुख्य कारखाना निरीक्षक होगा। यह समिति समय-समय पर जोखिमपूर्ण उद्योगों की सुरक्षा दशाओं की जाँच करेगी और राज्य स्तर पर एक त्रिपक्षीय समिति को उनके बारे में उपचारी उपायों की रिपोर्ट देगी।

22 श्रम मन्त्री की अध्यक्षता में एक उच्च अधिकार प्राप्त त्रिपक्षीय सुरक्षा समिति राज्य स्तर पर होगी। यह समिति राज्य भर के कारखानों में समग्र सुरक्षा और स्वास्थ्य के बारे में नीति विषयक मामलों का निर्धारण करेगी।

23. देश में व्यावसायिक स्वास्थ्य सेवाओं का एक काडर बनाया जाएगा ताकि निम्नलिखित उपाय किए जा सकें—

(क) कारखाना सलाह सेवा और श्रम विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय द्वारा

प्रशिक्षण और विकास के लिए समुचित कार्यक्रम बनाए जाएंगे और उन्हें लागू किया जाएगा जिसमें वह एन. आई. ओ एच. आई. आर. टी. सी. और राज्य सरकारों के कारखाना निरीक्षणालयों का सहयोग प्राप्त करेगा।

(ख) कर्मचारी राज्य बीमा निगम प्रत्येक राज्य में व्यावसायिक स्वास्थ्य नैदानिक केन्द्र स्थापित करेगा और ये केन्द्र कारखाना सलाह सेवा और श्रम विज्ञान केन्द्र के व्यावसायिक स्वास्थ्य क्लीनिकों, जिनकी सातवीं पचवर्षीय योजना में परिकल्पना की गई है, के पूर्ण सहयोग से काम करेंगे।

24. बन्धुआ श्रमिकों के पुनर्वास कार्यक्रम को विद्यमान समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के साथ समन्वित किया जाना चाहिए।

25. समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अधीन उपलब्ध अनुदान, बन्धुआ श्रमिकों के पुनर्वास हेतु मिलने वाले अनुदान के अतिरिक्त होगा।

26. बन्धुआ मजदूरों के पुनर्वास के लिए अनुदान को बैंकों से ऋण लेने के लिए मूल धन के रूप में प्रयोग किया जाना चाहिए तथापि यह स्वीकृत परियोजना लागत की सीमाओं के भीतर होना चाहिए।

27 केन्द्रीय सैक्टर योजना के अधीन 4000 रुपये की सीमा काफी साल पहले निर्धारित की गई थी और इस सीमा को बढ़ाए जाने की आवश्यकता है।

28 4000 रुपये के अनुज्ञेय अनुदान के अलावा पता लगाने के समय और कार्यक्रम शुरू होने के समय के बीच की अवधि के लिए अतिरिक्त अनुदान की व्यवस्था की जाए।

29. बन्धुआ श्रमिकों के पुनर्वास के लिए अनुदान का उपयोग प्रमाण-पत्रों की शत-प्रतिशत प्राप्ति पर और न देते हुए रिलीज किया जाना चाहिए। यदि प्राप्त होने वाले उपयोग प्रमाण-पत्रों का 75 प्रतिशत भी प्राप्त हो जाए तो अनुदान रिलीज करने के प्रयोजनार्थ उपयोग प्रमाण पत्रों की अप्राप्ति को टाला जा सकता है।

30 जहां कहीं सम्भव हो, वहां स्वैच्छिक एजेन्सियों की सक्षमता और इच्छा का उपयोग किया जाए ताकि ग्रामीण समाज में मूलभूत परिवर्तन किए जा सकें। इन स्वैच्छिक एजेन्सियों में कामकाज को ग्रामीण संगठनों की विद्यमान योजनाओं के साथ सम्बद्ध किया जा सकता है।

31. जब कभी सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम या सरकार प्रधान नियोजक हो तो ठेके में यह उपबन्ध किया जाना चाहिए कि ठेकेदार अपने ठेके श्रमिकों को कम से कम निर्धारित न्यूनतम मजदूरी की अदायगी करेगा। ठेकेदार के सभी बिल

भुगतान के लिए केवल तभी पास किए जाएँ जब प्रधान नियोजक यह प्रमाणित कर दे कि निर्धारित न्यूनतम मजदूरी अदा की गई है।

32. बीडी श्रमिकों के लिए आवास योजनाओं को आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए राज्य सरकारों द्वारा चलाई जा रही विद्यमान आवास योजनाओं के साथ सम्बद्ध किया जाना चाहिए।

33 एक राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना शुरू की जाएगी ताकि जिन क्षेत्रों मे बाल श्रमिक संकेन्द्रित हैं उनमें प्रभावी ढग से हस्तक्षेप किया जा सके।

34. जब दो या अधिक राज्यों मे विद्यमान किसी अनुसूचित रोजगार में मजदूरी मे व्यापक असमानता हो, तो वहाँ सभी सम्बन्धित पक्षों द्वारा इस असमानता को कम करने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए।

35. स्व-नियोजन को बढावा देने के लिए रोजगार कार्यालयों को सुदृढ करने के लिए केन्द्रीय योजना को, जो इस समय प्रायोगिक आधार पर 30 जिलो में चलाई जा रही है, यथासम्भव सारे देश में लागू किया जाना चाहिए।

36. सम्मेलन इस पक्ष मे था कि रोजगार कार्यालयो के काम मे क्रमबद्ध तरीके से कम्प्यूटर लगाया जाए ताकि रजिस्टर हुए व्यक्तियो और नियोजको को तत्पर, उद्देश्ययुक्त और प्रभावी सेवा उपलब्ध कराई जा सके।

37 प्रत्येक राज्य में कम से कम मॉडल रोजगार कार्यालय स्थापित किया जाना चाहिए। ऐसे कार्यालय मे समुचित स्टॉफ, उचित भवन, आगन्तुको और रजिस्ट्रेशन के लिए आने वाले व्यक्तियो आदि के लिए उचित सुविधाएँ हों।

38. केवल महिलाओं के लिए नए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान खोले जाने की अत्यन्त आवश्यकता है जिससे विद्यमान औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों से कोर्सों को स्थानान्तरित किया जाए ताकि महिलाओं के लिए रोजगार के अवसरों मे सुधार किया जा सके।

39 निम्नलिखित मामलों की जाँच करने के लिए श्रम मन्त्रियों का एक दल गठित किया जाना चाहिए। महाराष्ट्र सरकार के श्रम मन्त्री इस दल के संयोजक होंगे—

1. औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना होने से ही पृथक् निर्दिष्ट निधि का सृजन जिसका श्रमिकों की देय राशियो की अदायगी के लिए जहाँ कही आवश्यक हो, प्रयोग किया जा सके।
2. गैर-सरकारी क्षेत्र में प्रबन्ध मे श्रमिक सहभागिता और सौविधिक उपबन्धों का प्रश्न।
3. उपदान बीमा स्कीम।
4 राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी।
5. महिला श्रमिकों से सम्बन्धित श्रम कानूनों की समीक्षा।
6. कोई अन्य मद जिसे केन्द्रीय श्रम मन्त्री समिति के विचारार्थ निर्दिष्ट करें।

श्रम मन्त्रियों के ग्रुप ने 27-7-1985 और 23-9-1985 को अपनी बैठकें की।

(ख) भारतीय श्रम सम्मेलन—भारतीय श्रम सम्मेलन का 28वाँ सत्र नई दिल्ली मे श्रम मन्त्री की अध्यक्षता मे 25-26 नवम्बर, 1985 को हुआ था। केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संगठनो यानी इन्टक, हिन्द मजदूर सभा, भारतीय मजदूर सभा, यू. टी. यू. सी. (एल. एस.), टी. यू. सी. सी., एटक, एन. एल. ग्रो, सीटू और यू. टी. यू. सी. के प्रतिनिधियो और नियोजको, सगठनो, जिनमे एम्प्लायर्स फैडरेशन ऑफ इण्डिया, ऑल इण्डिया आर्गनाइजेशन ऑफ एम्प्लायर्स और ऑल इण्डिया मैन्यूफैक्चरर्स आते थे, के प्रतिनिधियो ने सम्मेलन मे भाग लिया। सम्मेलन मे 28 राज्यो/संघ-राज्य क्षेत्रो और 18 केन्द्रीय मन्त्रालयो के प्रतिनिधियो ने भी भाग लिया। 21 राज्यो/सघ-राज्य क्षेत्रों के श्रम मन्त्रियो ने अपने राज्य/सघ-राज्य क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया।

सम्मेलन की कार्यसूची मे ये मदें थी, अर्थात् (1) औद्योगिक सम्बन्ध स्थिति की समीक्षा, (2) उद्योग मे रुग्णता, (3) प्रबन्ध में श्रमिक सहभागिता और सांविधिक व्यवस्था करने का प्रश्न, (4) सुरक्षा और स्वास्थ्य, (5) उपदान, बीमा योजना, (6) न्यूनतम मजदूरी, (7) व्यापक बाल श्रम विधेयक, (8) कल्याण निधियाँ, (9) कर्मचारी राज्य बीमा निगम और कर्मचारी भविष्य निधि पर टिप्पणियाँ, और (10) भारतीय श्रम सम्मेलन मे श्रमिक सगठनों को प्रतिनिधित्व देने का मानदण्ड।

प्रधान मन्त्री ने सम्मेलन मे भाग लेने वालो को 25-11-1985 को सम्बोधित किया। उन्होने श्रम की उत्पादकता बढ़ाने और कार्य-आधार का विकास करने और उद्योग मे प्रबन्धको एव श्रमिको, दोनो की ओर से कार्य-संस्कृति और अनुशासन बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया। श्रमिको के लिए सुरक्षा और व्यावसायिक स्वास्थ्य की समस्या का उल्लेख करते हुए, उन्होने प्रबन्धकों से कहा कि वे ऐसे समुचित उपायो को विकसित करें जो हमारी स्थितियो के अनुकूल हो और जिन्हें श्रमिको के पूरे सहयोग और कार्यशीलता से बनाया जाए। इसके अलावा, हमें कौशल-विकास एव प्रशिक्षण की आवश्यकताओ पर भी ध्यान देना है जिससे कर्मचारी की क्षमता के स्तर मे वृद्धि हो। उन्होने बाल श्रम की समस्या का समाधान करने के लिए व्यावहारिक जोर देने की आवश्यकता पर जोर दिया। प्रधान मन्त्री जी ने इस बात पर भी जोर दिया कि असगठित श्रमिकों की दशाओ पर अधिक ध्यान दिया जाए।

विस्तृत विचार-विमर्श के बाद, निम्नलिखित विषयों के बारे मे मतैक्य हुआ—

1. सम्मेलन मे निर्णय लिया गया कि स्थाई श्रम समिति को पुनः चालू किया जाए और इसकी बैठक छ. माह में एक बार होनी चाहिए। यह

समिति संक्षिप्त होनी चाहिए और इसका गठन केन्द्रीय श्रम मन्त्री पर छोड़ दिया जाए।

2. सम्मेलन ने केन्द्रीय वित्त मन्त्री के इस सुझाव का स्वागत किया कि श्रम मन्त्रालय को एक छोटा सा दल गठित करना चाहिए जो सरकार को इस बात को देखने मे मदद करेगा कि सातवी पंचवर्षीय योजना के दौरान सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमो से 35,000 करोड रुपये राशि के बराबर के आन्तरिक स्रोतो को जुटाया जा सके। सम्मेलन मे महसूस किया गया कि वित्त मन्त्रालय से परामर्श कर एक त्रिपक्षीय दल गठित किया जाए।

3 सम्मेलन ने औद्योगिक सम्बन्ध स्थिति में हुए सामान्य सुधार को नोट किया। इसमे महसूस किया गया कि जहाँ तक सम्भव हो सके, विवादों को द्विपक्षीय तन्त्र के माध्यम से निपटाया जाना चाहिए। जहाँ यह सम्भव न हो, वहाँ त्रिपक्षीय तन्त्र का सहारा लिया जा सकता है या विवाद को स्वैच्छिक माध्यस्थम के लिए निर्देशित किया जा सकता है। न्याय निर्णयन की अपेक्षा स्वैच्छिक माध्यस्थम को वरीयता दी जानी चाहिए।

4. सम्मेलन ने श्रम मन्त्रालय द्वारा श्रमिको के विवादों को निपटाने मे किए जाने वाले दीर्घ विलम्बो के बारे मे चिन्ता व्यक्त की। सम्मेलन ने सरकार से यह भी आग्रह किया कि वह औद्योगिक सम्बन्ध आयोग स्थापित करने के बारे मे सनत मेहता समिति की सिफारिशो पर अपने विचारो को अन्तिम रूप दे।

5. औद्योगिक यूनिटो मे बढती हुई रुग्णता पर चिन्ता व्यक्त की गई और यह महसूस किया गया कि रुग्णता के कारणो की जांच करने के लिए तुरन्त निवारक कदम उठाने चाहिए और इसे रोकने के लिए प्रभावी उपचारी कार्रवाई शुरू की जानी चाहिए। रुग्ण यूनिटो के शीघ्र पुनर्वास और उन्हे फिर से चलाने के कार्यक्रमों पर जोर दिया जाना चाहिए। उद्योगो मे रुग्णता की समस्या को मानीटर करने के लिए बन्द पडे यूनिटो के हरेक मामले तथा सम्भाव्यतः रुग्ण होने वाले यूनिटो की स्थिति का गहन अध्ययन करने के लिए एक स्थायी समिति गठित की जानी चाहिए। सम्मेलन ने संसद् मे पहले ही पेश किए गए रुग्ण औद्योगिक कम्पनियाँ (विशेष उपबन्ध) विधेयक, 1985 का सामान्यतः स्वागत किया। तथापि यह सुझाव दिया कि सरकार को रुग्ण औद्योगिक यूनिटो को एवं सम्भाव्यता रुग्ण होने वाले यूनिटो को बन्द होने से रोकने के लिए उनको भी इसके सीमा क्षेत्र मे लाने के लिए उक्त विधेयक में संशोधन करने पर विचार करना चाहिए। सम्मेलन में यह भी महसूस किया गया कि कर्मकारो को बोर्ड मे श्रमिकों के पक्षकारों को पूर्णतः प्रतिनिधित्व दिया जाए और इसमे राज्य सरकारों को भी प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।

6 सम्मेलन में सार्वजनिक/गैर-सरकारी एवं सहकारी क्षेत्रो के प्रबन्ध मे बोर्ड स्तर समेत विभिन्न स्तरो मे श्रमिको की सहभागिता सम्बन्धी योजना को लागू

करने को सिद्धांतिक रूप से स्वीकार किया गया। इस योजना को स्वैच्छिक रूप से अपनाने या इसे विधान बना कर अपनाने और इसे लागू करने के तरीकों सम्बन्धी प्रश्न को स्थायी श्रम समिति पर ही विचार करने के लिए छोड़ दिया गया। उक्त समिति कार्यसूची के कागजातो मे यथा प्रस्तावित ढांचे और रूपरेखाओ पर भी विचार कर सकती है।

7. सम्मेलन मे महसूस किया गया कि श्रमिको की सुरक्षा और स्वास्थ्य के लिए विद्यमान उपायो को बढाया जाना चाहिए, उन्हे प्रभावी ढग से लागू किया जाना चाहिए और उन पर निगरानी रखनी चाहिए। यह भी महसूस किया गया कि इन उपायों को नियोजको और श्रमिको के सक्रिय सहयोग के बिना लागू नही किया जा सकता और श्रमिको को सुरक्षा उपकरण मे पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

सम्मेलन ने यह भी नोट किया कि श्रम मन्त्रालय कारखाना अधिनियम मे संशोधन करने के प्रस्तावो पर विचार कर रहा है और यह इच्छा व्यक्त की कि प्रस्तावित सुझावो पर शीघ्र कार्रवाई की जाए। यह भी महसूस किया गया कि कारखाना अधिनियम मे सुरक्षा और स्वास्थ्य से सम्बन्धित उपबन्धो का बार-बार उल्लघन करने के लिए अधिक कठोर दण्ड होना चाहिए।

8 श्रम मन्त्रालय द्वारा यथा प्रस्तावित उपदान बीमा योजना के बारे में मतैक्य था। तथापि यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रबन्ध तन्त्र द्वारा बीमा किस्त की अदायगी न करने की दशा मे श्रमिको के उपदान की अदायगी करने पर प्रतिकूल प्रभाव नही पड़ना चाहिए।

9. सम्मेलन ने राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी की आवश्यकता पर चर्चा की। जब तक यह व्यवहार्य न हो, क्षेत्रीय न्यूनतम मजदूरी नियत करना वांछनीय होगा जिसके बारे मे केन्द्रीय सरकार दिशा-निर्देश निर्धारित करे। न्यूनतम मजदूरी मे नियमित अन्तरालो में संशोधन किया जाना चाहिए और इन्हें जीवन-निर्वाह लागत मे होने वाली वृद्धि से सम्बद्ध करना चाहिए।

10. सम्मेलन मे बाल श्रमिको सम्बन्धी व्यापक विधान बनाने के प्रस्ताव का समर्थन किया गया। तथापि यह राय व्यक्त की गई कि यह समस्या सामाजिक-आर्थिक मजबूरी से उत्पन्न होती है और इसे केवल विधान बनाकर नहीं सुलझाया जा सकता। यह महसूस किया गया कि इस समस्या को प्रभावी ढग से निपटाने का एक तरीका उन परिवारो की आर्थिक दशाओं मे सुधार करना है जिन्हें परिस्थितियो से मजबूर होकर अपने बच्चो को काम पर भेजना पडता है। सम्मेलन में व्यक्त की गई चिन्ता को ध्यान मे रखते हुए, यह महसूस किया गया कि उन उद्योगों के बारे मे, जहाँ बाल श्रमिक अधिक हैं, केन्द्रीय और राज्य स्तरो पर औद्योगिक त्रिपक्षीय समितियाँ गठित की जाएँ। ये समितियाँ न केवल नीतियाँ निर्धारित करें बल्कि इस सम्बन्ध मे शुरु की गई योजनाओ/कार्यक्रमों को भी मानीटर करें।

11 सम्मेलन में यह महसूस किया गया कि असगठित क्षेत्र मे कार्य की दशाओं मे सुधार करने के लिए तत्काल कदम उठाए जाने और कल्याण निधि के लाभो को इस क्षेत्र के कर्मकारो तक पहुँचाने की आवश्यकता है। इस उद्देश्य के लिए यदि आवश्यक हो तो और कल्याण निधियाँ बनाई जानी चाहिए। कल्याण निधि के लाभो का कर्मकार पर्याप्त रूप से लाभ उठा सकें, इसलिए निधियों से सहायता की पात्रता के लिए आय की सीमा को बढ़ाया जाना चाहिए।

12. सम्मेलन में यह विचार व्यक्त किया गया कि कर्मचारी राज्य बीमा योजना के सीमा क्षेत्र के विस्तार की उन मामलो मे अनुमति दी जाए जहाँ पर्याप्त वैकल्पिक व्यवस्थाएँ उपलब्ध हैं और इस सम्बन्ध मे नियोजको और कर्मचारियो द्वारा माँग की गई थी। तथापि सम्भावित वित्तीय सगठनात्मक और अन्य कठिनाइयों को देखते हुए सम्मेलन में यह महसूस किया गया कि इस विषय को निगम की स्थाई समिति के विचारार्थ भेज दिया जाए।

जहाँ तक कर्मचारी भविष्य निधि का सम्बन्ध है, यह सामान्य राय थी कि अशदान को आठ प्रतिशत से बढ़ाकर दस प्रतिशत कर दिया जाए तथापि अधिकांश नियोजको ने इस विषय पर असहमति व्यक्त की।

सम्मेलन मे यह महसूस किया गया कि भारतीय श्रम सम्मेलन के कर्मकारों के प्रतिनिधियो के मानदण्ड के प्रश्न पर सेण्ट्रल ट्रेड यूनियन आर्गनाइजेशनों द्वारा विचार-विमर्श तथा निर्णय लिया जाना चाहिए और उनमें किसी मतभेद के मामले मे सरकार उस विषय पर निर्णय ले सकती है।

(ग) त्रिपक्षीय औद्योगिक समितियाँ—इस वर्ष के दौरान रसायन उद्योग, इञ्जीनियरी उद्योग, सूती कपड़ा उद्योग, जूट उद्योग, बागान उद्योग, सडक परिवहन उद्योग, चर्म-शोधनशालाओ और चर्म-वस्तु निर्माण उद्योग, सीमेंट उद्योग और भवन और निर्माण उद्योग सम्बन्धी त्रिपक्षीय औद्योगिक समितियो को पुनर्गठित किया गया ताकि त्रिपक्षीय परामर्शी तन्त्र को सुदृढ किया जा सके। रसायन उद्योग, इंजीनियरी उद्योग, बागान उद्योग, सडक परिवहन उद्योग और चर्म-शोधनशालाओं एव चर्म वस्तु विनिर्माण उद्योग और जूट उद्योग सम्बन्धी औद्योगिक समितियों की इस वर्ष के दौरान बैठकें हुईं। इन बैठकों मे औद्योगिक सम्बन्ध स्थिति, सुरक्षा और व्यावसायिक स्वास्थ्य, प्रबन्ध मे श्रमिक सहभागिता और समाज सुरक्षा योजनाओं आदि से सम्बन्धित मुद्दो पर चर्चा हुई।

रोजगार
(Employment)

प्रत्येक देश मे काम करने योग्य व्यक्तियों को काम मिलना आवश्यक है। यदि किसी देश के निवासियों को रोजगार नहीं मिलता है तो वह देश समृद्ध व सुखी नहीं हो सकता है। "रोजगार के अधिक अवसर होने पर लोगो को अपनी समृद्धि और वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन मे वृद्धि करने में सुविधा रहती है और

परिणामस्वरूप राष्ट्रीय कल्याण में वृद्धि होती है।"[1] हमारी समस्त आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करके सन्तोष प्राप्त करना है। बेरोजगारी तथा अर्द्ध-बेरोजगारी आर्थिक दुर्दशा एवं गरीबी की प्रधानता का सूचक होती है।

पूर्ण रोजगार वह स्थिति है जिसमें बेकारी को समाप्त कर दिया जाता है। इसके अन्तर्गत—

1. श्रम की प्रभावपूर्ण माँग इसकी पूर्ति से अधिक होती है।

2. श्रम की माँग का उचित निर्देशन होता है।

3. श्रम और उद्योग दोनों संगठित होने के कारण माँग और पूर्ति में समायोजन होता रहता है। पूर्ण रोजगार के साथ-साथ बेरोजगारी भी पाई जाती है जिसे घर्षणात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment) कहा जाता है। पूर्ण रोजगार की स्थिति में वर्तमान मजदूरी दरों पर कार्य करने वालों को रोजगार मिल जाता है। पूर्ण रोजगार में दो बातें सम्मिलित की जाती हैं।[2] —

1. बेरोजगार व्यक्तियों की तुलना में अधिक जगह खाली होती है।

2. मजदूरी उचित होती है जिस पर सब कार्य करने को तैयार होते हैं।

पूर्ण रोजगार की शर्तें

एक स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था में पूर्ण रोजगार प्राप्त करने हेतु निम्नांकित शर्तें होना आवश्यक है—

1. समुचित कुल व्यय बनाए रखना—यदि कुल व्यय अधिक होगा तो इससे विभिन्न उत्पादन के साधनों को रोजगार मिलेगा, आय प्राप्त होगी, व्यय करेंगे और इसके परिणामस्वरूप उद्योग के उत्पादन की माँग बढ़ेगी। यह कार्य निजी उद्यमियों द्वारा नहीं किया जा सकता। वर्तमान समय में प्रत्येक सरकार का यह दायित्व हो गया है कि मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग करने हेतु सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करे। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि घाटे के बजट (Deficit Budget) द्वारा की जा सकती है और अधिक रोजगार के अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं।

2. उद्योगों के स्थानीयकरण पर नियन्त्रण द्वारा भी पूर्ण रोजगार प्राप्त किया जा सकता है। जब उद्योगों का स्थानीयकरण होगा तो इससे हमें आसानी से पता चल जाएगा कि किन उद्योगों में श्रम की कितनी-कितनी माँग है। इसके लिए वांछनीय स्थानीयकरण को प्रोत्साहन देना होगा।

3. नियन्त्रित श्रम की गतिशीलता (Controlled Mobility of Labour)—यह तभी सम्भव हो सकता है जब श्रम बाजार संगठित हो। यदि श्रम बाजार

1 *Saxena, R. C.* · Labour Problems and Social Welfare, p. 899.
2 *Das Naba Gopal :* Unemployment, Full Employment and India, p. 10.

संगठित नहीं होगा तो श्रमिकों को न तो पूर्ण रोजगार ही मिल सकेगा और न उचित मजदूरी ही। भारत जैसे विकासशील देश में श्रमिक अशिक्षित, अज्ञानी एवं रूढ़िवादी होने के साथ-साथ असंगठित भी होते हैं। इसलिए उनमें गतिशीलता का अभाव पाया जाता है, उनकी सौदाकारी शक्ति दुर्बल होती है और फलस्वरूप नियोक्ताओं द्वारा कम मजदूरी देकर उनका शोषण किया जाता है।

पश्चिमी देशों में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के साथ-साथ पूर्ण रोजगार की स्थिति भी विद्यमान है लेकिन बेरोजगारी, अर्द्ध-रोजगार और निर्धनता के कारण सरकार सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ शुरू करने में असमर्थ होती है। भारत जैसे विकासशील देश में इन बुराइयों को दूर करने में सरकार असफल रही है क्योंकि वित्तीय समस्या सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या है।[1]

अविकसित देशों में हमें बेरोजगारी तथा अर्द्ध-बेरोजगारी देखने को मिलती है। भारत जैसे विकासशील देश में कई पंचवर्षीय योजनाओं के समाप्त होने के बावजूद बेरोजगारी ज्यों की त्यों बनी हुई है। प्रो नर्कसे के अनुसार, अर्द्ध-विकसित देश कृषि प्रधान है और वहाँ पर कृषि उद्योग में 15 से 20% छिपी हुई बेरोजगारी (Disguised Unemployment) देखने को मिलती है।

"बेरोजगारी वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत एक देश में कार्य करने योग्य व्यक्तियों की कार्य करने की इच्छा होती है, लेकिन उन्हें कार्य वर्तमान मजदूरी दरों पर नहीं मिलता है।"[2]

बेरोजगारी के प्रकार

रोजगार के सम्बन्ध में समय-समय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार बेरोजगारी श्रम की माँग और पूर्ति में असन्तुलन उत्पन्न होने से होती है। जब श्रम की पूर्ति इसकी माँग से अधिक होती है तब बेरोजगारी होती है तथा इसके विपरीत पूर्ण रोजगार देखने को मिलता है। उनके अनुसार बेरोजगारी दो प्रकार की होती है—

1. **घर्षणात्मक बेरोजगारी (Frictional Unemployment)**—श्रम की माँग और पूर्ति में असन्तुलन उत्पन्न होने से जब श्रम बेरोजगार हो जाता है तो वह घर्षणात्मक बेरोजगारी कहलाती है।

2. **ऐच्छिक बेरोजगारी (Voluntary Unemployment)**—वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत श्रमिक वर्तमान मजदूरी दर पर कार्य करने को तैयार नहीं होते हैं। अतः प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार बेरोजगारी श्रम की माँग और पूर्ति के असन्तुलन का परिणाम है।

1 *Das Naba Gopal* Unemployment, Full Employment and India, p. 23.
2 *Saxena, R. C.*. Labour Problems and Social Welfare, p. 899.

प्रो. कीन्स के अनुसार बेरोजगारी सन्तुलन की दशा में नहीं होती है। उन्होंने अनैच्छिक बेरोजगारी (Involuntary Unemployment) का विचार दिया है। इसके अन्तर्गत कोई भी श्रमिक वर्तमान वास्तविक मजदूरी से कम मजदूरी पर कार्य करने के लिए तैयार होता है। किसी कार्य में लगे रहने मात्र से हम यह नहीं कह सकते कि बेरोजगारी नहीं है। जो व्यक्ति आंशिक रूप से कार्य पर लगे हुए हैं अथवा अपनी योग्यता से कम कार्य पर लगे रहना, थोड़े कार्य पर अधिक श्रमिक लगे रहना यह सब बेरोजगारी ही है।

इस प्रकार ऐच्छिक बेरोजगारी (Voluntary Unemployment) वह बेरोजगारी है जिसमें श्रमिक वर्तमान मजदूरी दरों पर कार्य करने को तैयार नहीं होता है।

प्रो. कीन्स के अनुसार अधिक बचत (Over-saving) और कम व्यय (Under-spending) जो कि आय के असमान वितरण का परिणाम है, बेरोजगारी उत्पन्न करते हैं। अतः बेरोजगारी को दूर करने के लिए अधिक व्यय और कम बचत की जाए जिससे उद्योग में वृद्धि होगी और प्रभावपूर्ण माँग (Effective Demand) अधिक होने से अधिक आर्थिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप अधिक साधनों को रोजगार अधिक मिल सकेगा।

बेरोजगारी के कई रूप हो सकते हैं—

1 आर्थिक बेरोजगारी (Economic Unemployment)—यह बेरोजगारी है जो व्यापार चक्रों के उतार-चढ़ाव के कारण उत्पन्न होती है। आर्थिक मंदी के व्यापारिक क्षेत्रों में उत्पन्न होने से देश में बेरोजगारी फैल जाती है।

2 औद्योगिक बेरोजगारी (Industrial Unemployment)—जब कोई उद्योग असफल हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप रोजगार के अवसर कम अथवा बिल्कुल ही समाप्त हो जाते हैं तो वह औद्योगिक बेरोजगारी का प्रकार होगा।

3. मौसमी बेरोजगारी (Seasonal Unemployment)—वे उद्योग जो साल भर नहीं चलते हैं और शेष अवधि में उन्हें बन्द करने से बेरोजगारी फैला देते हैं, मौसमी बेरोजगारी के अन्तर्गत आते हैं।

4. यांत्रिक बेरोजगारी (Technological Unemployment)—उत्पादन तरीकों में परिवर्तन के कारण पुराने श्रमिक बेरोजगार हो जाते हैं, उन्हें फिर से प्रशिक्षण दिया जाता है। यह उद्योग में विवेकीकरण और आधुनिकीकरण (Rationalisation and Modernisation) का परिणाम है।

5. शिक्षित बेरोजगारी (Educated Unemployment)—शिक्षा के कारण जब शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार नहीं मिलता है तो यह शिक्षित बेरोजगारी है।

6. छिपी हुई बेरोजगारी या अर्द्ध बेरोजगारी (Disguised Unemployment or Under-employment)—यह वह स्थिति है जिसमें श्रमिक या व्यक्तियों

को कार्य तो मिला हुआ होता है, लेकिन पूरा कार्य नहीं मिला होता है। उदाहरणतया भारतीय कृषि में ऐसी ही स्थिति है। काम कम है, लोगों की संख्या अधिक है।

बेरोजगारी के कारण

बेरोजगारी क्यों उत्पन्न होती है ? अर्थात् इसके क्या कारण हैं ? पूंजी की कमी, तकनीकी परिवर्तन, अधिक मजदूरी, अधिक जनसंख्या, अधिक कर भार, औद्योगिक अशान्ति, श्रम संगठनों का अभाव आदि ऐसे तत्त्व हैं जिनके परिणाम-स्वरूप किसी भी देश के साधनों को अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करना सम्भव नहीं होता है।

बेरोजगारी को दूर करने के लिए कई कार्यक्रम विस्तृत पैमाने पर शुरू करने पड़ेंगे जिससे बेरोजगारी किसी भी देश की अर्थ-व्यवस्था से समाप्त की जा सके।

श्रम की माँग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने हेतु रोजगार कार्यालयों की स्थापना करनी चाहिए जिससे श्रम के क्रेता तथा विक्रेता दोनों अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। व्यापारिक चक्रों के कारण उत्पन्न बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए सरकार को अपनी आर्थिक नीतियाँ, जैसे—मौद्रिक नीति, राजकोषीय नीति, मूल्य नीति, आयात-निर्यात नीति को उपयुक्त ढंग से क्रियान्वित करना चाहिए।

मौसमी बेरोजगारी दूर करने हेतु अलग-अलग मौसम के उद्योगों को एक दूसरे से मिलाकर बेरोजगारी को समाप्त किया जा सकता है। औद्योगिक अशान्ति को दूर करने के लिए सुदृढ़ एवं सुसंगठित श्रम संघों को प्रोत्साहन देना, बेरोजगारी बीमा योजना शुरू करना, प्रबन्ध में सहभागिता, आदि कदम उठाए जा सकते हैं।

भारत में रोजगार की स्थिति का एक चित्र

भारत सरकार के वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ 1985 में रोजगार सम्बन्धी अधिकारिक विवरण इस प्रकार दिया गया है—

रोजगार

संगठित क्षेत्र, अर्थात् दस या इससे अधिक व्यक्तियों को काम पर लगाने वाले सार्वजनिक क्षेत्र तथा गैर-कृषि क्षेत्र के सभी प्रतिष्ठानों में रोजगार मार्च, 1983 में 239·5 लाख से बढ़कर मार्च, 1984 में 224·9 लाख (अस्थाई) हो गया। यह वृद्धि 1982–83 की 2·0 प्रतिशत की तुलना में 1·4 प्रतिशत थी। सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में वृद्धि पिछले वर्ष के 3 प्रतिशत के मुकाबले 1983-84 में 2·6 प्रतिशत हुई। निजी क्षेत्र में रोजगार में वृद्धि 1982–83 में 0 3 प्रतिशत के मुकाबले 1983-84 में 1·2 प्रतिशत हुई।

एन. एस. एस. ओ. के 32वें दौरे से प्राप्त अन्तिम परिणामों के आधार पर छठी पंचवर्षीय योजना के दस्तावेजों में मार्च, 1980 में बेरोजगारी का अनुमान

दिया गया है। ये परिणाम ग्राम स्थिति, साप्ताहिक स्थिति तथा दैनिक स्थिति तीन धारणाओं पर आधारित हैं। ग्राम स्थिति के अनुसार मार्च, 1980 मे 15 वर्ष या उससे अधिक आयु के बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या 1·14 करोड थी। साप्ताहिक स्थिति उन औसत व्यक्तियो से सम्बन्धित है जिन्हें मार्च, 1980 मे सर्वेक्षण वाले सप्ताह मे एक घण्टे के लिए भी काम नही मिला था जो काम ढूंढ रहे थे या काम के लिए उपलब्ध थे। मार्च, 1980 मे ऐसे लोगों की सख्या जो 15 वर्ष या इससे अधिक आयु के थे, 1·16 करोड़ थी। साप्ताहिक बेरोजगारी के ये अनुमान रोजगार की सही स्थिति नहीं दर्शाते, क्योंकि लाखो व्यक्ति ऐसे हैं कि जिन्हे हफ्तो कार्य नहीं मिलता। उन्हें कुछ दिन के लिए कार्य मिलता है परन्तु उसी सप्ताह मे कुछ दिन कार्य नही मिलता। इसलिए बेरोजगार व्यक्तियो की बजाय बेरोजगार दिन औसत दैनिक बेरोजगारो की संख्या का अनुमान लगाने के लिए गिने गए हैं। 15 वर्ष या इससे अधिक आयु के औसत बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या मार्च, 1980 में 1 98 करोड थी।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा

राष्ट्रीय रोजगार सेवा, 1945 मे शुरू की गई। इसके अन्तर्गत प्रशिक्षित कर्मचारियो द्वारा चलाए जाने वाले अनेक रोजगार कार्यालय खोले गए हैं। ये रोजगार कार्यालय रोजगार की तलाश करने वाले सब प्रकार के व्यक्तियो की सहायता करते हैं, जिनमे शारीरिक रूप से बाधित व्यक्ति, भूतपूर्व सैनिक, अनुसूचित जातियाँ, और जनजातियाँ विश्वविद्यालय के विद्यार्थी तथा व्यावसायिक और प्रबन्धक पदो के उम्मीदवार भी शामिल हैं। रोजगार सेवा अन्य काम भी करती है जैसे जनशक्ति के श्रेष्ठ उपयोग के लिए रोजगार परामर्श तथा व्यावसायिक मार्ग दर्शन, रोजगार सम्बन्धी सूचनाएँ एकत्र और प्रचारित करना या रोजगार और धन्धो सम्बन्धी अनुसन्धान के क्षेत्र मे सर्वेक्षण और अध्ययन करना। ये अनुसन्धान तथा अध्ययन ऐसे आधारभूत आँकड़े उपलब्ध कराते है जो जनशक्ति के कुछ पहलुओं पर नीति निर्धारण मे सहायक होते हैं।

1959 के रोजगार कार्यालय (रिक्त स्थानो का अनिवार्य ज्ञापन) अधिनियम के अन्तर्गत सभी सरकारी और निजी क्षेत्र मे ऐसे गैर-कृषि प्रतिष्ठानो का जिनमे 25 या 25 से अधिक आदमी काम करते हो, यह दायित्व है कि अपने यहाँ रिक्त स्थानो की सूचना (कुछ अपवादो के साथ) अधिनियम के अन्तर्गत व नियमो के अनुसार रोजगार कार्यालयो को दें और समय-समय पर सूचित करें।

31 दिसम्बर, 1984 को देश मे कुल 666 रोजगार कार्यालय थे जिनमे 79 विश्वविद्यालय रोजगार सूचना तथा मार्ग दर्शन ब्यूरो शामिल नहीं है। सारणी जो आगे दी गई है, इन रोजगार कार्यालयो की गतिविधियों को दिखाती है—

रोजगार कार्यालयों की गतिविधियाँ

वर्ष	रोजगार कार्यालयों की संख्या[1]	पंजीकृत अभ्यर्थियों की संख्या (हजारों मे)	रोजगार पाने वाले अभ्यर्थियों की संख्या (हजारों मे)	चालू रजिस्टर मे अभ्यर्थियों की संख्या (हजारों मे)	ज्ञापित रिक्त स्थानों की संख्या (हजारों मे)
1956	143	1670·0	189 9	758·5	296 6
1971	437	5129 9	507 0	5099 9	813 6
1976	517	5619·4	496·8	9784 3	845·6
1981	592	6276 9	504 1	17838 1	896 8
1982	619	5862 9	473 4	19753 0	819·9
1983	652	6755·8	485 9	21953 3	826·0
1984	666	6219 0	407·3	23546·8	707·8

प्रशासन

नवम्बर, 1956 से रोजगार कार्यालयो पर दिन-प्रतिदिन का प्रशासनिक नियन्त्रण राज्य सरकारो को सौप दिया गया है। अप्रैल 1969 से राज्य सरकारों को जनशक्ति और रोजगार योजनाओ से सम्बद्ध वित्तीय नियन्त्रण भी दे दिया गया। केन्द्रीय सरकार का कार्यक्षेत्र अखिल भारतीय स्तर पर नीति-निर्धारण कार्य विधि और मानको के समन्वय, विभिन्न कार्यक्रमो के विकास तथा प्रशिक्षण तक सीमित है।

प्रशिक्षण और अनुसन्धान

रोजगार सेवा मे अनुसन्धान तथा प्रशिक्षण के लिए केन्द्रीय सस्थान, श्रम मन्त्रालय मे रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय के अधीन 1964 से कार्य कर रहा है। यह सस्थान ये कार्य करता है—(1) राष्ट्रीय रोजगार मे कर्मियो के प्रशिक्षण की आवश्यकता का निर्धारण करना, (2) विभिन्न राज्यो के राष्ट्रीय रोजगार के कर्मियों के लिए प्रशिक्षण देना तथा योजना बनाना, (3) रोजगार सेवाओ मे आने वाली कठिनाइयो पर अनुसन्धान करना तथा (4) कैरियर सम्बन्धी साहित्य का सकलन और प्रकाशन और व्यवसाय मार्ग दर्शन तथा कैरियर परामर्श कार्यक्रमो मे उपयोग के लिए श्रव्य दृश्य साधनो का उत्पादन।

विभिन्न कार्यक्रमो के अन्तर्गत विभिन्न देशो के प्रति नियुक्त प्रशिक्षार्थी अफसरो के लिए यह संस्थान पाठ्यक्रम का प्रबन्ध करता है।

व्यावसायिक मार्गदर्शन

युवक युवतियों (ऐसे अभ्यार्थी जिन्हे काम का कोई अनुभव नही है) श्रमिक और प्रौढ व्यक्तियों को (जिन्हे खास-खास कामो का अनुभव है) काम धन्धे से

1 इसमे 16 व्यावसायिक तथा कार्य पालक रोजगार कार्यालय शामिल हैं तथा 79 विश्व-विद्यालय रोजगार सूचना एवं निदर्शन ब्यूरो इसमें शामिल नहीं हैं।

सम्बद्ध मार्गदर्शन और रोजगार सम्बन्धी परामर्श दिया जाता है। 1984 में 331 रोजगार कार्यालयों तथा 79 विश्वविद्यालय रोजगार सूचना और मार्गदर्शन कार्यालयों में काम धन्धे सम्बन्धी मार्गदर्शन एकक काम रहे थे।

पढ़े लिखे युवक-युवतियों को लाभदायक रोजगार दिलाने की दिशा में प्रवृत्त करने के लिए रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय के कार्य मार्गदर्शन और आजीविका परामर्श कार्यक्रमों को विस्तृत और व्यवस्थित किया गया है। रोजगार सेवा अनुसन्धान और प्रशिक्षण के केन्द्रीय संस्थान में एक आजीविका अध्ययन केन्द्र स्थापित किया गया है जो युवक-युवतियों तथा अन्य मार्गदर्शन चाहने वालों को व्यवसाय सम्बन्धी साहित्य देता है।

विकलांगों के लिए रोजगार कार्यालय

शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिए 22 विशेष रोजगार कार्यालय हैं, जो पटना, मद्रास, अहमदाबाद, बंगलूर, लुधियाना, बम्बई, कलकत्ता, चण्डीगढ़, दिल्ली, हैदराबाद, जबलपुर, कानपुर, जयपुर, तिरुअनन्तपुरम, शिमला, गौहाटी, अगरतला, इम्फाल, बड़ोदरा, सूरत, राजकोट तथा भुवनेश्वर में स्थित हैं।

विकलांगों के लिए अहमदाबाद, बंगलूर, बम्बई, दिल्ली, हैदराबाद, जबलपुर, कानपुर, कलकत्ता, मद्रास, लुधियाना, सीतामढ़ी, गौहाटी, भुवनेश्वर और तिरुअनन्तपुरम में 14 व्यावसायिक पुन: स्थापन केन्द्र काम कर रहे हैं।

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के बेरोजगार व्यक्तियों के लिए मार्गदर्शक केन्द्र

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के बेरोजगार व्यक्तियों में आत्म-विश्वास बढ़ाने के लिए 17 प्रशिक्षण व मार्ग दर्शक केन्द्र दिल्ली, मद्रास, कानपुर, जयपुर, हैदराबाद, तिरुअनन्तपुरम, सूरत, जबलपुर, ऐजल, रांची, बंगलूर, हिसार, राउरकेला, इम्फाल, कलकत्ता, नागपुर और गौहाटी में कार्य कर रहे हैं।

रोजगार की एक अभिनव योजना

रोजगार चाहने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही चली जा रही है और सरकार इतनी बड़ी संख्या में रोजगार उपलब्ध कराने में असमर्थ रही है। सरकार बेरोजगारी को दूर करने के लिए भिन्न योजनाओं के तहत पानी की तरह पैसा बहा रही है, किन्तु फिर भी इस समस्या पर काबू नहीं पाया जा सका है। शिक्षित छात्र अध्ययन करने के बाद नौकरी की तलाश में दर-दर भटकता रहता है और अन्त में अपनी योग्यता से भी नीचा काम करने के लिए तैयार हो जाता है किन्तु इसके उपरान्त भी उसे नौकरी नहीं मिलती है तो हताश एवं कुण्ठित होकर गलत दिशा में बढ़ने लगता है।

इस समस्या पर काबू पाने के लिए मेरे विचार में 'व्यावसायिक संस्थान' की स्थापना की योजना कारगर साबित होगी। यदि शासन इस योजना पर ध्यान दे तो देश में 10 लाख शिक्षित एवं 50 लाख अशिक्षित लोगों को स्थाई रूप

से प्रतिवर्ष रोजगार के साधन उपलब्ध कराए जा सकते हैं। इतने बड़े विशाल पैमाने पर रोजगार उपलब्ध कराने की लागत प्रतिवर्ष सिर्फ दो अरब रुपये होगी अर्थात् सरकार दो अरब अतिरिक्त राशि खर्च करके 60 लाख लोगो को रोजगार प्रतिवर्ष प्रदान कर सकती है। इस प्रकार एक व्यक्ति को रोजगार दिलाने के लिए सरकार को सिर्फ 334 रुपये प्रतिवर्ष खर्च करने पड़ेंगे जो कि उच्च व्यावसायिक शिक्षा पर सरकार के द्वारा किए जाने वाले प्रति छात्र के व्यय का 50 प्रतिशत होगा। इतनी कम राशि से बड़े पैमाने पर रोजगार 'व्यावसायिक संस्थान' की स्थापना करके उपलब्ध कराया जा सकता है।

व्यावसायिक संस्थान की स्थापना की आवश्यकता क्यों ?

देश में डॉक्टर, वकील, इजीनियर आदि उच्च व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की सख्या मे बेतहाशा वृद्धि होती चली जा रही है, जिससे ऐसे उच्च श्रेणी का ज्ञान प्राप्त प्रतिभा को भी उसकी इच्छा के अनुसार रोजगार नही मिल पा रहा है, फलत. देश से प्रतिभाओं का पलायन होता जा रहा है।

इसलिए अब समय की आवश्यकता के अनुसार हमे ऐसे सस्थानों की आवश्यकता है जो शिक्षित एव प्रशिक्षित लोगो को रोजगार प्रदान कर सकें और वे रोजगार के लिए सरकार का मुँह नहीं ताकें, बल्कि वे स्वयं ही रोजगार के अवसर निर्मित कर लोगो को रोजगार प्रदान करें और यह कार्य देश में 'व्यावसायिक सस्थानो' की स्थापना के द्वारा ही हो सकता है।

इस सस्था मे जो छात्र शिक्षा प्राप्त करके निकलेगा वह 'साहसी' या 'उद्यमी' की डिग्री से विभूषित किया जाएगा। डिग्री लेकर निकलने पर वह साहसी या उद्यमी इतना योग्य हो जाएगा कि वह अपनी रुचि के अनुसार (उद्योग की जिस श्रेणी में डिग्री हासिल करेगा) कारखाने की स्थापना कर सकेगा। कारखाने की स्थापना के सम्बन्ध मे आने वाली समस्याओ का सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक अध्ययन उसे रहेगा अतः उसके मार्ग में किसी प्रकार की बडी रुकावट नहीं आएगी। कारखाने की स्थापना से सम्बन्धित आवश्यक साधनो को जुटाने एव निर्मित माल की बिक्री तक की सभी गतिविधियाँ उसके अपने दिमाग की योजना के अनुसार ही संचालित होंगी। इससे एक बड़ा लाभ यह भी होगा कि ऐसे साहसी उद्योग के सामाजिक दायित्वों का निर्वाह भी कर सकेंगे, जिसने समाज को प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष दोनो प्रकार से लाभ मिलेगा।

यदि ऐसे एक संस्थान से प्रतिवर्ष 100 छात्र डिग्री लेकर निकलें और बड़े राज्यो 5 सस्थान एव छोटे राज्यो मे दो या तीन संस्थान हो तो देश मे100 सस्थाएँ हो तो कुल 10 हजार साहसी प्रतिवर्ष देश मे तैयार होंगे और यदि एक कारखाने मे 100 शिक्षित एवं 500 अशिक्षित लोगों को रोजगार मिला (जो कि नामुमकिन नही है) तो देश में प्रतिवर्ष 10 लाख शिक्षित एवं 50 लाख अशिक्षित लोगो को आसानी से रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है।

इस प्रकार की संस्था की स्थापना की आवश्यकता इसलिए भी है कि देश मे उद्यमियो की बहुत कमी है और ऐसे उद्यमियो की भी कमी है जो सामाजिक दायित्व को निभाने मे सफल रहे हों। देश मे वर्तमान समय मे किसी भी प्रकार के साधनो की कमी नही है यथा—परिवहन सुविधा, पानी, बिजली, कच्चा माल, पूँजी, मशीन, तकनीकी ज्ञान, कुशल श्रमिक एवं बाजार आदि।

यदि कमी है तो इन सभी साधनो के दोहन की और इन साधनो को संगठित करके इनसे प्राप्त लाभों को समाज को देने वालो की। यदि इस योजना पर दृढ इच्छा शक्ति को ईमानदारी व लगन के साथ सही ढग से क्रियान्वयन किया जाए तो देश मे ऐसे संस्थान से उद्यमियो का पहला दल 1991–92 मे आसानी से निकल सकता है और जब भारत 21वी सदी में प्रवेश करेगा तब तक 6 करोड़ लोगो के लिए अतिरिक्त रोजगार के साधन इस योजना के अन्तर्गत आसानी से उपलब्ध कराए जा सकेंगे। हमारे देश के युवा प्रधान मन्त्री श्री राजीव गांधी भारत को खुशहाल बनाने के लिए जी जान से जुटे हुए हैं और उनके सपनों का भारत जब 21वीं शताब्दी की दहलीज पर दस्तक देगा तब भारत पूर्ण रोजगार की स्थिति मे होगा। इस प्रकार की सबको रोजगार प्रदान करने वाली अभिनव योजना का व्यावसायिक संस्थान की स्थापना है।

व्यावसायिक संस्थान का प्रारूप

व्यावसायिक संस्थान का पाठ्यक्रम अन्य व्यावसायिक कॉलेजों की तरह पाँच वर्ष का ही रखा जाएगा। पाँच वर्ष के पाठ्यक्रम का विभाजन इस प्रकार का होगा —

(1) तीन वर्ष सैद्धान्तिक अध्ययन
(2) दो वर्ष व्यावहारिक प्रशिक्षण

तीन वर्ष के सैद्धान्तिक अध्ययन पर सरकार को (प्रारम्भ मे किसी महाविद्यालय पर लागू करके) अलग से कोई अतिरिक्त राशि खर्च नही करनी पडेगी (किन्तु बाद मे संस्थान का पूर्ण खर्च सरकार को अलग से करना होगा), यह सैद्धान्तिक अध्यापन वर्तमान मे प्रारम्भिक अवस्था मे किसी महाविद्यालय में वाणिज्य सकाय के अन्तर्गत पढाए जाने वाले विषयो मे थोडा परिवर्तन करके तीन वर्षीय पाठ्यक्रम को पूरा किया जा सकता है।

इसके अध्यापन के लिए वाणिज्य सम्बन्धित ज्ञान एवं रुचि रखने वाले प्राध्यापकों को लघु प्रशिक्षण देकर आसानी से लगाया जा सकता है। इस कार्य पर सरकार को नाम मात्र की राशि खर्च करनी होगी।

दो वर्ष के व्यावहारिक पाठ्यक्रम पर सरकार को अतिरिक्त राशि खर्च करनी होगी और प्रारम्भ मे ऐसा प्रशिक्षण नजदीक के शहर मे स्थापित उद्योग के सहयोग से (कुशल व्यक्तियो के द्वारा जो उद्योग मे कार्यरत हैं) दिया जा सकता है। बाद मे ऐसी संस्था से निकले उद्यमी स्वय कारखाना स्थापित करके प्रशिक्षण

संस्थानों मे पाठ्यक्रम को पूरा कर सकते हैं, दिक्कत केवल 1–2 वर्ष की ही रहेगी फिर आने वाले समय मे किसी प्रकार की कठिनाई नही होगी।

योजना पर अनुमानित व्यय

एक 'व्यावसायिक संस्थान' की अनुमानित लागत लगभग प्रतिवर्ष दो करोड रुपये होगी, जिसमे हर वर्ष थोड़ी-बहुत वृद्धि हो सकती है। इनमें भवन, अध्यापन आदि पर एक करोड़ एवं सम्बन्धित उद्योग की ब्रांच की स्थापना पर एक करोड़। इस प्रकार प्रारम्भ के कुछ वर्षों में ही व्यय होगा, बाद मे जब संस्थान पूर्ण सुसज्जित (ब्रांचो से) हो जाएगा तब ब्रांचो पर होने वाला व्यय कम हो जाएगा। इस प्रकार प्रति संस्थान लागत दो करोड होगी, देश मे कुल 100 संस्थाएँ ही स्थापित कर दी जाएँ तो केवल 2 अरब रुपये का खर्च प्रतिवर्ष होगा।

योजना से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण बिन्दु

योजना के महत्त्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार होंगे—

1. तीन वर्षीय पाठ्यक्रम में व्यावसायिक धन्धो का सैद्धान्तिक अध्ययन कराया जाए। व्यावसायिक धन्धों के तीन वर्ग होते है, यथा वाणिज्यिक धन्धे, उद्योग सम्बन्धी धन्धे और वैयक्तिक सेवाएं।

2 इन तीन वर्गों में से प्रथम वर्ग के धन्धे में व्यापार आता है अतः इसका केवल प्रारम्भिक सैद्धान्तिक अध्ययन ही कराया जाना पर्याप्त होगा और तीसरे वर्ग के धन्धो का पर्याप्त विकास देश में हो चुका है। अत. इसके अध्ययन कराने की इस संस्थान मे कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

3. अतः दूसरे वर्ग के उद्योग सम्बन्धी धन्धे ही इस योजना की रीढ की हड्डी है और इसी प्रकार के उद्योग से सम्बन्धित धन्धो का विस्तृत गहन एवं व्यावहारिक अध्ययन कराना ही व्यावसायिक संस्थान की स्थापना का उद्देश्य है।

4. उद्योग से सम्बन्धित धन्धो की अलग-अलग श्रेणी बनाई जाए। इस उद्देश्य के लिए उद्योगों को विभिन्न खण्डो मे विभाजित करना होगा यथा उत्पत्ति उद्योग, निर्माण उद्योग और रचनात्मक उद्योग। इन ब्रांचो मे से तीसरी ब्रांच रचनात्मक उद्योग का देश में पर्याप्त विकास हो चुका है अतः इसके अध्ययन की कोई आवश्यकता नही है। साथ ही प्रथम प्रकार के उद्योग के तहत कृषि महाविद्यालय कार्यरत है अतः इसे भी सम्मिलित नहीं किया जाए।

5. अतः निर्माण उद्योग को ही इस योजना के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाना चाहिए। निर्माणी उद्योग को भी चार विषयो मे विभाजित किया जा सकता है यथा—विश्लेषणात्मक उद्योग, संयोजन उद्योग, प्राविधिक उद्योग और सांश्लेषिक उद्योग।

6. इस प्रकार व्यावसायिक संस्थान के अन्तर्गत उपर्युक्त चार विषयों को सम्मिलित किया जा सकता है।

7. इन चार विषयों का तीन वर्ष तक छात्रों को गहन सैद्धान्तिक अध्ययन कराया जाए।

8. तीन वर्ष के पश्चात् प्रत्येक छात्र का मूल्यांकन किया जाए कि छात्र की रुचि किस विषय की ओर है और डिग्री लेकर वह किस उद्योग में उद्यमी के रूप में वास्तविक धरातल पर उतरेगा और किस उद्योग में वह सफल होगा। यह कार्य बड़ा कठिन है किन्तु यदि ईमानदारी एवं निष्पक्षता से किया जाए तो बिल्कुल सरल हो जाएगा। यदि यही गलती कर दी तो वांछित परिणाम अनुकूल नहीं होंगे।

9 समग्र आंकलन के बाद उस छात्र को उद्योग के उसी विषय का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाए। यह प्रशिक्षण प्रारम्भ में नजदीक ही स्थापित कारखाने में दिया जा सकता है और बाद में धीरे-धीरे संस्थान अपने स्वयं के कारखाने स्थापित करके निरन्तर प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकते हैं।

10. दो वर्ष का ऐसा व्यावहारिक अध्ययन करके जब उद्यमी की डिग्री लेकर छात्र निकलेगा तो वह वास्तविक जीवन में उद्योग के फील्ड में उतरने योग्य होगा और मेरा विश्वास है कि वह युवक सफल उद्यमी होगा।

इस प्रकार दो अरब रुपये में 60 लाख लोगों को प्रतिवर्ष रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है। योजना कितनी ही अच्छी क्यों न हो, यदि उसका क्रियान्वयन सही ढंग से नहीं होगा तो परिणाम अनुकूल नहीं होंगे और योजना को ही गलत करार दे दिया जाता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि योजना को सही ढंग से लागू एवं क्रियान्वित किया जाए।

योजना को परखने के लिए शासन चाहे तो इस प्रकार के एक संस्थान की स्थापना करके इसकी सफलता का मूल्यांकन कर सकता है। मैं इस योजना के प्रारूप को, जिसका वर्णन मैंने ऊपर किया है, के सम्बन्ध में पाठ्यक्रम बनाने एवं इसके क्रियान्वयन में अपने ज्ञान, विवेक, क्षमता एवं अपनी सीमाओं के दायरे में सहयोग देने के लिए तत्पर हूँ।[1]

---

1 योजना, मार्च 1987, पृ. 25-27 : बी. एस. चौधरी: रोजगार की एक अभिनव योजना।

6 ब्रिटेन ग्रौर संयुक्तराज्य ग्रमेरिका में रोजगार-सेवा संगठन : संगठन, कार्य एवं उपलब्धियाँ; भारत में श्रमिक भर्ती की पद्धतियाँ; भारत में रोजगार सेवा-संगठन

(Organisations, Functions & Achievements of Employment-Service Organisation in the U. K, U S. A. in General; Methods of Labour Recruitment in India; Employment Service Organisation in India)

रोजगार या नियोजन सेवा संगठन
(Employment Service Organisation)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (International Labour Organisation) ने 1919 मे एक प्रस्ताव पास कर प्रत्येक सदस्य देश को नि शुल्क रोजगार सेवा (Free Employment Service) की स्थापना की सिफारिश की। भारत सरकार ने इसकी पुष्टि 1921 मे की। शाही श्रम ग्रायोग (Royal Commission on Labour) ने यह सिफारिश की कि जब मालिकों को कारखाने के दरवाजों पर ग्रासानी से पर्याप्त सख्या में श्रमिक मिल रहे हैं तो फिर रोजगार कार्यालय चलाने की कोई ग्रावश्यकता नहीं है। ग्रायोग के इस विचार के बावजूद भी सप्रू बेरोजगार समिति, श्रम ग्रनुसन्धान समिति, विहार एव कानपुर श्रम जाँच समितियाँ, नई नियोक्ताओं और श्रमिकों की परिषदों ने रोजगार सेवा चलाने हेतु प्रबल समर्थन किया।

युद्धकालीन विभिन्न प्रकार के श्रमिकों की माँग युद्धोत्तर कालीन पुनर्वास एव पुनर्निर्माण कार्य ग्रादि मे इस प्रकार की सेवा का कार्य काफी सराहनीय रहा।

ग्रर्थ (Meaning)

रोजगार या सेवा नियोजन कार्यालय वे कार्यालय हैं जो इच्छुक व्यक्तियों को उनकी रुचि तथा योग्यतानुसार काम तथा मालिकों को उनकी ग्रावश्यकतानुसार श्रमिक उपलब्ध कराने का कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों मे, श्रम के क्रेता (मालिकों)

व विक्रेता (श्रमिको) को एक-दूसरे के सम्पर्क मे लाकर श्रम की माँग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करते हैं। ये एक ओर श्रमिक का नाम, योग्यता, अनुभव और विशेष रुचि से सम्बन्धित लेखा रखते हैं तो दूसरी ओर मालिको द्वारा दी जाने वाली नौकरी व उनके द्वारा इच्छित श्रमिकों के प्रकार से सम्बन्धित सूचना रखते हैं। जब भी खाली जगह निकलती है तो उसमे रखी गई योग्यता, अनुभव तथा रुचि आदि को देखकर इस प्रकार के श्रमिको के नाम निकाल लिए जाते हैं और ये नाम इच्छित मालिक के पास भेज दिए जाते हैं। अन्तिम चयन मालिक पर निर्भर करता है। इस प्रकार नियोजन कार्यालय श्रम की माँग और पूर्ति का समायोजन इस तरह करते हैं कि उपयुक्त व्यक्ति के लिए उचित नौकरी या कार्य मिल जाए।

रोजगार कार्यालय रोजगार के अवसरो मे वृद्धि ही नही करते हैं बल्कि वे अल्पकाल मे ही श्रम की माँग और पूर्ति मे सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करते हैं। श्रमिक को सूचित करके रोजगार प्राप्त करने मे सहायता करते हैं तथा दूसरी ओर मालिक को सूचित करके उसकी श्रम की माँग को तुरन्त पूरा करने में सहयोग देते हैं। इस प्रकार ये श्रम की गतिशीलता मे वृद्धि करके उसकी उत्पादकता मे वृद्धि करते हैं जिससे देश मे बेकार पड़े साधनो का पूर्ण उपयोग होता है, राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होती है और देशवासियो के आर्थिक कल्याण मे वृद्धि होती है।

रोजगार कार्यालयों के उद्देश्य
(Objectives of Employment Exchanges)

रोजगार कार्यालयो के उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

1. **श्रमिकों व मालिकों के बीच समन्वय स्थापित करना**—श्रम की माँग और पूर्ति दोनो मे सन्तुलन स्थापित करके श्रम के विक्रेता (श्रमिक) और श्रम के क्रेता (मालिक) को एक-दूसरे के निकट लाकर उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति करना इन कार्यालयो का उद्देश्य है।

2. **श्रम की गतिशीलता मे वृद्धि करना**—रोजगार कार्यालयो से श्रमिको को मालूम हो जाता है कि उनकी माँग कहाँ अधिक और कहाँ कम है। कार्यालय श्रमिको को सूचित करके श्रम की कम माँग वाले क्षेत्र से अधिक माँग वाले क्षेत्र की ओर स्थानान्तरण करने का कार्य करते हैं।

3. **श्रमिकों की भर्ती मे व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करना**—रोजगार कार्यालय रोजगार देने वाले (मालिक) व रोजगार प्राप्त करने वाले (श्रमिक) के बीच, मध्यस्थ का कार्य करके नि शुल्क सेवा प्रदान करते हैं। पहले मध्यस्थो, जॉबरों, दलालो आदि द्वारा श्रमिको की भर्ती की जाती थी। ये श्रमिको से विभिन्न प्रकार की रिश्वत लेते थे और उनका शोषण करते थे। रोजगार कार्यालयो के स्थापित हो जाने से भ्रष्टाचार समाप्त हो गया है।

4. **आर्थिक नियोजन मे सहायक**—प्रत्येक देश मे योजना बनाकर आर्थिक विकास के कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। इन कार्यालयो द्वारा बेरोजगारी, बीमा, योजना,

पुनर्वास, पुनर्निर्माण आदि के सम्बन्ध में आंकड़े एकत्रित किए जा सकते है और इनको क्रियान्वित भी किया जा सकता है जो कि आर्थिक नियोजन का अभिन्न अंग है।

5. प्रशिक्षण व परामर्श की सुविधाएँ प्रदान करना—रोजगार कार्यालय श्रमिको को प्रशिक्षण देने का कार्य करते हैं तथा साथ ही किस व्यवसाय में प्रवेश किया जाए, किस प्रकार की शिक्षा ली जाए, भावी अवसर कैसे है, इन सब पर बच्चों के माता-पिताओ अथवा संरक्षकों को व्यावसायिक परामर्श देने का कार्य करते हैं।

6. अनैच्छिक बेरोजगारी को कम करना—अल्पकाल में ही इन कार्यालयो द्वारा खाली स्थान होने पर रोजगार दिला कर बेकारी को कम किया जा सकता है। इससे बेकार पड़े मानवीय साधनो का अधिकतम उपयोग करके राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना सम्भव हो जाता है।

7. आवश्यक आंकड़ों का संग्रहण एवं प्रकाशन—रोजगार कार्यालयो द्वारा पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या, रोजगार दिलाए गए व्यक्तियो की संख्या, बेकार व्यक्तियो की संख्या आदि के सम्बन्ध मे आंकड़े एकत्रित एव प्रकाशित किए जाते हैं। इन आंकड़ो की सहायता से सरकार देश मे रोजगार नीति को नया मोड दे सकती है।

रोजगार दफ्तरों के कार्य
(Functions of Employment Exchanges)

रोजगार दफ्तरो के कार्य निम्नांकित हैं—

1 मध्यस्थता का कार्य—ये कार्यालय श्रमिको और मालिकों के बीच एक कड़ी के रूप मे मध्यस्थता करके दोनो पक्षों मे समन्वय कराते हैं। इससे श्रम की मांग और पूर्ति दोनो मे सन्तुलन स्थापित हो जाता है।

2. श्रम की गतिशीलता में वृद्धि—रोजगार कार्यालय बेकार पड़े श्रमिको को सूचित करके जहां उनकी मांग अधिक है वहां रोजगार प्राप्त करने का निर्देश देते हैं। जहां श्रम का अभाव है वहां बचत वाले क्षेत्र से श्रमिक को भेजकर उसकी गतिशीलता मे वृद्धि करने का कार्य रोजगार कार्यालयो द्वारा ही सम्भव हो पाता है। अज्ञानता के कारण श्रम के असमान वितरण को रोजगार दफ्तरो द्वारा समान किया जाता है।

3. श्रमिकों की भर्ती मे व्याप्त भ्रष्टाचार की समाप्ति—रोजगार कार्यालय सरकारी कार्यालय हैं। ये रोजगार प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को निःशुल्क सेवा प्रदान करते हैं। श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारो, मध्यस्थो, जॉबर्स आदि होने पर वे श्रमिकों से रिश्वत लेते हैं, उनका शोषण करते हैं। अत मध्यस्थों द्वारा भर्ती प्रणाली में व्याप्त रिश्वत तथा भ्रष्टचार को समाप्त करने का कार्य इन दफ्तरो द्वारा किया जाता है।

4. आंकड़ों का संग्रहण एवं प्रकाशन—रोजगार दफ्तरो द्वारा बेरोजगारी और मानवीय शक्ति से सम्बन्धित आंकड़ो का संग्रहण किया जाता है और उन्हें प्रकाशित किया जाता है जिससे श्रम बाजार की स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है।

5. विभिन्न योजनाओं को शुरू करना और क्रियान्वित करना—रोजगार कार्यालय विभिन्न प्रकार की योजनाओं को चालू करते हैं तथा उनके क्रियान्वयन का कार्य भी करते हैं। इससे सरकार को मदद मिलती है। ये योजनाएं हैं—बेरोजगारी, बीमा, पुनर्निर्माण व पुनर्वास का कार्य, आदि।

6. प्रशिक्षण और परामर्श का कार्य—रोजगार दफ्तर श्रमिकों को प्रशिक्षण देने का कार्य करते हैं तथा विभिन्न व्यवसायों के सम्बन्ध में व्यावसायिक परामर्श देने का कार्य भी किया जाता है। विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों को भी ये कार्यालय परामर्श सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करते हैं।

7. घर्षणात्मक बेरोजगारी को कम करना—रोजगार दफ्तर अपनी नि:शुल्क सेवाओं द्वारा घर्षणात्मक बेरोजगारी को कम करने में सहायक होते हैं। यद्यपि ये रोजगार का सृजन करने वाले दफ्तर नहीं हैं फिर भी जगह खाली होने तथा उसको भरने के बीच के समय को कम करने का कार्य करते हैं।

रोजगार दफ्तरों का महत्त्व
(Importance of Employment Exchanges)

सर्वप्रथम इन दफ्तरों का महत्त्व 1919 में स्वीकार किया गया जबकि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों द्वारा यह प्रस्ताव पास किया गया था कि प्रत्येक सदस्य देश द्वारा केन्द्रीय सरकार के अधीन ऐसे कार्यालय खोले जाएँ। 1947 में पुन: इस प्रश्न को उठाया गया और सभी सदस्य देशों से इन नियोजन कार्यालयों की कार्य प्रगति के सम्बन्ध में सूचना मांगी गई। 1948 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में इन कार्यालयों के प्रमुख कार्यों की रूपरेखा दी गई। इसके साथ ही इनको सफल बनाने के लिए मालिकों और मजदूरों के सहयोग की अपेक्षा की गई।

रोजगार दफ्तरों के महत्त्व को निम्न रूपों में देखा जा सकता है—

1. राष्ट्रीय लाभांश में वृद्धि—रोजगार कार्यालय राष्ट्रीय लाभांश में वृद्धि करने में सहायक होते हैं। ये कार्यालय एक ओर अनैच्छिक बेकारी (Involuntary Unemployment) को समाप्त करके बेकार साधनों को रोजगार प्रदान करते हैं, दूसरी ओर जिस कार्य के लिए उपयुक्त है वह कार्य भी दिलाया जाता है।

2. श्रम की मांग और पूर्ति में सन्तुलन—रोजगार कार्यालय श्रम की मांग और पूर्ति में समायोजन करते हैं। जहाँ पर श्रमिकों की मांग अधिक है वहाँ श्रमिकों को सूचना प्रदान करके कम मांग वाले स्थान से उनका स्थानान्तरण करने में सहायक होते हैं। श्रमिकों को ज्ञान नहीं होता कि कहाँ उनकी मांग है और न ही मालिकों को मालूम होता है कि कहाँ श्रमिक बेकार पड़े हैं। अत: इन कार्यालयों द्वारा सूचना देकर श्रम की मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित किया जाता है।

3. श्रम बाजार का विकास—मुद्रा तथा पूंजी का जहाँ क्रय-विक्रय होता है वह मुद्रा और पूंजी बाजार कहलाता है। इनका विकास हो गया है, लेकिन श्रम के क्रय-विक्रय हेतु किसी संगठित श्रम बाजार का अभाव पाया जाता है। रोजगार कार्यालयों की सहायता से इस प्रकार के संगठित श्रम बाजार का विकास सम्भव हो पाया है।

4. जनता को निःशुल्क व निष्पक्ष सेवा प्रदान करना—रोजगार कार्यालय मे कोई भी व्यक्ति जो बेरोजगार है अपना नाम, पता, योग्यता, उम्र, अनुभव, इच्छित नौकरी आदि के सम्बन्ध मे सूचना देकर अपना पजीयन करवा लेता है तथा दूसरी ओर मालिक इन कार्यालयों को सूचित करता है कि किस प्रकार की जगह उनके पास खाली है। इन दोनो पक्षो से रोजगार कार्यालय कुछ भी नही लेते हैं। समय-समय पर दोनों को सूचित किया जाता है। यह सब नि शुल्क होता है।

5. रोजगार सम्बन्धी आंकड़े एकत्रित करना—रोजगार कार्यालय से हमे रोजगार पाने वालों की सख्या, रोजगार दिलाने वालो की सख्या और बेरोजगारों की सख्या आदि के सम्बन्ध मे सूचना मिलती है। इन सबके सम्बन्ध मे ये कार्यालय आंकडे तैयार करते हैं।

6. प्रशिक्षण व परामर्श सुविधाएं—इन कार्यालयो का महत्त्व विभिन्न प्रकार के श्रमिकों को दिए जाने वाले प्रशिक्षण व परामर्श सुविधाओ के रूप में भी देखा जा सकता है। ये बच्चो के माता-पिता को भी व्यवसाय के सम्बन्ध मे परामर्श देने का कार्य भी करते है।

7 समस्त समाज और देश को लाभ—इन कार्यालयों का महत्त्व हम समस्त समाज और देश को प्राप्त होने वाले लाभो के रूप मे देख सकते हैं। इनसे मुख्यतः निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं—

1. श्रमिको की गतिशीलता में वृद्धि होने से रोजगार के अवसर मिलते है।

2 उपयुक्त कार्य पर उपयुक्त व्यक्ति के लगाने से उत्पादकता बढ़ती है और न केवल समाज को बल्कि समस्त देश को राष्ट्रीय आय मे वृद्धि होने से लाभ मिलता है।

3 श्रमिकों को रोजगार दफ्तरों द्वारा दिए जाने वाले प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक परामर्श से उनकी व्यक्तिगत कार्यकुशलता बढती है, उनकी आय बढ़ती है और परिणामस्वरूप जीवन-स्तर उच्च होता है।

इंग्लैण्ड में रोजगार सेवा संगठन
(Employment Service Organisation in U. K.)

भारत मे ब्रिटिश पद्धति के आधार पर ही रोजगार कार्यालय स्थापित किए गए हैं। ब्रिटेन मे सबसे पहले रोजगार दफ्तर 1885 में स्थापित किया गया था। ये नि शुल्क सेवा प्रदान करते थे, लेकिन जिन्हें नौकरी मिलती थी उनसे अशदान लिया जाता था। स्थानीय संस्थाओ को रोजगार दफ्तर स्थापित करने के अधिकार प्रदान करने हेतु श्रम-सस्थान अधिनियम, 1902 (Labour Bureau Act, 1902) पास किया गया था। बेरोजगार श्रमिक अधिनियम, 1905 (Unemployed Workmen's Act, 1905) के कारण 25 रोजगार कार्यालय स्थापित किए गए थे। सबसे पहले वास्तविक रोजगार कार्यालय व्यापार-मण्डल (Board of Trade) के माध्यम से सरकार ने स्थापित किए। यह 1910 में शाही श्रम आयोग की सिफारिशों के आधार पर श्रम कार्यालय अधिनियम, 1910 (Labour

Exchange Act, 1910) के तहत स्थापित किया गया। देश को इन कार्यालयों की स्थापना हेतु 11 प्रदेशों में विभाजित किया गया और केन्द्रीय कार्यालय लन्दन में रखा गया। जब 1916 में श्रम मन्त्रालय खोला गया तो रोजगार कार्यालयों का प्रशासन व्यापार-मण्डल से इसके अन्तर्गत कर दिया गया। इन्हें अब रोजगार कार्यालय कहा जाता है। इन कार्यालयों की कार्य प्रगति हेतु एक समिति 1919 में नियुक्त की गई। इस समिति ने इन्हें राष्ट्रीय स्तर पर अपनाने की सिफारिश की और राष्ट्रीय बीमा योजना भी इन्हीं कार्यालयों द्वारा चलाने की सिफारिश की। परिणामस्वरूप बेरोजगार बीमा अधिनियम, 1920 (Unemployed Insurance Act, 1920) पास किया गया। इसके पास करने के पश्चात् इन कार्यालयों द्वारा लगभग 12 मिलियन श्रमिकों का बीमा किया गया।

श्रम मन्त्रालय और राष्ट्रीय बीमा दोनों ही अब इंग्लैण्ड में रोजगार सेवा चलाने के लिए उत्तरदायी हैं। अब रोजगार सेवाओं में व्यावसायिक प्रशिक्षण और परामर्श को भी सम्मिलित कर लिया गया है। व्यावसायिक प्रशिक्षण और परामर्श हेतु रोजगार और प्रशिक्षण अधिनियम, 1948 (Employment & Training Act, 1948) पास किया गया है। वर्तमान समाज में ग्रेट-ब्रिटेन में रोजगार सेवा प्रदान करने हेतु देश में रोजगार कार्यालयों का जाल-सा बिछाया हुआ है। इनकी संख्या 1500 के लगभग है। रोजगार कार्यालयों के प्रभावपूर्ण कार्य हेतु श्रमिकों और मालिकों का सहयोग होना आवश्यक है। इस हेतु स्थानीय रोजगार समितियाँ (Local Employment Committees) स्थापित कर दी गई है। व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना को सुचारू रूप से चलाने के लिए 14 सरकारी प्रशिक्षण केन्द्रों की सुविधा प्रदान की गई है।

अमेरिका में रोजगार सेवा संगठन
(Employment Service Organisation in U. S. A.)

सर्वप्रथम 1834 में न्यूयॉर्क में रोजगार सेवाएँ प्रदान की गईं। इसके अन्तर्गत मालिक श्रमिकों को प्राप्त करते थे। 1890 में ओहियो प्रान्त में सर्वप्रथम कानून के अन्तर्गत सार्वजनिक रोजगार सेवा शुरू की गई। प्रथम महायुद्ध में संघीय सरकार ने राष्ट्रीय रोजगार सेवा शुरू की। जिन प्रान्तों में रोजगार सेवा नहीं थी वहाँ इस सेवा का उपयोग बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार दिलाने में किया जाता था। कई आर्थिक एवं श्रम समस्याएँ अन्तर्राज्यीय महत्त्व की होने के कारण वेग्नर पेसर अधिनियम, 1933 (Wanger Payser Act, 1933) पास किया गया जिसके अन्तर्गत निःशुल्क राष्ट्रीय रोजगार सेवाएँ राज्यों के अधीन चलाई गईं। संघीय सरकार का कार्य विभिन्न राज्यों में कार्य करने वाली रोजगार सेवा संस्थाओं में समन्वय स्थापित करना था। 1915 से पहले निजी क्षेत्र में भी रोजगार सेवा संस्थाएँ थीं। इन्हें लाइसेंस लेना पड़ता था। अब इस प्रकार की निजी संस्थाओं का नियमन कानून के अन्तर्गत किया जाता है। प्रथम महायुद्ध काल में इन संस्थाओं ने महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय कार्य किया तथा काफी लाभ कमाया। तीसा

की महान् मन्दी के समय रोजगार कार्यालय बेरोजगार व्यक्तियों को लाभ प्रदान करने को प्राथमिकता देने का कार्य करते थे तथा नियुक्ति का कार्य गौण था। अधिकांश कर्मचारी जो इन कार्यालयों में काम करते थे उनका सम्बन्ध बेरोजगारी क्षतिपूर्ति प्रदान करना अधिक था और प्रार्थियों के लिए नौकरियाँ ढूँढना कम। रोजगार स्थानीय कार्यक्रम समझा जाता था जबकि क्षतिपूर्ति देने का कार्य सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत होने से राज्य से सम्बन्ध रखता था। इन दुविधाओं के कारण रोजगार सेवाओं में विभिन्न राज्यों में असमानताएँ रहीं।

अब राज्य रोजगार सेवाएँ बहुत कार्यकुशल हैं और पहले से इनका स्थान तथा महत्त्व समाज में अधिक है। सन् 1942 से 1946 तक इनका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। वे अब केन्द्रीय निर्देशन के अन्तर्गत कार्य करती हैं। उनको राज्य की मानवशक्ति नीतियों को क्रियान्वित करने हेतु काफी कोष प्रदान किया गया है।[1]

भारत में श्रम भर्ती के तरीके
(Method of Labour Recruitment in India)

श्रम की भर्ती श्रम के रोजगार में पहला कदम है। रोजगार की सफलता अथवा असफलता इस बात पर निर्भर है कि श्रमिकों को किस तरीके और संगठन द्वारा औद्योगिक क्षेत्रों में भर्ती किया जाता है। हमारे देश में श्रम भर्ती के सम्बन्ध में कोई वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं है। श्रम प्रशासन और श्रम प्रबन्ध में किसी प्रकार के सिद्धान्त लागू नहीं हो पाते हैं। हमारे देश में प्रारम्भ से ही श्रम की पूर्ति का एकमात्र स्रोत ग्रामीण क्षेत्र रहा है। श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से औद्योगिक क्षेत्रों में आते हैं और वे कार्य करके वापिस गाँव चले जाते हैं। हमारे देश में स्थायी श्रम-शक्ति का अभाव होने के कारण श्रमिकों की भर्ती हेतु कई तरीकों को काम में लेना पड़ा है। भारत में श्रमिकों की भर्ती के लिए प्रायः निम्नलिखित तरीके अपनाए जाते हैं—

(क) मध्यस्थों द्वारा भर्ती
(Recruitment through Intermediaries)

औद्योगिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में श्रमिकों की भर्ती हेतु मध्यस्थों की सहायता लेनी पड़ती थी। संगठित और असंगठित दोनों प्रकार के उद्योग श्रमिकों की भर्ती हेतु मध्यस्थों पर निर्भर थे। इन मध्यस्थों को विभिन्न प्रकार के नामों से पुकारा जाता है, जैसे जॉबर, सरदार, चौधरी, मुकद्दम, मिस्त्री, ठेकेदार आदि। बड़े कारखानों में महिला जॉबर्स भी होती हैं जो कि महिला श्रमिकों की भर्ती में सहायता करती हैं। ये जॉबर्स कारखाने में काम करने वाले पुराने और अनुभवी श्रमिक होते हैं जिन पर मालिकों का पूरा विश्वास होता है। ये बाहरी व्यक्ति नहीं होते हैं। ये मध्यस्थ ही श्रमिकों की भर्ती, पदोन्नति, प्रशिक्षण, छुट्टी स्वीकृत करने, नौकरी से हटाने, दण्डित करने, आवास व्यवस्था आदि के लिए उत्तरदायी होते हैं। इसके साथ ही ये श्रमिकों को समय-समय पर पेशगी देते हैं। इस प्रकार श्रमिक इन

1 *Phelps Orme, W.*: Introduction to Labour Economics, pp 352-53.

मध्यस्थों को अपना रक्षक समझते हैं जबकि मालिक भी श्रमिकों की शिकायत, रुचि आदि जानने के लिए मध्यस्थों पर निर्भर करते हैं। इन जॉबर्स के अधिकार उन कारखानों में अधिक होते हैं जहाँ पर कारखानों के मालिक विदेशी हैं क्योंकि वे श्रमिकों की भाषा को नहीं समझ पाते हैं।

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के गुण—श्रमिकों की भर्ती मध्यस्थों द्वारा करने पर निम्नांकित लाभ हैं—

1. मध्यस्थ श्रमिक और मालिकों के बीच एक कड़ी का कार्य करते हैं। दोनों पक्षों के बीच अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने में सहायक होते हैं।

2. मध्यस्थों द्वारा मालिकों को आवश्यकतानुसार समय पर श्रमिकों की भर्ती करवाई जा सकती है क्योंकि वे गाँवों से सम्पर्क रखते हैं। वे श्रमिकों की आदतों, रुचि आदि से परिचित होते हैं।

3. सरकार को भी मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों की भर्ती करवाने में सहायता मिलती है और सरकार इस कार्य हेतु कमीशन देती है।

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के दोष—मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों की भर्ती पद्धति के निम्नांकित दोष हैं—

1 **श्रमिकों का शोषण**—मध्यस्थों द्वारा जिन श्रमिकों की भर्ती की जाती है, उन श्रमिकों से रिश्वत के रूप में 'दस्तूरी' ली जाती है। जो श्रमिक अधिक घूँस देने के लिए तैयार हैं उन्हें भर्ती कर लिया जाता है। दूसरे दक्ष श्रमिकों को छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार के श्रमिकों से व्यक्तिगत सेवाएँ भी ये मध्यस्थ करवाते हैं। इनको मध्यस्थ अग्रिम राशि के रूप में ऋण देते हैं जिस पर ऊँची ब्याज-दर प्राप्त करके उनका शोषण करते हैं। स्त्री श्रमिकों का भी स्त्री जॉबर्स द्वारा शोषण किया जाता है और कभी-कभी उनको अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए भी बाध्य कर दिया जाता है क्योंकि अनेक स्त्री मध्यस्थ प्राय. निम्न चरित्र वाली होती है।

2 **अकुशलता को प्रोत्साहन**—श्रमिकों की भर्ती करते समय मध्यस्थ श्रमिकों की कार्यकुशलता को ध्यान में नहीं रखते बल्कि उनको रिश्वत में मिलने वाली राशि को ध्यान में रखते हैं और अकुशल श्रमिक जो उनके मित्र, सम्बन्धी होते हैं, भर्ती कर लिए जाते हैं। इससे उत्पादन में और अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय आय में गिरावट आती है।

3. **वर्ग संघर्ष**—मध्यस्थ श्रमिकों की भर्ती करते हैं। मालिक मध्यस्थों पर श्रमिकों की भर्ती हेतु तथा श्रमिक अपनी नौकरी हेतु मध्यस्थों पर निर्भर करते हैं। कभी-कभी मध्यस्थ श्रमिकों का गलत प्रतिनिधित्व करते है जिसके फलस्वरूप श्रमिकों और मालिकों में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इससे हड़तालें, तालाबन्दी, धीमे कार्य करने की प्रवृत्ति आदि बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

4. **अनुपस्थिति और श्रम परिवर्तन में वृद्धि**—मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों की भर्ती करने से उनका शोषण किया जाता है। श्रमिकों को गाँवों से बहका कर लाया

जाता है। वे शहर में आकर स्थायी रूप से नहीं बस पाते हैं तथा वापिस गाँव को चले जाते हैं। इसी प्रकार अधिक रिश्वत देने वाले श्रमिक की भर्ती और कम रिश्वत वाले श्रमिक को निकाल दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप श्रम-परिवर्तन (Labour Turnover) में वृद्धि हो जाती है। श्रमिकों का विभिन्न प्रकार से शोषण होने से भी वे गाँव चले जाते हैं और अनुपस्थित रहने लगते हैं।

शाही श्रम आयोग, 1931 (Royal Commission on Labour, 1931) के अनुसार श्रमिकों की मध्यस्थों द्वारा भर्ती की पद्धति के अन्तर्गत, "मध्यस्थों की स्थिति बड़ी सुदृढ़ है। यह कहना आश्चर्यजनक होगा कि इनके द्वारा श्रमिकों की स्थिति से लाभ नहीं उठाया जाता है। कुछ कारखाने ऐसे हैं जहाँ श्रमिकों की सुरक्षा मध्यस्थों के हाथ में नहीं है। अन्य उद्योगों में श्रमिकों को भर्ती करना और उनको नौकरी से हटाने के अधिकार मध्यस्थों को प्राप्त हैं। यह बुराई एक उद्योग से दूसरे उद्योग और एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र पर कुछ मात्रा तक भिन्न-भिन्न है। नौकरी लगाने हेतु रिश्वत तथा अनुपस्थिति के बाद फिर रोजगार देने हेतु भी रिश्वत प्राप्त की जाती है।"[1]

मध्यस्थों द्वारा भर्ती की वर्तमान स्थिति और भविष्य (Present position and future of the recruitment of Labour through intermediaries)—श्रमिकों की मध्यस्थों द्वारा की जाने वाली भर्ती का तरीका असन्तोषजनक व अवांछनीय है। हाल ही के वर्षों में इन मध्यस्थों के अधिकार छीनकर रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार को कम करने की दिशा में कदम उठाए गए हैं। बम्बई व शोलापुर जैसे केन्द्रों पर बदली श्रमिक की भर्ती पर नियन्त्रण लगाने के बावजूद भी इन मध्यस्थों को न तो पूर्ण रूप से समाप्त ही किया जा सका है और न भर्ती पर इनके प्रभाव को दूर किया गया है। "उत्तरी भारत मालिकों के संघ (North Indian Employers' Association) ने भी मध्यस्थों द्वारा भर्ती पद्धति में पाए जाने वाली रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार को स्वीकार किया है लेकिन उन्होंने असमर्थता प्रकट की कि रोजगार चालू रखने के लिए इसे कैसे समाप्त किया जा सकता है।"[2]

श्रम अनुसंधान समिति (Labour Investigation Committee, 1944) ने यह विचार प्रकट किया था कि हमारे श्रमिक अभी इतने गतिशील और विकास के स्तर पर नहीं पहुँच पाए हैं कि उनकी भर्ती मध्यस्थों के बिना ही सम्भव हो सके।

शाही श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि श्रमिकों की भर्ती और उनको कार्य से हटाने के जॉबर्स के अधिकारों को समाप्त कर देना चाहिए। इसके स्थान पर प्रत्येक कारखाने में श्रम अधिकारी अथवा जनरल मैनेजर द्वारा श्रमिकों की प्रत्यक्ष रूप से भर्ती की जाए।

हाल ही के वर्षों में श्रमिकों की भर्ती हेतु प्रत्येक कारखाने में 'बदली

1 Report of the Royal Commission on Labour, p. 24.
2 Saxena, R. C.: Labour Problems & Social Welfare, p. 31

प्रणाली' (Badli System) लागू कर दिया गया है। इसके साथ रोजगार कार्यालयों के माध्यम से भर्ती करना भी सरकार ने अनिवार्य कर दिया है।

(ख) ठेकेदारों द्वारा भर्ती

(Recruitment through Contractors)

अनेक भारतीय उद्योगों में श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारों के द्वारा होती है। जिस प्रकार हम अपने दैनिक कार्यों को पूरा करने के लिए ठेका दे देते हैं, वैसे ही कारखानों में भी ठेके द्वारा कार्य पूरा करवा लिया जाता है। श्रमिकों की यह भर्ती पद्धति इन्जीनियरिंग विभाग, राज्य तथा केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग, रेलवे सूती वस्त्र उद्योग, सीमेंट, कागज और खानों आदि उद्योगों में प्रचलित है।

इस प्रकार की भर्ती पद्धति के प्रचलन के कारणों में शीघ्र ही श्रमिकों की माँग पूरी हो जाना, कार्य शीघ्रता से पूरा करना, श्रमिकों की निगरानी की जरूरत न होना आदि प्रमुख हैं। इसके साथ ही कारखानों के मालिक श्रम अधिनियमों जैसे-कारखाना अधिनियम, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम और मातृत्व लाभ अधिनियम आदि नियमों को लागू करने से छूट जाते हैं और इससे उनको लाभ होता है। मालिकों को श्रम कल्याण पर भी व्यय न करने से वित्तीय लाभ प्राप्त होता है।

इस पद्धति के कई दोष भी हैं—

1 श्रमिक को कम मजदूरी दी जाती है क्योंकि उनकी भर्ती ठेकेदारों द्वारा की जाती है जो स्वयं भी उनकी भर्ती से लाभ कमाना चाहते हैं।

2 श्रमिकों से अधिक घण्टे कार्य लिया जाता है। इससे उनके स्वास्थ्य व कार्यकुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ने से उत्पादन में गिरावट आती है।

शाही श्रम आयोग ने इस पद्धति की आलोचना करते हुए सिफारिश की थी कि प्रबन्धकों को श्रमिकों के चयन, कार्य के घण्टे और श्रमिकों को भुगतान आदि पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहिए। बिहार श्रम जाँच समिति ने भी इस पद्धति को समाप्त करने की सिफारिश की है क्योंकि इसके द्वारा श्रमिकों की असहाय स्थिति का शोषण किया जाता है। बम्बई वस्त्र श्रम जाँच समिति ने भी यह सहमति प्रकट करते हुए कहा है कि ठेकेदारों द्वारा निम्न राशि पर ठेका प्राप्त किया जाता है तथा वे अपना व्यय कमाने हेतु श्रमिकों को बहुत कम मजदूरी देकर उनका शोषण करते हैं।

इन सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए हमें ठेके के श्रम के स्थान पर भर्ती का प्रत्यक्ष तरीका अपनाना चाहिए। सार्वजनिक निर्माण विभागों में ठेका श्रम एकमात्र आवश्यक है, वहाँ इसको नियमित किया जाना चाहिए। सभी कानून ठेका श्रम पर पूर्ण रूप से लागू किए जाने चाहिए। किसी भी स्थिति में ठेका श्रम को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत पाई जाने वाली मजदूरी से कम मजदूरी नहीं दी जानी चाहिए। अधिकांश औद्योगिक समितियों ने ठेका श्रम को समाप्त करने की सिफारिश की है।

श्रम अनुसंधान समिति (Labour Investigation Committee, 1944)

के अनुसार सभी प्रकार के ठेका श्रम को समाप्त नहीं करना चाहिए। जहाँ आवश्यक हो वहाँ इसको समाप्त नहीं करना चाहिए जैसे कारखाने मे दीवारों की पुताई, सार्वजनिक निर्माण विभाग के कार्य आदि। इसके अतिरिक्त जहाँ मालिक श्रम कानूनों से बचने के लिए श्रम का सहारा लेते हैं, उसे बिल्कुल ही समाप्त किया जाना चाहिए।"[1]

(ग) प्रत्यक्ष भर्ती पद्धति

(Direct Recruitment System)

कारखाना उद्योगो मे श्रमिको की भर्ती बडे पैमाने पर प्रत्यक्ष रूप से की जाती है। प्रत्यक्ष भर्ती बम्बई, मद्रास, पंजाब, बिहार और उडीसा राज्यो में प्रचलित है। इस पद्धति के अन्तर्गत कारखाने के दरवाजे पर नोटिस लगा दिया जाता है कि इतने श्रमिको की आवश्यकता है। जनरल मैनेजर स्वयं अथवा अन्य नियुक्त व्यक्ति दरवाजे पर आकर श्रमिको का चयन कर लेता है। कभी-कभी पहले से काम में लगे श्रमिको को यह सूचित कर दिया जाता है कि इतने श्रमिकों की आवश्यकता है। वे अपने दोस्तों, सम्बन्धियों आदि को इस विषय में सूचित कर देते हैं और वे निश्चित तिथि पर आ जाते हैं। यह पद्धति अकुशल श्रमिको के लिए उपयुक्त है। अर्द्ध-कुशल तथा कुशल श्रमिकों की भर्ती मे कठिनाई आती है। इनकी भर्ती या तो पदोन्नति द्वारा कर दी जाती है अथवा आवेदन-पत्र आमन्त्रित करके उनकी जाँच, परीक्षा व साक्षात्कार द्वारा चयन कर लिया जाता है। कुछ अनियन्त्रित कारखानो (Un-regulated Factories) मे भी इस पद्धति द्वारा श्रमिको की भर्ती की जाती हैं। उदाहरणार्थ बीड़ी बनाना, नारियल की चटाइयाँ बनाना आदि उद्योगों मे यह पद्धति अपनाई जाती है।

शाही श्रम आयोग ने मध्यस्थो द्वारा भर्ती के दोषो को समाप्त करने के लिए जनरल मैनेजर के अधीन श्रम अधिकारी (Labour Officer) नियुक्त करने की सिफारिश की थी। वर्तमान समय मे प्रत्यक्ष भर्ती हेतु इस प्रकार के श्रम अधिकारी सभी कारखानों व उद्योगों में नियुक्त कर दिए गए हैं।

(घ) बदली प्रथा

(Badli System)

इस पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक माह की पहली तारीख को कुछ चुने हुए लोगों को बदली कार्ड दे दिए जाते हैं। नियमित रूप से कारखाने मे आते रहते हैं और रिक्त स्थानों की पूर्ति हेतु इनको प्राथमिकता दी जाती है। यह प्रथा मध्यस्थो के द्वारा भर्ती के दोषो को दूर करने के लिए अपनाई गई है। इसके अन्तर्गत श्रमिक स्थायी, अस्थायी, बदली आदि वर्गों मे विभाजित किए जाते है।

(ङ) श्रम अधिकारियों द्वारा भर्ती

(Recruitment through Labour Officers)

शाही श्रम आयोग, 1931 ने मध्यस्थो द्वारा भर्ती के दोषों को समाप्त

1 Report of the Labour Investigation Committee, 1944, p. 81.

करने हेतु इस पद्धति की सिफारिश की थी। इसमे कारखानो मे श्रम अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं। इनका कार्य श्रमिको की भर्ती करना है। ये अधिकारी ग्रामीण क्षेत्रों मे जाकर भर्ती का कार्य करते हैं। लेकिन ये श्रमिको से अपरिचित होने के कारण उनका इतना विश्वास प्राप्त नही कर पाते है जितना कि स्थानीय परिचित व्यक्ति।

(च) श्रम संगठनों द्वारा भर्ती

(Recruitment through Trade Unions)

कुछ समठन कारखानो अथवा मिलो मे सुदृढ एवं सुसंगठित श्रम संघ होते है। इस संघो के पास रिक्त स्थानो की सूची होती है जो कि काम ढूँढने वालों को सूचित करके उनके नाम की सूची मालिक को पेश कर देते हैं। इससे उनकी भर्ती आसानी से की जा सकती है। ये अपने मित्रो तथा सम्बन्धियो को सूचित कर उनकी भर्ती करवा देते हैं।

(छ) रोजगार के दफ्तरो द्वारा भर्ती

(Recruitment through Employment Exchanges)

श्रमिको की भर्ती की विभिन्न पद्धतियाँ दोषपूर्ण हैं। वैज्ञानिक आधार पर श्रमिको की भर्ती करना किसी भी कारखाने की सफलता का आधार है। अतः रोजगार कार्यालयो की स्थापना की गई हैं जो श्रम की माँग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करके उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त व्यक्ति का चयन करने मे सहायक होते हैं।

आधुनिक सरकार कल्याणकारी सरकार है। उसका दायित्व न केवल प्राकृतिक साधनो बल्कि मानवीय साधनो का अधिकतम उपयोग कर राष्ट्रीय आय मे वृद्धि करके लोगो के जीवन-स्तर को उन्नत करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु आज विभिन्न देशों मे श्रमिकों की भर्ती हेतु रोजगार कार्यालय राष्ट्रीय रोजगार सेवा सगठन (National Employment Service Organisation) के अन्तर्गत स्थापित कर दिए गए हैं।

विभिन्न कारखानों में भर्ती

(Recruitment in Various Industries)

जहाँ तक कारखाना उद्योगो (Factory Industries) का सम्बन्ध है वहाँ श्रमिको की भर्ती प्रत्यक्ष रूप से की जाती है। बम्बई, मद्रास, पंजाब, बिहार और उडीसा राज्यो मे इसी प्रकार की पद्धति प्रचलित है। कारखाने मे रिक्त स्थानों की सूची लगा दी जाती है जिसे देखकर निश्चित तिथि पर श्रमिक कारखाने के दरवाजे पर आ जाते है जहाँ पर जनरल मैनेजर अथवा अन्य व्यक्ति द्वारा भर्ती कर ली जाती है। पुराने श्रमिको को भी रिक्त स्थानों की सूचना मिलने पर वे अपने मित्रो तथा सम्बन्धियो को इसकी सूचना दे देते है। यह पद्धति अकुशल श्रमिकों के लिए उपयुक्त है। अर्द्ध-कुशल और कुशल श्रमिको की भर्ती हेतु आवेदन-पत्र आमन्त्रित किए जाते हैं और उनका टेस्ट लेकर भर्ती की जाती है। बंगाल की अधिकांश जूट मिलो मे

प्रत्यक्ष भर्ती हेतु 'श्रम अधिकारी नियुक्त कर दिए गए हैं।' यह पद्धति लागू होने के बावजूद भी जॉबर्स अभी भी विद्यमान हैं।

चीनी कारखानों (Sugar Factories) में भर्ती का कार्य रिक्त स्थानों का नोटिस निकाल कर किया जाता है। तकनीकी तथा सुपरवाइजर श्रेणी के श्रमिकों को छोड़कर अन्य श्रमिकों को नौकरी से हटा दिया जाता है क्योंकि ये उद्योग मौसमी उद्योग हैं। इसके साथ ही उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इन उद्योगों में भर्ती सम्बन्धी विशेष आदेश भी निकाले जाते हैं।

रेलवे में भर्ती (Recruitment in Railways) विभिन्न विभागों में विभिन्न प्रकार से की जाती है। प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती या तो प्रत्यक्ष रूप से अथवा द्वितीय श्रेणी की पदोन्नति द्वारा की जाती है। तृतीय श्रेणी कर्मचारी की भर्ती रेल सेवा आयोग (Railway Service Commission) द्वारा की जाती है। निम्न और अकुशल श्रेणी के कर्मचारियों व श्रमिकों की भर्ती प्रत्यक्ष होती है। रेलवे में बड़ी संख्या में ठेका श्रम भी पाया जाता है।

खान उद्योग (Mining Industry) में भर्ती ठेकेदारों द्वारा की जाती है। खानों में कार्य करने हेतु श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से लाए जाते हैं। ये अस्थाई रूप से इस उद्योग में कार्य करते हैं।

कोयला उद्योग (Coal Industry) में भर्ती का सबसे पुराना तरीका जमींदारी पद्धति (Zamindari System) है। श्रमिकों को इन खानों के निकट मुफ्त या कुछ लागत पर भूमि कृषि के लिए दी जाती थी। लेकिन कृषि योग्य भूमि की सीमितता के कारण यह पद्धति सफल नहीं हो सकी। भर्ती वाले ठेकेदार (Recruiting Contractors) द्वारा भी इन खानों में श्रमिकों की भर्ती का कार्य किया गया। इनका कार्य श्रमिकों की पूर्ति करना मात्र था। प्रबन्धकीय ठेकेदार (Managing Contractors) द्वारा भी श्रमिकों की भर्ती की गई। ये न केवल श्रम की पूर्ति का कार्य करते थे बल्कि खानों के विकास और प्रबन्ध का कार्य भी करते थे। ये कोयला खानों से निकलवाने व उसे लदवाने का कार्य भी करते थे। युद्धकाल में कोयले की पूर्ति बढ़ाने तथा श्रम की कम पूर्ति के कारण सरकार ने भी ठेकेदारी का कार्य किया। एक न्यायिक जाँच (Court Enquiry), 1960 की सिफारिश के आधार पर ठेकेदारी पद्धति को धीरे-धीरे समाप्त करना स्वीकार किया गया। गोरखपुर श्रम संगठन (Gorakhpur Labour Organisation) का प्रशासन 1961 से रोजगार कार्यालय निदेशालय के अधीन स्थानान्तरित कर दिया गया है।

लोहे की खानों (Iron-ore Mines) में भर्ती प्रत्यक्ष तथा ठेकेदारी पद्धतियों के आधार पर की जाती है। स्थानीय श्रम की भर्ती प्रत्यक्ष रूप से निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से की जाती है। पुराने श्रमिकों को सूचित कर दिया जाता है और वे अपने मित्रों, सम्बन्धियों व परिवार वालों को इस भर्ती के लिए सूचित कर देते हैं। ठेके के कार्य हेतु श्रमिकों की भर्ती 'सरदारों' (Sardars) द्वारा की जाती है।

अभ्रक खानो (Mica Mines) मे भर्ती सरदारों द्वारा की जाती है। उन्हें ग्रामीण क्षेत्रों मे भेजकर इच्छुक श्रमिको की भर्ती करने का कार्य सौंपा जाता है। इन सरदारों को कोई दलाली नही दी जाती बल्कि उनकी मजदूरी इस बात पर निर्भर करती है कि उन्होने कितने श्रमिको की भर्ती की है। इन खानों मे 82·6% प्रत्यक्ष रूप से तथा 17% ठेकेदारो द्वारा भर्ती की जाती है।

संक्षेप मे खान उद्योग मे श्रमिकों की भर्ती खान स्वामियो द्वारा प्रत्यक्ष रूप से, मध्यस्थो द्वारा और रोजगार दफ्तरो के माध्यम से की जाती है।

बागानों मे श्रम (Labour in Plantations) की भर्ती विभिन्न रूपो मे की जाती है। आसाम के बगानो मे श्रमिको की भर्ती चाय वितरक समझौता श्रम अधिनियम, 1932 (Tea Distributors Agreement Labour Act, 1932) के अन्तर्गत की जाती है। यह पूर्ति निकटवर्ती प्रदेशो—प. बंगाल, उडीसा, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश से की जाती है। श्रमिको की भर्ती हेतु चाय जिला श्रम सघ (Tea Districts Labour Association) स्थापित किए गए हैं। इनके माध्यम से श्रमिक बगानों में भेजे जाते हैं।

चाय के बागानो मे श्रम भर्ती के तीन तरीके हैं—

(i) सिरदारी प्रणाली (Sirdari System) के अन्तर्गत श्रमिक स्थानीय प्रेषण एजेन्सी (Local Forwarding Agency) द्वारा भर्ती करने वाले जिलो को भेज दिए जाते हैं।

(ii) स्थानीय भर्ती करने वालों द्वारा (Through Local Recruiters) श्रमिको की भर्ती हेतु मालिक द्वारा स्थानीय व्यक्तियो को श्रमिको की भर्ती हेतु नियुक्त कर दिया जाता है।

(iii) पूल पद्धति (Pool System) के अन्तर्गत श्रम भर्ती स्थानीय प्रेषण एजेन्सी के माध्यम से होती है। श्रमिक इन स्थानीय एजेन्सियो के पास चले जाते हैं और वहां श्रम के क्रेता उनकी भर्ती कर लेते है।

1 दिसम्बर, 1960 से रोजगार दफ्तर अधिनियम इन बागानो पर लागू कर दिए गए है। मैसूर राज्य मे भर्ती का कार्य न केवल रोजगार कार्यालयो द्वारा ही होता है बल्कि मालिको द्वारा भी यह कार्य किया जाता है।

रोजगार कार्यालय (रिक्त स्थानो की अनिवार्य सूचना) अधिनियम, 1951 पास करके सभी उद्योगो पर लागू कर दिया गया है। सभी मालिको को रिक्त स्थानो की सूचना देना अनिवार्य कर दिया है। 25 या अधिक श्रमिक लगाने वाले मालिको पर यह लागू होता है। इसका उल्लंघन करने पर प्रथम बार 500 रु तथा दूसरी बार 1000 रु. जुर्माना करने का प्रावधान है।

भारत में रोजगार सेवा संगठन
(Employment Service Oraganisation in India)

रोजगार कार्यालय श्रमिको की वैज्ञानिक भर्ती को प्रोत्साहित करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। ये श्रमिको और मालिको के बीच एक कड़ी का कार्य करते

है जिससे श्रम की माँग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित हो जाए। ये उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त व्यक्ति की नियुक्ति करने में सहायक होते है। यद्यपि रोजगार कार्यालय रोजगार अवसरों में वृद्धि नहीं करते हैं फिर भी ये घर्षणात्मक बेकारी (Frictional Unemployment) को कम करने में सहायक होते है। इनसे श्रम की गतिशीलता में वृद्धि होती है, उनकी कार्यकुशलता बढ़ती है और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन (I. L. O) ने सन् 1919 के प्रस्ताव द्वारा यह सिफारिश की थी कि प्रत्येक सदस्य देश द्वारा एक निःशुल्क रोजगार सेवा शुरू की जानी चाहिए। भारत ने इस प्रस्ताव को सन् 1921 में स्वीकार किया था। शाही श्रम आयोग ने सन् 1929 में इस प्रकार की सेवा शुरू करने की योजना को अनुपयोगी व अनुपयुक्त बताया क्योंकि उस समय श्रमिकों की भर्ती करने में कोई कठिनाई नहीं थी। श्रमिकों की पूर्ति उनकी माँग की तुलना में अधिक थी। लेकिन श्रम अनुसन्धान समिति, श्रम संघों और मालिकों तथा अन्य समितियों ने इस प्रकार की सेवा शुरू करने पर जोर दिया।

दूसरे महायुद्ध में तकनीकी और कुशल श्रमिकों की कमी महसूस की गई और इनकी भर्ती हेतु 9 रोजगार कार्यालयों की स्थापना की गई। इन कार्यालयों का कार्य तकनीकी प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत आर्मी और युद्ध कारखानों हेतु तकनीकी श्रमिकों को प्रशिक्षण देना था। सन् 1945 में महायुद्ध समाप्त हो गया। युद्ध में लगे श्रमिक बेरोजगार हो गए। अतः युद्धोपरान्त पुनर्वास व पुनर्निर्माण हेतु इन दफ्तरों द्वारा कार्य लिया गया। इस समस्या के समाधान के लिए पुनर्स्थापन और रोजगार निदेशालय (Directorate of Resettlement & Employment) की स्थापना 70 रोजगार दफ्तरों के साथ की गई। सन् 1984 में इन रोजगार दफ्तरों के कार्यों में वृद्धि करके सभी प्रकार के श्रमिकों को इसके अन्तर्गत लाया गया। नई दिल्ली स्थित केन्द्रीय कार्यालय अन्तर्राज्यीय कार्यालयों का समन्वय कार्य करता है।

रोजगार कार्यालयों की शिवा राव समिति का प्रतिवेदन
(Shiva Rao Committee's Report on Employment Exchanges)

रोजगार कार्यालयों के कार्यों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उनका पुनर्गठन करना आवश्यक समझा गया। इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु योजना आयोग के सुझाव पर भारत सरकार ने सन् 1952 में श्री बी. शिवा राव, एम. पी. की अध्यक्षता में एक प्रशिक्षण और रोजगार सेवा संगठन समिति (Training & Employment Service Organisation Committee) नियुक्त की गई। इसमें श्रमिकों और मालिकों के प्रतिनिधि भी शामिल किए गए। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट सन् 1954 में दी। इस समिति की सिफारिशें अग्रांकित थी—

1. रोजगार कार्यालय संगठन के स्थान पर इसका नाम राष्ट्रीय रोजगार सेवा के रूप में स्थाई संगठन के रूप में चलाई जाए। मालिकों द्वारा अकुशल श्रमिकों को छोड़कर अन्य श्रमिकों की रिक्त जगह अनिवार्य रूप से घोषित की जाए।

2. इन कार्यालयों का नीति-निर्धारण, प्रमापीकरण और समन्वय आदि का दायित्व केन्द्रीय सरकार का हो, लेकिन नित्य प्रतिदिन का प्रशासन राज्य सरकारों को दे दिया जाना चाहिए।

3. केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों द्वारा चलाए जाने वाले रोजगार कार्यालयों के कुल व्यय का 60% वहन करना चाहिए।

4. श्रमिकों को अपना पंजीयन कराने की स्वतन्त्रता हो और उनसे कुछ भी नहीं लिया जाए।

समिति ने अकुशल श्रमिकों के पंजीयन के लिए कोई सुझाव नहीं दिया क्योंकि इससे रोजगार कार्यालयों का कार्यभार बढ़ जाएगा, लेकिन इसके पंजीयन के अभाव में देश में मानवीय शक्ति का सही अनुमान कैसे लगाया जा सकेगा।

भारत में रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय का संगठन[1]

पुनर्वास तथा रोजगार महानिदेशालय (जिसे अब रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय कहा जाता है) जुलाई, 1945 में सृजित किया गया था, जिसका उद्देश्य भूतपूर्व सैनिकों को प्रशिक्षित तथा पुनर्वासित करना था। देश के विभाजन के पश्चात् विस्थापित व्यक्तियों के प्रशिक्षण तथा पुनर्वास को शामिल करके इसके कार्य-क्षेत्र में वृद्धि की गई थी। जनता की बढ़ती माँग को पूरी करने के लिए, भारत सरकार ने 1948 के शुरू में रोजगार सेवा को सभी रोजगार चाहने वालों के बारे में और प्रशिक्षण सेवा को 1950 में सभी असैनिकों पर लागू कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप इसका कार्य-भार बहुत अधिक बढ़ गया था। चूंकि रिलीज किए गए युद्ध सेवा कार्मिकों और विस्थापित व्यक्तियों को पुनर्वास की आकस्मिक समस्या से निपटने के लिए संगठन को जल्दी से स्थापित किया गया था, इसलिए इसके पुनर्निर्माण की आवश्यकता थी, यदि इसे नियुक्ति तथा प्रशिक्षण के लिए एक कारगर तन्त्र के रूप में कार्य करना था। तदनुसार, देश के आर्थिक तथा सामाजिक विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं के सन्दर्भ में डी. जी. आर. एण्ड ई. को जारी रखने की आवश्यकता का मूल्यांकन करने और ऐसी आवश्यकताओं के सन्दर्भ में यह सुझाव देने के लिए कि इसका भावी आकार क्या होना चाहिए, प्रशिक्षण तथा रोजगार सेवा समिति (शिव राव समिति) 1952 में स्थापित की गई थी। इस समिति की सिफारिशों पर, रोजगार कार्यालयों और औद्योगिक

1. श्रम मन्त्रालय (रोजगार एवं प्रशिक्षण), भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट, 1986-87, पृष्ठ 4.

प्रशिक्षण संस्थानों का दैनिक प्रशासनिक नियन्त्रण राज्य सरकारों/संघ शासित क्षेत्र प्रशासनों को 1-11-1956 से हस्तान्तरित कर दिया गया था। संगठन की लागत पर होने वाले खर्च का 60 प्रतिशत तक खर्च केन्द्र द्वारा और शेष राज्य सरकारों द्वारा 31-3-1969 तक वहन किया जाता रहा था, जिसके बाद राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा मई, 1968 में हुई अपनी बैठक में लिए गए निर्णय के परिणामस्वरूप यह व्यवस्था बन्द कर दी गई थी। अत: जनशक्ति एवं रोजगार योजनाओं और शिल्पकार प्रशिक्षण योजनाओं (औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों) के लिए पूर्ण वित्तीय जिम्मेदारी भी राज्य सरकारों/संघ शासित क्षेत्र के प्रशासनों को 1-4-1969 से हस्तान्तरित कर दी गई थी।

सितम्बर, 1981 में श्री पी सी नायक की अध्यक्षता में रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय का पुनर्गठन सम्बन्धी एक कार्य दल गठित किया गया था, जिसका कार्य रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय के उद्देश्यों तथा कार्यकरण की पुनरीक्षा करना और इस संगठन को अपनी जिम्मेदारियाँ निभाने में और अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए उपाय सुझाना, कमियों, यदि कोई हो, का पता लगाना तथा उन्हें दूर करने के लिए उपाय-सुझाना था। कार्य दल ने अपनी रिपोर्ट 11-1-1982 को प्रस्तुत की। कार्य दल द्वारा की गई सिफारिशों की जाँच की गई है और अनुवर्ती कार्यवाही की गई है।

प्रत्येक क्रमिक पचवर्षीय योजना के साथ केन्द्र तथा राज्यों में रोजगार सेवा और प्रशिक्षण सेवा के कार्यकलापों में विस्तार होता रहा है। दिसम्बर, 1986 तक कार्य कर रहे रोजगार कार्यालयों और औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों (सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों) की कुल संख्या क्रमशः 821 और 1724 थी।

क्षेत्र कार्यालय दर्शाते हुए संगठनात्मक संरचना का विवरण

रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय भारत में एक ऐसा शीर्ष संगठन है जो राष्ट्रीय आधार पर, रोजगार सेवा और महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण सहित, व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना से सम्बन्धित कार्यक्रमों का विकास तथा समन्वय करने के लिए उत्तरदायी है। तथापि, रोजगार कार्यालयों और औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों का प्रशासनिक तथा वित्तीय नियन्त्रण राज्य सरकारों/संघ शासित क्षेत्र प्रशासनों द्वारा किया जाता है। रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशक तथा भारत सरकार के संयुक्त सचिव है, जो सीधे श्रम सचिव के प्रति उत्तरदायी हैं। रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय के मुख्यालय में रोजगार निदेशालय, प्रशिक्षण निदेशालय, शिक्षुता प्रशिक्षण निदेशालय और सचिवालय विंग शामिल हैं।

रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय के अधीन कार्य करने वाले अधीनस्थ कार्यालयों का ब्यौरा आगे दिया गया है—

(क) रोजगार निदेशालय

1 केन्द्रीय रोजगार सेवा अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली।

2–15 14 विकलांग व्यावसायिक पुनर्वास केन्द्र—बम्बई, हैदराबाद, जबलपुर, दिल्ली, कानपुर, लुधियाना, कलकत्ता, मद्रास, अहमदाबाद, त्रिवेन्द्रम, बंगलौर, गोहाटी, जयपुर और भुवनेश्वर।

16–33 अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति सम्बन्धी 18 अध्ययन एवं मार्गदर्शन केन्द्र—दिल्ली, जबलपुर, कानपुर, मद्रास, कलकत्ता, सूरत, हैदराबाद, त्रिवेन्द्रम, जयपुर, रांची, इम्फाल, एजवल, बंगलौर, हिसार, राउरकेला, नागपुर, गोहाटी और मण्डी।

(ख) प्रशिक्षण निदेशालय

1–6 छः उच्च प्रशिक्षण संस्थान—कलकत्ता, मद्रास, कानपुर, हैदराबाद, लुधियाना और बम्बई।

7 केन्द्रीय अनुदेशक प्रशिक्षण संस्थान, मद्रास।

8–9 इलैक्ट्रॉनिक्स तथा प्रोसेस इन्स्ट्रूमेण्टेशन सम्बन्धी 2 उच्च प्रशिक्षण संस्थान, हैदराबाद और देहरादून।

10 केन्द्रीय कर्मचारी प्रशिक्षण तथा अनुसन्धान संस्थान, हावड़ा।

11–16 छ. क्षेत्रीय शिक्षुता प्रशिक्षण, निदेशालय—बम्बई, कानपुर, कलकत्ता, मद्रास और हैदराबाद तथा फरीदाबाद।

17 राष्ट्रीय महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली।

18–20 तीन क्षेत्रीय महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान—बम्बई, बंगलौर और त्रिवेन्द्रम।

21–23 फोरमैन प्रशिक्षण संस्थान—बंगलौर और जमशेदपुर।

24–27 चार आदर्श औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान—हल्द्वानी (उत्तर प्रदेश), कालीकट (केरल), चौदवार (उड़ीसा) और जोधपुर (राजस्थान)।

(विकलांग महिला व्यावसायिक पुनर्वास केन्द्र अगरतला तथा बड़ोदा और क्षेत्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान हिसार, कलकत्ता तथा तुरा स्वीकृति किए गए हैं)।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा की कार्य-प्रगति[1]

हमारे देश मे रोजगार सेवा 1945 में प्रारम्भ की गई थी और आज इसके अधीन देश भर मे रोजगार कार्यालयो का जाल-सा बिछा हुआ है। 1986 के अन्त मे देश मे राष्ट्रीय रोजगार सेवा मे 821 रोजगार कार्यालय थे, जबकि 1985 मे इनकी सख्या 800 थी। इस नेटवर्क मे 80 विश्वविद्यालय रोजगार सूचना एवं मार्गदर्शन केन्द्र (यू ई. आई. जी. बी.), 16 व्यावसायिक और कार्यकारी रोजगार कार्यालय, 7 कोयला-खान रोजगार कार्यालय, 10 परियोजना रोजगार कार्यालय, विकलांगो हेतु 23 विशेष रोजगार कार्यालय और बागान श्रमिको के लिए एक विशेष रोजगार कार्यालय शामिल थे।

कार्यकलाप के विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय रोजगार सेवा का निष्पादन निम्नलिखित पैराग्राफो में दर्शाया गया है।

रोजगार कार्यालयो का मुख्य कार्य रोजगार चाहने वाले व्यक्तियो का पजीकरण करना और नियोजको द्वारा अधिसूचित रिक्तियो पर उनकी नियुक्तियाँ करवाना है। इस सम्बन्ध में 1985 की तुलना मे 1986 के दौरान किए गए कार्य का आम अन्दाजा निम्नलिखित विवरण से लगाया जा सकता है—

(लाखो में)

कार्यकलाप	1985	1986
पजीकरण	58·22	55·35
अधिसूचित रिक्तियाँ	6 75	6·23
किए गए संप्रेषण	53·88	53·13
की गई नियुक्तियाँ	3·89	3 51

1986 के अन्त मे रोजगार कार्यालयो के चालू रजिस्टर पर रोजगार चाहने वालो की कुल सख्या 301 30 लाख थी, यह सख्या वर्ष के प्रारम्भ की तुलना से 14 7 प्रतिशत अधिक थी।

जनवरी से दिसम्बर, 1986 की अवधि के दौरान रोजगार कार्यालयों द्वारा किए गए पंजीकरणो, रिक्ति अधिसूचनाओ, नियुक्तियो और विभिन्न राज्यो तथा सघ शासित क्षेत्रों में वर्ष के अन्त में रोजगार कार्यालयों के चालू रजिस्टर पर आवेदको के बारे मे आँकड़े आगे दिए गए है।

1 भारत सरकार, श्रम मन्त्रालय (रोजगार एव प्रशिक्षण) की वार्षिक रिपोर्ट, 1986-87.

विभिन्न राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में रोजगार कार्यालयों और विश्वविद्यालय रोजगार सूचना एवं मार्गदर्शन केन्द्रों द्वारा 1986 के दौरान किया गया कार्य

(हजारों में)

क्रमांक	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	1986 के अन्त में रोजगार कार्यालयों और यू. ई. आई. जी. बी. की संख्या		जनवरी-दिसम्बर, 1986 के दौरान किए गए पंजीकरण की संख्या	जनवरी-दिसम्बर, 1986 के दौरान अधिसूचित रिक्तियों की संख्या	जनवरी-दिसम्बर, 1986 के दौरान संप्रेषण की संख्या	जनवरी-दिसम्बर, 1986 के दौरान की गई नियुक्तियों की संख्या	जनवरी-दिसम्बर, 1986 के अन्त में चालू रजिस्टर पर दर्ज अभ्यर्थियों की संख्या
		रोजगार कार्यालय	यू. ई. आई. जी. बी.					
1	2	3	4	5	6	7	8	9
राज्य								
1.	आन्ध्र प्रदेश	30	3	291·7	46·1	495 2	19·8	2461·8
2.	असम	44	3	209 1	12·6	150·3	5·2	812·3
3.	बिहार	55	6	553·3	33 7	312·3	22·7	2914·5
4.	गुजरात	35	6	162·8	32·3	199·1	12·9	877·1

1	2	3	4	5	6	7	8	9
5.	हरियाणा	84	3	217.4	36·0	218·5	14·7	492 8
6.	हिमाचल प्रदेश	14	1	79 3	11·1	252 1	7 0	346 8
7.	जम्मू व कश्मीर	14	—	37·8	2·9	23·8	1·9	106·8
8.	कर्नाटक	31	6	176·5	25·1	172·3	9·3	1084 7
9.	केरल	33	4	343·7	32 2	155·3	15·3	2704 9
10.	मध्य प्रदेश	55	8	401·3	38·1	215·8	23 2	1772 0
11.	महाराष्ट्र	38	5	529·3	70·8	536·5	38·1	2876 6
12.	मणिपुर	9	—	41·7	4·0	39·7	0·9	258 8
13.	मेघालय	7	—	5·6	0·8	4·6	0·2	22·7
14.	नागालैंड	4	—	4·3	0·6	5 5	0·4	20·4
15.	उड़ीसा	20	4	204 4	21·3	322·9	15·4	856 8
16.	पंजाब	37	3	233·6	25·2	229 6	7·3	609·6
17.	राजस्थान	28	3	191·1	30 0	275·9	17·4	840·1
18.	सिक्किम							
19.	तमिलनाडु	29	3	481·5	64·5	845·6	50·9	2444·8
20.	त्रिपुरा	4	—	14·4	2·4	15·5	2 0	107·4
21.	उत्तर प्रदेश	79	14	742·0	50·3	369·9	31·8	3250·8
22.	पश्चिमी बंगाल	65	4	389 6	23·7	170·4	9 4	4252·6

1	2	3	4	5	6	7	8	9
संघ राज्य क्षेत्र								
1.	अण्डमान व निकोबार द्वीपसमूह	1	—	3 5	2 1	13·1	0 4	15 2
2.	अरुणाचल प्रदेश							
3.	चण्डीगढ़	1	1	23 3	3·9	32·1	1·7	132 8
4	दादरा व नागर हवेली	1	—	—	—	—	—	—
5.	दिल्ली	17	3	163·3	37 0	173 0	41 5	680·8
6.	गोवा दमन व दीव	1	—	16 9	4 0	39·5	0·7	66 8
7.	लक्षद्वीप	1	—	0·7	0·2	1·3	@	6 6
8.	मिजोरम	3	—	7·7	2 5	19·1	0·6	30·6
9.	पांडिचेरी	1	—	9·4	2·3	23·8	0·4	84·1
10	केन्द्रीय रोजगार कार्यालय	—	—	—	·8 1	—	—	—
अखिल भारत जोड़		741	80	5535 4	623 4	5312·6	351·3	30131·2

नोट—1. * कोई रोजगार कार्यालय कार्य नहीं कर रहा है।

2. ** इस संघ राज्य क्षेत्र मे एक रोजगार कार्यालय कार्य कर रहा है लेकिन आंकड़े प्राप्त नही हो रहे हैं।

3. @ आंकड़े 50 से कम हैं।

4. ऐसा हो सकता है कि पूर्णांकन के कारण संख्याएँ जोड़ से मेल नहीं खाती हों।

रोजगार चाहने वाले शिक्षित व्यक्ति

रोजगार चाहने वाले पंजीकृत व्यक्तियों में से लगभग आधे शिक्षित (मैट्रिकुलेट तथा इससे ऊपर) हैं। रोजगार चाहने वाले शिक्षित व्यक्तियों की संख्या 1985 के अन्त में 139·76 लाख थी, जबकि पिछले वर्ष यह संख्या 125·36 लाख थी। 1984 की तुलना में 1985 के दौरान रोजगार कार्यालयो द्वारा रोजगार चाहने वाले शिक्षित व्यक्तियों को प्रदान की गई रोजगार सहायता की पुनरीक्षा निम्नलिखित सारणी में प्रस्तुत की गई है—

(लाखों में)

शैक्षणिक स्तर	पंजीकरण		नियुक्तियाँ	
	1984	1985	1984	1985
मैट्रिकुलेट	19 23	18 13	0 89	0·79
मैट्रिकुलेशन से ऊपर परन्तु डिग्री से कम	8 18	8 17	0·42	0 38
स्नातक तथा स्नातकोत्तर	6·31	5·72	0·47	0 47
रोजगार चाहने वाले सभी शिक्षित व्यक्ति	33·72	32·03	1·78	1 63

नोट—पूर्णाङ्कों के कारण जोड़ मेल नहीं भी खा सकते।

जून, 1986 के अन्त मे रोजगार चाहने वाले शिक्षित व्यक्तियो की संख्या 150·88 लाख थी। जनवरी-जून, 1986 के दौरान, चालू रजिस्टर पर मैट्रिकुलेटो की संख्या 80·45 लाख से बढ़कर 86 83 लाख हो गई, मैट्रिकुलेशन से ऊपर परन्तु स्नातक से कम शिक्षा प्राप्त करने वालो की संख्या 35·30 लाख से बढ़कर 38·06 लाख हो गई और स्नातको तथा स्नातकोत्तरो की संख्या 24·00 लाख से बढ़कर 26·00 हो गई। जनवरी-जून, 1986 के दौरान रोजगार चाहने वाले कुल 13 59 लाख व्यक्ति पंजीकृत किए गए और 0·74 लाख नौकरी पर लगाए गए।

विशिष्ट वर्गों के रोजगार चाहने वाले व्यक्ति

रोजगार कार्यालयों द्वारा विशिष्ट वर्गों के रोजगार चाहने वाले व्यक्तियों जैसे अनुसूचित जाति एव अनसूचित जनजाति, विकलांगों और महिलाओ को प्रदान की गई सहायता पर चर्चा अगले अध्याय में की गई है।

रोजगार कार्यालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959

रोजगार कार्यालय (रिक्तियो की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959 जो पहली मई, 1960 से लागू हुआ, सरकारी क्षेत्र के सभी प्रतिष्ठानो और निजी

क्षेत्र के गैर-कृषि कार्यकलापो से लगे हुए ऐसे प्रतिष्ठानो पर लागू होता है जिनमें 25 या अधिक श्रमिक नियोजित हैं। अधिनियम के अधीन नियोजको के लिए यह अनिवार्य है कि वे अपने प्रतिष्ठानों में उत्पन्न होने वाले रिक्त स्थानो (अधिनियम के अन्तर्गत छूट प्राप्त रिक्त स्थानो को छोडकर) को निर्धारित रोजगार कार्यालयों को अधिसूचित करें और अपनी स्थापनाओ मे रोजगार तथा रिक्तियो के बारे में कुछ धावधिक विवरणियाँ भेजें।

मार्च, 1986 के अन्त मे यह अधिनियम 1·72 लाख प्रतिष्ठानो पर लागू था, जबकि मार्च, 1985 के अन्त मे यह अधिनियम, 1·68 लाख प्रतिष्ठानो पर लागू था। इनमे से 1·30 लाख प्रतिष्ठान सरकारी क्षेत्र मे थे और 0·42 लाख प्रतिष्ठान निजी क्षेत्र मे थे।

अधिनियम के उपबन्धो को लागू करने के लिए 18 राज्यो/संघ शासित क्षेत्रों में विशेष प्रवर्तन मशीनरी स्थापित की गई है। रोजगार अधिकारी अधिनियम के कार्यान्वयन में विभिन्न अनुनयी तरीकों तथा प्रचार के माध्यम से नियोजको का सहयोग प्राप्त करने हेतु, लगातार प्रयास भी करते हैं। तथापि, लगातार तथा अभ्यस्त दोषी नियोजको के मामले मे अभियोजन चलाए जाते हैं। विभिन्न राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों से प्राप्त तिमाही रिपोर्टों के मूल्यांकन से यह पता चला है कि सरकारी तथा निजी दोनों क्षेत्रो मे अधिकांश नियोजको ने अधिनियम के उपबन्धों का अनुपालन किया।

रोजगार कार्यालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) नियम, 1960 में विभिन्न फोरमो मे की गई सिफारिशो के आधार पर समय-समय पर संशोधन किए गए थे और संशोधनो के बारे मे अधिसूचनाएँ भारत के राजपत्र मे प्रकाशित की गई थी।

केन्द्रीय रोजगार कार्यालय, दिल्ली

रोजगार कार्यालय (रिक्तियो की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959 तथा तदधीन बनाए गए नियमों के अधीन, केन्द्रीय सरकार से 425 रुपए (बिना संशोधन) और इससे ऊपर कम मूल वेतन वाली वैज्ञानिक तथा तकनीकी स्वरूप की सभी रिक्तियो को केन्द्रीय रोजगार कार्यालय, दिल्ली को अधिसूचित करना होता है, जो इन रिक्तियों को देश के विभिन्न रोजगार कार्यालयो मे परिचालित करता है और यदि आवश्यक हो तो उन्हें समाचार-पत्रो मे विज्ञापित करता है।

1986 के दौरान, कुल 8095 रिक्तियाँ केन्द्रीय रोजगार कार्यालय को अधिसूचित की गईं, जिनमे से 1611 रिक्तियाँ अनुसूचित जातियो के लिए और 1076 रिक्तियाँ अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित थीं। ये रिक्तियाँ 521 नियोजकों द्वारा अधिसूचित की गई थी, जिनसे से केन्द्रीय सरकार के 416 कार्यालय और 163 अर्द्ध-सरकारी तथा अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम थे। कुल 3407 रिक्तियाँ देश के सभी रोजगार कार्यालयो मे उपयुक्त उम्मीदवार प्रायोजित करने

के लिए परिचालित की गईं, जिनमे से 613 अनुसूचित जाति और 368 अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित थीं। इसके अतिरिक्त, ऐसी रिक्तियो का व्यापक परिचालन करने के लिए 884 अनुरोध विभिन्न रोजगार कार्यालयो को प्राप्त हुए, जिनके लिए उपयुक्त उम्मीदवार स्थानीय रोजगार कार्यालयो के पास उपलब्ध नही थे।

केन्द्रीय सरकार की ऐसी रिक्तियां जिन्हें भरना कठिन होता है तथा उनका व्यापक परिचालन करने की जरूरत होती है, सितम्बर, 1968 में चालू योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय रोजगार कार्यालय के माध्यम से अखिल भारतीय आधार पर विज्ञापित की जाती हैं। 1986 के दौरान 2 विशेष विज्ञापनों सहित 54 विज्ञापन जारी किए गए- जिनमें 4782 रिक्तियां शामिल थी। इनमें से 980 रिक्तियां अनुसूचित जाति के लिए, 635 रिक्तियां अनुसूचित जनजाति के लिए और 101 रिक्तियां विकलांगों के लिए आरक्षित थी। 237 नियोजकों द्वारा केन्द्रीय रोजगार कार्यालय को अधिसूचित की गई 237 रिक्तियां सम्बन्धित रोजगार कार्यालयो को स्थानान्तरित की गई थी क्योंकि वे सी. ई. ई. के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नही आती थीं। इसके अतिरिक्त, 515 नियोजको ने रोजगार कार्यालय (रिक्तियो की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम के अन्तर्गत रिक्तियां अधिसूचित की, जिन्हे उनके द्वारा सीधे विज्ञापित किया गया।

फालतू/छँटनी घोषित किए गए केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की नियुक्ति करना

रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय का एक विशेष सैल वित्त मन्त्रालय के कर्मचारी निरीक्षण एकक द्वारा की गई सिफारिशों के कार्यान्वयन अथवा प्रशासनिक सुधार लागू करने के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार के प्रतिष्ठानो के फालतू घोषित किए गए ग्रुप 'घ' के कर्मचारियों को रोजगार सहायता प्रदान करने के लिए उत्तरदायी है। इस सैल में 1 जनवरी, 1986 को 32 फालतू कर्मचारी थे तथा जनवरी-दिसम्बर, 1986 की अवधि के दौरान सारे देश के केन्द्रीय सरकार के विभिन्न कार्यालयों से ग्रुप 'घ' के कुल 198 अन्य कर्मचारियों के फालतू होने की सूचना प्राप्त हुई थी। इसी अवधि के दौरान, विशेष सैल द्वारा 197 कर्मचारी वैकल्पिक रोजगार मे नामोदिष्ट/नियुक्त किए गए थे और दिसम्बर, 1986 के अन्त मे फालतू घोषित किए गए केवल 33 कर्मचारी रोजगार सहायता की प्रतीक्षा मे थे। विशेष सैल ग्रुप 'घ' मे ऐसे कर्मचारियों को पुनः नियोजित करने के लिए जिम्मेदार है जिन्होने कम से कम 3 वर्ष की सेवा की हो और जिनकी केन्द्रीय सरकार के संगठनो को समाप्त कर देने के कारण छँटनी कर दी जाती है।

रोजगार बाजार सूचना

सीमाक्षेत्र तथा विस्तार—रोजगार बाजार सूचना (रो. बा. सू.) कार्यक्रम के अन्तर्गत रोजगार के स्तरो के सम्बन्ध में आंकड़े त्रिमासिक तौर पर रोजगार

कार्यालयो द्वारा एकत्र किए जाते है। इस ई. एम. आई. कार्यक्रम के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था का केवल संगठित क्षेत्र आता है, नामत :–

(1) सरकारी क्षेत्र के सभी प्रतिष्ठान, और
(2) निजी क्षेत्र के ऐसे गैर-कृषि प्रतिष्ठान, जिनमे 10 या इससे अधिक श्रमिक नियोजित हैं।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित क्षेत्र नही आते हैं—

(1) निजी क्षेत्र मे कृषि और सम्बद्ध कार्यकलाप/सचालन, बागान को छोड़कर जिन्हे स्वैच्छिक आधार पर शामिल किया गया है,
(2) घरेलू प्रतिष्ठान,
(3) निजी क्षेत्र मे ऐसे प्रतिष्ठान जिनमे 10 से कम श्रमिक नियोजित हो,
(4) स्वरोजगार अथवा स्वतन्त्र कर्मकार,
(5) अशकालिक कर्मचारी,
(6) रक्षा सेनाओ मे रोजगार,
(7) विदेश मे भारतीय मिशनो/दूतावासो मे रोजगार,
(8) ग्रेटर बम्बई और कलकत्ता के महानगरीय क्षेत्रों मे निजी क्षेत्र मे 10–24 व्यक्तियो को नियोजित करने वाले गैर-कृषि प्रतिष्ठान।

भौगोलिक तौर पर, रोजगार बाजार सूचना (ई.एम आई.) कार्यक्रम के अन्तर्गत सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, दादरा एव नागर हवेली और लक्षद्वीप को छोडकर देश के सभी राज्य/संघ शासित क्षेत्र शामिल हैं। सरकारी क्षेत्र के सभी प्रतिष्ठानो और निजी क्षेत्र के 25 या इससे अधिक व्यक्तियो को नियोजित करने वाले गैर-कृषि प्रतिष्ठानों से सूचना, रोजगार कार्यालय (रिक्तियो की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959 और तद्धीन बनाए गए नियमो के उपबन्धो के अधीन एकत्र की जाती है परन्तु निजी क्षेत्र के 10 से 24 श्रमिको को नियोजित करने वाले गैर-कृषि प्रतिष्ठानो से यह सूचना स्वैच्छिक आधार पर एकत्र की जाती है। निजी क्षेत्र के बागान से भी यह सूचना स्वैच्छिक आधार पर एकत्र की जाती है।

शामिल किए गए 'प्रतिष्ठानों' की संख्या—31 मार्च, 1985 को कार्यक्रम के अन्तर्गत लाए गए प्रतिष्ठानो की कुल सख्या 2 28 लाख (अन्तिम) थी। इनमे से सार्वजनिक क्षेत्र के 1·30 लाख और शेष 0 98 लाख निजी क्षेत्र के थे। रोजगार कार्यालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959 की परिधि के अन्तर्गत आने वाले प्रतिष्ठानो की सख्या 1·72 लाख थी, जिनमे 1·30 लाख सार्वजनिक क्षेत्र के और 0 42 लाख निजी क्षेत्र के प्रतिष्ठान थे।

आंकड़े प्रकाशित करना—ई एम. आई कार्यक्रम के अन्तर्गत एकत्र किए गए आंकड़े तिमाही और वार्षिक रोजगार पुनरीक्षाओ के माध्यम से रिलीज किए

जाते हैं। 1982–83 के वार्षिक रोजगार पुनरीक्षा का मसौदा तैयार कर लिया गया है। रिलीज की गई अन्तिम तिमाही रोजगार पुनरीक्षा जून, 1985 को समाप्त तिमाही के बारे में है। सितम्बर, 1985 को समाप्त तिमाही के बारे में तिमाही रोजगार पुनरीक्षा तैयार की जा रही है। रोजगार सम्बन्धी आंकड़ों को शीघ्र रिलीज करने और इस तरह इसकी उपयोगिता को बढ़ाने के लिए, संगठित क्षेत्र में रोजगार के त्वरित अनुमान मुहैया करने की एक योजना भी 31 मार्च, 1983 को समाप्त तिमाही से शुरू की गई थी। जून, 1986 को समाप्त तिमाही तक रोजगार के त्वरित अनुमान पहले ही रिलीज कर दिए गए हैं और सितम्बर, 1986 को समाप्त तिमाही से सम्बन्धित त्वरित अनुमान संकलित किए जा रहे हैं।

व्यावसायिक शैक्षिक पैटर्न अध्ययन—रोजगार बाजार सूचना कार्यक्रम के एक अंग के रूप में, रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय एकान्तर वर्षों में सरकारी तथा निजी क्षेत्रों में आने वाले महत्त्वपूर्ण व्यवसायों में कर्मचारियों के व्यावसायिक पैटर्न और उनकी शैक्षिक/तकनीकी योग्यताओं के बारे में रिपोर्ट भी प्रकाशित करता रहा है। रिपोर्ट तैयार करने और उपयोगकर्त्ताओं को और अधिक अद्यतन आंकड़े उपलब्ध कराने में समय अन्तराल को कम करने की दृष्टि से 1980 और 1981 की रिपोर्ट छोड़ दी गई थीं। समीक्षाधीन वर्ष के दौरान 1982 (सरकारी क्षेत्र) से सम्बन्धित रिपोर्ट का मसौदा तैयार किया जा रहा है और 1983 (निजी क्षेत्र) और 1984 (सरकारी क्षेत्र) के बारे में एकत्र किए गए आंकड़े प्रोसेसिंग के विभिन्न चरणों में हैं। 1985 (निजी क्षेत्र) और 1986 (सरकारी क्षेत्र) इन्क्वायरियों के लिए आंकड़े एकत्र किए जा रहे हैं।

व्यावसायिक मार्गदर्शन और रोजगार सम्बन्धी परामर्श—वर्ष 1986 के दौरान 357 रोजगार कार्यालयों में व्यावसायिक मार्गदर्शन और रोजगार परामर्श एककों ने कार्य किया। इसके अतिरिक्त देश में 80 विश्वविद्यालयों में विश्वविद्यालय रोजगार सूचना और मार्गदर्शन केन्द्रों ने कार्य किया। इन एककों और केन्द्रों ने आवेदकों और युवकों को आजीविका सम्बन्धी अपनी योजना बनाने में उनकी सहायता की। पहले की तरह इन एककों ने व्यावसायिक सूचना एकत्र तथा संकलित की और व्यक्तिगत परामर्शदात्री सत्रों, वृत्तिक वार्ताओं, सामूहिक विचार-विमर्श, वृत्तिक नुमाइशों और फिल्म प्रदर्शनियों के माध्यम से व्यक्तिगत रूप में और ग्रुपों, दोनों में इसका विद्यार्थियों,—अध्यापकों, अभिभावकों और नौकरी चाहने वालों में सोद्देश्य प्रसार किया। औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में शिल्पकार प्रशिक्षण और उद्योगों में शिक्षुता प्राप्त करने के इच्छुक आवेदकों और विद्यार्थियों को आवश्यक सहायता दी गई। आवेदकों को अंशकालिक/छुट्टियों में रोजगार की व्यवस्था करने में तथा स्व-रोजगार अवसरों के लिए सहायता भी प्रदान की गई है।

अभिरुचि परीक्षाएँ—रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय के अभिरुचि परीक्षा कार्यक्रम का उद्देश्य औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में शिल्पकार प्रशिक्षणार्थियों और औद्योगिक प्रतिष्ठानों में शिक्षुता प्रशिक्षणार्थियों के वैज्ञानिक चयन के प्रयोजनों के लिए अभिरुचि परीक्षाओं सहित मनोवैज्ञानिक जांचों का विकास करना और उनका प्रयोग करना है। इस समय इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 21 इंजीनियरी व्यवसाय आते हैं। वर्ष 1986 के दौरान अनेक राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों के औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में अभिरुचि परीक्षाओं का आयोजन किया गया।

1969 में शुरू किए गए शिक्षुता के लिए प्रशिक्षणार्थियों के चयन के कार्यक्रम के अन्तर्गत अभी तक 27 औद्योगिकी/वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों ने डी. जी. ई. एंड टी. की अभिरुचि परीक्षाओं का उपयोग किया है। ऐसे प्रतिष्ठानों के अधिकारियों को परीक्षाओं के प्रशासन तथा परिणामों के मूल्यांकन की तकनीकों में प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए समय-समय पर सेमिनार आयोजित किए जाते हैं। अभी तक 123 औद्योगिक संगठनों/प्रतिष्ठानों से 168 अधिकारियों ने अब तक आयोजित 11 प्रशिक्षण सेमिनारों में भाग लिया है। ग्यारहवाँ प्रशिक्षण सेमिनार 17 नवम्बर, 1986 से 21 नवम्बर, 1986 तक आयोजित किया गया था।

चयन के टूलों के रूपों में अभिरुचि परीक्षाओं की प्रभाविकता का पता लगाने के लिए समय-समय पर अनुवर्ती अध्ययन किए गए हैं और इन अध्ययनों के परिणामों से यह पता चला है कि रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा तैयार की गई अभिरुचि परीक्षाओं से उतनी ही परिशुद्धता के साथ प्रशिक्षणार्थियों का निष्पादन दर्शाती है, जितनी परीक्षाओं से आशा की जा सकती है और इसलिए व्यक्तियों का चयन करने हेतु अभिरुचि परीक्षाओं पर विश्वास किया जा सकता है। हाल ही पंजाब के औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में किए गए अध्ययन से यह पता चलता है कि चयन के लिए अभिरुचि परीक्षाओं के प्रयोग से सामग्री और मानव संसाधनों का उपयुक्त उपयोग किया जा सकता है।

एक सामान्य अभिरुचि परीक्षा बैटरी का विकास सम्बन्धी कार्य प्रगति पर है।

स्व-रोजगार को बढ़ावा देना—बड़े पैमाने पर स्व-रोजगार को बढ़ावा देना सरकार द्वारा अपनाई गई रोजगार नीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। स्व-रोजगार में लगने के लिए युवाओं को प्रेरित करके और उन्हें आवश्यक मार्गदर्शन तथा सहायता देकर रोजगार कार्यालय से इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने की आशा की जाती है क्योंकि वह रोजगार चाहने वाले व्यक्तियों के लिए सम्पर्क का प्रथम स्थान है। इस प्रयोजन के लिए, रोजगार कार्यालयों/विश्वविद्यालय रोजगार सूचना एवं मार्गदर्शन केन्द्रों को सुदृढ़ करने की एक योजना विभिन्न राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों में चुने हुए 30 जिलों में प्रायोगिक आधार पर 1983 में शुरू की गई थी।

अपेक्षित विशेष सैल अभी तक 30 जिलो मे से 26 जिलों मे रोजगार कार्यालयों मे सृजित किए गए है। इनके शुरू होने से दिसम्बर, 1986 के अन्त तक इन सैलों ने लगभग 88,650 व्यक्तियो को पजीकृत किया और उनमे से 18,100 को स्व-रोजगार पर लगाया।

इस योजना के अन्तर्गत हुई प्रगति का मूल्यांकन कार्य केन्द्रीय रोजगार सेवा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान (सरटस) द्वारा पूरा कर लिया गया है। मूल्यांकन अध्ययन ने, अन्य बातो के साथ-साथ, देश में चरणबद्ध तरीके से शेष जिलो मे इस योजना का विस्तार करने की सिफारिश की। इस योजना के विस्तार की व्यावहारिकता पर विचार किया जा रहा है।

रोजगार कार्यालयों का मूल्यांकन—रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय, अन्य बातो के साथ-साथ, रोजगार कार्यालयो सम्बन्धी नीति और प्रक्रियाओ के बारे मे राष्ट्रीय मानक निर्धारित करने के लिए जिम्मेदार है। अतः रोजगार सेवा के विभिन्न कार्यक्रमो का आवधिक मूल्यांकन रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वार राज्य सरकारो/संघ-शासित क्षेत्र प्रशासनो के सहयोग से किया जाता है। एकीकृत मूल्यांकन की इस प्रणाली के अधीन जिसके अन्तर्गत रोजगार कार्यालयो के सभी कार्यकलाप आते है, वर्ष 1986 के दौरान 22 रोजगार कार्यालयो और 4 विश्वविद्यालय रोजगार सूचना एव मार्गदर्शन केन्द्रो का मूल्यांकन किया गया है।

रोजगार कार्यालयों के कार्यों का आधुनिकीकरण—रोजगार चाहने वालों और नियोजको दोनो को कारगर सेवाएँ प्रदान करने की दृष्टि से, राज्य सरकारो/सघ-शासित क्षेत्र प्रशासनों को रोजगार कार्यालयों के कार्यों को कम्प्यूटरीकृत करने की सलाह दी गई है। कई राज्यो को कम्प्यूटरीकृत करने की सलाह दी गई है। कई राज्यो जैसे कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, गुजरात, पाँडिचेरी, दिल्ली और चण्डीगढ ने चयनात्मक कम्प्यूटरीकरण की इस दिशा में पहले ही कदम उठाए हैं।

रोजगार कार्यालयो के कार्यों को कम्प्यूटरीकृत करने के लिए राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों को केन्द्रीय सहायता प्रदान करने की एक योजना को 1986-87 के लिए सातवी योजना स्कीम के रूप मे शुरू किया गया है। इस योजना के अन्तर्गत, बराबर-बराबर आधार पर अधिकतम एक लाख रुपये प्रति रोजगार कार्यालय/कार्यालयो के ग्रुप तक केन्द्रीय सहायता राज्य सरकारो को ऐसे रोजगार कार्यालयों के लिए कम्प्यूटर हार्डवेयर और साफ्ट वेयर प्राप्त करने के लिए दी जाती है, जिनके चालू रजिस्टर पर एक लाख या अधिक उम्मीदवार दर्ज हैं (व्यक्तिगत रूप मे या ग्रुप मे)। इस बारे मे प्रस्ताव विभिन्न राज्य सरकारो से प्राप्त हो रहे है। अभी तक केन्द्रीय सहायता बिहार के रोजगार कार्यालयो के लिए रिलीज की गई है।

रोजगार एव प्रशिक्षण महानिदेशालय के वर्तमान डाटा प्रोसेसिंग कार्यों को इनके स्थान पर कम्प्यूटर प्रणाली अपना कर आधुनिकीकृत किया जा रहा है। कम्प्यूटर लगाने के लिए चालू वित्तीय वर्ष 1986-87 के दौरान 12 लाख रुपये

का प्रावधान किया गया है। विभिन्न कम्प्यूटर प्रणालियों का मूल्यांकन करने के लिए गठित तकनीकी समिति ने अब अपने मूल्यांकन पूरे कर लिए हैं और इस प्रयोजन के लिए एक उपयुक्त कम्प्यूटर प्रणाली की सिफारिश की गई है।

रोजगार कार्यालय (रिक्तियों की अनिवार्य अधिसूचना) अधिनियम, 1959

श्रम मन्त्रालय के वार्षिक प्रतिवेदन 1976–77 के अनुसार—

1. यह अधिनियम, जो सन् 1960 में लागू हुआ, सरकारी क्षेत्र के सभी नियोजकों और निजी क्षेत्र के गैर-कृषि कार्यकलापों में रत ऐसे नियोजकों पर लागू होता है जिनके पास 25 या अधिक व्यक्ति नियोजित हैं। अधिनियम की धारा 4 के अधीन नियोजकों के लिए यह अनिवार्य है कि वे अपने प्रतिष्ठानों में पैदा होने वाले रिक्त स्थानों को भरने से पहले उन्हें (कुछ मामलों में दी गई छूट को छोड़कर) निर्धारित रोजगार कार्यालय को अधिसूचित करें। अधिनियम की धारा 5 के अधीन नियोजकों के लिए निर्धारित रोजगार कार्यालय को अपने कर्मचारियों की संख्या, रिक्त स्थानों तथा कमियों के सम्बन्ध में त्रैमासिक विवरण और कर्मचारियों का व्यावसायिक वितरण दर्शाने वाली द्विवार्षिक विवरणी भेजना अपेक्षित है। वर्ष 1976–77 में इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र के लगभग 0·82 लाख प्रतिष्ठान और निजी क्षेत्र के 0·45 लाख प्रतिष्ठान आते थे।

2. विभिन्न राज्य सरकारों और संघ-शासित क्षेत्रों से प्राप्त अधिनियम के प्रवर्तन सम्बन्धी त्रैमासिक प्रतिवेदन से पता चलता है कि कुल मिलाकर दोनों सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों के नियोजक अधिनियम के उपबन्धों का अनुपालन करते रहे हैं। इन नियोजकों ने रिक्तियों को अधिसूचित किया और निर्धारित विवरणियाँ रोजगार कार्यालयों को भेजी हैं तथापि, कुछ मामलों में नियोजक अपने प्रतिष्ठानों में सृजित कुछ रिक्तियाँ रोजगार कार्यालयों को अधिसूचित न करने के समुचित कारण बताने में असमर्थ रहे हैं और त्रैमासिक विवरणियों में अपेक्षित पूरी सूचना भी नहीं भेज सके हैं।

3 अधिनियम के उपबन्धों को लागू करने के उद्देश्य से अनेक राज्यों में प्रवर्तन तन्त्र स्थापित किया गया है। कुछ अन्य राज्यों में ऐसे ही तन्त्र के सृजन के प्रस्तावों पर कार्यवाही की जा रही है। जहाँ रोजगार अधिकारियों द्वारा नियोजकों से सहयोग प्राप्त करने और वैयक्तिक अनुवर्ती कार्यवाही जारी रखने के लिए उपयुक्त कदम उठाए गए, वहाँ राज्य सरकारों द्वारा उन नियोजकों को 'कारण बताओ नोटिस' भी जारी किए जाते हैं, जिन्होंने अधिनियम के उपबन्धों का लगातार उल्लघन किया है।

4. अधिनियम के प्रभाव को कारगर बनाने के लिए राज्य सरकारों से अनुरोध किया गया है कि वे नियोजकों के अभिलेखों और दस्तावेजों के निरीक्षण के लिए शक्तियों का और अधिक विस्तार करें। राज्यों को ऐसी अनुदेश भी दिए गए हैं कि वे क्रमबद्ध आधार पर नियोजकों के अभिलेखों और दस्तावेजों के निरीक्षण के कार्यक्रम को तेज करें।

रोजगार कार्यालयों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

देश में रोजगार कार्यालयो ने श्रमिको को रोजगार प्राप्त करने में सहायता दी है लेकिन नियोजक क्षेत्रों ने उनके महत्त्व को अभी भली प्रकार स्वीकार नहीं किया है। निजी क्षेत्र इनकी सेवाओं के उपयोग के प्रति काफी उदासीन रहा है, हाँ सार्वजनिक क्षेत्र में इनकी उपयोगिता को अधिकाधिक स्वीकारा जा रहा है। श्रमिकों, मालिको और सरकार को श्रमिक की माँग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने की दिशा में यद्यपि इन कार्यालयो ने पिछले कुछ वर्षों में काफी सहयोग दिया है, तथापि ऐसे उदाहरणों की चर्चा भी कम सुनने को नहीं मिलती कि अन्य उपायों से भर्ती अथवा नियुक्तियों को काफी प्रोत्साहन मिलता है। ऐसे अनेक कारण है जो इस बात के लिए उत्तरदायी है कि रोजगार कार्यालयों को भर्ती के दोषों को दूर करने तथा वैज्ञानिक प्रमापीकरण प्राप्त करने में असफलता क्यों मिली है—

1. रोजगार कार्यालयों द्वारा अपने कर्मचारियों को विभिन्न कारखानों मे भेजकर वहाँ भर्ती किए गए श्रमिको की सख्या और उनका पंजीयन करके अपने प्रतिवेदन मे इसका विवरण दे दिया जाता है। इससे वे अपना दिखावटी अस्तित्व प्रस्तुत करते हैं।

2. कई मालिक व सरकारी अधिकारी श्रमिको व कर्मचारियो का चयन कर लेते हैं और बाद मे उसको रोजगार कार्यालय मे पजीयन करवा लेने को कहते हैं जिससे कि उसका नियमन हो जाए। यह एक अवांछनीय प्रक्रिया है जिससे रोजगार कार्यालयो के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती है। इससे भर्ती के दोषो को समाप्त नहीं किया जा सकता।

3. रोजगार कार्यालयो मे काम करने वाले कर्मचारियो का व्यवहार बेरोजगारो के साथ सहानुभूतिपूर्ण नही होता है।

4. रोजगार कार्यालयो मे पजीयन कराने के लिए व्यक्ति जाते हैं वहाँ पर काफी समय लगता है। इसके साथ ही जब रिक्त स्थान हेतु साक्षात्कार होता है उसके लिए प्रार्थी को रोजगार कार्यालय मे उपस्थित होने के लिए सूचित किया जाता है, लेकिन इस प्रकार की सूचना साक्षात्कार होने के पश्चात् मिलती है जिससे प्रार्थियो को समय पर नौकरी नहीं मिल पाती। यह सब कर्मचारियो की ढिलमिल नीति एवं कार्य के प्रति उदासीनता के कारण से होता है।

5. इन कार्यालयो मे रिश्वतखोरी और पक्षपात पाए जाने के भी आरोप प्रायः सुनने मे आते हैं।

सुझाव

रोजगार कार्यालयो के कार्यों को प्रभावपूर्ण बनाने हेतु निम्नांकित सुझाव दिए जा सकते हैं—

1. इन कार्यालयो को श्रम बाजार के सम्बन्ध मे रिकार्ड ही नहीं रखने चाहिए बल्कि श्रमिको को प्रशिक्षण व परामर्श की सेवाएँ प्रदान करनी चाहिए, जिससे एक नौकरी से दूसरी नौकरी प्राप्त करने मे मदद मिल सके। विवेकीकरण अपनाने से होने वाले बेकार श्रमिको को रोजगार दिलाया जाना चाहिए।

2. जो श्रमिक नौकरी प्राप्त करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर नही जा सकते हैं अथवा प्रशिक्षण प्राप्त करने में असमर्थ हैं उन सभी श्रमिकों को रोजगार कार्यालयो द्वारा आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए और बाद मे इसकी कटौती श्रमिकों की मजदूरी मे से काट लेनी चाहिए।

3. साधारण रोजगार कार्यालयो के अतिरिक्त विशेष रोजगार कार्यालयो की स्थापना की जानी चाहिए। इन कार्यालयो से विशिष्ट उद्योगो के श्रमिक जैसे जहाज पर, पत्तनो पर, घरो में और बागान और खानो में काम करने वाले श्रमिक भी लाभ उठा सकें।

4. रोजगार कार्यालयो को प्रभावपूर्ण बनाने हेतु मालिको का सहयोग होना आवश्यक है। मालिको को श्रमिको की भर्ती करते समय रोजगार कार्यालयो को सूचित करना चाहिए और इनके माध्यम से भर्ती कार्य किया जाना चाहिए।

5. डॉ. राधाकमल मुकर्जी (Dr R. K Mukerjee) का कहना है कि एक रोजगार कार्यालय अधिनियम (Employment Exchange Act) पास किया जाना चाहिए। इस अधिनियम के अन्तर्गत समूचे देश के रोजगार कार्यालयो का समन्वय किया जाना चाहिए और यह श्रम मन्त्रालय के अन्तर्गत होना चाहिए। सभी कस्बो में जहाँ 20 हजार से अधिक आबादी है वहाँ रोजगार कार्यालय स्थापित किए जाने चाहिए तथा रोजगार प्राप्त करने वाले रिक्त स्थानो आदि के सम्बन्ध मे रजिस्टर्स रखे जाने चाहिए।

रोजगार कार्यालयो के समस्त दोषो को समाप्त करके इसे प्रभावपूर्ण ढग से चलाया जाए। इससे श्रमिकों, मालिकों और सरकार सभी को लाभ होगा। ये कार्यालय अपनी बहुमूल्य सेवाओ से श्रम की मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित कर सकते हैं। इससे घर्षणात्मक बेरोजगारी कम की जा सकती है।

7

मानव-शक्ति नियोजन : अवधारणा और तकनीक; भारत में मानव-शक्ति नियोजन

(Man-Power Planning : Concepts and Techniques; Man-Power Planning in India)

मानव-शक्ति नियोजन
(Man-Power Planning)

किसी भी देश की प्रगति हेतु मानव-शक्ति समस्याओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश की प्रगति उत्पादन पर निर्भर करती है। उत्पादन का उद्देश्य न केवल उत्पादन की मात्रा मे ही वृद्धि करना है, बल्कि उत्पादन की किस्म सुधारना भी है। इसकी प्राप्ति के लिए उत्पादन क्रिया मे भाग लेने हेतु पर्याप्त सख्या में मानव-शक्ति का होना आवश्यक है। "उत्पादन मे वृद्धि हेतु अधिक मानव-शक्ति की ही आवश्यकता नही है, बल्कि मानव-शक्ति का कुशल होना भी आवश्यक है।"[1]

भारतीय मानव-शक्ति के स्रोत या साधन एक राष्ट्रीय सम्पत्ति है। उपजाऊ मिट्टियाँ, खनिज पदार्थ, वनस्पति और अन्य प्राकृतिक साधनों की भाँति मानवीय साधन भी मूल्यवान हैं। आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु इन साधनो को वैज्ञानिक आधार पर गतिशीलता प्रदान करनी होगी। इस कार्य के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम अपनाना होगा जिसे मानव-शक्ति नियोजन (Man-Power Planning) कहा जाता है। इसका सम्बन्ध वर्तमान समय में मानव-शक्ति की पूर्ति तथा इसकी माँग से है। "हमारे देश मे अकुशल श्रमिकों की अधिकता और कुशल, तकनीकी एवं वैज्ञानिक कर्मचारियों की कमी की समस्या के निवारण हेतु मानव-शक्ति नियोजन अपनाकर मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है।"[2]

1 *Tilak, V. R K* : Man-Power Shortages & Surpluses, p 1
2 *Giri, V. V* . Labour Problems in Indian Industry, p. 327.

. किसी देश की मानव-शक्ति उस देश की सम्पूर्ण जनसख्या पर निर्भर करती है। आर्थिक दृष्टि से सक्रिय जनसख्या के आधार पर ही मानव-शक्ति की समस्या का समाधान किया जा सकता है। भारत जैसे आर्थिक नियोजन वाले देश में अतिरेक श्रम (Surplus Labour) को नियोजन के माध्यम से पूर्ण रोजगार प्रदान करना प्रमुख उद्देश्य है। विकसित देशों में मानवीय साधनों की कमी होने से वहाँ पूँजी गहन उत्पादन के तरीके (Capital Intensive Technique of Production) को अपनाया जाता है जबकि भारत जैसे विकासशील देश में पूँजी का अभाव तथा श्रम का आधिक्य होने से श्रम गहन उत्पादन का तरीका (Labour Intensive Technique of Production) अपनाया जाता है। यहाँ तीव्र औद्योगीकरण हेतु कुशल श्रमिकों की कमी पड़ती है जबकि अकुशल श्रमिकों की पूर्ति काफी है। कृषि में छिपी हुई बेरोजगारी और उद्योग तथा सेवाओं में अनैच्छिक बेरोजगारी पाई जाती है। इसके साथ ही कुशल श्रम-शक्ति का अभाव (Lack of Skilled Man-Power) है, जबकि इंग्लैण्ड जैसे विकसित देश में सामान्य श्रम-शक्ति का अभाव है।

मानव-शक्ति की अतिरेक और आधिक्य सम्बन्धी समस्या का समाधान करने हेतु भावी योजनाओं को ध्यान में रखते हुए सर्वेक्षण किया जाना चाहिए। वर्तमान समय में उपलब्ध मानव-शक्ति और आवश्यक मानव-शक्ति का अनुमान लगाया जाना चाहिए। मानव-शक्ति का अधिकतम उपयोग करने हेतु प्रतिवर्ष वित्तीय बजट की भाँति मानव-शक्ति बजट (Man-Power Budget) तैयार किया जाना चाहिए जिसमें विभिन्न व्यवसायों में मानव-शक्ति की आवश्यकता और वितरण की तुलना की जा सके। इस प्रकार के बजट से मानव-शक्ति की माँग और पूर्ति दोनों का अच्छा समायोजन किया जा सकता है। यह समायोजन रोजगार कार्यालयों (Employment Exchanges) द्वारा अच्छे ढंग से किया जा सकता है।[1] रोजगार कार्यालय रोजगार प्राप्त करने वाले तथा रोजगार देने वालों के मध्य एक कड़ी का काम करते हैं। इनके द्वारा यह सूचना भी एकत्रित की जा सकती है कि किस व्यवसाय में मानव-शक्ति का अभाव है और किस व्यवसाय में इनका आधिक्य है? इस कार्य हेतु रोजगार कार्यालय सरकार के अन्य कार्यालयों, उदाहरणार्थ शिक्षा, वैज्ञानिक, अनुसंधान, व्यापार और उद्योग से सहायता ले सकते हैं और आसानी से अधिकता व कमी का पता लगाया जा सकता है।

हाल ही के वर्षों में मानव-शक्ति की समस्या के हल के लिए कुछ समितियाँ नियुक्त की गई हैं—

1. वैज्ञानिक मानव-शक्ति समिति, 1947 (Scientific Man-Power Committee of 1947)—इस समिति द्वारा आने वाले 5 से 10 वर्षों में वैज्ञानिक और तकनीकी मानव-शक्ति के विभिन्न वर्गों हेतु अनुमान लगाने के लिए सर्वेक्षण से पता चला कि इन्जीनियर, डॉक्टर, रसायनविज्ञ, तकनीकी विशेषज्ञ, अध्यापकों (विज्ञान) आदि की कमी थी।

1 *Tilak, V. R. K.* : Man-Power Shortage & Surpluses, p 5.

2 विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1948 (University Education Commission, 1948)—यह आयोग भारत सरकार द्वारा नियुक्त किया गया। इसका कार्य भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याओं और भावी सुधार हेतु सुझाव देना था, यद्यपि इस आयोग का प्रत्यक्ष रूप में भारतीय मानव-शक्ति से सम्बन्ध नहीं था फिर भी इंजीनियर, डॉक्टर, अध्यापक, वकील और अन्य व्यावसायिक वर्ग आदि के विषय में बताया गया कि वर्तमान विश्वविद्यालय शिक्षा पद्धति के अन्तर्गत भी कमी है।

मानव-शक्ति की अधिकता तथा अभाव के विषय में सही रूप से सूचना नहीं मिलती है। मानव-शक्ति की अधिकता अथवा बचत इसकी माँग की तुलना में उत्पन्न होती है। जब मानव-शक्ति की माँग इसकी पूर्ति की तुलना मे अधिक है तो यह अभाव (Shortage) होगा तथा माँग पूर्ति की तुलना मे कम होने पर मानव-शक्ति का अतिरेक होगा।

भारत जैसे विकासशील देश मे मानवीय साधनो के उचित एवं कुशल उपयोग को आर्थिक नियोजन में सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। नियोजन का उद्देश्य मानव-शक्ति की कमी को पूरा करना तथा अतिरेक मानव-शक्ति को लाभपूर्ण व्यवसायों मे लगाना होता है। जब हम मानव-शक्ति के अभाव के रूप मे अध्ययन करते हैं तो मानव-शक्ति हेतु नियोजन (Planning for Man-Power) कहलाता है तथा मानव-शक्ति का अतिरेक के सम्बन्ध में अध्ययन करने पर यह मानव-शक्ति का नियोजन (Planning of Man-Power) कहलाएगा। "नियोजन के दोनों पहलुओं का अध्ययन साथ-साथ करना चाहिए क्योंकि मानव-शक्ति की कमी और अतिरेक साथ-साथ पाई जाती है।"[1] यह हमारा अनुभव है कि अतिरेक वाले व्यवसायों में काफी वृद्धि होती रहती है जबकि अभाव वाली श्रेणियों मे सुधार नही हो पाता है।

यदि मानव-शक्ति का, जो कि अतिरेक (Surplus) है, उपयोग नही किया जाता है तो वह स्वयं ही नष्ट हो जाती है। यह बर्बादी राष्ट्रीय साधनो के रूप में ही नही होती है, बल्कि एक श्रमिक के बेरोजगार होने पर वह स्वयं आत्म-ग्लानि मे डूब जाता है और परिणामस्वरूप मानवीय साधन के रूप मे उसकी उपयोगिता नष्ट होने लगती है।

कुशल मानव-शक्ति की कमी से देश का औद्योगिक विकास नही हो पाता है। आर्थिक विकास तभी सम्भव होता है जब मानव-शक्ति को गतिशीलता प्रदान की जाती है तथा श्रम की कमी से आने वाली बाधाओं को समाप्त किया जाता है। मानव-शक्ति की गतिशीलता के दो पहलू हैं—

1 मानव-शक्ति का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।
2. मानव-शक्ति को उचित व्यवसायों मे लगाया जाना चाहिए।

1 *Tilak, V. R. K* : Man-Power Shortages & Surpluses. p 65.

अभाव को रोकने के भी दो पहलू हैं—

1. सभी अन्तरों को पाट कर अभाव की पूर्ति की जानी चाहिए।

2. जिन वर्गों में मानव-शक्ति का अभाव हो, उनमें मानव-शक्ति का उचित आवण्टन किया जाना चाहिए।

अधिकांश विकासशील देशों में श्रम की कमी नहीं है। लेकिन अकुशल श्रमिक काफी संख्या में हैं जबकि कुशल श्रमिकों की माँग इसकी पूर्ति की तुलना में अधिक होने से इस प्रकार की मानव-शक्ति का अभाव पाया जाता है। इस प्रकार के अभाव को दूर करने के लिए श्रमिक तैयार करने होंगे। कुशल श्रमिक प्रशिक्षण द्वारा तैयार किए जा सकते हैं। विभिन्न प्रकार की प्रशिक्षण योजनाएँ चलाई जाती हैं। ये प्रशिक्षण तीन प्रकार के होते हैं—

1. तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण (Training and Vocational Training)—नए लोगों को तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण देने हेतु शुरू की जाती है।

2. नवसिखिया प्रशिक्षण (Apprenticeship Training)—जिन्हें प्रशिक्षण केन्द्र पर नहीं मिला है उन्हें इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह प्रशिक्षण विभिन्न कारखानों अथवा उद्योगों में दिया जाता है। इस प्रकार का प्रशिक्षण रोजगार की पहली अवस्था में दिया जा सकता है अथवा प्रशिक्षणार्थी को प्रशिक्षण के साथ कुछ भत्ता देकर भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

3. उद्योग में प्रशिक्षण (Training within Industry)—इस प्रकार का प्रशिक्षण फोरमैन अथवा सुपरवाइजरी श्रेणी के कर्मचारियों को उद्योग में ही कुशलता प्राप्त करने हेतु दिया जाता है। इस प्रकार का प्रशिक्षण देश में अथवा विदेश में भी दिया जाता है।

किसी भी देश में मानव-शक्ति में कुशलता उत्पन्न करने हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है और यह प्रशिक्षण विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत दिया जाता है। इसमें निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

1. इस प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्र देश के विभिन्न क्षेत्रों अथवा प्रान्तों में समान रूप से होने चाहिए ताकि इनमें प्रशिक्षणार्थी आसानी से पहुँच सकें।

2. किसी भी प्रशिक्षण योजना की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इसमें सम्मिलित प्रशिक्षणार्थी कैसे हैं। उनका उचित चयन होना जरूरी है।

3. प्रशिक्षण पाठ्यक्रम बहुत छोटा नहीं होना चाहिए। पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसमें प्रशिक्षणार्थी आसानी से कुशलता प्राप्त कर सकें। अधूरा ज्ञान उचित नहीं है

किसी भी प्रशिक्षण योजना की सफलता श्रमिक और मालिक दोनों पक्षों के पूर्ण सहयोग पर निर्भर रहती है। इससे श्रमिकों को कुशलता प्राप्त होगी और मालिकों को आवश्यकतानुसार श्रमिक मिल सकेंगे।

प्रो. हिक्स (Prof. Hicks) का कथन सत्य प्रतीत होता है कि "व्यवसायों में श्रम के वितरण का कुछ साधनों से नियमन करना अत्यधिक आवश्यक है। कोई

भी समाज इसके बिना जीवित नही रह सकता है।"[1] किसी भी देश मे बेरोजगारी दूर करके मानव-शक्ति का अधिकतम उपयोग करना आवश्यक होता है। बेरोजगारी दूर करने के लिए सस्ती मुद्रा नीति (Cheap Money Policy), सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम (Public Works Programme) और उपभोक्ता सहायता (Consumers' Subsidies) को अपनाना चाहिए।

सस्ती मुद्रानीति से कम ब्याज दर पर साख प्रदान करके देश का तीव्र औद्योगीकरण किया जा सकता है। जब अधिक उद्योग खोले जाएँगे तो इससे रोजगार के अवसरो मे वृद्धि होने से बेरोजगारी दूर होगी।

सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमो के अन्तर्गत सिचाई, ग्रामीण विद्युतीकरण, सडको व नहरो का निर्माण आदि आते हैं। इससे भी रोजगार अधिक मिलता है। लोगों की क्रय शक्ति बढने से प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि होती है और बेरोजगारी दूर करने में सहयोग प्राप्त होता है।

हमारे देश मे श्रमिकों को सहायता देना वाँछनीय नही है क्योकि हमारे देश मे समस्या प्रभावपूर्ण माँग मे वृद्धि करना न होकर उत्पादन मे वृद्धि करना है। यहाँ पर पूरक साधनो की कमी को पूरा करके श्रमिकों को रोजगार प्रदान करना प्रमुख समस्या है।

ग्रामीण क्षेत्र मे जहाँ श्रमिको का शोषण होता है तथा कृषि क्षेत्र मे छिपी हुई बेरोजगारी पाई जाती है इस समस्या का समाधान ग्रामीण क्षेत्र से श्रमिको का स्थानान्तरण शहरी क्षेत्र की ओर करना होगा।

भारत में मानव-शक्ति नियोजन
(Man-Power Planning in India)

देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास करने के लिए प्रत्येक राष्ट्र मे आर्थिक नियोजन का सहारा लिया गया है। हमारे देश मे भी स्वतन्त्रता के पश्चात् आर्थिक नियोजन अपनाया गया है। प्रत्येक योजना मे मानवीय साधनो का अधिकतम उपयोग कर उनको पूर्ण रोजगार प्रदान करने का बीडा उठाया जाता रहा है। बेरोजगारी को समाप्त करने हेतु पचवर्षीय योजनाओ मे अनेक महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

(1) प्रथम पचवर्षीय योजना
(First Five Years Plan)

इस योजना मे बेरोजगारी की समस्या पर गम्भीरता से विचार नही किया गया। हमारे देश में इस योजना मे यह सोचा गया कि बेरोजगारी की समस्या न होकर अर्द्ध-रोजगार की समस्या है। इस योजना में इस समस्या को दूर करने के लिए निर्माणकारी कार्यों (Construction Activities) मे अधिक रोजगार के अवसरों का सृजन करने हेतु निवेश की दर मे वृद्धि करने पर और महत्त्वपूर्ण केन्द्रों मे पूँजी

1 *Hicks, J. R.* . The Social Framework, p. 61.

निर्माण पर जोर दिया गया। रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने हेतु योजना का आकार 2,068 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 2,378 करोड़ रुपये कर दिया गया। 1935 में योजना आयोग द्वारा शिक्षित बेरोजगारी समाप्त करने हेतु विशेष शिक्षा विस्तार कार्यक्रम (Special Education Expansion Programme) शुरू किया गया। बेरोजगारी समाप्त करने हेतु योजना आयोग ने 11 सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जो इस प्रकार था—

(1) छोटे पैमाने के उद्योग स्थापित करने हेतु सहायता;
(2) मानव-शक्ति के अभाव वाले क्षेत्रों में प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करना;
(3) छोटे और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने हेतु राज्य और स्थानीय संस्थाओं द्वारा उनसे खरीद;
(4) शहरों में प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोलना और ग्रामीण क्षेत्रों में एक अध्यापक पाठशाला खोलना;
(5) राष्ट्रीय विस्तार सेवा की स्थापना;
(6) सड़क यातायात का विकास;
(7) गन्दी बस्तियों का उन्मूलन और अल्प आय वालों हेतु कम लागत की आवास योजना;
(8) निजी भवन निर्माण क्रियाओं को प्रोत्साहन;
(9) शरणार्थियों को बसाने का कार्यक्रम;
(10) निजी पूँजी से चलाए जाने वाली शक्ति योजनाओं के विकास को प्रोत्साहन; एवं
(11) प्रशिक्षण कोष खोलना।

इन सभी उपायों का उद्देश्य बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करना था। योजनाकाल में बढ़ती हुई श्रम-शक्ति की तुलना में रोजगार के अवसरों को नहीं बढ़ाया जा सका और बेकारी घटने के बजाय बढ़ी। इस योजनाकाल में 75 लाख व्यक्तियों को काम दिलाने का लक्ष्य रखा गया था किन्तु इस अवधि में केवल 54 लाख व्यक्तियों को ही रोजगार दिया जा सका।

(2) दूसरी पंचवर्षीय योजना
(Second Five Year Plan)

प्रथम योजना के अन्त में 53 लाख लोग बेकार थे तथा दूसरी योजना में 100 लाख लोग बेकार होने का अनुमान लगाया गया था। इस समस्या के हल हेतु तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या पर नियन्त्रण लगाना आवश्यक समझा गया। इस योजनाकाल में लगभग 153 लाख लोगों को रोजगार देने की समस्या थी और अर्द्ध-रोजगार की समस्या अलग थी। अतः योजना में पूर्ण रोजगार प्रदान करना असम्भव माना गया। इस समस्या के हल हेतु दीर्घकालीन प्रयासों की आवश्यकता महसूस की गई। दूसरी योजना की अवधि में लगभग 96 लाख लोगों—16 लाख कृषि में और 80 लाख गैर-कृषि में—को रोजगार दिलाने का लक्ष्य का रखा गया।

लेकिन योजना के अन्त मे 90 लाख लोग बेकार रहे तथा अर्द्ध-रोजगार वालो की संख्या 150 से 180 लाख के बीच थी। योजनाकाल मे शिक्षित बेरोजगारो (20 लाख) को भी रोजगार प्रदान करने हेतु उद्योग, सहकारी समितियों और यातायात आदि में योजनाएँ चालू की गई।

दूसरी योजना रोजगार प्रदान करने वाली योजना कही जा सकती है क्योकि रोजगार के अवसरो मे वृद्धि करना इसके उद्देश्यो में एक था।

योजना के अन्त मे बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या योजना के प्रारम्भिक बेरोजगारों से अधिक थी।

(3) तीसरी पंचवर्षीय योजना

(Third Five Year Plan)

योजनाकाल मे 170 लाख व्यक्ति बेरोजगार होने का अनुमान लगाया गया तथा योजना के शुरू मे 90 लाख लोग पहले ही बेरोजगार थे। अतः तीसरी योजनाकाल मे कुल बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या 260 लाख आँकी गई। इस योजनाकाल मे 140 लाख लोगों को रोजगार देने की व्यवस्था की गई। बेरोजगारी की समस्या को तीन दिशाओं के रूप मे देखा गया—

1. यह प्रयत्न किया जाए कि अब अधिक से अधिक लोगो को रोजगार का लाभ प्राप्त हो।

2 ग्रामीण औद्योगीकरण का एक विस्तृत कार्यक्रम अपनाया जाए। इसमे ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण उद्योग सम्पत्ति का विकास, ग्रामीण उद्योगो को प्रोत्साहन और मानव-शक्ति को प्रभावपूर्ण रोजगार प्रदान करना आदि कार्यक्रम शामिल किए जाएँ।

3. छोटे उद्योगो द्वारा रोजगार अवसरो मे वृद्धि करने के अतिरिक्त ग्रामीण निर्माण कार्यक्रम (Rural Works Programme) चलाने पर भी जोर दिया जाए जिससे 100 दिन (एक वर्ष मे) कार्य 2.5 मिलियन लोगो को दिया जा सके।

इन प्रयासो के बावजूद भी योजनाकाल मे सभी व्यक्तियो को रोजगार नही दिया जा सका। योजना के अन्त मे 90 लाख से 100 लाख व्यक्ति तक बेरोजगार बचे। अपूर्ण रोजगार वाले लोगो की संख्या लगभग 160 लाख थी।

(4) तीन वार्षिक योजनाएँ

(Three Annual Plans, 1966–69)

आर्थिक कठिनाइयो के कारण पचवर्षीय योजना के स्थान पर तीन वर्ष तक वार्षिक योजनाएँ चलाई गई। इनमे बेरोजगारी को दूर करने के प्रयास किए गए। लेकिन बेरोजगारी की समस्या का समाधान न हो सका।

(5) चौथी पंचवर्षीय योजना

(Fourth Five Year Plan)

इस योजना में भी रोजगार के अवसरो में वृद्धि करने पर जोर दिया गया। विभिन्न योजना कार्यक्रमों में रोजगार बढ़ाने का प्रयास किया गया। श्रम-गहन

(Labour Intensive Industries) पर जोर दिया गया जिससे बढती हुई श्रम-शक्ति को रोजगार दिया जा सके। ग्रामीण क्षेत्रो मे विद्युतीकरण, लघु एव कुटीर उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन जैसी सेवाओ मे रोजगार के अवसर बढाने का प्रयास किया गया। योजना काल मे गैर-कृषि क्षेत्र मे 140 लाख और कृषि क्षेत्र में 50 लाख व्यक्तियो को रोजगार प्रदान करने का प्रावधान था।

लघु उद्योगो के विकास आयुक्त श्री के. एस. नजप्पा के अनुसार भारत सरकार ने बेरोजगार इन्जीनियरों को छोटे उद्योगो की स्थापना करने हेतु सहायता देने के लिए एक योजना तैयार की। इस योजना को कार्यान्वित करने हेतु प्रत्येक राज्य को लगभग 30 लाख रुपये दिए जाने थे। प्रत्येक राज्य मे 200 इन्जीनियरों को 3 माह का प्रशिक्षण दिया जाना था। प्रशिक्षण काल मे ग्रेजुएट व डिप्लोमाधारी इन्जीनियरो को क्रमश: 250 रुपये और 150 रुपये मासिक देने की व्यवस्था थी। इस योजना का उद्देश्य औद्योगिक प्रबन्ध के विभिन्न पहलुओ का नवयुवक इन्जीनियरो को प्रशिक्षण देना था।

फिर भी इस योजना काल मे सभी श्रमिकों को रोजगार नही दिया जा सका और योजना के अन्त मे योजना के प्रारम्भ से अधिक बेरोजगारी रही।

(6) पाँचवी पचवर्षीय योजना
(Fifth Five Year Plan)

यह योजना 1 अप्रेल, 1974 से शुरू की गई। इस योजना मे गरीबी को दूर करने हेतु रोजगारो के अवसरो मे वृद्धि करने पर जोर दिया गया जिससे बडे पैमाने पर विद्यमान बेरोजगारी को समाप्त किया जा सके।

पाँचवी योजना के संशोधित प्रारूप मे यह अनुमान लगाया गया कि योजनावधि मे कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत श्रम-बल की संख्या मे 162 लाख और छठी योजना में 189 लाख की वृद्धि होगी। यह कहा गया कि राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के 27वें दौर द्वारा अनुमोदित श्रमबल की दर मे 5 से 14 वर्ष के बच्चो को शामिल कर लिए जाने पर और सर्वेक्षण के लिए उपयोग मे लाए गए विविध परिकल्प के कारण यह दर बढ जाएगी। फिर भी रा. प्र स. के परिकल्पो पर आधारित अनुमानो के अनुसार पाँचवी पचवर्षीय योजनावधि मे श्रमबल की सख्या मे वृद्धि लगभग 182 6 लाख से 189 6 लाख तक होगी और छठी योजना मे 195·7 लाख से 203 9 लाख तक होगी। जैसी भारत की अर्थ-व्यवस्था है, ऐसी अर्थ-व्यवस्था मे श्रमबल की पूर्ति के अनुमान अस्थिर रहते हैं।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना को जनता पार्टी की सरकार ने अवधि से एक वर्ष पूर्व समाप्त करके आवर्ती योजना प्रणाली के रूप मे पचवर्षीय योजना लागू कर दी, किन्तु दो वार्षिकी योजनाएँ पूरी होने के बाद ही सत्ता परिवर्तन के फलस्वरूप जनवरी, 1980 मे श्रीमती गाँधी पुन. सत्तारूढ़ हुईं और आवर्ती योजना प्रणाली को समाप्त कर पुरानी योजना प्रणाली को पुन: अपनाते हुए 1 अप्रेल,

1980 से छठी पचवर्षीय योजना (1980–85) लागू की। इस प्रकार जनता सरकार द्वारा चालू की गई छठी योजना जारी नही रह सकी, पाँचवी योजना और छठी योजना (1980-85) के बीच के वर्षो की योजना को वार्षिक योजनाएँ मान लिया गया।

(7) छठी योजना (1980-85)

छठी पचवर्षीय योजना (1980–85) में जनशक्ति नियोजन के सम्बन्ध मे जो उद्देश्य, कार्यनीति आदि अपनाई गई उसका विस्तार से वर्णन हम पिछले अध्याय मे 'रोजगार' के सन्दर्भ मे कर चुके हैं। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि छठी योजना मे जनशक्ति की समस्या पर पर्याप्त ध्यान दिया गया। इसमे बहुत गरीब खेती के काम पर लगे किसान तथा ग्रामीण कारीगर और भूमिहीन मजदूरो के लिए हाथकरघा, हस्तकला, रेशम उद्योग तथा अन्य क्षेत्रो के विकास की योजना इसके लिए कच्चे माल की सप्लाई, डिजाइन तैयार करने, ट्रेनिंग बोर्ड, बिक्री तथा निर्यात के लिए उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया। कृषि एवं ग्रामीण विकास मे राष्ट्रीय बैंक की सुविधा, ग्रामीण कारीगरों को दी गई। छठी योजना के प्रमुख उद्देश्यो मे से एक उद्देश्य यह भी रखा गया कि देश मे बेरोजगारो की सख्या मे कमी लाई जाए।

(8) सातवी योजना (1985-90)

भारत में योजना प्रक्रिया छः सोपान पार करके सातवें चरण मे प्रवेश कर गई है। सातवी योजना मे रोजगार के विस्तार को बुनियादी प्राथमिकता घोषित किया गया है और सभी नीतियाँ और कार्यक्रम इसी लक्ष्य के अनुरूप तैयार किए गए हैं। विशेष महत्त्व की बात यह है कि रोजगार के अवसरो मे वृद्धि रोजगार की आवश्यकता वाले लोगो की सख्या मे वृद्धि की तुलना मे अधिक होगी। प्रधान मन्त्री ने घोषणा की कि देश की योजना प्रक्रिया के इतिहास में यह स्थिति पहली बार आएगी कि रोजगार जुटाने के वर्तमान अपूर्ण लक्ष्य को तो प्राप्त किया ही जाएगा, साथ ही पिछले वर्षो मे लक्ष्य का जितना हिस्सा प्राप्त होने से रह गया था, उसे भी पूरा करने के प्रयास किए जाएँगे। इसका सीधा अर्थ है कि सातवी योजना अवधि मे निर्धारित लक्ष्य से अधिक रोजगार के अवसर जुटाने होंगे। रोजगार के अवसरो मे चार प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य है। जबकि रोजगार पाने वालों की संख्या प्रतिवर्ष 2 6 प्रतिशत की दर से बढने का अनुमान है। योजना अवधि मे 4 करोड लोगो के लिए रोजगार की व्यवस्था की जाएगी, जबकि रोजगार की आवश्यकता वाले लोगो की सख्या 3 करोड 90 लाख रहेगी।

कृषि और उद्योग के विस्तार के अलावा रोजगार जुटाने के वर्तमान कार्यक्रमों को जारी रखने का और उनका कार्य क्षेत्र बढाने का भी योजना मे संकल्प व्यक्त किया गया है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन

रोजगार गारण्टी कार्यक्रमों से ग्रामीण इलाकों में दो अरब 40 करोड़ कार्य दिवसों के रोजगार की व्यवस्था की जा सकेगी। योजना में शहरों में गरीबी दूर करने के उद्देश्य से भी रोजगार उपलब्ध कराने की बहुमुखी योजनाएँ चलाने की बात कही गई है। कृषि क्षेत्र में रोजगार वृद्धि की वार्षिक दर 3.5 प्रतिशत तथा अन्य क्षेत्रों में 4.5 प्रतिशत आँकी गई है। रोजगार जुटाने के लिए केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रमों पर विचार करने के लिए एक समिति बनाई जाएगी। यदि इस समिति की सिफारिशें स्वीकार कर ली गई तो सातवीं योजना में आवश्यक संशोधन किए जाएँगे।

भारत में शिक्षण-प्रशिक्षण

मानव-शक्ति के समुचित उपयोग के लिए शिक्षण प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विशेष महत्व है। भारत में युवाओं को किशोरावस्था में ही आजीविका के लिए तैयार करने के उद्देश्य से रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय ने विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों को शुरू किया है। जहाँ तक सम्भव होता है, ये कार्यक्रम राष्ट्रीय ढाँचे के भीतर एवं विदेशी सहयोग से भी तैयार होते हैं। देश में इस समय जो विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, उनके सम्बन्ध में, भारत सरकार के वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ 'भारत 1985' का विवरण इस प्रकार है—

प्रशिक्षण

युवाओं को किशोरावस्था में ही आजीविका के लिए तैयार करने के उद्देश्य से रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय ने विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किए हैं। जहाँ तक सम्भव होता है, ये कार्यक्रम राष्ट्र के अन्तर्गत रखे जाते हैं और विदेशी सहयोग से भी पूरे किए जाते हैं।

कारीगरों का प्रशिक्षण

15 से 26 साल की उम्र वाले युवक-युवतियों को 38 इंजीनियरी और 27 गैर इंजीनियरी धन्धों में प्रशिक्षण देने के लिए समूचे देश में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान खोले गए हैं। इस समय 1268 संस्थाएँ जिनमें कुल 2.40 लाख सीटें हैं, देश में कारीगरों को प्रशिक्षण दे रहे थे। इन्जीनियरी धन्धों के लिए ट्रेनिंग काल 6 माह से 2 वर्ष का है, परन्तु सभी गैर-इन्जीनियरी धन्धों के लिए ट्रेनिंग काल 1 वर्ष है अधिकतर धन्धों में प्रवेश के लिए शैक्षणिक योग्यता 8वीं या मैट्रिकुलेशन से 2 वर्ष कम या इसके बराबर है। 65 धन्धों को छोड़कर राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों ने अपने क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार अतिरिक्त धन्धों के प्रशिक्षण शामिल कर लिए।

कारीगरों का प्रशिक्षण पाने वालों की कार्यकुशलता में वृद्धि के लिए डी० जी० ई० टी०, इंजीनियरी धन्धों के लिए प्रशिक्षण पाने वाले कारीगरों के चुनाव के लिए अभिरुचि परीक्षा का आयोजन करता है। यह परीक्षा विभिन्न क्षेत्रों के उद्योगों में भी लागू कर दी गई है ताकि एप्रेन्टिस अधिनियम, 1961 के अधीन उपयुक्त उम्मीदवार को एप्रेन्टिस नियुक्त किया जा सके।

यह प्रशिक्षण विशेषज्ञों की समिति की सिफारिशों के अनुरूप दिया जा रहा है। इसका उद्देश्य कारीगारों को दिए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम को पुनः सगठित करना है। इस कार्यक्रम मे पहले कारीगारों को व्यापक आधार वाले प्राथमिक प्रशिक्षण और बाद मे आदर्श प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है। 1981–82 में चार आदर्श औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थानों—हल्दवानी (उत्तर प्रदेश), कालीकट (केरल), जोधपुर (राजस्थान) और चौदवार• (उड़ीसा)—की स्थापना की जा चुकी है।

शिल्प शिक्षकों का प्रशिक्षण

औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं के लिए कलकत्ता, कानपुर, बम्बई, मद्रास, लुधियाना तथा हैदराबाद के 6 केन्द्रीय सस्थानो मे शिल्प प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाता है। इन छः सस्थानों मे से एक मद्रास स्थित सस्थान को छोड़कर सन् 1982 के दौरान अन्य पांचो को एडवांस्ड प्रशिक्षण संस्थान के रूप मे पदोन्नत कर दिया गया है। ये 6 सस्थान, जिनकी क्षमता, 1112 प्रशिक्षणार्थी लेने की है, विभिन्न कामो का प्रशिक्षण देते हैं। बम्बई संस्थान में रासायनिक वर्ग के व्यापारो मे और हैदराबाद संस्थान मे होटल और खान-पान सम्बन्धी मामलो में प्रशिक्षकों को ट्रेनिंग देने के लिए सुविधाएं जुटा दी गई हैं तथा कानपुर और लुधियाना के संस्थानों मे क्रमशः छपाई और खेतीबाड़ी के यन्त्रों से सम्बन्धित प्रशिक्षण की सुविधाओं की व्यवस्था की जा रही है। प्रत्येक केन्द्रीय संस्थान से एक आदर्श प्रशिक्षण सस्थान सम्बद्ध है जिनमे प्रशिक्षणार्थियो को व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

उच्च व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना

अक्टूबर, 1977 मे उच्च व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना नामक एक परियोजना कई प्रकार के उन उच्च तथा परिष्कृत कौशलो का प्रशिक्षण देने के लिए चालू की गई है जिनका प्रशिक्षण अन्य व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमो के अन्तर्गत नहीं दिया जाता। यह योजना बम्बई, कलकत्ता, हैदराबाद, कानपुर, मद्रास तथा लुधियाना मे स्थित 6 उच्च प्रशिक्षण सस्थानो और 15 राज्य सरकारो के अधीन चुने हुए 16 औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थानो मे चलाई गई है। आधुनिकीकरण करके उक्त योजना के अन्तर्गत विभिन्न उच्च पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं। पूरे देश के लिए मद्रास का उच्च प्रशिक्षण सस्थान शीर्ष सस्था का काम करता है और अन्य पाँच उच्च प्रशिक्षण संस्थान (जो पहले केन्द्रीय प्रशिक्षण सस्थान कहलाते थे) जहाँ यह प्रणाली लागू की गई, प्रादेशिक संस्थाओं के रूप मे काम करते हैं।

इलेक्ट्रॉनिकी और प्रक्रिया सम्बन्धी उपकरणों का प्रशिक्षण देने के लिए 1974 मे हैदराबाद मे एक उच्च प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किया गया। इसमे घरेलू, औद्योगिक, चिकित्सा सम्बन्धी, इलेक्ट्रॉनिक्स तथा प्रक्रिया उपकरणो के क्षेत्रों मे उच्च प्रशिक्षण दिया जाता है। इलेक्ट्रॉनिक व प्रक्रिया सम्बन्धी उपकरणों के लिए दिसम्बर 1981 मे देहरादून (उत्तर प्रदेश) मे एक अन्य संस्थान की स्थापना की गई है।

फोरमैनों को प्रशिक्षण/सुपरवाइजरों को प्रशिक्षण

फोरमैनों को प्रशिक्षित करने के लिए एक संस्थान की स्थापना बंगलूर में 1971 में की गई थी। यह इस समय काम कर रहे 'शॉप फोरमैनों' और सुपरवाइजरों को तथा भविष्य में ऐसे पद पर कार्य करने वाले व्यक्तियों की तकनीकी एवं प्रबन्धन क्षमता का और उद्योगों से आए श्रमिकों को उच्च तकनीकी हुनरों का प्रशिक्षण देता है। दक्ष फोरमैनों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने सन् 1982 में जमशेदपुर में द्वितीय फोरमैन प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की।

प्रशिक्षु प्रशिक्षण योजना

प्रशिक्षु अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत मालिकों के लिए खास-खास उद्योग में प्रशिक्षु का लगाना अनिवार्य है। यह आधारभूत प्रशिक्षण होता है जिसके साथ-साथ केन्द्रीय प्रशिक्षु परिषद् के परामर्श पर सरकार द्वारा निर्धारित प्रशिक्षण मानदण्डों के अनुसार ठीक काम के बारे में या व्यवस्था के बारे में प्रशिक्षण दिया जाता है। अब तक इस अधिनियम के अन्तर्गत 217 वर्गों के उद्योगों तथा 138 धन्धों को (3 धन्धों को छोड़कर) शामिल किया जाता है। 1973 के प्रशिक्षु (संशोधन) अधिनियम के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों/जनजातियों के उम्मीदवारों के लिए स्थान सुरक्षित करने और इंजीनियरी के स्नातकों तथा डिप्लोमाधारियों के लिए रोजगार बढ़ाने की व्यवस्था है।

यह अधिनियम लगभग 13,375 संस्थानों में लागू है। मार्च, 1985 के अन्त तक विभिन्न प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत लगभग 1·34 लाख प्रशिक्षु प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। मार्च, 1985 के अन्त तक अभियान्त्रिक प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित विषयों पर लगभग 71 प्रकार के ऐसे क्षेत्र तैयार किए गए थे जिनमें लगभग 12,789 स्नातक तथा डिप्लोमाधारी प्रशिक्षु प्रशिक्षण ले रहे थे।

औद्योगिक कामगारों के लिए अंशकालिक प्रशिक्षण

जो लोग उद्योग में बिना किसी नियमित प्रशिक्षण के प्रवेश करते हैं उनके लिए सध्याकालीन कक्षाएँ आयोजित की गई हैं। इस पाठ्यक्रम में वे औद्योगिक श्रमिक, उनकी उम्र चाहे कुछ भी हो, प्रवेश पा सकते हैं जिन्हें किसी विशेष धन्धे में दो वर्ष का काम करने का अनुभव प्राप्त है और जिनका नाम उनके मालिक भिजवाते हैं। प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की है। केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थान, मद्रास तथा 48 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों और पाँच ए. टी. आई. में ये पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं।

व्यावसायिक प्रशिक्षण अनुसंधान

देशी प्रशिक्षण विधियों के विकास के लिए 1970 में मे कलकत्ता में केन्द्रीय कर्मचारी प्रशिक्षण तथा अनुसंधान संस्थान स्थापित किया गया। संस्थान में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों एवं उद्योगों से आए लोगों के लिए (जिनके नियन्त्रण, निदेशन और संचालन में प्रशिक्षण कार्यक्रम चलते हैं)

प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इसके अलावा यह यन्त्रों और प्रशिक्षण विधियों सम्बन्धी अनुसंधान की व्यवस्था करता है, प्रशिक्षण सहायता-सामग्री तैयार करता है और उद्योगों को औद्योगिक प्रशिक्षण विधियों में परामर्श देता है।

स्त्रियों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम

केन्द्रीय महिला प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली को राष्ट्रीय महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान में बदल दिया गया है। संस्थान अपने यहाँ महिलाओं के लिए विशेष व्यवसायों में प्रशिक्षक प्रशिक्षण, मूल प्रशिक्षण तथा उच्चतर प्रशिक्षण देता है। बम्बई, बंगलूर तथा तिरुअनन्तपुरम में महिलाओं के लिए तीन क्षेत्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान कार्य कर रहे हैं।

श्रम मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट : 1985-86 के अनुसार श्रमिकों की शिक्षा और उनके प्रशिक्षण की कुछ प्रमुख योजनाएँ और कार्यक्रम

केन्द्रीय रोजगार सेवा अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थान (सरटस) रोजगार सेवा और नौकरी चाहने वाले व्यक्तियों और माता-पिता के लिए उपयोगी आजीविका सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित करने के विभिन्न कार्यकलापों के सम्बन्धित मामलों पर अनुसंधान के लिए रोजगार सेवा के अधिकारियों को प्रशिक्षित करने के लिए उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा जनशक्ति के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में सर्वेक्षण और अध्ययन नियमित आधार पर किए जाते हैं। सर्वेक्षणों और अध्ययनों सम्बन्धी एक तकनीकी समिति द्वारा डी.जी.ई. एण्ड टी और सरटस के अनुसंधान और सर्वेक्षण सम्बन्धी प्रस्तावों की तकनीकी, वित्तीय और संगठनात्मक दृष्टिकोण से जाँच की जाती है और चल रही अनुसंधान परियोजनाओं का प्रबन्ध भी किया जाता है। सरटस ने विभिन्न तकनीकी सहायता कार्यक्रमों के अन्तर्गत राज्यों/संघ-शासित क्षेत्रों द्वारा प्रतिनियुक्त रोजगार अधिकारियों तथा विकासशील देशों द्वारा भेजे गए प्रशिक्षणार्थियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने सम्बन्धी अपने कार्यक्रम को जारी रखा। वर्ष 1986 के दौरान रोजगार सेवा के विभिन्न क्षेत्रों में राज्यों/संघ-शासित क्षेत्रों के 222 अधिकारियों के लिए सरटस के प्रशिक्षण प्रभाग द्वारा 15 प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (सेमीनार) कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। इसके अतिरिक्त सरटस ने आउट सर्विस ट्रेनिंग स्कीम के अन्तर्गत रोजगार सेवा के 43 अधिकारियों को उनके कार्य से सम्बद्ध क्षेत्रों में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अन्य संस्थाओं में प्रतिनियुक्त किया। संस्थान अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत अन्य विकासशील देशों को प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करता रहा। 1986 के दौरान 4 अधिकारी नेपाल, एक अधिकारी श्रीलंका और दो अधिकारी मालदीव से आए जिन्होंने विकलांग व्यावसायिक पुनर्वास के क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त किया। वर्ष 1987 के लिए एक प्रशिक्षण कैलेण्डर तैयार किया गया और सभी राज्य सरकारों को परिचालित किया गया।

शिल्पकार प्रशिक्षण योजना

शिल्पकार प्रशिक्षण योजना नामक एक राष्ट्रीय योजना वर्ष 1950 में देश में प्रौद्योगिकीय विकास और औद्योगिक प्रगति के लिए तकनीकी जनशक्ति की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए विभिन्न व्यावसायिक व्यवसायों में प्रशिक्षण देने हेतु शुरू की गई थी। इस योजना का उद्देश्य विभिन्न व्यवसायों में कुशल कामगारों के नियमित प्रवाह को सुनिश्चित करना, निपुण कामगारों को नियमित प्रशिक्षण देकर औद्योगिक उत्पादन में गुणवत्ता और मात्रा बढ़ाना और शिक्षित युवाओं में बेरोजगारी कम करने के लिए उन्हें उपयुक्त औद्योगिक रोजगार के लिए तैयार करना है।

केन्द्रीय सरकार का श्रम मन्त्रालय इस योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण देने के लिए एक राष्ट्रीय नीति तैयार करता है और प्रशिक्षण के लिए पाठ्यचर्या और विभिन्न मानकों तथा मानदण्डों का निर्धारण करता है। राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद् (एन. सी. वी. टी) जो एक एपेक्स गैर-सांविधिक सलाहकार निकाय है सरकार को इस मामले में सलाह देती है। केन्द्रीय श्रममन्त्री इस परिषद् के अध्यक्ष हैं। इस योजना के अन्तर्गत देश के विभिन्न राज्यों/संघ-शासित क्षेत्रों के औद्योगिक क्षेत्रों में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों (राज्य सरकार तथा प्राइवेट) में 38 इंजीनियरी तथा 26 गैर-इंजीनियरी व्यवसायों के अनुसार छः माह से दो वर्ष तक होती है और प्रवेश के लिए शैक्षणिक योग्यता 8वें दर्जे से मैट्रिकुलेशन या समकक्ष होती है। शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत प्रशिक्षण संस्थानों/केन्द्रों का राज्यवार विभाजन दर्शाया गया है। रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा अखिल भारतीय व्यवसाय परीक्षा आयोजित की जाती है और राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद् की ओर से सफल उम्मीदवारों को राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाण-पत्र दिए जाते है। यह प्रमाण-पत्र सभी केन्द्रीय/राज्य सरकार की स्थापनाओं में सगत अधीनस्थ पदों पर भर्ती के लिए एक मान्यता प्राप्त योग्यता है। इस योजना के अन्तर्गत सभी संस्थान सम्बन्धित राज्य सरकारों के प्रशासनिक नियन्त्रणाधीन है। सरकारी प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षण या तो नि:शुल्क दिया जाता है या मामूली शिक्षा शुल्क लिया जाता है। दर्ज किए प्रशिक्षणार्थियों में से 50 प्रतिशत प्रशिक्षणार्थियों को प्रति प्रशिक्षणार्थी 40 रुपये प्रतिमाह की दर से वृत्तिका दी जाती है। प्रशिक्षणार्थियों को वर्कशाप के लिए मुफ्त कपड़े, खेलकूद तथा चिकित्सा सुविधाएँ और जहाँ पर होस्टल आवास उपलब्ध होते हैं जैसी रियायतें भी दी जाती है। इस योजना के अन्तर्गत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों की भर्ती के लिए सीटों का आरक्षण करने की व्यवस्था भी है। व्यवसाय समितियों के विशेषज्ञ मार्गदर्शन के अन्तर्गत व्यवसायों की पाठ्यचर्या आवधिक रूप से संशोधित की जाती है। नई सामने आने वाली परिष्कृत प्रौद्योगिकी और तेजी से होने वाले नाना उपकरण के साथ मेल खाते हुए व्यवसायों जैसे कि रसायन कम्प्यूटर सेवा, इलैक्ट्रोनिक्स

आदि में प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। टी. वी. टेप रिकार्डर और वीसीआर आई जैसे सामान्य बिजली उत्पादों के साधनों की मरम्मत और रख-रखाव के लिए सर्विस तकनीशियनों की बढ़ती हुई मांग पूरी करने के लिए डी.जी.ई. एण्ड टी. द्वारा इलैक्ट्रॉनिक्स विभाग के सौजन्य से रेडियो तथा टी. वी. व्यवसाय और सामान्य इलैक्ट्रॉनिक्स व्यवसाय के भूतपूर्व आई. टी. आई. प्रशिक्षणार्थियों के प्रशिक्षण के लिए एक क्रेश प्रोग्राम शुरू किया गया। डी. जी. ई. एण्ड टी. के उच्च प्रशिक्षण संस्थानों में विभिन्न राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों के 44 प्रशिक्षण संस्थानों के 56 अनुदेशक प्रशिक्षित किए गए। इलैक्ट्रॉनिक्स विभाग द्वारा इस प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के लिए उपकरण प्रदान किए गए। वर्ष 1986 के दौरान राज्य सरकार/संघ-शासित क्षेत्र के प्रशासन के सौजन्य से अधिकांश प्रशिक्षण केन्द्रों में छः मास का प्रशिक्षण पाठ्यक्रम शुरू किया गया।

उद्योगों के विभिन्न कुशल क्षेत्रों में कुशल जनशक्ति की मांग के कारण औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या में तेजी से बढ़ोतरी हुई है। छठी पंचवर्षीय योजना के शुरू में केवल 831 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान और केन्द्र थे जिनकी सीटों की कुल क्षमता 1·92 लाख थी। इसी योजना अवधि के अन्त में इन संस्थानों की संख्या बढ़कर 1,447 हो गई। 31-12-1986 को यह संख्या और बढ़कर 1,724 हो गई और सीटों की क्षमता 3 10 लाख तक बढ़ गई।

इस तथ्य को मानते हुए कि कुशल कामगारों की गुणवत्ता औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में प्रदान किए जा रहे प्रशिक्षण के स्तर पर सीधे निर्भर करती है शिल्पकार प्रशिक्षण योजना से सम्बद्ध राज्य निदेशकों को यह सुनिश्चित करने के लिए सलाह दी गई है कि एन सी वी. टी. द्वारा निर्धारित मानदण्ड संस्थानों के प्रबन्धतन्त्र द्वारा बनाए रखे जाएँ। रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय, श्रम मन्त्रालय ने सम्बद्ध प्रक्रिया तैयार की है जिसमें योजना के अन्तर्गत नए संस्थानों के लिए विभिन्न दिशा-निर्देश और एन. सी. वी. टी. के साथ सम्बद्ध संस्थानों के बारे में अनेक अन्य बातें शामिल हैं। सम्बन्धित राज्य निदेशक के अनुरोध पर स्थाई समिति द्वारा संस्थानों का निरीक्षण किया जाता है और केवल उन्हीं संस्थानों/व्यवसायों को एन. सी. वी. टी. के साथ स्थाई सम्बद्धता की अनुमति दी जाती है जिन्हें निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप पाया जाता है। प्रशिक्षण की गुणवत्ता में सुधार लाने की दृष्टि से श्रम मन्त्रालय ने हाल में केन्द्र द्वारा प्रायोजित एक योजना तैयार की है जिसके अन्तर्गत VIIवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में राज्य सरकार के उन औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों को वित्तीय सहायता प्रदान की जा रही है जो पुराने और घिसे-पिटे उपकरणों को बदलने के लिए 15 वर्ष से पुराने हैं। 10 राज्यों के मुख्यतः अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों से आबाद क्षेत्रों में स्थापित चुने हुए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में सुविधाओं का विस्तार करने की दृष्टि से, 7वीं योजना के दौरान 20 लाख के कुल वित्तीय परिव्यय वाली केन्द्र द्वारा प्रायोजित एक योजना भी शुरू की गई है।

औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों और राज्यों के प्रशिक्षणार्थियों के बीच स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना जागृत करने के उद्देश्य से रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा नियमित रूप से शिल्पकारों के लिए अखिल भारतीय कौशल प्रतियोगिता का आयोजन किया जाता है। अखिल भारतीय स्तर पर सर्वोत्तम शिल्पकारों को मेरिट सर्टिफिकेट और 6000 रु का नकद पुरस्कार दिया जाता है। सर्वोत्तम राज्य को भी मेरिट सर्टिफिकेट और रनिंग शील्ड/ट्राफी प्रदान की जाती है।

औद्योगिक कर्मकारों के लिए अंशकालिक कक्षाएँ

यह योजना श्रम मन्त्रालय द्वारा 1958 में उन औद्योगिक कर्मकारों के सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यावहारिक कौशल को अद्यतन तथा अपग्रेड करने की दृष्टि से शुरू की गई थी जिनके पास संस्थानों का कोई सम्बद्ध औपचारिक प्रशिक्षण नहीं होता और शिल्पकार प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत उन्हें राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए पात्र बनाया जा सके। इस मन्त्रालय के प्रशिक्षण निदेशालय के अधीन उच्च प्रशिक्षण संस्थानों और केन्द्रीय अनुदेशक प्रशिक्षण संस्थान, मद्रास में आयोजित कर्मचारियों के लिए शाम के समय अंशकालिक कक्षाओं का आयोजन किया जाता है। जो कर्मकार अनुदेशों को समझने के लिए पर्याप्त रूप से शिक्षित पाए जाते हैं, उन्हें इन पाठ्यक्रमों में भर्ती किया जाता है चाहे उनकी आयु कितनी भी हो। अनेक प्रशिक्षण यूनिटों में व्यवसाय के प्रकारों के आधार पर एक वर्ष से तीन वर्ष की अवधि का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। पूरा प्रशिक्षण कार्यक्रम तीन-तीन माह के प्रत्येक यूनिट में बाँटा जाता है जिसमें व्यवसाय सम्बन्धी विषय को प्रगामी रूप से शामिल किया जाता है और ट्रेड प्रैक्टिकल, वर्कशाप सगणना और इन्जीनियरिंग ड्राइंग जैसे सम्बद्ध अन्य विषयों को समुचित रूप से शामिल किया जाता है। 4 से 12 यूनिटों में विभाजित पूरा पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक उत्तीर्ण करने के बाद प्रशिक्षणार्थियों को एन. सी. वी. टी. के तत्वावधान में आयोजित अखिल भारत व्यवसाय प्रतियोगिता में प्राइवेट उम्मीदवारों के रूप में बैठने की अनुमति दी जाती है और राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाण पत्र प्रदान किए जाते हैं जो अर्ध-कुशल श्रेणी के तकनीशियनों के अधीनस्थ पदों पर भर्ती के लिए एक मान्यता प्राप्त योग्यता है। इस कार्यक्रम से औद्योगिक कर्मकारों को मान्यता प्राप्त तकनीकी योग्यता हासिल करने के अलावा पर्याप्त कौशल अर्जित करने में मदद मिलती है। यह प्रशिक्षण योजना कुछ राज्यों/संघ शासित क्षेत्रों के चुने हुए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों और डी.जी.ई.टी. के अधीन सी. टी. आई./ए. टी. आई.ज में चलाई जा रही है जिनकी सीटों की कुल क्षमता 5000 है।

भूतपूर्व सैनिकों का प्रशिक्षण

रक्षा सेवा के उन कार्मिकों के प्रशिक्षण के लिए विशेष कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं जो सेवा निवृत्त होने वाले हैं या सेवा-निवृत्त हो गए है। रक्षा

मन्त्रालय में डी. जी. आर. के सौजन्य से उनके प्रशिक्षण के लिए ये योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं—

(1) प्री-कम-पोस्ट रिलीज ट्रेनिंग फॉर डिफेन्स पर्सोनल (पी. सी. पी. आर. टी.),

(2) 'ग्रान-दी-जॉब ट्रेनिंग स्कीम' फॉर डिफेंस पर्सोनल।

पी. सी. ग्रार टी. के अन्तर्गत, समस्त देश में स्थापित विभिन्न औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के सेवानिवृत्त होने वाले सेवा कार्मिकों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इसका उद्देश्य किसी विशेष व्यवसाय के कौशल के साथ सेवा-निवृत्त होने वाले सेवा कार्मिकों को सुसज्जित करना है ताकि उन्हें राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाण पत्र के रूप में योग्यता हासिल हो सके। डी. जी आर. द्वारा उन्हें सेवा निवृत्त होने से पहले प्रशिक्षणार्थियों के रूप में प्रतिनियुक्त किया जाता है और समस्त देश में स्थापित औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में इस प्रयोजनार्थ 1,000 सीटें सुरक्षित रखी गई हैं। 'ग्रान-दी जॉब ट्रेनिंग स्कीम' जो 1981 में शुरू की गई थी, के अन्तर्गत औद्योगिक उद्यमियों द्वारा 10 अलग-अलग व्यवसायों में डी. जी. आर. के परामर्श से निर्दिष्ट विशेष पाठ्यचर्या के आधार पर सेवा निवृत्त कार्मिकों के लिए कौशल प्रशिक्षण सम्बन्धी विशेष कार्यक्रम चलाए जाते हैं। प्रशिक्षण की अवधि 9 माह है। सफलतापूर्वक प्रशिक्षण पूरा करने के बाद एन. सी. वी टी. के तत्वावधान में डी. जी. ई. एण्ड टी श्रम मन्त्रालय के उच्च प्रशिक्षण संस्थानों द्वारा व्यवसाय परीक्षा आयोजित की जाती है और सफल कार्मिकों को विशेष व्यवसाय प्रमाण पत्र प्रदान किए जाते है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त, प्रत्येक आई टी. आई. में 10 सीटें रक्षा सेवा कार्मिकों के बच्चों के लिए आरक्षित की गई हैं।

शिक्षुता प्रशिक्षण योजना
(शिक्षु अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत)

किसी देश के औद्योगिक विकास के लिए मानव संसाधनों का विकास एक महत्वपूर्ण अंग है। औद्योगिक विकास द्वारा लाई जा रही स्किल प्रोफाइल के बदलते हुए स्वरूप के कारण होने वाली तेजी से यह समस्या और भी अधिक जटिल बन गई है। इसे ध्यान में रखकर शिक्षु अधिनियम, 1961 की इन उद्देश्यों के साथ संरचना की गई थी—

1 उद्योग में शिक्षुओं के प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम को विनियमित करना ताकि वह केन्द्रीय शिक्षुता परिषद् द्वारा निर्धारित विहित पाठ्यचर्या, प्रशिक्षण सम्बन्धी अवधि आदि के अनुरूप हो, और

2. उद्योगों में कुशल कामगारों की जरूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए उद्योग में उपलब्ध सुविधाओं का पूर्ण रूप से उपयोग।

इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रम 1-1-1963 से वास्तविक रूप से कार्यान्वित किया गया। प्रारम्भ में अधिनियम में व्यवसाय, शिशुओं के प्रशिक्षण के लिए परिकल्पना की गई। 1973 में शिशु अधिनियम में संशोधन करके इसकी परिधि के अन्दर स्नातक और तकनीशियन शिशुओं के रूप में इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी में स्नातक तथा डिप्लोमाधारियों के प्रशिक्षण को लाया गया। तकनीशियन (व्यावसायिक) शिशुओं के रूप में 10+2 व्यावसायिक स्ट्रीम से उत्तीर्ण प्रशिक्षणार्थियों के प्रशिक्षण को शिशु अधिनियम की परिधि के अन्तर्गत लाने के लिए इसमें पुनः संशोधन किया गया। इस श्रेणी के शिशुओं का प्रशिक्षण अपेक्षित नियम अधिसूचित करने के बाद जिसके लिए आवश्यक कार्रवाई शुरू कर दी गई है, शुरू किया जाएगा।

अधिनियम के अनुसार यह जरूरी है कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के उद्योगों के नियोजक नियमों के अन्तर्गत निर्धारित निर्दिष्ट व्यवसायों में अकुशल कामगारों के अलावा कामगारों तथा शिशुओं के अनुपात के अनुसार व्यवसाय शिशुओं को नियोजित करें। शिक्षुता प्रशिक्षण के लिए अधिकतम सुविधाओं का पता लगाने के लिए, प्रतिष्ठानों में किए गए गहन सर्वेक्षणों के परिणामस्वरूप प्रशिक्षण सम्बन्धी संस्थानों का पता लगाया गया। व्यवसायों की जरूरत के अनुसार व्यवसाय शिशुओं के लिए प्रशिक्षण सम्बन्धी अवधि छः माह से चार वर्ष तक है। उद्योग से व्यवसाय में विशेषज्ञों को सम्मिलित कर सम्बन्धित व्यवसाय समितियों द्वारा अलग-अलग व्यवसायों के लिए पाठ्यचर्या तैयार की जाती है। सामान्यतः वर्ष में दो बार अर्थात् फरवरी-मार्च और अगस्त-सितम्बर में शिशु नियोजित किए जाते हैं।

केन्द्र सरकार सरकारी प्रतिष्ठानों/विभागों में और सम्बन्धित राज्य सरकारें राज्य के सरकारी विभागों/उपक्रमों और निजी क्षेत्र के प्रतिष्ठानों में व्यवसाय शिशुओं के लिए शिक्षुता प्रशिक्षण योजना कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी है। यह योजना श्रम मन्त्रालय के रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय द्वारा कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कानपुर, फरीदाबाद और हैदराबाद में स्थापित क्षेत्रीय शिक्षुता प्रशिक्षण निदेशालयों के सहयोग से केन्द्रीय क्षेत्र में और सम्बन्धित राज्य शिक्षुता सलाहकारों द्वारा सम्बन्धित राज्यों में चलाई जाती है। चार क्षेत्रीय प्रशिक्षण बोर्डों (शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के अधीन स्वायत्त निकाय) द्वारा स्नातक इंजीनियरों और डिप्लोमाधारी शिशुओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम कंट्रोल किए जाते हैं। लेकिन शिशु अधिनियम के कार्यान्वयन की पूरी जिम्मेदारी श्रम मन्त्रालय में केन्द्रीय शिक्षुता सलाहकार पर है।

व्यवसाय शिशु

31 दिसम्बर, 1986 को केन्द्र, राज्य और निजी क्षेत्र की स्थापनाओं में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे शिशुओं की संख्या 1,31,486 थी। शिशुओं की भर्ती में अनुसूचित जाति/अ. ज. जा., अल्पसंख्यकों, विकलांगों और महिलाओं के साथ

उचित व्यवहार सुनिश्चित करने के बारे में ध्यान रखा गया है। 31-12-86 को प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे 1,31,486 व्यवसाय शिक्षुओं में से इन श्रेणियों से सम्बन्धित शिक्षुओं की संख्या अनुसूचित जाति 13,227, अनुसूचित जनजाति 3 441, अल्पसंख्यक 21,223, विकलांग 526 और महिलाएं 3,721 थी। अब तक इस अधिनियम के अन्तर्गत 134 निर्दिष्ट व्यवसायों [illegible] शिक्षुओं को प्रशिक्षित करने के लिए उद्योगों की 217 श्रेणियों को विनिर्दिष्ट किया गया है। इन 134 व्यवसायों को 29 व्यवसाय ग्रुपों जैसे कि मशीन शाप ट्रेड ग्रुप, फाउंडरी ट्रेड ग्रुप, रेफ्रिजरेटर और वातानुकूलन आदि में बांटा गया है।

शिक्षुओं के लिए शैक्षिक योग्यताएं 5 वीं कक्षा उत्तीर्ण या इसके समकक्ष से हायर सैकेण्डरी/पी. यू. सी. उत्तीर्ण या इसके समकक्ष तक है। इन व्यवसायों में से प्रत्येक व्यवसाय के बारे में निर्दिष्ट व्यवसायों की सूची, प्रशिक्षण की अवधि और कुशल श्रमिकों के अलावा श्रमिकों से शिक्षुओं का अनुपात अनुबन्ध-IV में दिया गया है।

व्यवसाय और उद्योग की बढ़ती हुई प्रौद्योगिकी की मांग को ध्यान में रखते हुए, शिक्षु-अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत निर्दिष्ट व्यवसायों के लिए पाठ्यचर्या की व्यवसाय समितियों द्वारा निरन्तर पुनरीक्षा की जा रही है। 1984-85 और 1985-86 के दौरान क्रमशः 55 और 22 निर्दिष्ट व्यवसायों के लिए पाठ्यचर्या संशोधित और कार्यान्वित की गई। बाकी निर्दिष्ट व्यवसायों की पाठ्यचर्या की पुनरीक्षा करने के लिए व्यवसाय समितियां/विशेषज्ञ विचार कर रहे हैं।

सम्बद्ध अनुदेश (आर. आई.)

सभी व्यवसाय शिक्षुओं को सम्बद्ध अनुदेश बेसिक प्रशिक्षण सहित समुचित सैद्धान्तिक ज्ञान से सुसज्जित करने के लिए दिए जाते हैं। सम्बद्ध अनुदेश समुचित सरकार के खर्च पर प्रदान किए जाते हैं। तथापि जब कभी आवश्यकता पड़ती है तब ये अनुदेश प्रदान करने के लिए सभी सुविधाएं देने का खर्च नियोजक द्वारा वहन किया जाता है और जिसकी बाद में प्रतिपूर्ति की जाती है। सम्बद्ध अनुदेश का खर्च हाल में 1[illegible] रुपये 50 पैसे से बढ़ाकर 20 रुपये प्रति माह प्रति शिक्षु करके संशोधित किया गया है।

व्यवसाय परीक्षा

प्रशिक्षण के समाप्त होने पर शिक्षुओं की राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद् द्वारा वर्ष में दो बार अर्थात् अप्रेल और नवम्बर में परीक्षा ली जाती है। सफल शिक्षुओं को राष्ट्रीय शिक्षुता प्रमाण-पत्र प्रदान किए जाते हैं।

शिक्षुओं के लिए कौशल प्रतियोगिता

शिक्षुओं में और उन प्रतिष्ठानों के बीच में भी, प्रतियोगिता की भावना, प्रतिपादित करने दृष्टि से 7 निर्दिष्ट व्यवसायों अर्थात् फिटर, मशीनिस्ट, टर्नर, वेल्डर, मोल्डर, बिजली मिस्त्री, मैकेनिकल मोटर वाहन में अखिल भारतीय आधार पर कौशल प्रतियोगिता आयोजित की जाती है।

पुरस्कार और योजना

(i) अखिल भारत प्रतियोगिता मे प्रत्येक व्यवसाय के सर्वोत्तम शिशु को मेरिट सर्टिफिकेट और 6,000 रुपये का नकद इनाम।

(ii) अखिल भारत प्रतियोगिता मे सभी व्यवसायो मे सर्वोत्तम प्रतिष्ठान को भारत के राष्ट्रपति की ओर से ट्राफी और सम्मान सर्टिफिकेट।

(iii) क्षेत्रीय प्रतियोगिता मे सभी व्यवसायो में प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक व्यवसाय के सर्वोत्तम शिशु को मेरिट सर्टिफिकेट।

(iv) क्षेत्रीय प्रतियोगिता मे सभी व्यवसायो मे सर्वोत्तम प्रतिष्ठान को मेरिट सर्टिफिकेट।

(v) स्थानीय प्रतियोगिता स्तर पर प्रत्येक व्यवसाय मे सर्वोत्तम शिशु को मेरिट सर्टिफिकेट।

स्नातक और तकनीशियन शिशु

इस अधिनियम के अधीन स्नातक तथा तकनीशियन शिशुओ की शिशुता प्रशिक्षण सम्बन्धी योजनाओ का प्रशासन शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मन्त्रालय (एच. आर. डी.) द्वारा किया जा रहा है। इस अधिनियम के अन्तर्गत इंजीनियरी/प्रौद्योगिकी मे स्नातकों और डिप्लोमा धारको के शिशुता प्रशिक्षण के लिए इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी के 71 विषय निर्दिष्ट किए गए है।

वृत्तिका

शिशुता प्रशिक्षण अवधि के दौरान प्रत्येक शिशु को निम्नलिखित न्यूनतम दर पर छात्रवृत्ति दी जाती है—

(1) व्यवसाय शिशु	
प्रथम वर्ष	230 रुपये प्रति माह
द्वितीय वर्ष	260 रुपये प्रति माह
तृतीय वर्ष	300 रुपये प्रति माह
चौथा वर्ष	350 रुपये प्रति माह
(2) इंजीनियरी स्नातक (संस्थागत प्रशिक्षण के बाद के लिए)	450 रुपये प्रति माह
(3) डिग्री संस्थानो से सैंडविच कोर्स के छात्र	350 रुपये प्रति माह
(4) डिप्लोमाधारी (संस्थागत प्रशिक्षण के बाद के लिए)	320 रुपये प्रति माह
(5) डिप्लोमा संस्थानो से सैंडविच कोर्स के छात्र	250 रुपये प्रति माह

सभी श्रेणी के शिशुओ को दी जाने वाली वृत्तिका की दरे बढाने सम्बन्धी मामला केन्द्रीय शिशुता परिषद् ने अनुमोदित कर दिया है और यह भारत सरकार के विचाराधीन है।

चूंकि शिशु अधिनियम, 1961 लगभग 26 वर्ष से कार्यान्वित किया जा रहा है, इसलिए इस अधिनियम की व्यापक पैमाने पर पुनरीक्षा करने की जरूरत महसूस की गई है। इस प्रयोजनार्थ गठित कार्यदल ने क्षेत्रीय गोष्ठियों के दौरान की गई सिफारिशों और प्रश्नावली के संदर्भ मे प्राप्त उत्तरो के आधार पर कई सिफारिशें की हैं। केन्द्रीय शिक्षुता परिषद् ने 27 नवम्बर, 1986 को हुई अपनी अन्तिम बैठक में ये सिफारिशें अनुमोदित की हैं। शिशु अधिनियम मे आवश्यक सशोधन लाने की दृष्टि से इन सिफारिशो की आगे जाँच की जा रही है।

शिल्प अनुदेशक प्रशिक्षण

कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, लुधियाना और हैदराबाद मे स्थित उच्च प्रशिक्षण सस्थान (जो पहले सी टी आईज थे) और मद्रास मे स्थित केन्द्रीय अनुदेशक प्रशिक्षण सस्थान अनुदेशक प्रशिक्षणार्थियो को औद्योगिक कौशल सम्बन्धी तकनीकों के बारे मे प्रशिक्षण प्रदान करते है, जो बाद मे उद्योग के लिए कुशल जन-शक्ति को प्रशिक्षित करते और उपलब्ध कराते हैं।

ये सस्थान एक-वर्षीय पाठ्यक्रमों की शृंखला चलाते है, जो कौशल विकास एवं अध्यापन सम्बन्धी सिद्धान्तो दोनो मे व्यापक प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। पुनश्चर्या पाठयक्रमो का भी आयोजन किया जाता है ताकि अनुदेशकों के ज्ञान और जानकारी को बढाया तथा आधुनिक बनाया जा सके और उद्योग मे प्रौद्योगिकीय विकास सम्बन्धी नवीनतम जानकारी से उन्हे अवगत कराया जा सके। ए. टी आई., कानपुर और ए टी आई., हैदराबाद में पायलट आधार पर अगस्त, 1983 से शिल्प अनुदेशको के लिए माड्यूलर प्रकार के प्रशिक्षण को शुरू किया गया और इसका अगस्त, 1984 से सी टी आई, मद्रास मे विस्तार किया गया।

समीक्षाधीन अवधि के दौरान, विभिन्न व्यवसायो मे उपरिलिखित छः संस्थानों मे सीटों की संख्या 1,144 थी। 31-12-1986 को हाजरी रजिस्टर पर 11,625 प्रशिक्षणार्थी दर्ज थे।

कुछ चुने हुए विशेष व्यवसायों में अनुदेशकों के लिए प्रशिक्षण सुविधाएँ जारी रखी गई जैसे उच्च प्रशिक्षण संस्थान, बम्बई मे बुनाई के व्यवसाय मे, उच्च प्रशिक्षण संस्थान, हैदराबाद मे होटल और केटरिंग के व्यवसायों में, उच्च प्रशिक्षण सस्थान, कानपुर मे प्रिंटिंग के व्यवसायो में, उच्च प्रशिक्षण संस्थान, लुधियाना में फार्म मेकेनिक के व्यवसायो मे उच्च प्रशिक्षण संस्थान, कानपुर, कलकत्ता और लुधियाना में मिल राइट के व्यवसायों मे तथा उच्च प्रशिक्षण संस्थान, कलकत्ता में प्रशिक्षण मेथडोलॉजी के उच्च पाठ्यक्रमों मे।

व्यावसायिक महिला प्रशिक्षण कार्यक्रम

महिलाओं के लिए नाना प्रकार के प्रशिक्षण अवसर प्रदान करने की दृष्टि से, सीडा आई एन. ओ. के सहयोग से मार्च, 1977 में महिलाओ के व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए एक परियोजना शुरु की गई थी। इस परियोजना के अन्तर्गत केन्द्रीय अनुदेशक प्रशिक्षण संस्थान (महिला), नई दिल्ली का दर्जा बढ़ाकर उसे

राष्ट्रीय महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान, दिल्ली के नाम से तबदील किया गया था और बम्बई, बंगलौर और त्रिवेन्द्रम में 3 क्षेत्रीय महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किए गए थे। ये संस्थान तीन टायर सिस्टम में प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करते हैं नामत: अधिक रोजगार की सम्भावना वाले कुछ चुने हुए व्यवसायों में बुनियादी कौशल, उच्च कौशल और अनुदेशक प्रशिक्षण। स्कूल छोड़े हुए प्रशिक्षणार्थी, स्नातकों और मौजूदा महिला कर्मकारों को शामिल किया जाता है (अनुबन्ध 7)। इन संस्थानों द्वारा गृहणियों के लिए यथासम्भव अशकालिक पाठ्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं। दिसम्बर, 1986 के अन्त तक इन संस्थानों द्वारा लगभग 4,911 प्रशिक्षणार्थियों को प्रशिक्षित किया गया। इन संस्थानों की प्रशिक्षण क्षमता दिसम्बर, 1983 में 537 प्रशिक्षणार्थियों से बढ़ाकर दिसम्बर, 1986 में 684 कर दी गई।

इसके अतिरिक्त, महिलाओं को विभिन्न राज्य सरकारों के प्रशासनिक नियन्त्रणाधीन औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में व्यावसायिक प्रशिक्षण के अवसर भी प्रदान किए जाते हैं। यद्यपि औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में पुरुष और महिलाएँ दोनों दाखिल हो सकते हैं, तथापि महिलाओं के लिए अलग औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान यह सुनिश्चित करने के लिए स्थापित किए गए है कि ज्यादा से ज्यादा महिलाओं को प्रशिक्षण के अवसर प्राप्त हो सकें। इस समय, महिलाओं के लिए अलग से 104 औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान हैं। इन संस्थानों में महिलाओं के लिए कुल सीटों की क्षमता लगभग 1,500 है।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत महिलाओं के लिए प्रशिक्षण सुविधाएँ बढ़ाने की दृष्टि से उपर्युक्त योजना सम्बन्धी स्कीमें तैयार की गई हैं जिन्हें 7वीं योजना अवधि के दौरान कार्यान्वित करने के लिए योजना आयोग द्वारा पहले ही अनुमोदित कर दिया गया है। 7वीं पंचवर्षीय योजना अवधि के दौरान 5 और क्षेत्रीय महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना करने के अलावा इन योजनाओं में मौजूदा सुविधाओं का विस्तार और कौशल के क्षेत्रों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के नानारूपकरण की परिकल्पना की गई है। इसमें महिलाओं के लिए नए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान/विंग स्थापित करने के लिए राज्य सरकारों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता के लिए केन्द्र द्वारा प्रायोजित एक योजना भी शामिल है। एन. वी टी. आई. नई दिल्ली के लिए एक भवन नोएडा, उत्तर प्रदेश में बन रहा है और भवन के तैयार होने के बाद इस संस्थान को नए परिसर में शिफ्ट करने का निर्णय लिया गया है।

उच्च व्यावसायिक प्रशिक्षण

उच्च प्रशिक्षण संस्थान, मद्रास की स्थापना, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू एन. डी पी) और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई. एल ओ.) की सहायता से 1968 में की गई थी जिसका उद्देश्य कार्यरत औद्योगिक मजदूरों और तकनीशियनों

के कौशलों को उन्नतिशील और अद्यतन बनाने के लिए अल्प-अवधि के उच्च प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना था। प्रशिक्षण सीटों की सदैव अत्यधिक बढ़ती हुई माँग के अनुरूप ये पाठ्यक्रम बहुत लाभदायक सिद्ध हुए। यह स्थिति उस समय उत्पन्न हुई जब मद्रास में स्थित यह संस्थान प्रशिक्षण माँग को अकेला पूरा नहीं कर सका और देश में अतिरिक्त प्रशिक्षण सुविधाएँ सृजित करना आवश्यक हो गया। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू एन. डी. पी.) और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई एल ओ) के सहयोग से रोजगार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय के अधीन कार्यरत 5 उच्च प्रशिक्षण संस्थान और 15 राज्य सरकारों के अधीन कार्यरत 16 चुने हुए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों को शामिल करते हुए एक परियोजना अक्तूबर, 1977 में उच्च व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रणाली के रूप में शुरू की गई।

इस प्रणाली के अधीन ये प्रशिक्षण कार्यक्रम माड्यूलर आधार पर बनाए गए हैं ताकि इस शृंखला से एक या इससे अधिक माड्यूलों का चयन करके एक कर्मकार अपने कौशल क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त कर सके। इस प्रणाली के अन्तर्गत अनेक उच्च कुशलता प्राप्त क्षेत्रों में 2 से 12 सप्ताह की अवधियों के नियमित पूर्ण-कालिक पाठ्यक्रम संचालित किए जाते हैं।

दिसम्बर, 1986 के अन्त में ए. वी टी एस. परियोजना के अन्तर्गत 50,455 औद्योगिक कर्मकारों ने प्रशिक्षण सुविधाओं का लाभ उठाया। 1986 के दौरान परियोजना के अन्तर्गत लगभग 9,800 औद्योगिक कर्मकारों/ तकनीशियनों ने प्रशिक्षण सुविधाओं का लाभ उठाया।

डी. जी ई एण्ड टी. के अधीन 6 उच्च प्रशिक्षण संस्थानों में केवल देशी संसाधनों के साथ नए क्षेत्रों में विस्तार तथा नानारूपकरण का दूसरा चरण शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के चरण-1 के अन्तर्गत शामिल 22 केन्द्रों के अतिरिक्त, कुछ राज्यों ने 25 नए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में उच्च पाठ्यक्रम शुरू किए हैं।

इलैक्ट्रॉनिक्स एण्ड प्रोसेस इंस्ट्रूमेंटेशन सम्बन्धी उच्च प्रशिक्षण कार्यक्रम

हैदराबाद और देहरादून में स्थापित दो इलैक्ट्रॉनिक्स एवं प्रोसेस इंस्ट्रूमेंटेशन संस्थानों में उच्च प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

हैदराबाद में इलैक्ट्रॉनिक्स एण्ड प्रोसेस इंस्ट्रूमेंटेशन सम्बन्धी उच्च प्रशिक्षण संस्थान, स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास प्राधिकरण (सीडा) की सहायता से स्थापित किया गया था, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन इस परियोजना योजना के लिए कार्यकारी एजेंसी है। इस संस्थान के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(1) उद्योग की आवश्यकतानुसार औद्योगिक, मेडिकल और घरेलू इलैक्ट्रॉनिकी और प्रोसेस इंस्ट्रूमेंटेशन के क्षेत्रों में तकनीशियन स्तर पर उच्च

कुशलता प्राप्त कार्मिकों को विभिन्न अवधि के पाठ्यक्रमों को आयोजित करके प्रशिक्षित करना।

(2) उच्च प्रशिक्षण संस्थानों, केन्द्रीय प्रशिक्षण संस्थानों और औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों के अनुदेशकों तथा अन्य चुने हुए क्षेत्रों में प्रशिक्षण संस्थानों के कर्मचारियों को तकनीकी प्रशिक्षण पुनश्चर्या एवं अपग्रेडिंग प्रशिक्षण प्रदान करना।

जनवरी, 1976 में इस संस्थान ने अल्पावधि पाठ्यक्रम चालू करके कार्य करना शुरू कर दिया।

इलैक्ट्रॉनिक्स तथा प्रोसेस इन्स्ट्रूमेंटेशन के क्षेत्र में प्रशिक्षित जनशक्ति की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदान किए गए आवास में एक दूसरा उच्च प्रशिक्षण संस्थान दिसम्बर, 1981 में देहरादून (उत्तर प्रदेश) में स्थापित किया गया।

दिसम्बर, 1986 के अन्त तक अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक पाठ्यक्रम आयोजित किए जा चुके हैं जिनमें 6554 प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षित किए जा चुके हैं। इन संस्थानों में आयोजित आवश्यकता पर आधारित पाठ्यक्रम उद्योग में लोकप्रिय हो गए हैं।

फोरमैन प्रशिक्षण संस्थान बंगलौर और जमशेदपुर

बंगलौर और जमशेदपुर में स्थित एफ. टी. आई. में उद्योग से पर्यवेक्षकों/फोरमैनों के कौशल और प्रौद्योगिकी क्षमता में सुधार लाने के प्रयोजनार्थ प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं।

जर्मन संघीय गणराज्य में बडने बुवटम वर्ग राज्य के सहयोग से बंगलौर में स्थापित संस्थान, पूर्णकालिक और अंशकालिक पाठ्यक्रमों द्वारा तकनीकी और प्रबन्धकीय कौशलों में विद्यमान और सम्भावित शाप फोरमैनों पर्यवेक्षकों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को आयोजित करने तथा संचालित करने के लिए उत्तरदायी है।

पर्यवेक्षकों/फोरमैनों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक विकास में निम्नलिखित उद्देश्य प्राप्त करना है—

(क) उसके कौशल और तकनीकी योग्यता में सुधार लाना।

(ख) अधिक शाप-फ्लोर दायित्वों को स्वीकार करने के लिए उसका विकास करना।

(ग) उसे उच्च उत्पादकता की आवश्यकता से सचेत करना।

(घ) व्यक्तियों, मशीनों और सामग्री के पूर्ण और अधिकतम उपयोग के लिए उसे औद्योगिक इंजीनियरी की आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल करने में प्रशिक्षित करना।

(ङ) उन व्यक्तियों के साथ समस्याओं का समाधान करना और शिकायतों को दूर करने सम्बन्ध उसके कौशल में विकास करना, कर्मचारियों के मनोबल और टीम भावना को सुधारना।

(च) सभी स्तरों पर सहयोग और समन्वय लाने की योग्यता का विकास करना।

(छ) अन्य व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने के लिए उसके कौशल का विकास करना।

(ज) सुधार और समुचित हाउस कीपिंग से उसे सचेत करना।

(झ) उपकरणों और संसाधनों का प्रभावी उपयोग करने और उसका उपयुक्त अनुरक्षण करने में उसकी क्षमता का विकास करना।

(ञ) लागत कम करने, क्वालिटी सुधारने और उत्पादन बढ़ाने में उसकी समस्त क्षमता को विकसित करना।

फोरमैनों और पर्यवेक्षकों की प्रशिक्षण सम्बन्धी, बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अक्तूबर, 1982 में जमशेदपुर में एक दूसरा फोरमैन प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किया गया। इस संस्थान को जिसे छोटे पैमाने पर शुरू किया गया था, बंगलौर में स्थित दूसरे संस्थान के समान कार्य करेगा।

दिसम्बर, 1986 के अन्त तक इन संस्थानों में 6,938 फोरमैनों/पर्यवेक्षकों को दीर्घकालिक पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षित किया गया है। इन पाठ्यक्रमों को प्रबन्धतन्त्र के निम्न और मध्यम स्तरों पर पर्यवेक्षी कार्मिकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं को पूरा करने की दृष्टि से तैयार किया गया है।

व्यावसायिक प्रशिक्षण के क्षेत्र में अनुसंधान, कर्मचारी प्रशिक्षण और प्रशिक्षण सामग्री का विकास

केन्द्रीय कर्मचारी प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान (स्टारी) की स्थापना भारत सरकार द्वारा जर्मन संघीय गणराज्य सरकार के सहयोग से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने व्यावसायिक प्रशिक्षण के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास करने के उद्देश्य से वर्ष 1968 में की गई थी। यह संस्थान इन तीन विंगों के माध्यम से अपने कार्यकलाप चलाता है—

(1) प्रशिक्षण विंग—प्रशिक्षण विंग का उद्देश्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों, औद्योगिक व प्रशिक्षण संस्थानों, उच्च प्रशिक्षण संस्थानों और सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के उपक्रमों के प्रशिक्षण विभागों के कार्यकारी स्टाफ के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों को प्रदान करना और उन्हें आयोजित करना तथा सारे देश में सरकार के और उद्योग के उच्च प्रशासकों के लिए जो औद्योगिक प्रशिक्षण की आयोजना और निष्पादन में लगे हुए हैं, सेमिनारों और कार्यशालाओं को आयोजित करना है।

इस संस्थान ने अपने विभिन्न प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के द्वारा दिसम्बर, 1986 के अन्त तक 5,076 कार्मिकों को प्रशिक्षित किया।

(2) अनुसंधान विंग—अनुसंधान विंग का कार्य व्यावसायिक प्रशिक्षण के अग्रलिखित पहलुओं पर समस्या अभिमुक्त अनुसंधान आयोजित करना है।

(क) व्यवसाय पाठ्यचर्या सम्बन्धी विकास।
(ख) प्रशिक्षण सम्बन्धी पद्धतियों का विकास।
(ग) प्रशिक्षण सम्बन्धी सामग्री का विकास अर्थात् वैधीकृत प्रश्न बैंक।
(घ) सर्वेक्षणों के माध्यम से गुणात्मक कौशल विश्लेषण।
(ङ) उद्योगों और प्रशिक्षण संस्थानों को परामर्शदात्री सेवाएँ।

'अनुसंधान के क्षेत्र में, इस संस्थान ने प्रशिक्षण के लिए विभिन्न पहलुओं पर अभी तक 97 परियोजनाओं को पूरा किया है।

(3) विकास विंग—विकास विंग का कार्य, निम्नलिखित में औद्योगिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रभावी निष्पादन के लिए, शैक्षणिक सिद्धान्तों पर आधारित प्रशिक्षण सामग्रियों और सहायों को तैयार और उत्पादित करना है—

(क) लिखित अनुदेशात्मक सामग्री
(ख) माडल
(ग) माडलों/प्रोटोटाइपों की ड्राइंग
(घ) स्लाइड/ट्रांसपरेन्सीज

यह संस्थान, एक आधुनिक कार्यशाला, प्रयोगशालाओं, पाठ्यचर्या विकास सैल, तकनीकी सूचना सैल, सी. सी. टी. वी. के साथ श्रव्य-दृश्य सुविधाओं और कक्षा कमरों और प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रलेखन सहित अच्छे स्टाक वाले एक पुस्तकालय से सुसज्जित है।

उपयोग करने वाले संगठनों को लिखित अनुदेशात्मक सामग्री शीघ्र उपलब्ध कराने के लिए, सुप्रसिद्ध प्रकाशनों द्वारा तैयार की गई पुस्तकों को प्रकाशित कराने की व्यवस्था भी की गई है। ये प्रकाशन औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं और अन्य प्रशिक्षण केन्द्रों को इन पुस्तकों की बिक्री और वितरण करने के लिए भी जिम्मेदार हैं।

राष्ट्रीय श्रम संस्थान

राष्ट्रीय श्रम संस्थान ने 1 जुलाई, 1974 से कार्य करना प्रारम्भ किया। इस संस्थान के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित की व्यवस्था करना है—

शिक्षा, प्रशिक्षण और दिशामान,
अनुसन्धान जिसमें कार्य अनुसन्धान शामिल है,
परामर्श, और
प्रकाशन तथा ऐसे अन्य कार्यकलाप जो संस्थान के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक समझा जाए।

ग्रामीण शिक्षा कार्यक्रमों का आयोजन—इस संस्थान ने विभिन्न राज्यों में अनेक ग्रामीण श्रमिक शिविरों का आयोजन किया है। इन शिविरों का मुख्य उद्देश्य

ग्रामीण श्रमिकों के आयोजकों को ग्रामीण श्रमिकों से सम्बन्धित विभिन्न कानूनों और विनियमों के उपबन्धों का ज्ञान प्राप्त कराना तथा उन्हें विकास कार्यकलापों (जो कि ग्रामीण श्रमिकों के लाभ के लिए बनाए गए हैं) में सन्निहित विभिन्न केन्द्रीय और स्थानीय सरकार तथा स्वैच्छिक अभिकरणों के सम्बन्ध में सूचना प्रदान करना है। नेतृत्व योग्यता का विकास करने के लिए भी कार्यक्रम बनाए गए हैं।

अनुसन्धान परियोजनाएँ—यह संस्थान विविध अनुसन्धान परियोजनाएँ चलाता है जो श्रमिकों तथा उनसे सम्बन्धित मामलों के बारे में हैं। इनमें से महत्त्वपूर्ण मामले निम्नलिखित हैं—

(1) मजदूरी विकास का अर्थशास्त्र।

(2) उत्तर प्रदेश में सरकारी क्षेत्र के एक बड़े उपक्रम में पारिवारिक जीवन के स्तर और कार्य-जीवन के स्तर का अध्ययन।

(3) दक्षिणी और पूर्वी एशिया में संरचनात्मक द्विविधत (स्ट्रक्चरल ड्युटिज्म) के अन्तर्गत आर्थिक विकास, सन् 1950–70।

(4) तमिलनाडु में सरकारी क्षेत्र के एक सफल उपक्रम में संगठन में कार्य की नवीन प्रक्रिया सम्बन्धी अनुसन्धान अध्ययन।

(5) भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, हरिद्वार में वर्क रीडिजाइन सम्बन्धी कार्य अनुसन्धान।

(6) दिल्ली में राजस्थानी प्रवासी श्रमिकों के सम्बन्ध में अनुसन्धान अध्ययन तथा उनके जीवन और समुदाय पर प्रभाव।

(7) शिमला के एक डाकघर में कार्य-पद्धति और कार्य-जीवन के अध्ययन के लिए कार्य अनुसन्धान परियोजना।

(8) संगठनात्मक वातावरण के सम्बन्ध में अस्पताल में कार्य के लिए प्रेरणा सम्बन्धी अनुसन्धान अध्ययन।

(9) एलिअनेशन इफिशेंसी तथा वर्क कमिटमेण्ट सम्बन्धी अध्ययन।

(10) स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, महरौली रोड, शाखा, गुड़गाँव में जॉब रीडिजाइन की संकल्पना का प्रयोग करते हुए श्रमिक सहभागिता सम्बन्धी कार्य अनुसन्धान।

(11) समाकलित ग्रामीण क्षेत्र विकास सम्बन्धी नीति के मूल्यांकन का अनुसन्धान, पश्चिमी बंगाल में तीन मामला अध्ययन।

(12) आयकर आयुक्त कार्यालय, नई दिल्ली के कार्यालय में वर्क कमिटमेण्ट सम्बन्धी कार्य अनुसन्धान परियोजना।

(13) पत्तन और गोदी के नियोजकों और श्रमिकों द्वारा स्वैच्छिक विवाचन स्थिति सम्बन्धी सर्वेक्षण।

(14) अग्रेरियन स्ट्रक्चर टेन्शन: मूवमेण्ट्स एण्ड पेजेन्ट आर्गेनाइजेशन इन इण्डिया।

परामर्श कार्यक्रम—इस संस्थान का व्यावसायिक स्टॉफ अनेक संगठनों के नैदानिक अध्ययनों, समस्याओं के समाधान के कार्यों और प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बनाने तथा चलाने में लगा हुआ है।

प्रकाशन—यह संस्थान एक मासिक बुलेटिन प्रकाशित करता है जिसके राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान व्यापक ग्राहक हैं। यह संस्थान एक मासिक पश्चात सार संग्रह भी प्रकाशित करता है जिसमें श्रम न्यायालयों, उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के श्रम मामलों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण निर्णयों का सारांश दिया जाता है। इनके अतिरिक्त यह संस्थान श्रमिकों से सम्बन्धित चुने हुए विषयों के बारे में सामयिक लेखा सीरीज भी जारी करता है।

भावी कार्यक्रम—इस संस्थान द्वारा श्रम अधिकारियों, केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध तन्त्र के अधिकारियों और राज्य एवं अर्द्ध-सरकारी विभागों के श्रम कल्याण अधिकारियों के लिए चार-चार सप्ताह की अवधि के वर्ष में तीन शिक्षा कार्यक्रमों का आयोजन करने का प्रस्ताव है।



8 सामाजिक सुरक्षा का संगठन और वित्तीयन; ब्रिटेन, संयुक्तराज्य अमेरिका और सोवियत संघ में सामाजिक सुरक्षा का सामान्य विवरण; भारत में सामाजिक सुरक्षा की स्थिति

(Organisation and Financing of Social Security; Social Security in U.K., U.S.A. and U.S.S.R.; General Position of Social Security in India)

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ
(The Meaning of Social Security)

"सामाजिक सुरक्षा कल्याणकारी राज्य के ढाँचे का एक खम्भा है। सामाजिक सुरक्षा के माध्यम से राज्य प्रत्येक नागरिक को एक दिए हुए जीवन-स्तर पर बनाए रखने का प्रयास करता है।"[1] "सामाजिक सुरक्षा एक गतिशील विचार-धारा है जो कि विकसित देशों में निर्धनता, बेरोजगारी और बीमारी को समाप्त करने के राष्ट्रीय कार्यक्रम का एक अत्यन्त आवश्यक पाठ है।"[2] "वर्तमान समय में सामाजिक सुरक्षा आधुनिक युग की एक गतिशील विचारधारा है जो सामाजिक व आर्थिक नीतियों को प्रभावित कर रही है। यह एक सीमित साधनों वाले व्यक्ति को राज्य द्वारा प्रदान की जाने वाली सुरक्षा है जो कि अपने आप अथवा अन्य लोगों के संयोग से प्राप्त नहीं कर सकता है।"[3]

कल्याणकारी राज्य का यह दायित्व हो जाता है कि प्रत्येक नागरिक को निश्चित जीवन-स्तर बनाए रखने में मदद करे। प्रत्येक व्यक्ति बचपन और वृद्धावस्था में दूसरे पर आश्रित रहता है। इन अवस्थाओं में उसको सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक है। सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जो समाज द्वारा अपने सदस्यों को

1 *Vaid, K N.*: State and Labour in India, p 109
2 *Saxena, R. C.*: Labour Problems & Social Welfare, p. 349.
3 *Giri, V. V.*: Labour Problems in Indian Industry, p. 246

उनके जीवन-काल मे किसी भी समय घटने वाली अनेक आकस्मिकताओं के विरुद्ध प्रदान की जाती है। इन आकस्मिकताओं में प्रसूतिका, वृद्धावस्था, बीमारी, असमर्थता दुर्घटना, औद्योगिक बीमारी, बेरोजगारी, मृत्यु, बच्चो का पालन-पोषण आदि प्रमुख हैं। इन आकस्मिकताओ के विरुद्ध अकेला व्यक्ति अपनी सुरक्षा नही कर सकता है। इन सामाजिक सुरक्षा उपायों से व्यक्ति विभिन्न आकस्मिकताओं के विषय में निश्चिन्त हो जाता है तथा रुचि और मन लगाकर कार्य करता है। इससे उनकी कार्य-क्षमता पर बुरा असर नही पड़ता है।

सर विलियम बेवरिज (Sir William Beveridge) के अनुसार, "सामाजिक सुरक्षा का अर्थ एक ऐसी योजना से है, जिसके द्वारा आवश्यकता, बीमारी, अज्ञानता, फिजूल खर्ची और बेकारी—जैसे राक्षसो पर विजय प्राप्त की जा सके।"

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (International Labour Organisation) के अनुसार ऐसी आकस्मिकताएँ जो बाल्यावस्था से वृद्धावस्था और मृत्यु के अतिरिक्त बीमारी, प्रसूति, असमर्थता, दुर्घटना और औद्योगिक बीमारी, बेरोजगारी, वृद्धावस्था कमाने वाले की मृत्यु और इसी प्रकार के अन्य सकटो से सम्बन्ध रखती है, के लिए सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक है। एक व्यक्ति इन आकस्मिकताओ में स्वय अथवा अन्य किसी व्यक्ति की सहायता से अपने आप मदद नही कर सकता है।[1]

औद्योगीकरण के पूर्व इन आकस्मिकताओ में सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता नही थी क्योंकि उस समय सयुक्त परिवार प्रथा, जाति प्रथा, ग्रामीण समुदाय और धार्मिक सस्थाएँ विद्यमान थी। इन सस्थाओ द्वारा सभी प्रकार की आकस्मिकताओ के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की जाती थी। औद्योगिक विकास के साथ-साथ इन सस्थाओ का विघटन हो गया। ग्रामीण क्षेत्रो से लोग शहरो में जाकर बसने लगे और उनका ग्रामीण क्षेत्र में कोई सम्पर्क नही रहा। औद्योगीकरण से देश की प्रगति हुई और भौतिक कल्याण में भी वृद्धि हुई है। फिर भी इसके कारण से कई बुराइयों को भी जन्म मिला है, जैसे—औद्योगिक बीमारी और दुर्घटनाएँ, बेरोजगारी, आदि। इसके साथ ही मानवीय सम्बन्धो और मूल्यो में भी परिवर्तन आ जाने से इन आकस्मिकताओ के विरुद्ध अकेला व्यक्ति लड़ नही सकता।

प्रोफेसर सिंह एवं सरन के अनुसार सामाजिक सुरक्षा समाज द्वारा प्राकृतिक, सामाजिक, व्यक्तिगत और आर्थिक कारणो से उत्पन्न असुरक्षाओ के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने का एक उपाय है। प्राकृतिक सुरक्षा में मृत्यु या बीमारी, सामाजिक असुरक्षा में आवास व्यवस्था से उत्पन्न दोष, व्यक्तिगत असुरक्षा कार्यक्षमता का कम होना, आर्थिक असुरक्षा में कम मजदूरी प्राप्त होना अथवा बेरोजगारी होना आदि सम्मिलित किए जाते हैं। सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का उद्देश्य व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करना, पुनरुद्धार करना और इन पर रोक लगाना होता है।

प्रो. बी पी अडारकर के अनुसार, सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जो समाज द्वारा इसके सदस्यो को प्रदान की जाती है जो कि आकस्मिकताओ के शिकारी हो

1 International Labour Office, *Approach to Social Security*, p. 1.

जाते है। ये जोखिमें जीवन की आकस्मिकताएँ हैं जिनके विरुद्ध व्यक्ति अपनी सीमित आय से लडाई नहीं लड सकता है और न ही वह इनके बारे मे अनुमान लगा सकता है तथा अन्य व्यक्तियो के साथ मिलकर भी सुरक्षा नहीं कर सकता है।

सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य
(Aims of Social Security)

व्यक्ति की आकस्मिकताओं की सुरक्षा हेतु समाज सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते है। ये सामाजिक सुरक्षा के उपाय तीन उद्देश्यो की पूर्ति करते हैं—

1. क्षतिपूर्ति करना (Compensation)—सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति करने का सम्बन्ध आय से होता है। किसी श्रमिक की कार्य करते समय मृत्यु होने पर अथवा दुर्घटना होने पर उसके आश्रितों व स्वय उसके लिए निश्चित रूप से आय प्रदान करना ही इसके अन्तर्गत आता है। भारत का क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 (Workmen's Compensation Act of 1923) इसका एक उदाहरण है।

2 पुनरुद्धार (Restoration)—इसके अन्तर्गत श्रमिक के बीमार होने पर उसका इलाज करवाना, फिर से रोजगार देना आदि आते है। भारतीय कर्मचारी बीमा अधिनियम 1948 (Empolyees' State Insurance Act,1948) इसका एक उदाहरण है।

3. रोक लगाना (Prevention)—औद्योगिक बीमारियो, बेरोजगारी, असमर्थता आदि के कारण से उत्पादन क्षमता के नुकसान को रोकने के लिए कदम उठाए जाते हैं। इससे समाज का मानसिक और नैतिक कल्याण होता है।

सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र
(Scope of Social Security)

सामाजिक सुरक्षा एक व्यापक शब्द है। इसमें सामाजिक बीमा (Social Insurance) और सामाजिक सहायता (Social Assistance) के अतिरिक्त व्यापारिक बीमा से सम्बन्धित कुछ योजनाओ को भी शामिल किया जाता है। किसी भी सामाजिक सुरक्षा योजना मे सामाजिक बीमा एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

सामाजिक बीमा वह योजना है जिसके अन्तर्गत श्रमिको, मालिको और राज्य द्वारा एक कोष का निर्माण अंशदान द्वारा किया जाता है। इस कोष मे से बीमा कराने वाले श्रमिक को अधिकारपूर्ण लाभ मिलता है। ये लाभ बीमारी, चोट, प्रसूति, बेरोजगारी, वृद्धावस्था पेंशन आदि के समय मिलते हैं। उदाहरणार्थ हमारे देश मे राज्य कर्मचारी बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत मिलने वाले लाभ इसके अन्तर्गत ही आते हैं।

सामाजिक बीमा के अन्तर्गत त्रिपक्षीय योगदान से एक कोष बनाया जाता है। श्रमिक का अंश कम रखा जाता है। श्रमिको को निश्चित सीमाओं में लाभ प्रदान किए जाते हैं। यह अनिवार्य योजना है। यह व्यक्तिगत दुःखो को दूर करता है।

सामाजिक सहायता (Social Assistance) वह सहायता है जो समाज द्वारा निर्धन और जरूरतमन्द लोगो को स्वेच्छा से प्रदान की जाती है। श्रमिको की क्षतिपूर्ति करना, मातृत्व लाभ और वृद्धावस्था मे पेंशन आदि सामाजिक सहायता के अन्तर्गत आते हैं। सामाजिक सहायता पूर्ण रूप से सरकारी साधनो पर निर्भर है। यह व्यक्ति को निश्चित परिस्थियो या शर्तों पर ही प्रदान की जाती है।

सामाजिक सहायता सामाजिक बीमा की पूरक है न कि स्थानापन्न। फिर भी सामाजिक सहायता और सामाजिक बीमा में अन्तर है। सामाजिक सहायता सरकारी योजना है जबकि सामाजिक बीमा श्रमिको, मालिकों और सरकारी अंशदान पर निर्भर है। सामाजिक सहायता निश्चित शर्तों पर दी जाती है जबकि सामाजिक बीमा के अन्तर्गत बीमा कराए व्यक्ति को सीमित लाभ मिलेंगे। दोनों साथ-साथ चलती हैं।

सामाजिक बीमा और व्यापारिक बीमा (Commercial Insurance) दोनों मे अन्तर है। सामाजिक बीमा अनिवार्य तथा व्यापारिक बीमा ऐच्छिक है। व्यापारिक बीमा के अन्तर्गत लाभ प्रीमियम के आधार पर दिए जाते हैं जबकि सामाजिक बीमा के अन्तर्गत लाभ श्रमिको के अंशदान से अधिक मिलते हैं। व्यापारिक बीमा केवल व्यक्तिगत जोखिम के लिए प्रदान किया जाता है जबकि सामाजिक बीमा के अन्तर्गत न्यूनतम जीवन-स्तर बनाए रखने के लिए लाभ प्रदान किए जाते हैं।

इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा एक व्यापक योजना है। इसमे सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता दोनों को शामिल किया जाता है।

सामाजिक सुरक्षा का उद्गम और विकास
(Origin & Growth of Social Security)

सामाजिक जोखिमो को पूरा करने का तरीका भूतकाल मे गरीब राहत पद्धतियाँ थी। कई देशो मे अधिनियम पास किए गए थे। सामाजिक सहायता देना समाज का दायित्व समझा जाता था। सबसे पहले 1601 मे इंग्लैण्ड मे सामाजिक सहायता हेतु निर्धन कानून (Poor Laws) पास किए गए। इसके पश्चात् धीरे-धीरे सरकार द्वारा इस प्रकार की सहायता की मात्रा और किस्म मे सुधार किया गया। अब सामाजिक सहायता सामाजिक बीमा के पूरक रूप मे सामाजिक सुरक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग बन गई है। इंगलैण्ड मे अनिवार्य बेरोजगार बीमा (Compulsory Unemployment Insurance) के साथ-साथ बेरोजगारी सहायता योजनाएँ (Unemployment Assistance Schemes) स्थाई और सुव्यवस्थित आधार पर चलाई जा रही हैं।

सामाजिक बीमा (Social Insurance) का उद्गम सर्वप्रथम जर्मनी मे 1883 अनिवार्य दुर्घटना बीमा अधिनियम (Compulsory Accident Insurance Act, 1883) पास करने से होता है। इसके पश्चात् वृद्धावस्था तथा बीमारी आदि के लिए भी अधिनियम बनाए गए। 1[redacted]3 के पूर्व भी 1850 और 1833 मे क्रमश: फ्रांस और इटली सरकार ने सामाजिक बीमा योजना शुरू कर रखी थी।

1942 में सर विलियम बेवरिज द्वारा दी गई व्यापक सामाजिक बीमा और अन्य सेवाओं पर प्रतिवेदन प्रकाशित होने के पश्चात् एक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। यह रिपोर्ट इंग्लैण्ड में एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना लागू कराने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। रोजगार, चिकित्सा, शिक्षा, वृद्धावस्था पेंशन, समान कार्य हेतु समान मजदूरी या वेतन, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में समानता आदि मूलभूत अधिकार एव जोखिमे हैं जिनके लिए एक विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना अत्यन्त आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I.L O.) ने भी अपने विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों में सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास किए हैं और उन प्रस्तावों व सिफारिशों को सदस्य देशो में लागू करवाने का प्रयास सराहनीय रहा है। इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ने समय-समय पर सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय प्रमापो का निर्धारण किया है और इसके साथ ही सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को तैयार करने, क्रियान्वयन करने और प्रशासन आदि के सम्बन्ध मे सदस्य देशो को तकनीकी सलाह दी है। उदाहरणार्थ भारत मे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत कर्मचारी राज्य बीमा योजना तैयार करने हेतु तकनीकी सलाह दी है।

इंग्लैण्ड में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in U K.)

सामाजिक सुरक्षा और बीमा कार्यक्रम वर्तमान समय मे ब्रिटेन के सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हो गए हैं। ब्रिटेन की सामाजिक सुरक्षा का अध्ययन ऐतिहासिक क्रमानुसार तीन भागों में विभक्त कर किया जा सकता है—

1. प्राचीन व्यवस्था—निर्धन सहायता कानून,
2. बेवरिज योजना के पूर्व सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था, एवं
3. बेवरिज योजना और सामाजिक सुरक्षा की अन्य वर्तमान व्यवस्थाएँ।

प्राचीन व्यवस्था

सामाजिक सुरक्षा की भावना ब्रिटेन मे अति प्राचीन समय से ही विद्यमान थी। पहले वृद्धो, निर्धनो तथा विधवाओ को गिरजाघरो द्वारा सहायता दी जाती थी। कुछ व्यक्ति निजी रूप से भी सहायता देते थे। किन्तु गिरजाघरो की व्यवस्था अच्छी न होने से इस सम्बन्ध मे सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक हो गया। सन् 1536 मे एक अधिनियम पारित किया गया जिसमे अपाहिजों, निर्धनों और आलसियों को दो प्रकार के मदो मे (काम न करने वालो को) बाँट दिया गया। अपाहिज निर्धनो को लाइसेन्स दिए जाते थे और वे भिक्षा माँग सकते थे, किन्तु आलसियों को लाइसेन्स नही मिलता था और वे भिक्षा माँगने पर दण्डित किए जाते थे। इसी वर्ष एक अन्य अधिनियम पास करके निर्धनो को तीन श्रेणियो मे बाँट दिया गया—वृद्ध और अपाहिज जिनके लिए चन्दा एकत्रित करने की व्यवस्था की गई,

योग्य व्यक्ति जो कार्य चाहते हों, एव आलसी व्यक्ति जिनके लिए दण्ड की व्यवस्था की गई। इस अधिनियम की व्यवस्थाएँ अधिक दिनों तक न चल सकी। 1547 में लन्दन में निर्धनों की सहायतार्थ कोष के लिए कर लगाए जाने की एक नई योजना चालू की गई। 1593 में एक नया निर्धन अधिनियम बनाया गया। 1601 में एक महत्त्वपूर्ण दरिद्रता अधिनियम बना जिसके द्वारा पहले के सभी अधिनियमों को सगठित कर एक रूप दिया गया। 1782 के एक अन्य महत्त्वपूर्ण अधिनियम 'गिलबर्ट अधिनियम' के अन्तर्गत न्यायाधीशों को अधिकार दिया गया कि मजदूरों की मजदूरी बहुत ही कम है, उन्हें वे 'निर्धन सहायता कोष' में सहायता दें। यह व्यवस्था अच्छी थी, किन्तु पूँजीपतियों ने इसका दुरुपयोग किया और श्रमिकों को सहायता दिलाने के उद्देश्य से मजदूरी घटाना प्रारम्भ कर दिया। 1832 में नियुक्त निर्धन कानून आयोग (Poor Law Commission) के प्रतिवेदन के आधार पर 1834 में एक निर्धनता कानून संशोधन अधिनियम (Poor Law Amendment Act) बनाया गया जिसके अन्तर्गत निर्धनों को दी जाने वाली सहायता की मात्रा कमिश्नरों द्वारा निर्धारित की जाने की व्यवस्था की गई। 1905 में सरकार ने निर्धनता की समस्या और इसके विभिन्न पहलुओं की जाँच के लिए शाही आयोग बैठाया जिसने अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए, यथा सुधार-गृहों को समाप्त करना, विभिन्न प्रकार की सहायताओं में सामञ्जस्य स्थापित करना, आयु व चरित्र तथा साधनों के आधार पर संस्थाओं का बनाना, लेबर एक्सचेंजेज व्यवस्था करना, केन्द्र द्वारा निर्धन सहायता कार्य पर नियन्त्रण रखना आदि। आयोग के सुझावों को धीरे-धीरे कार्यान्वित किया गया। परिणामस्वरूप निर्धन सहायता की व्यवस्था समाप्त हो गई। सन् 1909 में वृद्धावस्था पेंशन अधिनियम और सन् 1911 में बीमा अधिनियम पारित हुए जिनसे निर्धनों को पर्याप्त लाभ मिला।

सन् 1919 में बेरोजगारी बीमा योजना (Unemployment Insurance Scheme) प्रारम्भ की गई। यह योजना श्रमिकों, मालिकों और राज्य के अशदानों पर आधारित है। इसके अन्तर्गत एक वयस्क को वर्ष में 15 रुपये 7 शिलिंग का साप्ताहिक लाभ प्राप्त हो सकता था, जबकि 18 वर्ष से कम उम्र के श्रमिकों को इसका केवल आधा ही लाभ दिया जाता था।

सन् 1920 में अनिवार्य राज्य बीमा योजना को सभी शारीरिक और गैर-शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरों जिनको प्रतिवर्ष 250 पौण्ड से अधिक आय प्राप्त नहीं होती है, पर लागू कर दी गई। अशदान की दरों में वृद्धि कर दी गई। इसके अन्तर्गत मिलने वाले लाभों में वृद्धि करके पुरुष श्रमिक के लिए 15 शिलिंग प्रति सप्ताह और 12 शिलिंग महिला श्रमिक के लिए कर दिए गए तथा 18 वर्ष से कम आयु वाले श्रमिक को इनसे आधा लाभ मिलेगा। सन् 1931 में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था अधिनियम (National Economy Act, 1931) पास किया गया जिसके अन्तर्गत बेरोजगारी बीमा अशदानों में वृद्धि तथा इससे प्राप्त लाभों में

कमी कर दी गई। सन् 1934 मे श्रमिको को वर्गों में विभाजित कर दिया गया। एक वर्ग वह था जिसमें निर्धनता कानूनो के अन्तर्गत सहायता मिलती थी और दूसरे वर्ग मे वे श्रमिक रखे गए जो कि बीमा में अपना अंशदान देते है। सन् 1936 में अंशदानो मे परिवर्तन किए गए। पुरुष श्रमिक और मालिक द्वारा 9 शिलिंग प्रति सप्ताह तथा महिला श्रमिक द्वारा 8 शिलिंग और राज्य द्वारा इसी के बराबर अंशदान करना निश्चित हुआ। इसी वर्ष कृषि बेरोजगारी हेतु भी एक बेरोजगार बीमा योजना चालू की गई। इसमें मालिक, श्रमिक और राज्य द्वारा 4·6 शिलिंग और महिला श्रमिक के लिए 4 शिलिंग अंशदान रखा गया। लाभ की दरें पुरुष और महिला श्रमिक हेतु क्रमशः 14 शिलिंग और 12 शिलिंग 6 पैस प्रति सप्ताह तथा वयस्क और अवयस्क के लिए 7 शिलिंग और 3 शिलिंग रखे गए। युद्ध के पश्चात् बेरोजगारी बीमा योजना समाप्त कर दी गई और इसका स्थान सामाजिक सुरक्षा योजना ने ले लिया।

बेवरिज योजना के पूर्व सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था

(Social Security Measures before the Beveridge Plan)

ब्रिटेन मे सामाजिक सुरक्षा के सन्दर्भ मे प्राचीन व्यवस्था का उल्लेख हम कर चुके है। सामाजिक सुरक्षा के इतिहास मे दूसरा चरण हम बेवरिज योजना के पूर्व की सामाजिक व्यवस्था को मान सकते हैं। 1942 में सर विलियम बेवरिज ने सामाजिक सुरक्षा के लिए एक बहुत ही व्यापक योजना प्रस्तुत की थी, जिसे बेवरिज योजना कहा जाता है। इस योजना के आधार पर ही सन् 1946 में कानून बनाकर इंग्लैण्ड के प्रत्येक नागरिक के लिए व्यापक 'सामाजिक सुरक्षा' के क्षेत्र की व्यवस्था कर दी गई है। इसमें जीवन मे घटित होने वाले प्राय सभी सकटो से सुरक्षा का प्रबन्ध है। किन्तु इस बेवरिज योजना से पूर्व भी इंग्लैण्ड मे सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र में कुछ कदम उठाए जा चुके थे जिन्हे जानना भी उपयोगी है—

(क) श्रमिक क्षतिपूर्ति (Workmen's Compensation)—ब्रिटेन मे सर्वप्रथम 'श्रमिक क्षतिपूर्ति' के अन्तर्गत व्यवस्था की गई कि यदि श्रमिक मिल-मालिको की असावधानी के कारण दुर्घटना-ग्रस्त हो जाएँ तो नियोक्ता को उन्हे क्षतिपूर्ति करनी पड़ेगी। सन् 1897 मे श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम (Workmen's Compensation Act) पास हुआ जिसे उन उद्योगो मे लागू किया गया जिनमे जोखिम अधिक थी। यह व्यवस्था की गई कि क्षतिपूर्ति की राशि लेने के लिए श्रमिक न्यायलयो की शरण ले सकेंगे। अधिनियम को और अधिक सुधारने के लिए सन् 1906 मे एक नया अधिनियम पारित किया गया जो सभी उद्योगो में लागू किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत वे सभी श्रमिक आ गए जिनकी वार्षिक आय 250 पौण्ड से कम थी। औद्योगिक बीमारियो के लिए भी श्रमिको की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की गई। श्रमिक कारखानो मे काम करते समय पूरी तरह घायल हो जाएँ तो उन्हे आजन्म आर्थिक सहायता दिया जाना निश्चित किया गया।

मृत्यु हो जाने की स्थिति में श्रमिकों के आश्रितों को तीन साल की मजदूरी के बराबर क्षतिपूर्ति दी जाने की व्यवस्था की गई। अधिनियम का दुरुपयोग न किया जाए इसके लिए यह शर्त भी रख दी गई कि क्षति जान-बूझकर अथवा श्रमिक की असावधानी के कारण न हुई हो। सन् 1923 में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में एक संशोधन करके पन्द्रह वर्ष से कम आयु के आश्रितों को अतिरिक्त सहायता दी जाने की व्यवस्था की गई। साप्ताहिक वृत्ति की दरें भी बढ़ाई गई। दोषों के बावजूद श्रमिक क्षतिपूर्ति सम्बन्धी यह योजना सन् 1946 तक चलती रही जब तक कि इसका स्थान 'नेशनल इनश्योरेन्स इन्जरीज स्कीम' (National Insurance Injuries Scheme) ने नहीं ले लिया।

(ख) स्वास्थ्य बीमा (Health Insurance)–राष्ट्रीय स्वास्थ्य (National Health Insurance) सन् 1911 में चालू किया गया। इस योजना के अन्तर्गत 16 वर्ष से ऊपर और 65 वर्ष से कम आयु वाले श्रमिक जिनकी वार्षिक आय 250 पौण्ड से अधिक नहीं है, सम्मिलित किए गए हैं। इस योजना के अन्तर्गत नकदी और चिकित्सा दो रूपों में लाभ प्राप्त होते हैं। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को 15 शिलिंग, अविवाहित महिला को 12 शिलिंग, विवाहित महिला को 10 शिलिंग, 26 सप्ताहों के लिए बीमारी लाभ (Sickness Benefits) प्रदान करने का प्रावधान है। चन्दे और लाभ की दरों में सामयिक परिवर्तन किए जाते रहे हैं। असमर्थता लाभ (Disablement Benefits) भी क्रमश: 7 शिलिंग, 6 शिलिंग और 5 शिलिंग प्रदान किया जाता है। मातृत्व लाभ में 40 शिलिंग मिलते हैं।

(ग) वृद्धावस्था पेंशन (Old Age Pensions)—यह पेंशन वृद्धावस्था पेंशन अधिनियम, 1908 (Old Age Pensions Act, 1908) के अन्तर्गत चालू की गई। इस योजना हेतु वित्तीय व्यवस्था सामान्य करों से की जाती है। सन् 1925 और सन् 1929 के अधिनियमों द्वारा सभी व्यक्ति जो स्वास्थ्य बीमा योजना के अन्तर्गत आते थे उनको वृद्धावस्था पेंशन योजना में भी शामिल कर लिया गया। सन् 1938 में श्रमिकों, महिलाओं और मालिकों को अंशदान क्रमश: $5\frac{1}{2}$ पैस, 3 पैस और $5\frac{1}{2}$ पैस थे। 65 और 70 वर्ष की आयु के बीच वाले पुरुष श्रमिक और महिला श्रमिकों को जिनका बीमा कराया हुआ है, 10 शिलिंग प्रति सप्ताह दिया जाता था। इसके साथ श्रमिकों की महिलाओं को भी 10 शिलिंग प्रति सप्ताह दिया जाता था। सन् 1925 में विधवा माताओं और निर्धनों को भी अंशदान के आधार पर पेंशन योजना का लाभ दिया जाने लगा।

सामाजिक बीमा योजनाओं के अतिरिक्त पेंशन योजना, वचन योजना, बेरोजगारी लाभ योजना आदि मालिकों द्वारा चालू की गई थी। बेवरिज योजना के पूर्व प्रचलित सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी सभी योजनाएँ दोषपूर्ण थीं। इन योजनाओं में कितने ही श्रमिकों को सम्मिलित नहीं किया गया था तथा लाभ व अंशों के आधार पर भी समरूपता का अभाव था।

बेवरिज योजना और अन्य व्यवस्थाएँ
(The Beveridge Plan & Other Facilities)

सन् 1941 में सर विलियम बेवरिज को सामाजिक बीमा और अन्य सेवाओं का अध्ययन करने तथा इनके विषय में सुझाव देने हेतु नियुक्त किया गया। सन् 1942 में इन्होंने एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे बेवरिज योजना (Beveridge Plan) कहा जाता है। यह एक व्यापक योजना है जिसके अन्तर्गत बेरोजगारी, बीमा अथवा अविवाहित होने पर व्यक्ति और महिलाओं को समुचित आय प्रदान की जाती है और विवाह, प्रसूति और मृत्यु के समय भी सहायता दी जाती है।

बेवरिज ने सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता के कारणों के आठ तत्व बताए हैं और सभी आवश्यकताओं को विभिन्न बीमा लाभों से प्राप्त किया जाना सम्भव बताया है। ये निम्नांकित हैं—

1. बेरोजगारी–किसी समर्थ व्यक्ति को रोजगार न मिलने पर उसे रोजगार लाभ प्रदान किए जाते हैं।

2. असमर्थता (Disability)—बीमारी अथवा दुर्घटना के कारण कार्य करने में असमर्थ होने पर श्रमिकों को असमर्थता लाभ और औद्योगिक पेंशन के रूप में लाभ प्राप्त होता है।

3. जीवन-यापन की हानि (Loss of Livelihood) होने पर श्रमिकों को प्रशिक्षण लाभ (Training Benefit) प्रदान किया जाता है।

4. सेवामुक्ति (Retirement)–उम्र के कारण सेवा-मुक्ति होने पर श्रमिकों की सेवा-मुक्ति पेंशन प्रदान की जाती है।

5 महिला की विवाह सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु विवाह अनुदान, प्रसूति अनुदान और अन्य आवश्यक लाभ प्रदान किए जाते हैं।

6. दाह संस्कार व्यय (Funeral Expenses) हेतु दाह संस्कार अनुदान प्रदान किया जाता है।

7. बाल्यावस्था (Childhood) हेतु बच्चों का भत्ता 16 साल की आयु तक शिक्षा प्रदान करने हेतु दिया जाता है।

8 शारीरिक बीमारी (Physical Disease) हेतु मुफ्त चिकित्सा सुविधाओं द्वारा इलाज किया जाता है। यह व्यापक स्वास्थ्य सेवा और चिकित्सा के बाद पुनर्वास द्वारा प्रदान किया जाता है।

योजना क्षेत्र (Scope of the Plan)—यह योजना देश के प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होती है। इस योजना के लागू करने के लिए देश की जनसंख्या को 6 वर्गों में विभाजित किया गया है—

1. बिना किसी आय-सीमा के सभी कर्मचारियों को जिनको वेतन तथा मजदूरी मिलती है और वे किसी प्रसंविदा के अन्तर्गत कार्य करते हैं,

2. मालिक और अन्य व्यक्ति जो लाभपूर्ण व्यवसायों मे लगे हुए हैं,
3. कार्यशील आयु की गृहपत्नियाँ,
4. कार्यशील आयु के अन्य व्यक्ति जो कि लाभपूर्ण व्यवसायो मे नही लगे हुए हैं,
5. कार्यशील आयु से नीचे के व्यक्ति अर्थात् स्कूल छोडने की आयु से कम आयु वाले, अर्थात् 16 वर्ष से कम आयु वाले बच्चे, एव
6 कार्यशील आयु से अधिक आयु वाले रिटायर्ड व्यक्ति।

इस प्रकार इंग्लैण्ड की सामाजिक सुरक्षा योजना, सामाजिक बीमा और सहायता की विद्यमान सभी योजनाओ से व्यापक है तथा यह प्रत्येक व्यक्ति, महिला और बच्चे को किसी न किसी बिन्दु पर इसमे सम्मिलित करती है। उपरोक्त वर्ग सम्पूर्ण जनसख्या को शामिल करते हैं। मालिक और धनी व्यक्ति लाभ प्राप्त नही करते हैं लेकिन उन्हे अशदान देना आवश्यक है। बच्चे, रिटायर्ड व्यक्ति और गृहपत्नियो को किसी प्रकार का अशदान नही देना पडता है।

योजना के अन्तर्गत अंशदान (Contribution under the Plan)—जहाँ तक योजना मे अशदान देने का प्रश्न है, इसके अन्तर्गत व्यक्ति और महिलाओ के लिए क्रमश 4 शिलिंग 3 पैंस और 3 शिलिंग 6 पैंस रखे जाने का प्रावधान था। अशदान मे आयु अनुसार अन्तर पाए जाते हैं। इस योजना के अन्तर्गत व्यक्ति और महिला के लिए मालिक द्वारा दिया जाने वाला अंशदान क्रमश. 3 शिलिंग 3 पैंस और 2 शिलिंग 6 पैंस है।

योजना के अन्तर्गत लाभ (Benefits under the Plan)—इस योजना के अन्तर्गत जन्म से मृत्यु तक लाभ प्राप्त होते हैं तथा मृत्यु के पश्चात् आश्रितो को लाभ मिलता है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न लाभ प्रदान किए जाते हैं—

1. गृहपत्नियो को लाभ (Benefits for Housewives)—गृहपत्नी को किसी प्रकार का अंशदान नहीं देना पडता है फिर भी उसको 5 प्रकार के लाभ मिलते हैं—

(a) विवाह हेतु अनुदान 10 पौंड तक।

(b) 25 पौंड का प्रसूति अनुदान—प्रत्येक जन्मे बच्चे के लिए (Maternity Grant for each child born) यदि रोजगार में लगी है तो।

(c) विधवापन लाभ (Widow's Pension)—प्रथम 26 सप्ताह तक 16 20 पौंड + प्रत्येक बच्चे के लिए 5 65 पौंड (पारिवारिक भत्ते सहित)।

(d) यदि बिना गलती के तलाक दिया जाता है तो उसे विधवा लाभ दिया जाएगा।

(e) पत्नी को अथवा अन्य आश्रित को 9 80 पौंड + 6 10 पौंड के अन्य भत्तो की दर से (साप्ताहिक) बीमारी लाभ (Sickness Benefit) दिया जाता है। बीमारी लाभ की यह साप्ताहिक दर प्रत्येक बच्चे के लिए (पारिवारिक भत्तो सहित)

3·10 पौंड है। उल्लेखनीय है कि यदि पति कमा रहा है तो पत्नी को उपरोक्त बीमारी लाभ 0·90 पौंड प्रति सप्ताह ही मिलेगा, पर यदि पति सेवा निवृत्त हो तो वह स्त्री 4·80 पौंड प्रति सप्ताह पाने की हकदार होगी। 28 सप्ताह बाद बीमारी लाभ के स्थान पर, जहाँ आवश्यक हो, असमर्थता लाभ (Invalidity Benefit) लागू कर दिया जाता है जो उस समय तक लागू रहता है जब तक कि व्यक्ति की असमर्थता बनी रहती है अथवा जब तक कि बीमार व्यक्ति पेंशन की आयु प्राप्त नहीं कर लेता।[1]

2. बच्चों का भत्ता (Children's Allowance)—किसी भी परिवार में बिना माता-पिता की आय तथा पद को ध्यान में रखे हुए पहले बच्चे को छोड़कर शेष सभी बच्चों को 8 शिलिंग भत्ता मिलेगा। माता-पिता कमाने के योग्य न होने पर प्रथम बच्चे को भी भत्ता दिया जाता है।

3. बेरोजगारी और बीमारी लाभ (Unemployment & Sickness Benefits)—इसके अन्तर्गत अकेले व्यक्ति को 24 शिलिंग और विवाहित व्यक्ति को 40 शिलिंग प्रति हफ्ते की दर से लाभ मिलने की व्यवस्था की गई है। एक बेरोजगार व्यक्ति जिसके दो बच्चे और पत्नी है तो उसे 50 शिलिंग प्रति हफ्ते की दर से लाभ मिलेगा। यदि कोई 6 मास तक बेरोजगार रहता है तो उसे किसी प्रशिक्षण केन्द्र में प्रवेश लेना होगा। वहाँ उसे बेरोजगारी भत्ते के बराबर प्रशिक्षण भत्ता मिलेगा।

इस योजना के अन्तर्गत 13 हफ्ते की असमर्थता वाले व्यक्ति को बीमार मान लिया जाता है तो बीमार लाभ दिया जाता है। इसके पश्चात् साप्ताहिक भुगतान उसकी आय के दो तिहाई के बराबर कर दिया जाता है जो कि प्रमाप दर से कम नहीं होगा।

इस योजना में श्रमिक क्षतिपूर्ति का प्रावधान भी है। यदि दुर्घटना घातक है तो उसके आश्रितों को एक मुश्त में 300 पौण्ड का अनुदान दिया जाएगा।

4. दाह संस्कार अनुदान (Funeral Grant)—विभिन्न व्यक्तियों को आयु के अनुसार मृत्यु होने पर दाह संस्कार हेतु अनुदान दिए जाने की व्यवस्था है। वयस्क मृत्यु पर 20 पौण्ड, 10 से 21 वर्ष की आयु वाले की मृत्यु पर 15 पौण्ड, 3 से 10 वर्ष की आयु वालों की मृत्यु पर 10 पौण्ड और 3 वर्ष से कम आयु वाले की मृत्यु पर 6 पौण्ड दाह संस्कार के रूप में अनुदान देने का प्रावधान रखा गया।

5 वृद्धावस्था पेंशन (Old Age Pensions)—इस योजना के अन्तर्गत व्यक्ति को 65 वर्ष तथा महिला को 60 वर्ष की उम्र प्राप्त कर लेने पर वृद्धावस्था पेंशन प्रदान करने की व्यवस्था की गई। यह पेंशन अकेले व्यक्ति को 23 शिलिंग और विवाहित जोड़े को 40 शिलिंग दिए जाने का प्रावधान किया गया।

1 Fact Sheets on Britain, May 1975.

योजना का प्रशासन और लागत (Administration and Cost of the Plan)—सर बेवरिज का मत था कि इस योजना के प्रशासन के लिए एकीकृत प्रशासन का दायित्व होना चाहिए और इसके लिए सामाजिक सुरक्षा मन्त्रालय एक सामाजिक बीमा कोष के साथ स्थापित करना चाहिए। प्रारम्भ मे यह सिफारिश स्वीकार नही की गई लेकिन बाद मे राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय (Ministry of National Insurance) का सृजन किया गया।

इस योजना की लागत 1945 और 1965 मे क्रमशः 697 पौण्ड और 858 पौण्ड आँकी गई। यह लागत और भी अधिक बढी है क्योकि कीमतो मे निरन्तर वृद्धि हो रही है।

योजना का क्रियान्वयन (Implementation of Plan)—सरकार द्वारा बेवरिज योजना को देश मे सामाजिक सुरक्षा का ढांचा तैयार करने हेतु सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया गया। युद्धोत्तर काल के पश्चात् विस्तृत सामाजिक सुरक्षा योजना लागू करने के लिए कई अधिनियम पास किए गए जो कि जुलाई, 1948 से लागू हुए। वर्तमान समय मे परिवार भत्ता, राष्ट्रीय बीमा, औद्योगिक दुर्घटना बीमा, राष्ट्रीय सहायता और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा आदि रूपो मे इग्लैण्ड मे न्यूनतम जीवन-स्तर बनाए रखने के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रणाली प्रचलित है।

इग्लैण्ड मे सामाजिक सुरक्षा की वर्तमान स्थिति

(1) परिवार भत्ता अधिनियम, 1945 (Family Allowance Act of 1945) के अन्तर्गत सबसे पहली योजना प्रथम बच्चे को छोडकर अन्य बच्चो को भत्ता देने के लिए बनाई गई। इन भत्तो की दर मे समय-समय पर परिवर्तन किया गया है।

(2) राष्ट्रीय बीमा अधिनियम, 1946 (National Insurance Act, 1946) के अन्तर्गत वे सभी बच्चे आ जाते है जो कि स्कूल को छोडने की उम्र से अधिक के हैं। वृद्ध व्यक्तियो, बच्चो, विवाहित महिलाओ और कम आय वाले व्यक्तियो को छोडकर सभी को इसमे निश्चित अंशदान प्रति सप्ताह देना पडता है। अंशदान देने वालो को तीन वर्गो—नियोजित व्यक्ति, स्वय नियोजित व्यक्ति और अनियोजित व्यक्ति—मे बाँटा गया है। अधिनियम के अन्तर्गत बीमारी, बेरोजगारी, प्रसूति, विधवा, सरक्षक भत्ता, रिटायर्ड पेंशन और मृत्यु प्रनुदान आदि विभिन्न प्रकार के लाभ मिलते है। प्रथम वर्ग वाले व्यक्तियो को सभी लाभ प्राप्त होते हैं। दूसरे वर्ग वाले व्यक्तियो को बेरोजगारी और औद्योगिक दुर्घटनाओ हेतु लाभो को छोड़कर शेष सभी लाभ प्राप्त होते हैं। तीसरे वर्ग मे आने वाले व्यक्तियो को बीमारी, बेरोजगारी, औद्योगिक दुर्घटनाओ और प्रसूति लाभो को छोडकर सभी लाभ मिलते हैं।

(3) राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक दुर्घटनाएँ) अधिनियम, 1946 के अधीन

कार्य करते समय हुई दुर्घटनाओं और औद्योगिक बीमारियों आदि के लिए बीमा योजना चलाई गई है। औद्योगिक चोट अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक बीमारी अथवा दुर्घटनाओं और औद्योगिक चोट अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक बीमारी अथवा दुर्घटना पर तीन प्रकार के लाभ प्रदान किए जाते हैं—

(i) दुर्घटना अथवा बीमारी के कारण अस्थाई रूप से प्रति सप्ताह चोट भत्ता (Injury Allowance) दिया जाता है। यह चोट अथवा बीमारी के कारण कार्य करने में असमर्थ होने पर दिया जाता है। यह लाभ 26 सप्ताह तक की अवधि हेतु दिया जाता है। प्रति सप्ताह भत्ता दर £ 12·55+dependants' allowance है।[1]

(ii) चोट अथवा बीमारी के परिणामस्वरूप श्रमिक को असमर्थता लाभ (Disablement Benefit) दिया जाता है। यह चोट लाभ अवधि (Injury Benefit Period) समाप्ति के पश्चात् दिया जाता है। यह अधिक से अधिक £ 19+dependants' allowances हो सकता है।[2]

(iii) मृत्यु लाभ (Death Benefit) जब किसी दुर्घटना अथवा बीमारी के कारण श्रमिक की मृत्यु हो जाती है तब उसके आश्रितों को दिया जाता है। वयस्क के लिए यह सामान्यत 30 पौण्ड और बच्चों के लिए कुछ कम है।

(4) राष्ट्रीय सहायता अधिनियम, 1948 (Nationa lAssistance Act of 1948) के अन्तर्गत जरूरतमन्द व्यक्तियो को सहायता दी जाती है। जिन व्यक्तियो को भूतकाल मे राज्य और स्थानीय सरकारो द्वारा सहायता दी जाती थी वे श्रमिक या व्यक्ति भी इस अधिनियम में शामिल किए गए हैं। जो लोग सामाजिक सुरक्षा सेवाओ के अन्तर्गत नही आते हैं तथा अपने आप को बनाए रखने मे असमर्थ हैं उन सभी को वित्तीय सहायता दी जाती है। कुछ दशाओ में कल्याण-कारी सेवाएँ शुरू की गई है जिनके अन्तर्गत बेघरबार और अपंग लोगों को शरणार्थी गृहो मे प्रवेश दिया जाता है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के अन्तर्गत सभी ब्रिटिश नागरिको को चिकित्सा सुविधाएँ दी जाती हैं, चाहे वे अंशदान देते हैं अथवा नहीं। सभी लागत सरकार पर पड़ती है।

परिवार भत्तो, राष्ट्रीय बीमा और औद्योगिक चोट योजना के प्रशासन के लिए पेन्शन और राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय (Ministry of Pensions & National Insurance) की स्थापना कर दी गई है। इसका मुख्यालय लन्दन मे रखा गया है। प्रादेशिक और स्थानीय कार्यालय भी स्थापित किए गए हैं। राष्ट्रीय सहायता और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का प्रशासन क्रमशः राष्ट्रीय सहायता मण्डल (National Assistance Board) और स्वास्थ्य मन्त्री द्वारा किया जाता है।

1-2 Fact Sheets on Britain (Social Security) May, 1975, p. 2.

(5) बाल अधिनियम, 1948 (Children Act of 1948) के अन्तर्गत स्थानीय सरकारो का यह दायित्व है कि कोई भी 17 वर्ष से कम आयु का बच्चा जिसके माता-पिता नही है अथवा जिसे त्याग दिया गया है अथवा उसके माता-पिता उसकी देखभाल नही कर सकते है, को अपनी देखभाल मे ले लें। इसके अतिरिक्त कुछ ऐच्छिक सगठनो द्वारा भी कल्याणकारी कार्य किए जा रहे हैं। उदाहरणार्थ सामाजिक सेवाओं की राष्ट्रीय परिषद्, परिवार कल्याण सघ, प्रसूति एव बच्चा कल्याण की राष्ट्रीय परिषद्। ब्रिटिश रेडक्रॉस सोसाइटी ने भी महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी सेवाएँ प्रदान की है।

इस प्रकार इग्लैण्ड मे सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना वर्तमान समय मे है। जन्म से मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् उसके आश्रितो को भी सामाजिक सुरक्षा योजना के अन्तर्गत लाभ प्रदान किए जाते हैं।

कतिपय नए सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी लाभ

जैसा कि डॉ. टी एन. भगोलीवाल ने लिखा है कि—"यू. के. मे 1975 में कुछ नए सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी लाभ लागू किए गए हैं जिनमे बगैर चन्दा दिए अयोग्यता पेंशन (Non-Contributory Invalidity Pension), अयोग्य देखभाल भत्ता (Invalid Care Allowance) तथा नया गतिशीलता भत्ता (New Mobility Allowance) शामिल है। बगैर चन्दे वाली अयोग्यता पेंशन लम्बी बीमारी या असमर्थता वाले पुरुषो और अकेली (Single) महिलाओं को, जो लम्बे समय (कम से कम 28 लगातार हफ्तो) तक काम नही कर सकते और जिन्हे चन्दे वाला (Contributory) लाभ नही मिल सकता, 7·90 पौण्ड प्रति हफ्ता की दर से देने की व्यवस्था है। अयोग्य देखभाल भत्ता उन्हे देय होता है जो बहुत ज्यादा अयोग्य (Severely Disabled) सम्बन्धियो की देखभाल करते हैं। बहुत ज्यादा अयोग्य (Disabled) प्रौढ व्यक्तियो तथा 5 वर्ष या उससे ज्यादा उम्र के बच्चो को, जो चलने लायक नही है और जिन्हे कम से कम 12 महीने तक यह रुकावट रह सकती है, नए शक्तिशीलता भत्ते का अधिकार मिलता है। इससे करीब 10 लाख ज्यादा अयोग्य (Severely Disabled) लोगो एव बच्चो को लाभ मिलेगा।"

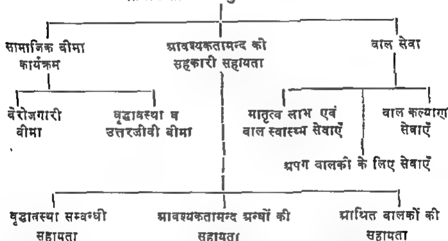
"सामाजिक सुरक्षा एक्ट, 1973 के अन्तर्गत चन्दो को अप्रेल, 1975 से सेवायोजको और कर्मचारियो के लिए पूरी तरह आमदनी से सम्बन्धित, स्वय के रोजगार वालो (Self-employed) के लिए आंशिक रूप से आमदनी से सम्बन्धित तथा बेकार व्यक्तियो के लिए ऐच्छिक कर दिया है।"

अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in U. S A.)

"कोई भी व्यक्ति जो किसान बनना चाहता था उसे 160 एकड़ भूमि अमेरिकी सरकार द्वारा प्रदान की जाती थी। यह सामाजिक सुरक्षा का प्रारम्भिक

स्वरूप था ।"[1] अमेरिका एक धनी देश है जहाँ पर रोजगार का ऊँचा स्तर बनाए रखने में सफलता मिली है । फिर भी व्यक्ति स्वय औद्योगीकरण से उत्पन्न जोखिमों से अपने आप रक्षा नहीं कर सकता है, इसलिए अमेरिकी सरकार ने भी इन जोखिमों से रक्षा करने हेतु सामाजिक सुरक्षा सेवाएँ शुरू की हैं ।

अमेरिका में सामाजिक सुरक्षा का श्रीगणेश सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 (Social Security Act, 1935) के पास होने के बाद हुआ । इस अधिनियम में समय-समय पर संशोधन किए गए हैं । वर्तमान समय में सामाजिक सुरक्षा का ढाँचा इस प्रकार है[2]—



सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 एक संघीय अधिनियम है । यह अधिनियम वृद्धावस्था एवं उत्तरजीवी बीमा योजना को ही चलाता है और शेष योजनाएँ राज्य सरकारों द्वारा संघीय सरकार के कोषों की सहायता से चलाई जाती हैं । सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत निम्न योजनाएँ चलाई गई हैं—

1. वृद्धावस्था, उत्तरजीवी और असमर्थता बीमा
(Old Age, Survivors & Disability Insurance)

इसका प्रशासन सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 मे संघीय सरकार के अधीन है । वृद्धावस्था पेन्शन पद्धति हेतु मालिक और कर्मचारी भुगतान करते हैं । इस अधिनियम में 1939 में संशोधन करके रिटायरमेंट के पहले या बाद मृत्यु को प्राप्त होने वाले व्यक्ति की पत्नी और बच्चों को भी पेन्शन देने का प्रावधान रखा गया । 1956 मे असमर्थता के लाभ को भी इस अधिनियम मे शामिल कर लिया गया ।

1 *Saxena, R. C.*: Labour Problems & Social Welfare, p. 453.
2 *Sexena, R. C.*: Labour Problems & Social Security, p. 706.

वृद्धावस्था और उत्तरजीवी बीमा का वित्त प्रबन्ध मालिको और श्रमिकों की कर देय वार्षिक आय (4200 डॉलर तक) का 2-2 प्रतिशत तथा स्वय नियोजित व्यक्तियो की आय का 3% द्वारा किया जाता है। यह दर उस समय तक बढाई जाती रहेगी जब तक मालिको व श्रमिको के लिए 4% और स्वय नियोजित व्यक्तियो के लिए 6% न हो जाए।

व्यक्तियो को 65 वर्ष पर और महिलाओ को 62 वर्ष पर रिटायरमेंट पेन्शन दी जाती है। 1957 मे अकेले व्यक्ति के लिए अधिकतम पेन्शन 108'50 डॉलर प्रतिमाह थी और विवाहित के लिए यह 162 80 डॉलर थी। एक विधवा, को 81 50 डॉलर, एक विधवा और एक बच्चे को 162 80 डॉलर, एक विधवा और दो बच्चो को 200 डॉलर दिया जाता है। यदि आश्रितो को अतिरिक्त नही दिया जाता है तो असमर्थता पेन्शन वृद्धावस्था पेन्शन ही होगी। इस अधिनियम मे असमर्थ व्यक्तियो का शीघ्र पुनर्वास कराने का भी प्रावधान रखा गया है।

2 बेरोजगारी बीमा
(Unemployment Insurance)

तीसा की महान् मन्दी में कई लाख अमेरिकी बेरोजगार हो गए। वे रोजगार पाने मे असमर्थ रहे। इस आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए बेरोजगारी बीमा योजना चालू की गई। सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 मे ही इसका प्रावधान रखा गया है जिसका वित्त प्रबन्ध मालिको के अशदान से होगा। सामान्य प्रमापो (General Standards) का निर्धारण सघीय सरकार करती है और विस्तार से प्रावधान राज्यो द्वारा तैयार किए जाते हैं। किसी भी उद्योग का मालिक यदि वर्ष मे कम से कम 20 हफ्ते चार या चार से अधिक श्रमिको को काम मे लगाता है तो उसे बेरोजगारी बीमा कोष (Unemployed Insurance Fund) अशदान देना पडता है। अमेरिका का नियोजित व्यक्तियो का दो-तिहाई भाग इस योजना के अन्तर्गत आता है। बेरोजगार व्यक्तियो को दिया जाने वाला भुगतान व अवधि विभिन्न प्रान्तो मे अलग-अलग है। सामान्यतया यह राशि श्रमिक की मजदूरी का आधार होती है। कुछ राज्यो मे आश्रितो की संख्या के आधार पर इसमें वृद्धि कर दी जाती है। इस योजना से न केवल बेरोजगार व्यक्ति व उसके आश्रितो को ही सुरक्षा मिलती है बल्कि उसको यह अवसर प्रदान करती है कि उसकी योग्यता व अनुभव वाली नौकरी की तलाश कर सके। इसके साथ ही मन्दी से अर्थव्यवस्था की रक्षा भी करती है।

3 सार्वजनिक सहायता
(Public Assistance)

1935 के सामाजिक सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत इस प्रकार सहायता का प्रावधान रखा गया है। यह सहायता तीन वर्गों को प्रदान की जाती है—

(i) जरूरतमन्द वृद्ध व्यक्तियों को जिनको बीमा योजना के अन्तर्गत सहायता या लाभ नही मिलते हैं उनको सार्वजनिक सहायता देकर उनकी मदद की जा सकती है।

(ii) वे बच्चे जिनको माता-पिता की मृत्यु, असमर्थता या अनुपस्थिति के कारण त्याग दिया गया है उन्हें भी इस प्रकार की सहायता देने का प्रावधान है।

(iii) जरूरतमन्द अन्धे व्यक्ति भी इसके अन्तर्गत शामिल किए गए हैं।

1950 मे इस योजना को स्थायी या पूर्ण रूप से असमर्थता प्राप्त करने वाले व्यक्तियो को भी शामिल कर लिया गया है।

इस प्रकार की सहायता जरूरतमन्द व्यक्तियों को राज्य सरकारो द्वारा दी जाती है। इसको वित्तीय सहायता संघीय सरकार द्वारा दी जाती है।

4 श्रमिक क्षतिपूर्ति
(Workmen's Compensation)

सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, *1936 के अतिरिक्त* राज्य व संघीय सरकार द्वारा कर्मचारियो को क्षतिपूर्ति करने का भी प्रावधान है। सबसे पहले संघीय कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1905 (Federal Employee's Compensation Act of 1908) पास किया गया था। धीरे-धीरे अन्य राज्यो मे भी इस तरह के अधिनियम पास कर दिए गए है। 1948 से सभी राज्यों में इस प्रकार के अधिनियम से सुरक्षा प्रदान की जाती है। मृत्यु होने पर दाह संस्कार व्यय तथा आश्रितो को नकदी लाभ दिए जाते हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत चोट की लागत को उत्पादन की लागत माना जाता है। विभिन्न राज्यों में स्थाई, अस्थाई असमर्थता तथा मृत्यु पर दिए जाने वाले मुआवजे की राशि अलग-अलग है। अस्थाई असमर्थता के लिए कर्मचारी की औसत मजदूरी का 2/3 भाग दिया जाता है। भुगतान अवधि भी विभिन्न राज्यों में 104 से 700 सप्ताह तक है। कुछ राज्यों में समयावधि और भुगतान की सीमाएँ निश्चित हैं जो क्रमश. 260 से 800 सप्ताह और 6500डॉलर से 20,000 डॉलर तक हैं।

व्यावसायिक बीमारियों से होने वाली असमर्थता को भी चोट की भांति लाभ प्रदान किए जाने चाहिए। इसके विषय मे भी विभिन्न राज्यो में कानून बनाए गए है।

5 बीमारी अथवा अस्थाई असमर्थता
(Sickness or Temporary Disability)

अल्पकाल मे बीमार होने पर बीमारी लाभ नकदी के रूप मे प्रदान किए जाते हैं। दीर्घकालीन बीमारी की प्रारम्भिक अवस्था में भी यह लाभ दिया जाता है। इस प्रकार का लाभ संघीय और राज्य सरकारें द्वारा अलग-अलग वर्गों के श्रमिकों को प्रदान किए जाते हैं। यह लाभ 20 सप्ताह तक के लिए श्रमिक की मजदूरी का आधा हिस्सा दिया जाता है।

पूर्णतया अथवा स्थाई रूप से असमर्थता होने पर स्वयं व उसके आश्रितों को मासिक लाभ प्रदान किए जाते हैं। सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत असमर्थ व्यक्तियों को व्यावसायिक पुनर्वास सेवा के संघीय राज्यीय कार्यक्रम (Federal State Programmes of Vocational Rehabilitation Service) के पुनर्वास को प्रोत्साहन दिया जाता है। संघीय सरकार द्वारा युद्ध में हुए अपङ्ग व असमर्थ व्यक्तियों को भी क्षतिपूर्ति दी जाती है।

6. बच्चों के लिए कार्यक्रम
(*Programmes for Children*)

सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 1935 के अन्तर्गत बच्चों को बीमा लाभ अथवा सहायता प्रदान करने का भी प्रावधान रखा गया है। संघीय सरकार राज्य सरकारों को प्रसूति और शिशु स्वास्थ्य सेवाओं, अपंग बच्चों की सेवा और अन्य शिशु-कल्याण सेवाओं के चलाने के लिए कानून बनाती है तथा इन सभी सेवाओं के लिए राज्य सरकारों को अनुदान भी दिया जाता है।

उपरोक्त सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अतिरिक्त ऐच्छिक आधार पर चलाई जाने वाली विभिन्न स्वास्थ्य अथवा बीमारी बीमा सेवाएँ अमेरिकी श्रमिकों के लिए चलाई जाती हैं। निजी संस्थाएँ भी सामाजिक सुरक्षा सेवाएँ, उदाहरणार्थ बीमार और जरूरतमन्द, पाठशालाओं और अस्पतालों के लिए विभिन्न लाभप्रद सेवाएँ प्रदान करती हैं।

रूस में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in USSR)

रूस में सामाजिक सुरक्षा उपायों की सांविधानिक गारण्टी दी गई है और उनको प्राप्त करने के तीन कारण हैं—

1. रूस की अर्थव्यवस्था का तीव्र गति से विकास हो रहा है तथा बढ़ती हुई राष्ट्रीय आय में से हिस्सा दिलाने के लिए सामाजिक सुरक्षा लागू करनी होती है,

2. समाजवादी देश होने के कारण लोगों का कल्याण बढ़े, एवं

3. श्रम संघों द्वारा सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के क्रियान्वयन में सहयोग से प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

रूस में सामाजिक सुरक्षा सभी श्रमिकों और कर्मचारियों पर लागू होती है। सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी, गारण्टीड रोजगार चिकित्सा सुविधा प्रसूति लाभ, श्रमिक क्षतिपूर्ति, वृद्धावस्था पेंशन, असमर्थता पेंशन, उत्तरजीवी पेंशन, व्यावसायिक बीमारियों के विरुद्ध बीमा, असमर्थ और वृद्धावस्था गृहों हेतु प्रावधान, स्वास्थ्य और सेनीटोरियम के लिए विस्तृत प्रावधान आदि उपाय अथवा योजनाएँ शामिल की गई हैं। सामाजिक सुरक्षा सेवाएँ सामुदायिक फार्मों के कर्मचारियों को भी प्रदान की जाती हैं।

रूस में सामाजिक बीमे की विशेषताएँ
(Features of Social Insurance in U.S.S.R.)

रूस में सामाजिक बीमा योजना की प्रमुख विशेषताएँ निम्नाङ्कित हैं—

1. केवल नियोजित व्यक्तियों का बीमा किया जाता है।

2. बेरोजगारी बीमा योजना नहीं है। कानून से बेरोजगारी को समाप्त कर दिया गया है।

3. बीमा के पूर्ण लाभों को प्राप्त करने हेतु श्रम संघो का सदस्य होना पूर्व शर्त है। गैर-सदस्यों को केवल ग्राधे लाभ दिए जाते हैं।

4. सामाजिक बीमा योजनाओं का संगठन, प्रशासन और निरीक्षण का कार्य श्रम संघों द्वारा किया जाता है। श्रम संघों की केन्द्रीय संस्था का स्वयं का अपना सामाजिक बीमा विभाग है।

5. सामाजिक बीमा की लागत का वहन सम्बन्धित संस्थान द्वारा किया जाता है। इसमे सम्बन्धित संस्थान द्वारा अंशदान दिया जाता है।

6. रूस की सामाजिक बीमा योजना न केवल श्रमिकों के कल्याण मे वृद्धि का साधन है, बल्कि यह आर्थिक विकास मे उत्पादन मे वृद्धि करने का भी एक प्रमुख साधन मानी जाती है।

7. यदि कोई श्रमिक सामाजिक बीमा योजना के अन्तर्गत मिलने वाले लाभों के प्रशासन और श्रम संघों के हस्तक्षेप से कोई शिकायत रखता है तो इसके लिए वह गारण्टीड सामाजिक सुरक्षा लाभों हेतु स्थानीय न्यायालय में अपील कर सकता है।

वर्तमान समय मे रूस मे श्रमिक के अस्थाई असमर्थ होने पर सहायता तथा स्थाई असमर्थता व वृद्धावस्था के लिए पेंशन देने का प्रावधान है। यदि किसी श्रमिक को चोट अथवा बीमारी के कारण अस्थाई असमर्थता हो जाती है तो उसे उसकी औसत मजदूरी का शत-प्रतिशत सहायता के रूप में दिया जाता है।

सामाजिक बीमा योजना

रूस मे प्रारम्भिक कठिनाइयों के कारण सामाजिक बीमा योजना के सिद्धान्तों को नवीन आर्थिक नीति के अन्तर्गत सन् 1922 में शुरू किया गया। एक श्रम संहिता की घोषणा की गई। इसके अन्तर्गत चिकित्सा, अस्थाई असमर्थता पर लाभ, दाह-संस्कार हेतु भुगतान, असमर्थता, वृद्धावस्था अथवा मृत्यु के पश्चात् पेंशन आदि का प्रावधान रखा गया था। रूस मे सामाजिक बीमा योजना का वित्त प्रबन्ध-प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है। प्रबन्धक श्रमिकों के मजदूरी बिल का कुछ प्रतिशत सामाजिक बीमा कोष (Social Insurance Fund) में जमा कराते हैं। इसी अनुपात में वे श्रमिकों की मजदूरी मे से घटा लेते हैं। यह प्रतिशत 4·4 से 9 8 तक होता है जो कि उत्पादन की दशाओं पर निर्भर करता है। श्रमिकों को कुछ भी भुगतान नहीं करना पड़ता है।

चिकित्सा सहायता वस्तु के रूप मे दी जाती है जो कि सामाजिक बीमा के अन्तर्गत न आकर सामाजिक सेवाओं के अन्तर्गत आती है। सामाजिक बीमा योजना केवल नियोजित श्रमिको पर ही लागू होती है। कृषि श्रमिक इसके अन्तर्गत नही आते हैं क्योंकि उनकी रक्षा किसानो के सामूहिक संगठनो (Peasant's Collective Organisations) द्वारा की जाती है।

रूस की सामाजिक बीमा योजना के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं—

1. सन् 1933 से ही इस योजना का प्रशासन श्रम संघों द्वारा किया जाता है। इस योजना की संस्थाएँ कोष और कार्य सभी श्रम सघो के है।

2. इस योजना के अन्तर्गत केवल नियोजित व्यक्तियों का ही बीमा किया जाता है।

3. इस योजना मे अंशदान केवल नियजको या मालिकों द्वारा ही दिए जाते हैं। मालिक एक मुश्त मे ही सामाजिक बीमा कोष मे श्रमिको की मजदूरी बिल का प्रतिशत के रूप में जमा करा देता है।

4. इस योजना के अन्तर्गत मिलने वाले लाभ केवल उन्ही श्रमिको को दिए जाते हैं जिन्होंने श्रम संघो की सदस्यता ग्रहण कर ली है। जो सदस्य नही हैं उनको केवल आधे लाभ ही मिलते है।

5 यह योजना सरकारी आन्दोलन के रूप मे श्रम की स्थिरता और उत्पादन मे वृद्धि हेतु चलाई जाती है। सबसे अधिक लम्बे समय तक कार्य करने वाले को ही अधिक लाभ मिलते है।

6 बेरोजगारी बीमा समाप्त कर दिया गया है। यह सन् 1930 मे प्रथम पंचवर्षीय योजना मे मानव-शक्ति की मांग मे वृद्धि करके समाप्त कर दिया गया है।

रोजगार के कारण बीमारी अथवा चोट से यदि अस्थाई असमर्थता हो जाती है तो औसत आमदनी का शत-प्रतिशत लाभ के रूप मे श्रमिक को दिया जाता है। अन्य मामलो मे नौकरी की अवधि के आधार पर लाभ प्रदान किए जाते हैं। उदाहरणार्थ [illegible] या अधिक वर्ष की नौकरी वाले को 100%, 3 से 6 वर्ष के रोजगार हेतु 80%, 2 से 3 वर्ष हेतु 60% और 2 वर्ष से कम को 50% औसत मजदूरी का भाग लाभ के रूप मे दिया जाता है। श्रम सघो की सदस्यता न होने पर इन लाभो का आधा मिलेगा।

प्रत्येक व्यक्ति और महिला जिन्होंने क्रमश 60 और 55 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है, पेंशन प्राप्त करने के अधिकारी हैं। रोजगार के कारण बीमारी और चोट मे उत्पन्न स्थायी असमर्थता (Permanent Disability) हेतु भी पेंशन दी जाती है। दूसरे मामलो मे यह आयु और रोजगार की अवधि पर निर्भर करता है। पेंशन की राशि श्रमिको को अन्त मे मिलने वाली मजदूरी पर निर्भर करती है। अधिकतम पेंशन अन्तिम मजदूरी का 66% दी जाती है।

सामाजिक बीमा योजना के अलावा रूस में बीमारी की चिकित्सा तथा अन्य सुविधाओं में वृद्धि करने हेतु सामाजिक सेवाएँ प्रदान की जाती है। ये सेवाएँ निम्नलिखित है—

1. प्रत्येक व्यक्ति को निःशुल्क चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

2. किसी भी सस्थान में निरन्तर 11 माह तक कार्य करने पर 2 सप्ताह की वेतन सहित छुट्टियाँ दी जाती है।

3. श्रम सघो और औद्योगिक सस्थानो द्वारा चलाए जाने वाले विश्राम-गृहो का श्रमिको द्वारा उपयोग करना। यह उपयोग उनकी नौकरी की अवधि पर निर्भर करता है।

4 रविवार तथा अन्य सार्वजनिक छुट्टियो पर कस्बो मे स्थित रेस्ट पार्कस् आदि का उपयोग करना।

5. सभी को प्राथमिक शिक्षा की नि शुल्क सुविधाएँ प्रदान करना।

6. प्रत्येक महिला को मातृत्व लाभ (Maternity Benefits) प्रदान करना।

माताओ का कल्याण और उनको संरक्षण प्रदान करना सरकार का प्राथमिक दायित्व समझा जाता है। इसके विषय मे कई श्रम कानून बनाए गए हैं। किसी भी गर्भवती महिला को रोजगार देने से मना करना कानूनी अपराध है। इसके उल्लंघन पर 6 माह की जेल तथा 1000 रूबल आर्थिक दण्ड दिया जा सकता है। महिला की मजदूरी मे से किसी प्रकार की कटौती नही की जाएगी। गर्भावस्था मे हल्का कार्य दिया जाता है। उनको ट्राम्स, रेल व बसो मे सुरक्षित स्थान प्रदान किए जाते है। यदि 2 वर्ष का बच्चा बीमार हो जाता है तो उसकी माता को विशेष छुट्टी प्रदान की जाती है।

रूस मे अविवाहित माताओ और उनके बच्चों को भी सुरक्षा प्रदान करने का प्रावधान है। बच्चे के पालन-पोषण हेतु राज्य की ओर से भत्ता दिया जाता है। अन्य माताओ को जो सुविधाएँ व लाभ मिलते हैं वे ही अविवाहित माताओ को भी मिलते हैं। अधिक बच्चो वाली माँ को रूस में विशेष भत्ता भी दिया जाता है।

भारत में सामाजिक सुरक्षा
(Social Security in India)

भारत मे सामाजिक सुरक्षा एक नया दृष्टिकोण नही है। कतिपय नियोजक पहले से ही अपने श्रमिको को पेंशन, प्रोविडेण्ट फण्ड और ग्रेच्युटी आदि लाभ देते थे और कल्याणकारी कार्य भी किए गए हैं। इस सम्बन्ध मे हमारे देश मे श्रम कानूनो का भी अभाव नही रहा हे। सन् 1947 से पूर्व ही हमारे देश मे श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 और विभिन्न प्रान्तो मे मातृत्व लाभ अधिनियम पास किए जा चुके थे।[1]

1 *Giri, V. V.* · Labour Problems in Indian Industry, p 262.

किसी भी काम मे सामाजिक सुरक्षा की योजना शुरू करने हेतु अन्य उपाय भी काम मे लेने पडते है उदाहरणार्थ पूर्ण रोजगार नीति, श्रमिको की सुरक्षा और अच्छी कार्य दशाओ हेतु विधान, चिकित्सा, शिक्षा और आवास सुविधाएँ, आदि। हमारे देश मे विशेष रूप से औद्योगिक श्रमिको हेतु सामाजिक सुरक्षा शुरू की गई है।[1]

हमारे देश मे यद्यपि प्राचीन समय से ही सयुक्त परिवार प्रथा, पचायत, निर्धन गृहो आदि सामाजिक सस्थाओ द्वारा जरूरतमन्दो को कुछ न कुछ सहायता की जाती रही है, लेकिन सामाजिक सुरक्षा पर दूसरे महायुद्ध तक विशेष ध्यान नही दिया गया। शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour, 1931) तक ने इस प्रकार की योजना की आवश्यकता पर जोर नहीं दिया क्योकि हमारे देश मे स्थायी श्रम-शक्ति का अभाव था और श्रमिक परिवर्तन (Labour Turnover) भी अधिक होता था।

बेवरिज रिपोर्ट (Beveridge Report) के प्रकाशन के पश्चात् भारत मे सामाजिक बीमा योजना पर ध्यान दिया जाने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न देशो मे समाजवादी सरकारो की स्थापना हुई तथा श्रमिक असन्तोष के कारण श्रमिको की स्थिति सुधारने हेतु कई देशो मे सामाजिक बीमा योजना तैयार की गई। हमारे देश मे भी सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ प्रारम्भ करने की दिशा मे विभिन्न कदम उठाए गए।

भारत में सामाजिक सुरक्षा की वर्तमान अवस्था[2]

श्रमिकों के लिए क्षतिपूर्ति अधिनियम

1923 मे कर्मचारी मुआवजा अधिनियम पारित होने के साथ ही भारत मे सामाजिक सुरक्षा प्रारम्भ हुई। इसके अन्तर्गत ऐसे कर्मचारियो और उनके परिवारो को जिनकी अपने सेवा काल के दौरान किसी औद्योगिक दुर्घटना और कुछ विशेष रोगो से ग्रस्त हो जाने पर, जिनके कारण मृत्यु या अपगता हो गई हो, मुआवजा देने का प्रावधान है। अधिनियम मे मृत्यु, पूर्ण अपंगता और अस्थाई अपगता के लिए अलग-अलग पैमाने पर मुआवजा देने का प्रावधान है। इस अधिनियम के अन्तर्गत विशेष खतरे वाले व्यवसायो मे लगे कर्मचारियो को भी शामिल कर लिया गया है पर इसमे वे कर्मचारी शामिल नही है जो कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत लाभान्वित है।

प्रसूति सम्बन्धी लाभ

1929 मे तत्कालीन बम्बई सरकार द्वारा प्रसूति लाभ कानून को लागू कर अगला कदम उठाया गया। इसके तत्काल पश्चात् अन्य राज्यो ने (जिन्हे

1 *Vaid, K. N.* : State & Labour in India, p 110.
2 भारत, 1985.

प्रोविन्स के नाम से जाना जाता था) इसी विषय पर कानून लागू किए। विभिन्न राज्य सरकारो द्वारा उपलब्ध प्रसूति लाभों में एकरूपता लाने के लिए सरकार ने प्रसूति लाभ अधिनियम 1961 पारित किया जिसने इस विषय पर विभिन्न राज्यो मे लागू कानूनो का स्थान ग्रहण किया।

प्रसूति लाभ अधिनियम, 1961 कुछ सस्थानो मे प्रसव काल से पहले और बाद में कुछ समय तक के लिए महिलाओ के रोजगार का नियमन करता है और उनके लिए प्रसूति और दूसरे लाभ उपलब्ध कराता है। ऐसे कारखानों और संस्थानों के अतिरिक्त, जहाँ पर कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के नियम फिलहाल लागू हैं, यह अधिनियम खानो, कारखानों, सर्कस, उद्योग और बागानों तथा इसी प्रकार के अन्य सरकारी संस्थानो पर लागू होना है। यह अधिनियम राज्य सरकारो द्वारा अन्य सस्थानो पर लागू किया जा सकता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई वेतन सीमा निर्धारित नही है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 का पारित होना सामाजिक सुरक्षा के हित मे बहुत महत्त्वपूर्ण कदम था। यह अब केवल उन कारखानों मे लागू था जहाँ सारे साल काम होता है, मशीनें बिजली से चलती हैं और कम से कम बीस आदमी काम करते है। लेकिन अब राज्य सरकारो द्वारा धीरे-धीरे उन छोटे कारखानों, होटलों, रेस्तराओ, दुकानों, सिनेमाघरो, आदि जहाँ 20 या 20 से अधिक आदमी काम करते हो, पर भी लागू किया जा रहा है। यह उन कर्मचारियो पर लागू होता है जिनका प्रतिमाह वेतन 1,600 रु. से कम है। इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिको को आकस्मिक बीमारी, प्रसूति, रोजगार मे चोट की अवस्था मे उनके इलाज का प्रबन्ध करने और उन्हे नकद भत्ता देने तथा चोट से मृत्यु होने पर उनके आश्रितो को पेंशन देने की व्यवस्था है। प्रत्येक व्यक्ति के परिवार को, जो इस नियम के अन्तर्गत आता है, हर प्रकार के इलाज की सुविधाएँ उत्तरोत्तर दी जा रही है।

31 दिसम्बर, 1984 को 85 कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल और 42 उप-अस्पताल थे जिनमे बिस्तरों की संख्या 22,674 थी और औषधालयों की संख्या 1,200 थी। इस योजना को 61 34 लाख कर्मचारियो तक पहुँचाया जा चुका है।

कर्मचारी भविष्य निधि

1952 के कर्मचारी भविष्य निधि तथा अन्य प्रावधान अधिनियम द्वारा औद्योगिक कर्मचारियों को अवकाश प्राप्ति पर कई प्रकार के लाभ उपलब्ध हैं। 30 सितम्बर, 1984 तक जम्मू और कश्मीर को छोड़कर सारे भारत में 173 उद्योग प्रतिष्ठान थे, जिनमें 20 या उससे अधिक व्यक्ति काम करते हैं। यह कानून उन सस्थानों पर लागू नही होना जो 1912 के सहकारी सोसाइटी

अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड है या कोई अन्य कानून जो सहकारी समितियों से सम्बन्ध रखता है और जिनमे 50 से कम लोग काम करते है तथा जिनकी मशीनें बिजली या भाप से नही चलती। यह योजना 2500 रु तक मासिक वेतन पाने वालो पर लागू होती है।

सितम्बर, 1985 से इस निधि के लिए मालिकों को, कर्मचारियो को दी जाने वाली मजदूरी व महँगाई भत्ते की कुल राशि के सवा छह प्रतिशत के बराबर अपना हिस्सा देना होता है (कुल राशि मे कर्मचारियो को दी गई खाद्य रियायतो का नकदी मूल्य और अनुरक्षण भत्ता भी शामिल है)। इतना ही हिस्सा कर्मचारियो को भी देना होता है। 108 उद्योगो के लिए जिनमे 50 से अधिक व्यक्ति काम करते हैं, यह हिस्सा बढ़ा कर 8 प्रतिशत कर दिया गया है।

31 मार्च, 1985 के अन्त मे भविष्य निधि योजना मे अशदाताओ की संख्या 128 88 लाख थी।

मृत्यु होने पर सहायता

जनवरी, 1964 मे कर्मचारी भविष्य निधि योजना के अन्तर्गत मृत्योपरान्त सहायता निधि स्थापित की गई जिसका उद्देश्य गैर छूट प्राप्त सस्थानो मे मृतक के उत्तराधिकारियो या नामजद व्यक्तियो को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। उसका लाभ मृतक के उत्तराधिकारियो या नामजद व्यक्तियो को मिलता है जिनका मासिक वेतन (मूल वेतन, महँगाई भत्ता आदि को मिलाकर) मृत्यु के समय 1,000 रुपये से अधिक नही है। सहायता की राशि 1,250 रुपये निश्चित कर दी गई है।

एम्पलाईज डिपाजिट लिक्ड इश्योरेंस स्कीम

सामाजिक सुरक्षा की एक और योजना है एम्पलाईज डिपाजिट लिक्ड इंश्योरेन्स स्कीम, 1976 अर्थात् भविष्य निधि मे जमा धनराशि से जुड़ा बीमा। यह योजना 1 अगस्त, 1976 से लागू हुई। इसके अनुसार, कर्मचारी की मृत्यु होने पर उसके वारिस को भविष्य निधि की धनराशि के अतिरिक्त एक और धनराशि मिलेगी जो पिछले तीन वर्षो मे निधि में मौजूद औसत धनराशि के बराबर होगी, बशर्ते कि निधि मे औसत धनराशि 1,000 रुपये से कम न रही हो। इस योजना के अन्तर्गत अधिकतम भुगतान 10,000 रुपये होगा जिसके लिए कर्मचारी को कोई अशदान नही करना पडेगा।

पारिवारिक पेंशन

औद्योगिक मजदूरो की असामयिक मृत्यु होने पर उनके परिवारो के लिए लम्बी अवधि तक धन सम्बन्धी सुरक्षा देने की दृष्टि से 1 मार्च 1971 से कर्मचारी परिवार पेंशन योजना शुरू की गई। कर्मचारी भविष्य निधि योजनाओ मे मालिको और कर्मचारियो के अशदान के एक भाग को अलग करके इसके लिए धन प्राप्त

किया जाता है। इसमे केन्द्र सरकार भी कुछ भाग जमा करती है। निधि की सदस्यता की अवधि के आधार पर परिवार पेंशन की राशि न्यूनतम 60 रुपये से लेकर अधिकतम 320 रुपये प्रतिमाह है। इसके अतिरिक्त 60 रुपये से 90 रुपये तक अस्थायी परिवार पेंशन की राशि प्रति माह देने की स्वीकृति भी प्रदान की गई।

आनुतोषिक योजना

1962 के आनुतोषिक (ग्रेच्युटी) अदायगी अधिनियम के अन्तर्गत कारखानों, खानो, तेल क्षेत्रों, बागानो, गोदियो, रेलवे, मोटर परिवहन प्रतिष्ठानो, कम्पनियों, दुकानो, तथा अन्य संस्थानो में काम करने वाले कर्मचारी आनुतोषिक के हक़दार हैं। 600 रुपये तक की मजदूरी प्राप्त करने वाले कर्मचारी हर पूरे किए गए सेवा वर्ष के पीछे 15 दिनो की मजदूरी के हिसाब से इसके अधिकारी हैं और कुल राशि 20 महीनों की मजदूरी से ज्यादा नही हो सकती। परन्तु ऐसे कारखानो मे, जहाँ सारा वर्ष कार्य नही होता, आनुतोषिक की दर प्रति ऋतु मे 7 दिनों के वेतन के बराबर होगी। अगर किसी कर्मचारी को मालिक के साथ किए किसी अन्य निर्णय, अनुबन्ध या इकरार के अधीन इससे अच्छी शर्तें मिलें, तो उन पर अधिनियम का असर नही पड़ता।

अब हम भारत मे सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी निम्नलिखित प्रमुख अधिनियमों का विस्तार से विवेचन करेंगे—

1. श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923
2. मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961
3. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 और उसके अधीन बनाई गई योजना
4. कर्मचारी भविष्य निधि और परिवार पेंशन निधि अधिनियम, 1952 और तदाधीन बनाई गई योजनाएँ
5. कर्मचारी जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा योजना, 1976
6 उपदान भुगतान अधिनियम, 1972

(1) श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923
(Workmen's Compensation Act of 1923)

इस अधिनियम का उद्देश्य किसी औद्योगिक दुर्घटना तथा औद्योगिक बीमारी से श्रमिक को क्षतिपूर्ति करना होता है। दुर्घटना से श्रमिक की मृत्यु हो जाती है अथवा स्थाई एवं अस्थाई असमर्थता प्राप्त होती है। इस आकस्मिकता से बचाव करने हेतु नियोजक द्वारा श्रमिको को क्षतिपूर्ति करना एक वैधानिक दायित्व है।

सीमा क्षेत्र—यह अधिनियम सभी रेल कर्मचारियों (प्रशासनिक कार्य मे नियोजन कर्मचारियो के अलावा) तथा इस अधिनियम की अनुसूची II में यथा-

निर्दिष्ट किसी भी पद पर नियोजित व्यक्तियों पर लागू होता है। अनुसूची-II में कारखानों, खानों, बागानों, यंत्र चालित वाहनों, निर्माण-कार्यों तथा कुछ अन्य जोखिमपूर्ण व्यवसायों में नियोजित व्यक्तियों को शामिल किया गया है। उक्त अधिनियम के अधीन विस्तार के लिए कोई मजदूरी सीमा नहीं है। तथापि, यह अधिनियम ऐसे व्यक्तियों पर लागू नहीं होता है, जिन्हें कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत लाया गया है।[1]

लाभ एवं व्यवस्था—इस अधिनियम में अस्थायी/स्थायी विकलांगता के मामले में कर्मकारों को और मृत्यु के मामले में उसके आश्रितों को मुआवजे के भुगतान की व्यवस्था है। मृत्यु के मामले में मुआवजे की न्यूनतम राशि 20,000 रु. तथा स्थायी विकलांगता के मामले में 24,000 रुपये है। स्थाई विकलांगता के मामले में मुआवजे की अधिकतम राशि 1,14,000 रुपये तक हो सकती है, जबकि मृत्यु के मामले में यह राशि 91,000 रुपये तक हो सकती है, जो मृत्यु के समय कर्मकारी की मजदूरी और उसके पद पर निर्भर करती है। अस्थायी विकलांगता के मामले में मुआवजा, मजदूरी का 50 प्रतिशत की दर से 5 वर्ष की अधिकतम अवधि तक देय है।

इस अधिनियम को सम्बन्धित राज्य सरकारों/संघ-राज्य क्षेत्र प्रशासनों द्वारा लागू किया जाता है।

यदि श्रमिक को काम करते समय किसी दुर्घटना से चोट लग जाए तो मालिक द्वारा मुआवजा दिया जाएगा। यदि असमर्थता (Incapability) 3 दिन से अधिक नहीं है तथा श्रमिक के स्वयं के दोष के कारण चोट लग जाती है तो उसे किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति नहीं दी जाएगी। यदि श्रमिक की मृत्यु हो जाती है तो उसे मुआवजा दिया जाता है। व्यावसायिक बीमारियों (Occupational Diseases) हेतु भी अधिनियम की तीसरी अनुसूची में क्षतिपूर्ति करने का प्रावधान है। मुआवजा की राशि चोट की प्रकृति तथा श्रमिक की औसत मासिक मजदूरी पर निर्भर करती है। चोट को तीन वर्गों में रखा गया है—उदाहरणार्थ चोट से मृत्यु को प्राप्त होना, स्थाई असमर्थता और असमर्थता। श्रमिक की मृत्यु होने पर उसके आश्रितों को मुआवजा दिया जाता है। वैधानिक आश्रित तथा अवैधानिक आश्रित दोनों वर्गों को क्षतिपूर्ति नियोजक द्वारा दी जाती है।

इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक नियोजक का यह दायित्व है कि वह किसी भी घातक दुर्घटना की सूचना आयुक्त, श्रमिक क्षतिपूर्ति (Commissioner for Workmen's Compensation) को दे। यदि वह इस दुर्घटना का दायित्व स्वीकार कर लेता है तो उसे मुआवजे की राशि आयुक्त के पास में जमा करा देनी चाहिए। यदि मालिक दायित्व स्वीकार नहीं करता है

1 श्रम मंत्रालय, भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट, 1985-86, भाग-I, पृ. 12.

तो आयुक्त मृतक के आश्रितो को उसके न्यायालय में इस सम्बन्ध मे अपना अधिकार (Claim) माँग सकता है। मालिक इस सम्बन्ध में प्रसंविदा द्वारा मुआवजा नही चुका सकता।

इस अधिनियम का प्रशासन राज्य सरकारो द्वारा किया जाता है। अब प्रत्येक राज्य सरकार ने आयुक्त, श्रमिक क्षतिपूर्ति नियुक्त कर दिए है जो कि मुआवजे सम्बन्धी मामलों की जाँच, सुनवाई और फैसला देकर श्रमिकों की मदद करते है। इस अधिनियम के अन्तर्गत दुर्घटना, मुआवजे की राशि आदि के सम्बन्ध मे मालिक को प्रतिवेदन भेजना पड़ता है। इस अधिनियम का समय-समय पर सशोधन करके इसके क्षेत्र को व्यापक कर दिया गया है।

दोष—इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानो तथा उनकी क्रियाशीलता को देखने से पता चलता है कि यह अपने आप मे एक पूर्ण अधिनियम नही है। इसकी निम्नलिखित सीमाएँ है—

1. मालिक इस अधिनियम को अनुचित बताते हैं। उनका कहना है कि श्रमिक की गलती के कारण मृत्यु होने पर मालिको को क्षतिपूर्ति अदा करनी पड़ती है। इससे उन पर वित्तीय भार पड़ता है।

2. छोटे सस्थानों द्वारा श्रमिको को क्षतिपूर्ति नही दी जाती है। वे किसी न किसी तरह इस दायित्व को टालने मे सफल हो जाते हैं। बड़े सस्थानो द्वारा भी छोटी चोटो की रिपोर्ट नही की जाती है।

3. क्षतिपूर्ति सम्बन्धी मामलो को निपटाने में देरी लगती है। सम्बन्धित अधिकारियों का कार्यभार पहले ही अधिक होता है।

4. ठेका श्रम के सम्बन्ध मे ठेकेदार ठेके द्वारा मुआवजा देता है। रसीद पूरी राशि की ली जाती है जबकि भुगतान कम राशि में होता है।

5. इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी प्रकार की चोट अथवा व्यावसायिक बीमारी होने पर चिकित्सा का प्रबन्ध नही किया जाता है। चिकित्सा का प्रबन्ध आवश्यक है।

इस अधिनियम के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन हेतु राष्ट्रीय श्रम आयोग (National Commission on Labour) ने सुझाव दिया है कि श्रमिक क्षतिपूर्ति हेतु एक केन्द्रीय कोष (Central Fund for Workmen's Compensation) की स्थापना की जाए। इस कोष मे सभी मालिकों द्वारा प्रतिमाह अपनी मजदूरी बिल का कुछ प्रतिशत जमा करना चाहिए जिसमें कि अधिनियम के प्रशासन तथा दिए गए लाभों की लागत को वहन किया जा सके। इस कोष का नियन्त्रण कर्मचारी राज्य बीमा निगम (Employee's State Insurance Corporation) द्वारा होना चाहिए। यह निगम दुर्घटनाग्रस्त श्रमिको और उनके आश्रितों को समय-समय पर भुगतान करता रहेगा। यदि श्रमिक असमर्थता के कारण बेरोजगार रहता है तो उसको क्षतिपूर्ति की ऊँची दर दी जानी चाहिए।

(2) मातृत्व लाभ या प्रसूति अधिनियम, 1961
(Maternity Benefit Act of 1961)

मातृत्व लाभ महिला श्रमिको को बच्चे के जन्म के पूर्व तथा पश्चात् कार्य से अनुपस्थित रहने के परिणामस्वरूप हुई मजदूरी की हानि के रूप मे मुम्रावजा दिया जाता है जिससे महिला श्रमिक व उसके बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा असर नही पड़े तथा आर्थिक कठिनाई का सामना नही करना पड़े। इस सम्बन्ध मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) ने प्रस्ताव 1919 मे ही पास कर दिया था। लेकिन भारत मे इसे स्वीकार नही किया गया क्योकि भारतीय महिला श्रमिक प्रवासी होती है, बच्चा होने से पूर्व ही वे वापिस अपने घर लौट जाती हैं तथा चिकित्सा सुविधाओं का भी अभाव है। विभिन्न राज्यो मे समय-समय पर अधिनियम पास कर दिए गए हैं। लेकिन अधिनियमो मे समरूपता का अभाव होने के कारण 1961 मे मातृत्व लाभ अथवा प्रसूति अधिनियम पास किया गया।

यह अधिनियम महिलाओ के रोजगार को बच्चे के जन्म से पहले तथा बाद मे कुछ अवधि के सम्बन्ध मे विनियमित करता है और प्रसूति तथा कतिपय अन्य लाभो की व्यवस्था करता है।

सीमाक्षेत्र—यह अधिनियम प्रथमत खानो, कारखानो, बागानो और सर्कस उद्योगो पर लागू होता है। राज्य सरकार द्वारा इस अधिनियम के उपबन्धो को किसी भी अन्य प्रतिष्ठानो या प्रतिष्ठानो के वर्ग पर लागू किया जा सकता है। इस अधिनियम की परिधि लाने के लिए कोई मजदूरी सीमा नही है। तथापि यह अधिनियम उन महिला कर्मकारों पर लागू होता है जो कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के सीमाक्षेत्र मे आती है।

लाभ—इस अधिनियम मे छुट्टी पर जाने के तत्काल बाद तथा प्रसूति की तारीख सहित और उस तारीख के बाद छह सप्ताह के लिए वास्तविक अनुपस्थिति की अवधि के लिए औसतन दैनिक मजदूरी की दर से प्रसूति लाभ के भुगतान की व्यवस्था है। प्रसूति लाभ की कुल अवधि 12 सप्ताह है अर्थात् प्रसूति की तारीख तक तथा उस तारीख सहित छह सप्ताह तक और उस तारीख के तत्काल बाद छह सप्ताह। प्रसूति लाभ के लिए पात्र होने के लिए, महिला कर्मचारी की पिछले 12 महीने की अवधि के दौरान 160 दिनो की सेवा होनी चाहिए। इस अधिनियम मे गर्भपात के मामले मे भी छह सप्ताह के लिए प्रसूति सुविधा लाभ देने की व्यवस्था है।

कार्यान्वयन—केन्द्रीय सरकार खानो तथा सर्कस उद्योग मे इस अधिनियम के उपबन्धो के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी है, जबकि कारखानो, बागानो तथा अन्य प्रतिष्ठानों मे इसके कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकारें उत्तरदायी हैं। केन्द्रीय सरकार ने इस अधिनियम के कार्यान्वयन का काम अग्रलिखित प्राधिकरणो को सौंप दिया है—

	जिन प्रतिष्ठानों के लिए वे उत्तरदायी है
(i) केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध तन्त्र	सर्कस उद्योग
(ii) कोयला खान कल्याण आयुक्त	कोयला खानें
(iii) खान सुरक्षा महानिदेशक	गैर कोयला खानें

(3) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 और उसके अधीन बनाई गई योजना

(Employee's State Insurance Act, 1948)

विभिन्न देशों में बीमारी बीमा सम्बन्धी योजना पर विचार किया गया। भारत में भी 1928 में इस पर विधान-सभा में विचार किया गया। शाही श्रम आयोग, 1931 ने भी बीमारी बीमा के सम्बन्ध में जाँच हेतु समिति नियुक्त करने की सिफारिश की। इसी के साथ एक ऐसी योजना चालू करने की सिफारिश की जो कि एक सस्थान पर आधारित हो। इस सिफारिश के अनुसार एक ऐसी योजना तैयार की जाए जिसके अन्तर्गत चिकित्सा लाभ प्रदान करना राज्य सरकार की जिम्मेदारी हो तथा वित्तीय लाभ मालिकों और श्रमिकों के संयोग से प्राप्त किया जाए। औद्योगिक श्रमिकों हेतु बीमारी योजना हेतु प्रो अडारकर की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 1944 में दी। प्रो अडारकर ने केवल एक बीमारी बीमा योजना दी थी। बाद में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के दो विशेषज्ञों श्री स्टेक और श्री राव ने इस रिपोर्ट की जाँच करके एक बड़ी एकीकृत बीमा योजना की सिफारिश की। इसमें मातृत्व लाभ, औद्योगिक चोट लाभ और बीमारी योजना तीनों को शामिल किया गया। इसके परिणामस्वरूप सरकार ने कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 पास किया।

पाँच प्रकार के लाभ—इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियों को पाँच प्रकार के लाभ दिए जाते हैं, वे निम्नांकित हैं—

(i) बीमारी लाभ (Sickness Benefit)—यदि बीमा कराए हुए व्यक्ति की बीमारी का प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है तो उसे नकदी में भुगतान प्राप्त होता है। यह 365 दिनों में से अधिकतम 56 दिनों हेतु दिया जाता है। बीमारी लाभ की राशि दैनिक औसत मजदूरी की आधी होनी चाहिए। जिस व्यक्ति को यह लाभ मिलता है वह निर्धारित डिसपेन्सरी में रहेगा।

(ii) मातृत्व लाभ (Maternity Benefit)—इसके अन्तर्गत 12 सप्ताह के लिए नकद भुगतान दिया जाता है। लाभ की दर औसत मजदूरी (दैनिक) के बराबर दी जानी है।

(iii) असमर्थता लाभ (Disablement Benefit)—रोजगार में चोट तथा बीमारी से उत्पन्न असमर्थता लाभ प्रदान किया जाता है। अस्थाई असमर्थता के लिए दैनिक औसत मजदूरी का पूर्ण भाग लाभ के रूप में नकदी में दिया जाता

है। स्थाई असमर्थता होने पर श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत दी जाने वाली दर के आधार पर लाभ दिया जाता है।

(iv) आश्रितों का लाभ (Dependant's Benefit)—किसी श्रमिक की रोजगार में मृत्यु होने पर उसके आश्रितों को लाभ प्रदान किया जाता है। विधवा स्त्री को पूरी दर का ⅗ भाग, वैधानिक पुत्रों और अविवाहित लड़कियों को कुल दर का ⅖ भाग 15 वर्ष की आयु तक प्रदान किया जाता है। यदि शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं तो यह लाभ उनको 18 वर्ष की आयु तक दिया जाता है। यदि मृतक के विधवा पत्नी, लड़के-लड़कियाँ नहीं हैं तो उसके माता-पिता को यह लाभ दिया जाएगा। लेकिन यह लाभ उसकी पूरी दर (Full rate) से अधिक नहीं दिया जाता है।

(v) चिकित्सा लाभ (Medical Benefit)—इसके अन्तर्गत बीमा कराए व्यक्ति को उस हफ्ते में भी चिकित्सा लाभ दिया जाता है जिसमें उसका अंशदान दिया जाता है। बीमारी, मातृत्व प्रसूति और असमर्थता लाभ प्राप्त करने योग्य श्रमिकों को चिकित्सा लाभ प्रदान किया जाता है। बीमारी, रोजगार, चोट और प्रसूति में नि.शुल्क चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। ये लाभ बीमा चिकित्सालय अथवा अस्पताल में प्रदान किए जाते हैं।

चिकित्सा रक्षा के लाभ अब बीमा कराए गए श्रमिकों के परिवारों को भी दिए जाने लगे हैं।

इस अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारी बीमा न्यायालयों (Employee's Insurance Courts) की स्थापना राज्यों द्वारा कर दी गई है जो कि इससे सम्बन्धित झगड़ों का निपटारा करेंगे। जिन स्थानों पर न्यायालय नहीं हैं, वहाँ विशेष अधिकरण (Special Tribunals) स्थापित कर दिए गए हैं।

श्रम मंत्रालय की रिपोर्ट 1985–86 के अनुसार अधिनियम की कुछ अन्य बातें और उनका क्रियान्वयन

इस अधिनियम में डॉक्टरी देख-रेख और इलाज, बीमारी प्रसूति तथा काम करते हुए लगी चोट के दौरान नकद लाभ, काम करते हुए चोट लगने के कारण श्रमिक की मृत्यु होने पर उसके आश्रितों को पेंशन एवं बीमा शुदा व्यक्ति की मृत्यु होने की दशा में अन्त्येष्टि खर्च देने की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम के उपबन्धों को, जो प्रारम्भ में बिजली का प्रयोग करने वाले और 20 या उससे अधिक व्यक्तियों को नियोजित करने वाले बारहमासी कारखानों पर लागू थे, अब धीरे-धीरे राज्य सरकारों द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 1 (5) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रतिष्ठानों की निम्नलिखित श्रेणियों पर लागू किया जा रहा है—

(i) बिजली का प्रयोग करने वाले एवं 10–19 व्यक्तियों को नियोजित करने वाले कारखानों पर और 20 या इससे अधिक व्यक्तियों को

नियोजित करने वाले एवं बिजली का प्रयोग न करने वाले, कारखानों पर,

(ii) 20 या इससे अधिक व्यक्तियों को नियोजित करने वाली दुकानों, होटलों, रेस्तराओं, सिनेमाघरों, जिनमें पीव्यू थियेटर भी आते हैं, सड़क मोटर परिवहन और समाचार पत्र प्रतिष्ठानों पर यह अधिनियम अभी प्रतिमाह 1600 रु से अधिक मजदूरी प्राप्त करने वाले कर्मचारियों पर लागू होता है।

व्यवस्था—कर्मचारी राज्य बीमा योजना की *व्यवस्था* कर्मचारी राज्य बीमा निगम नामक एक निगमित (कार्पोरेट) निकाय करता है, जिसके सदस्य कर्मचारियों, नियोजकों, केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों, चिकित्सा व्यवस्था और संसद् के प्रतिनिधि हैं। इस निगम के सदस्यों में गठित की गई एक स्थाई समिति इस योजना की व्यवस्था के लिए कार्यपालिका निकाय के रूप में काम करती है। चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था से सम्बन्धित मामलों के बारे में निगम को सलाह देने के लिए एक चिकित्सा सुविधा परिषद् भी विद्यमान है। महानिदेशक जो निगम का मुख्य कार्यपालक अधिकारी है, निगम का और उसकी स्थाई समिति का पदेन सदस्य भी है।

सीमा-क्षेत्र—कर्मचारी राज्य बीमा योजना को, जिसे पहले फरवरी, 1952 में दिल्ली और कानपुर में लागू किया गया था, धीरे-धीरे अन्य क्षेत्रों/केन्द्रों में कार्यान्वित किया जा रहा है।

अस्पतालों, औषधालयों, चिकित्सा आदि सुविधाओं की व्यवस्था—रिपोर्टाधीन *अवधि के दौरान निगम ने 450 पलंगों वाले चार सुव्यवस्थित अस्पताल,* 20 पलंगों वाले एक परिचर्या गृह तथा 8 औषधालय खोले। निगम ने विद्यमान क रा. बीमा अस्पतालों में 139 अतिरिक्त पलंगों की भी व्यवस्था की। इस योजना के अन्तर्गत बीमा शुदा व्यक्तियों के लिए पूर्ण डॉक्टरी देख-रेख (अस्पताल में भर्ती होकर इलाज कराने की सुविधाओं सहित) की व्यवस्था की जा रही है तथापि बीमाशुदा व्यक्तियों के परिवारों को उपलब्ध व्यवस्था के अनुसार अस्पताल में भर्ती होकर इलाज कराने एवं अन्य सुविधाएँ उत्तरोत्तर प्रदान की जा रही हैं। प्रतिबन्धित चिकित्सा सुविधा इस समय केवल एक केन्द्र में उपलब्ध है, जो उत्तर प्रदेश में पिपरी में है, जहाँ पर *50 पलंगों वाला एक कर्मचारी राज्य बीमा अस्पताल* निर्मित किया जा रहा है। इस अस्पताल के चालू हो जाने पर, जिसकी 1987 के पूर्वार्द्ध में पूरा हो जाने की आशा थी, इस केन्द्र में परिवारों को भी पूर्ण चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध हो जाएँगी तथा ऐसा कोई केन्द्र नहीं होगा, जहाँ पर बीमाशुदा व्यक्तियों के परिवार प्रतिबन्धित चिकित्सा सुविधा के पात्र होंगे। उन केन्द्रों के सम्बन्ध में जहाँ पर व्यापक चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है, राज्य सरकारों से लगातार अनुरोध किया जा रहा है कि वे (i) सरकारी अस्पतालों में भी पलंगों

का आरक्षण कराके अतिरिक्त पलगो की व्यवस्था करके, (ii) अस्पतालो के निर्माण की प्रगति को तेज करके तथा (iii) अस्पतालो के निर्माण के लिए उपयुक्त भूमि का पता लगा करके, विस्तृत चिकित्सा सुविधा के स्वरूप मे सुधार करके उसे पूर्ण चिकित्सा सुविधा मे परिवर्तित करें।

नकद लाभों का भुगतान—निगम द्वारा दिए गए नकद लाभो की राशि इस प्रकार है—

(रुपये लाखों में)

	1984–85	1985–86 (दिसम्बर, 85 तक)
1. बीमारी लाभ	4779·49	3373·78
2. प्रसूति लाभ	286 53	153·03
3. अस्थाई विकलांगता लाभ	1591·77	983·68
4. स्थाई विकलांगता लाभ	934·22	683·58
5 आश्रित लाभ	271·27	219·07
कुल	7783·28	5413 14

(4) कर्मचारी भविष्य निधि और परिवार पेंशन निधि अधिनियम, 1952 और तदाधीन बनाई गई योजनाएँ

प्रयोज्यता—कर्मचारी भविष्य निधि और परिवार पेंशन निधि अधिनियम, 1952 को 1952 मे 6 मुख्य उद्योगो पर शुरू करके दिसम्बर, 1980 के अन्त तक 163 उद्योगों/प्रतिष्ठानो के वर्गों पर लागू कर दिया गया था। प्रारम्भिक उद्योग थे—सीमेंट, सिगरेट, विद्युत, यान्त्रिकी और सामान्य इन्जीनियरिंग वस्तुएँ लोहा और इस्पात, कागज तथा वस्त्र-उद्योग जिनमे 50 या इससे अधिक श्रमिक लगे हो। अधिनियम ने केन्द्रीय सरकार को अधिकार दिया है कि इसे किसी भी कारखाने और अन्य उद्योगो पर लागू किया जा सकता है जहाँ 50 या इससे कम श्रमिक लगे हुए हो। 1960 में सशोधन करके 20 या इससे अधिक काम करने वाले संस्थानों में भी यह अधिनियम लागू कर दिया गया।

कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1952[1] मे कारखानों तथा अन्य प्रतिष्ठानो के कर्मचारियो के लिए भविष्य निधि, परिवार पेंशन और जमा सम्बद्ध बीमा निधि की स्थापना की व्यवस्था की गई है। 1952 के मूल अधिनियम का लक्ष्य कर्मचारियो के लिए अनिवार्य अंशदायी भविष्य निधि स्थापित करना था जिसके लिए कर्मचारी और नियोजक को बराबर अंशदान करना था। तदनुसार, कर्मचारी भविष्य निधि योजना बनाई गई तथा 1–11–1952 से इसे

1 श्रम मन्त्रालय, भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट, 1985-86, पृ. 14.

लागू किया गया। कई वर्षों तक इस योजना के कार्यकरण की पुनरीक्षा करने पर यह पाया गया कि भविष्य निधि नि.सन्देह एक वृद्धावस्था तथा उत्तरजीवी लाभ है, लेकिन कर्मचारियों की समय पूर्व मृत्यु के मामले में उनकी भविष्य निधि सचयन, उनके परिवार को लम्बी अवधि तक के लिए सुरक्षा प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं था। इसके परिणामस्वरूप पहली मार्च, 1971 से कर्मचारी परिवार पेंशन योजना शुरू की गई। मृत कर्मचारियों के खाते मे भविष्य निधि की जमा राशि को सम्बद्ध बीमा योजना प्रारम्भ करने के उद्देश्य से 1976 में इस अधिनियम मे पुनः सशोधन किया गया। तदनुसार, कर्मचारी जमा सम्बद्ध बीमा योजना बनाई गई और इसे 1-8-1976 से लागू किया गया।

सीमा क्षेत्र—यह अधिनियम, जो प्रारम्भ मे 1952 में छः प्रमुख उद्योगों पर लागू किया गया था, अब 20 या इससे अधिक व्यक्ति नियोजित करने वाले 173 उद्योगों तथा प्रतिष्ठानों के वर्गों पर लागू होता है। उक्त तीन योजनाओं के अधीन सीमा क्षेत्र के प्रयोजनार्थ 'वेतन' की सीमा 1,600 रुपये प्रतिमाह से बढ़ाकर 1-9-85 से 2,500 रुपये प्रतिमाह कर दी गई है।

व्यवस्था—सभी तीन योजनाओं, अर्थात् कर्मचारी भविष्य निधि योजना, कर्मचारी परिवार पेंशन योजना और कर्मचारी जमा सम्बद्ध योजना बीमा योजना की व्यवस्था एक केन्द्रीय न्यासी बोर्ड द्वारा की जाती है जो कि एक त्रिपक्षीय निकाय है, जिसमे एक अध्यक्ष, केन्द्रीय सरकार के पाँच प्रतिनिधि, राज्य सरकारो के 15 प्रतिनिधि, कर्मचारियों के सगठन के छः प्रतिनिधि तथा नियोजकों के सगठन के छः प्रतिनिधि होते हैं। केन्द्रीय भविष्य निधि आयुक्त, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के मुख्य आयुक्त, कर्मचारी भविष्य निधि सगठन के मुख्य कार्यकारी अधिकारी है तथा बोर्ड के सचिव के रूप मे काम करते हैं। केन्द्रीय कार्यालयों के अलावा, इस समय विभिन्न राज्यो मे बोर्ड के 16 क्षेत्रीय कार्यालय तथा 37 उप-क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो इस अधिनियम के उपबन्धों तथा इसके अन्तर्गत बनाई गई तीन योजनाओं को कार्यान्वित करते हैं।

प्रशासन की लागत—कर्मचारी भविष्य निधि योजना प्रशासन की लागत का वहन इसके अन्तर्गत आने वाले प्रतिष्ठानों के नियोजकों से प्रशासन निरीक्षण प्रभारों की उगाही मे से किया जाता है। परिवार पेंशन योजना के प्रशासन की लागत पूर्णत. केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन की जाती है, जबकि कर्मचारी जमा सम्बद्ध बीमा योजना के मामले मे प्रशासन की लागत अंशतः इसके सीमा क्षेत्र मे आने वाले प्रतिष्ठानो के नियोजको द्वारा तथा अंशतः केन्द्रीय सरकार द्वारा वहन की जाती है।

ब्याज की दर—सदस्यो की भविष्य निधि संचयनों (छूट न प्राप्त) मे वर्ष 1985-86 के लिए जमा किए जाने वाले ब्याज की दर 10.15 प्रतिशत प्रति वर्ष है जबकि 1984-85 मे यह दर 9.00 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी।

निवेश और बैंकिंग व्यवस्था—भविष्य निधि अंशदान का निवेश भारतीय रिजर्व बैंक, बम्बई के माध्यम से, जिसके पास प्रतिभूतियाँ सुरक्षित है। केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित निवेश के पैटर्न के अनुसार किया जाता है। अन्य बैंकिंग व्यवस्था भारतीय स्टेट बैंक को सौंपी गई है। 30-9-1985 को कुल निवेश की राशि 12,553·03 करोड़ रुपये थी जिसमें से 5,513 82 करोड़ रुपये छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानो के सम्बन्ध मे तथा 7,039·21 करोड़ रुपये छूट प्राप्त प्रतिष्ठानो के सम्बन्ध मे थे।

छूट प्राप्त प्रतिष्ठान—अधिनियम की धारा 17 और योजना के पैरा 27 और 27-क के अधीन उन प्रतिष्ठानों और सदस्यों को कर्मचारी भविष्य निधि योजना 1952 के उपबन्धो मे छूट दी जा रही है, जिनके निजी भविष्य निधि, पेंशन या उपदान नियम सांविधिक योजना के नियमो से कम लाभदायक नहीं हैं। छूट प्राप्त प्रतिष्ठानो की संख्या सितम्बर, 1984 में 2,846 से घटकर 1985 मे 2,833 रह गई।

आरक्षित और जब्त लेखा—ऐसे छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानो के मामले मे जहाँ नियोजको के अंशदान पदमुक्त सदस्यो को पूर्ण रूप से नहीं दिए जाते हैं वहाँ कतिपय आकस्मिकताओं मे भुगतान न की गई राशि और ब्याज आरक्षित तथा जब्त लेखो में जमा की जाती है। इस निधि मे सचयित राशि विशेष आरक्षित निधि तथा मृत्यु सहायता निधि के अन्तर्गत आने वाले उत्तरदायित्वो को निभाने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

विशेष आरक्षित निधि—विशेष आरक्षित निधि जो सितम्बर, 1960 मे सृजित की गई चालू है। इस निधि की राशि का उपयोग ऐसे पदमुक्त सदस्यो (छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानो मे) या उनके नामित व्यक्तियो/वारिसो को भविष्य निधि सचयन के भुगतान के लिए किया जाता है जहाँ नियोजक सदस्यो की मजदूरी में से काटी गई भविष्य निधि का पूर्ण या आंशिक भुगतान नहीं करते। आरक्षित और जब्ती लेखा से इस निधि मे हस्तान्तरित 235 लाख रुपये की कुल राशि और छूट न प्राप्त प्रतिष्ठानो के नियोजको से बकाया राशि के रूप मे वसूल किए गए 40·57 लाख रुपये की राशि मे से 30 सितम्बर, 1985 तक 190 44 लाख रुपये का भुगतान किया जा चुका था और 85·13 लाख रुपये की राशि देय थी।

मृत्यु सहायता निधि—ऐसे मृत सदस्यो के वारिसों को 1250 रुपए तक वित्तीय सहायता उपलब्ध है (जिनका वेतन मृत्यु के समय 1,000 रु से प्रति माह से अधिक नहीं है) और जिनके भविष्य निधि मे जमा राशि 1,250 रुपए से कम है ताकि कुल राशि 1,250 रु. तक हो जाए।

भविष्य निधि सम्बन्धी देय राशियाँ तथा उनकी वसूली—छूट न प्राप्त दोषी प्रतिष्ठानो से प्राप्त करने वाले भविष्य निधि सम्बन्धी बकाया की कुल राशि

30 सितम्बर, 1985 को 5,399 30 लाख रुपये थी जबकि 30–9–84 को यह राशि 4,741·31 लाख रुपये थी।

कर्मचारी परिवार पेन्शन योजना, 1971—इस योजना मे परिवार पेन्शन तथा जीवन बीमा लाभों की व्यवस्था की गई है। इसे पहली मार्च, 1971 से लागू किया गया।

सीमा क्षेत्र—यह योजना उन सभी कर्मचारियो पर अनिवार्य रूप से लागू होती है जो पहली मार्च, 1971 को या उसके पश्चात् भविष्य निधि के सदस्य बन गए हैं परन्तु उन कर्मचारियों के लिए यह ऐच्छिक है जो उक्त तारीख से पहले भविष्य निधि के सदस्य बने थे। 31–3–85 को अशदाताओं की कुल संख्या 83·94 लाख थी।

योजना की वित्तीय व्यवस्था—*कर्मचारियो तथा नियोजकों के भविष्य* निधि अशदान के भाग मे से कर्मचारियों के वेतन के $1\frac{1}{6}$ प्रतिशत के बराबर राशि को परिवार पेन्शन निधि मे जमा कराके इस योजना के लिए वित्तीय व्यवस्था की जाती है। केन्द्रीय सरकार भी निधि के सदस्यो के वेतन का $1\frac{1}{6}$ प्रतिशत परिवार पेन्शन निधि मे अंशदान देती है।

निधि की धनराशि का निवेश—परिवार पेन्शन निधि की सारी धनराशि लोक लेखा मे जमा की जाती है और उस पर 1–4–81 से साढ़े सात प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज मिलता है। इससे पहले ब्याज की दर साढे पाँच प्रतिशत थी।

इस योजना के अन्तर्गत उपलब्ध लाभ नीचे दिए गए हैं—

(i) परिवार पेन्शन—यदि किसी सदस्य की गणनीय सेवा के दौरान 60 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले मृत्यु हो जाती है तो परिवार पेन्शन का भुगतान नीचे दी गई तालिका मे निर्दिष्ट दरो के अनुसार किया जाएगा बशर्ते कि सदस्य ने कम से कम एक वर्ष की अवधि के लिए परिवार पेन्शन निधि मे अशदान किया हो। पेन्शन अब सदस्य की मृत्यु की तारीख के अगले दिन से देय है—

सदस्य का प्रति माह वेतन जिस पर परिवार पेन्शन निधि का अशदान देय है	परिवार पेन्शन की मासिक दर
1. 400 रुपये से कम	वेतन की 30 प्रतिशत और न्यूनतम 60 रुपये तथा अधिकतम 120 रुपये होगी।
2. 400 रुपये और इससे अधिक	वेतन की 20 प्रतिशत और न्यूनतम 120 रु. और अधिकतम 320 रुपये होगी।

उपर्युक्त दरो पर पेन्शन के अतिरिक्त वर्तमान पेन्शन प्राप्तकर्ताओ को 60 रु से 90 रु. के बीच प्रतिमाह अनुपूरक पेन्शन स्वीकृत की गई है। इस

अतिरिक्त पेन्शन से 1–4–85 से परिवार पेन्शन की न्यूनतम और अधिकतम राशि क्रमश: 60 रु. से 120 रु और 320 रु. से 410 रु प्रतिमाह कर दी गई है।

(ii) जीवन बीमा लाभ—यदि सदस्य की मृत्यु गणनीय सेवा के दौरान होती है और उस समय तक उसने एक वर्ष अन्यून अवधि के लिए परिवार पेन्शन निधि में अंशदान दिया हो, तो उसके परिवार को जीवन बीमा लाभ के रूप में 2,000 रु की एक मुश्त धनराशि देय होगी।

(iii) सेवानिवृत्ति व निकासी लाभ—सदस्यों की 60 वर्ष की आयु प्राप्त होने पर या मृत्यु के अलावा किसी अन्य कारणों से 60 वर्ष की आयु प्राप्त होने से पहले परिवार पेन्शन निधि से सदस्यता समाप्त होने पर सेवानिवृत्ति व निकासी लाभ देय हो जाता है। यह लाभ तभी देय होता है यदि सदस्य ने परिवार पेन्शन निधि में कम से कम एक वर्ष के लिए अंशदान किया हो। सेवानिवृत्ति व निकासी लाभ के लिए निर्धारित दर दिए गए अंशदानों के पूरे वर्षों की संख्या के अनुसार भिन्न-भिन्न है लेकिन न्यूनतम दर 110 रुपये (एक वर्ष के लिए दिए गए अंशदान सहित) तथा अधिकतम दर 9,000 रुपये (40 वर्ष के लिए दिए गए अंशदानों सहित) होगी।

कर्मचारी जमा सम्बद्ध बीमा योजना, 1976—यह योजना उन सभी कारखानों/प्रतिष्ठानों पर लागू है जिन पर कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1952 लागू होता है। यह पहली अगस्त, 1976 से लागू की गई थी।

ऐसे सभी कर्मचारी जो छूट प्राप्त तथा छूट न प्राप्त दोनों प्रकार के प्रतिष्ठानों में भविष्य निधि के सदस्य हैं, इस योजना के अन्तर्गत आते हैं।

बीमा निधि में अंशदान—नियोजकों को कुल परिलब्धियों अर्थात् मूल मजदूरी, महँगाई भत्ता तथा किसी खाद्यान्न रियायत का नकद मूल्य और प्रतिधारण भत्ता, यदि कोई हो, के 0.5 प्रतिशत की दर से बीमा निधि में अंशदान देना अपेक्षित है। जैसा कि नियोजकों के मामले में है, केन्द्रीय सरकार भी कुल परिलब्धियों के 0·25 प्रतिशत की दर से बीमा निधि में अंशदान देती है। श्रमिकों के लिए कोई अंशदान देना अपेक्षित नहीं है।

बीमा निधि का निवेश—बीमा निधि से सम्बन्धित सारा धन केन्द्रीय सरकार के लोक लेखा में जमा रखा जाता है और इस पर पहली अप्रेल, 1982 से प्रतिवर्ष 7½ प्रतिशत की दर से ब्याज दिया जाता है। इससे पहले प्राप्त अंशदानों का निवेश सरकारी प्रतिभूतियों में किया जाता था।

लाभ—किसी कर्मचारी की, जो कर्मचारी भविष्य निधि या छूट प्राप्त भविष्य निधि का सदस्य है, सेवा में मृत्यु हो जाने पर भविष्य निधि में जमा राशि को प्राप्त करने के हकदार व्यक्तियों को मृत व्यक्ति के भविष्य निधि लेखे में पिछले तीन वर्षों के दौरान या निधि के सदस्य होने की अवधि के दौरान, जो भी कम हो, औसत शेष के बराबर अतिरिक्त राशि अदा की जाएगी बशर्ते कि यह औसत

शेष राशि उक्त अवधि के दौरान किसी भी समय 1,000 रुपये से कम नही थी। इस योजना के अन्तर्गत देय अधिकतम लाभ की राशि 10,000 रुपये है।

(5) कर्मचारी जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा योजना, 1976

प्रयोज्यता—कर्मचारी जमा सम्बद्ध (लिंक्ड) बीमा योजना, 1976 ऐसे सभी कारखानों/प्रतिष्ठानो पर लागू होती है जिन पर कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1952 लागू होता है। यह योजना 1 अगस्त, 1976 से लागू हुई।

योजना का सीमा क्षेत्र—ऐसे सभी कर्मचारी, जो छूट प्राप्त तथा छूट न प्राप्त दोनों प्रकार के प्रतिष्ठानो मे भविष्य निधि के सदस्य है, इस योजना के अन्तर्गत आते हैं।

बीमा निधि में अंशदान—कर्मचारी सदस्यों को बीमा निधि मे अंशदान नही देना पडता। केवल नियोजकों को कुल परिलब्धियों (अर्थात् मूल मजदूरी, महँगाई भत्ता तथा किसी खाद्यान्न रियायत का नकद मूल्य और प्रतिधारण भत्ता, यदि कोई हो) के 0 5% की दर से बीमा निधि मे अंशदान देना अपेक्षित है। केन्द्रीय सरकार भी कुल परिलब्धियो के 0·25 प्रतिशत की दर से बीमा निधि मे अंशदान देती है।

प्रशासनिक व्यय—इस योजना के अन्तर्गत आने वाले सभी प्रतिष्ठानो के नियोजको को प्रशासनिक व्यय की पूर्ति के लिए कर्मचारी सदस्यो की कुल परिलब्धियों के 0 1 प्रतिशत की दर से बीमा निधि मे प्रशासनिक व्यय का भुगतान करना अपेक्षित है। केन्द्रीय सरकार भी कर्मचारी सदस्यो की कुल परिलब्धियो के 0·05 प्रतिशत की दर से धनराशि का बीमा निधि मे भुगतान करके बीमा योजना के प्रशासन के सम्बन्ध मे व्यय वहन करती है।

योजना के अन्तर्गत नामांकन—कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952 के अन्तर्गत या छूट प्राप्त भविष्य निधियो मे किसी सदस्य द्वारा किया गया नामाङ्कन इस योजना के लिए भी माना जाएगा।

देय लाभ—किसी कर्मचारी को, जो कर्मचारी भविष्य निधि या छूट प्राप्त भविष्य निधि का सदस्य है, सेवा मे मृत्यु हो जाने पर भविष्य निधि मे जमा राशि को प्राप्त करने के हकदार व्यक्तियो को मृत व्यक्ति के भविष्य निधि लेखे मे पिछले तीन वर्षों के दौरान औसत शेष राशि के बराबर अतिरिक्त राशि अदा की जाएगी, बशर्ते कि यह औसत शेष राशि उक्त अवधि के दौरान किसी भी समय 1,000 रुपये से कम नही थी। इस योजना के अन्तर्गत देय अधिकतम लाभ की राशि 10,000 रु. है।

योजना से छूट—ऐसे कारखानों/प्रतिष्ठानो को, जिनमे इस योजना के अन्तर्गत दिए जाने वाले लाभो मे अधिक लाभ देने वाली कोई बीमा योजना है, कुछ शर्तों के साथ छूट दी जा सकती है यदि अधिकांश कर्मचारी ऐसी छूट के हक

मे हो। व्यक्तिगत या कर्मचारियो के वर्ग को सामूहिक छूट भी कुछ शर्तों के साथ दी जा सकती है।

कर्मचारी जमा-सम्बद्ध बीमा देय राशि—30 सितम्बर, 1980 को कर्मचारी जमा-सम्बद्ध बीमा देय राशि 86 73 लाख रुपया थी।

निवेश और बैंकिंग व्यवस्था—बीमा निधि अशदानो का निवेश भारतीय रिजर्व बैंक बम्बई के माध्यम से, जिसके पास प्रतिभूतियाँ सुरक्षित है, केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित निवेश के पैटर्न के अनुसार किया जाता है।

(6) उपदान भुगतान अधिनियम, 1972[1]
(The Payment of Gratuity Bill, 1972)

जिन उद्योगो मे प्रोविडेण्ट फण्ड अथवा पेन्शन योजनाएँ नही हैं, उनमे उपदान या आनुतोषिक (ग्रेच्युटी) की माँग की जाने लगी और उदार नियोजितो ने श्रम सघो से समझौता करके इस प्रकार की योजना चालू करने पर सहमति प्रकट की। सर्वप्रथम 1971 मे केरल और पश्चिम बगाल की राज्य-सरकारो ने उपदान अधिनियम पास किए जिनके अन्तर्गत कारखानो, बागानो, दुकानो और अन्य सस्थानो को शामिल किया गया। शीघ्र ही एक केन्द्रीय अधिनियम की आवश्यकता महसूस की गई और दिसम्बर, 1971 मे उपदान भुगतान विधेयक लोकसभा मे पेश कर दिया गया जो पारित होकर 1972 मे अधिनियम बन गया।

सीमा क्षेत्र—यह अधिनियम प्रत्येक कारखाना, खान, तेल क्षेत्र, बागान, पत्तन, रेलवे कम्पनी तथा दुकान या प्रतिष्ठान जिसमे 10 या उससे अधिक व्यक्ति नियोजित है, पर लागू होता है। इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार को इस अधिनियम के उपबन्धो को किसी अन्य प्रतिष्ठान या प्रतिष्ठानो के वर्ग, जिसमे 10 या उससे अधिक व्यक्ति नियोजित हैं, पर लागू करने की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। इन शक्तियो का प्रयोग करते हुए केन्द्रीय सरकार ने इस अधिनियम के उपबन्धो को अब तक मोटर परिवहन उपक्रमो, अन्तर्देशी जल परिवहन प्रतिष्ठानों, स्थानीय निकायों, क्लबो, वाणिज्य और उद्योग चैम्बर वाणिज्य और उद्योग चैम्बर के एसोसिएशन/ फैडरेशन, सालीसीटरो के कार्यालयो कम्पनियो, सोसाइटियो और एसोसिएशनो या मण्डल जो किसी अखाड़े मे सरकस का काम करते हैं या ऐसे तमाशे के लिए दर्शको या जनता से प्रवेश के लिए रकम अदा करनी पड़ती है, पर लागू किया है। इस समय यह अधिनियम प्रति माह 1,600 रु से अनधिक वेतन पाने वाले व्यक्तियो पर लागू है।

परिस्थितियाँ जिनके अन्तर्गत उपदान देय है—इस अधिनियम मे वार्धक्य की आयु प्राप्त होने, सेवानिवृत्ति या त्यागपत्र देने या मृत्यु या अपंगता के कारण सेवा समाप्त होने पर उपदान के भुगतान की व्यवस्था है बशर्ते कि कर्मचारी ने कम से कम पाँच वर्ष की सतत् सेवा पूरी कर ली हो। मृत्यु या अपंगता के मामलो मे पाँच वर्षों की सतत् सेवा की शर्त लागू नही होती है।

1 श्रम मन्त्रालय रिपोर्ट 1986-87, पृ 18.

उपदान की राशि—इस अधिनियम मे सेवा के पूरे किए गए प्रत्येक वर्ष नियमित श्रमिको को 15 दिनों की मजदूरी की दर से और मौसमी श्रमिको को 7 दिन की मजदूरी की दर से उपदान के भुगतान की व्यवस्था है। उपदान भुगतान की अधिकतम सीमा 20 माह की मजदूरी है।

अधिनियम का कार्यान्वयन—केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबन्धों का केन्द्रीय नियन्त्रणाधीन प्रतिष्ठानो, एक से अधिक राज्यो में शाखाओं वाले प्रतिष्ठानों प्रमुख पत्तनो, खानो, तेल क्षेत्रो या रेलवे कम्पनी मे कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी है। शेष सभी मामलो में कार्यान्वयन का दायित्व सम्बन्धित राज्य सरकारों का है। जहां तक केन्द्रीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले प्रतिष्ठानो का सम्बन्ध है, इस अधिनियम के उपबन्धो के कार्यान्वयन का दायित्व केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्धतन्त्र का है।

नवम्बर, 1985 मे हुए भारतीय श्रम सम्मेलन में इस सुझाव पर विचार किया गया कि उपदान सदाय अधिनियम मे उपयुक्त व्यवस्था की जाए ताकि अनिवार्य बीमा नियोक्तो का दायित्व हो। उपदान की अदायगी के लिए पृथक् ट्रस्ट निधि गठित की जाए और इस सुझाव को सामान्यत स्वीकार किया गया। तदनुसार सरकार उपदान संदाय अधिनियम के अधीन उपदान बीमे की व्यवस्था करने के प्रश्न पर विचार कर रही है।

सामाजिक सुरक्षा की एकीकृत योजना
(Integrated Scheme of Social Security)

औद्योगिक श्रमिको को प्रदान की जाने वाली विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओ मे एकरूपता लाने तथा प्रशासनिक व्यय को कम करने के लिए एक एकीकृत योजना पर शुरू से ही विचार किया गया है। इसी उद्देश्य हेतु श्री वी के. आर मैनन की अध्यक्षता मे एक अध्ययन दल नियुक्त किया गया। इस अध्ययन दल ने निम्नलिखित सिफारिशें की थी—

1. कर्मचारी बीमा व प्रोविडेण्ट फण्ड अधिनियमो का प्रशासन एक होना चाहिए।

2. बीमा अधिनियम मे मालिको के हिस्से को $4\frac{3}{4}\%$ से बढाया जाए तथा राज्य सरकारो के चिकित्सा व्यय को घटाकर $\frac{1}{8}$ कर दिया जाए।

3. प्रोविडेण्ट फण्ड के तहत मालिको और श्रमिको के अशदान को बढाकर $8\frac{1}{3}\%$ कर दिया जाए। साथ ही 20 या इससे अधिक कार्यरत वाले सस्थानो पर भी यह अधिनियम लागू किया जाए।

4. प्रोविडेण्ट फण्ड को वृद्धावस्था पेंशन तथा ग्रेच्युटी मे बदल दिया जाए।

कर्मचारी राज्य बीमा रिव्यू समिति ने भी सिफारिश की कि प्रशासनिक व्यय को कम करने हेतु दोनो अधिनियमो का प्रशासन एक कर देना चाहिए। अल्पकालीन लाभ कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत दिए जाने चाहिए तथा दीर्घकालीन लाभ कर्मचारी प्रोविडेण्ट फण्ड अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत दिए जाने चाहिए।

अभी तक सामाजिक बीमा योजना की प्रगति काफी नहीं हुई है। बीमारी, स्वास्थ्य, प्रसूति और क्षतिपूर्ति बीमा के क्षेत्र में कुछ अच्छी प्रगति हुई है।

जहाँ तक सामाजिक सुरक्षा की सामान्य योजना का प्रश्न है, वर्तमान परिस्थितियों में यह हमारे देश में सम्भव नहीं है। अतः सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के अन्तर्गत सभी औद्योगिक श्रमिकों को लाना होगा और बाद में धीरे-धीरे अन्य श्रमिकों को भी इसके अन्तर्गत लाया जा सकता है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग, 1969 (National Commission on Labour) का सुझाव था कि एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार की जानी चाहिए जिसमें सभी धन एक ही कोष में एकत्रित किया जाए और इसी कोष में से जरूरतमन्द व्यक्तियों को भुगतान किया जा सके। अंशदानों में वृद्धि करके एक अलग से कोष बनाया जाए जो कि सरकार के पास रहेगा। इस कोष में से श्रमिकों को अन्य आकस्मिकताओं के शिकार होने पर सहायता मिल सकेगी। गरीबी, बेरोजगारी और बीमारी को समाप्त करने के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना अपनाना आवश्यक है। अतः सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता को मिलाकर एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार करना आवश्यक है।

विभिन्न सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की प्रगति और क्रियान्वयन से भी हमें अब पता चला है कि हमारे देश में औद्योगिक श्रमिकों हेतु एक व्यापक सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार की जाए। लेकिन इस प्रकार की व्यापक योजना तैयार करने व लागू करने में कई कठिनाइयाँ आएँगी, जैसे चिकित्सा सुविधाओं की कमी वित्तीय और प्रशासनिक कठिनाइयाँ, कृषि श्रमिकों और जनसंख्या के अन्य वर्गों को शामिल करने में कठिनाइयाँ आदि। अतः वर्तमान परिस्थितियों में मौजूदा अधिनियमों के क्षेत्रों को व्यापक करना होगा और उनका क्रियान्वयन भी प्रभावपूर्ण करना होगा।



9 भारत में वर्तमान कारखाना अधिनियम

(Salient Features of Present Factory Legislation in India)

सबसे पहले सूती वस्त्र मिल बम्बई के स्थानीय वस्त्र व्यापारी श्री सी. एन. डावर ने सन् 1851 मे स्थापित की। इस उद्योग का तीव्र विकास हुआ और सन् 1872-73 में 18 सूती वस्त्र मिलें हो गई जिनमे 10 हजार श्रमिक कार्य करते थे। इन मिलों में बच्चों और महिलाओं के कार्य की दशाएँ अमानवीय थी। मेजर मूरे (Major Moore) ने बम्बई सूती वस्त्र विभाग के प्रशासन (Administration of Bombay Cotton Department) पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इस रिपोर्ट के अनुसार इन मिलो मे कार्य के लम्बे घण्टे, महिलाओ और छोटी उम्र के बच्चो की कार्य दशाओं का विवरण देखने को मिलता है।[1]

आधुनिक उद्योगो के विकास के बाद भारतीय नियोजक बिना किसी कारखाना अधिनियम की बाधा के श्रमिको से किसी भी प्रकार से कार्य लेने मे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे।[2]

सन् 1881 के पूर्व श्रम मामलों में सरकारी नीति एक स्वतन्त्र नीति थी। अधिकांश कारखानो मे कार्य के घण्टे सूर्योदय से सूर्यास्त तक थे। महिला और बच्चे श्रमिको को अधिक रोजगार दिया जाता था। श्रमिको को न तो किसी अवधि के अनुसार और न ही साप्ताहिक छुट्टियाँ दी जाती थी।[3]

हमारे देश में कारखाना श्रमिकों की दशाओं की ओर ध्यान हमारे उदारवादी नियोजको, राजनीतिज्ञो का नही गया बल्कि लकाशायर और मेनचेस्टर सूती वस्त्र उद्योगो के मालिको ने यह महसूस किया कि भारत मे सूती वस्त्र उद्योग तेजी

1 *Vaid, K N.* : State & Labour in India, p. 34.
2 *Saxena, R. C.* : Labour Problems and Social Welfare, p. 674.
3 *Giri, V. V.* : Labour Problems in Indian Industry, p. 127.

से विकास की ओर बढ़ रहा है। इसका कारण यह था कि यहाँ पर कार्य के घण्टे सूर्योदय से सूर्यास्त तक के थे तथा श्रमिको को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी, साथ ही यहां पर किसी प्रकार का कारखाना कानून नही था। इस कारण श्रम लागत विदेशी श्रम लागत की तुलना मे बहुत कम थी। वहाँ के मिल मालिको ने भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट से इसके विषय मे निवेदन किया। सन् 1875 मे इसकी जाँच हेतु एक आयोग का गठन किया गया। आयोग ने बताया कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक श्रमिको से कार्य लिया जाता है। साप्ताहिक छुट्टी का अभाव तथा छोटे बच्चों से कार्य लेना (8 वर्ष की आयु तथा कभी-कभी इससे भी कम आयु वाले बच्चो से कार्य) आदि के विषय मे जानकारी दी गई। आयोग ने एक साधारण अधिनियम जिसमे कार्य के घण्टे, साप्ताहिक छुट्टी, बच्चो की आयु निश्चित करना आदि नियमित किए जाएँ, पास करने की सिफारिश की। इस जानकारी के पश्चात् श्रमिको मे भी जागृति उत्पन्न हुई और कई जगह श्रमिको ने विरोध प्रकट किया, हड़तालें हुई। परिणामस्वरूप कारखाना अधिनियम, 1881 पास किया गया। इसके बाद क्रमश 1891, 1911, 1922, 1934 एवं 1946 मे कारखाना अधिनियम बनाए गए। फिर पहले के सभी कारखाना अधिनियम समाप्त करके 1948 मे कारखाना श्रम में सम्बन्धित एक व्यापक कानून पास किया गया।

कारखाना अधिनियम, 1881
(Factory Act of 1881)

यह अधिनियम एक साधारण अधिनियम था जिसके अन्तर्गत बच्चो की सुरक्षा तथा स्वास्थ्य एवं सुरक्षा सम्बन्धी उपायों का प्रावधान किया गया था। यह अधिनियम उन सभी स्थानो पर लागू किया गया जिनमे 100 या इससे अधिक श्रमिक शक्ति से कार्य करते थे और जो चार माह से अधिक चलते थे।

अधिनियम मे व्यवस्था की गई कि 7 वर्ष से कम आयु के बच्चे को कार्य पर नहीं लगाया जा सकेगा तथा 7 से 12 वर्ष की आयु वाले बच्चों से 9 घण्टे प्रतिदिन से अधिक कार्य नहीं लिया जा सकेगा। प्रतिदिन बीच मे एक घण्टे का रेस्ट दिया जाएगा तथा साप्ताहिक छुट्टी भी दी जाएगी।

खतरनाक मशीनों को ढकने तथा कारखाना निरीक्षको की नियुक्ति इस अधिनियम के क्रियान्वयन हेतु सिफारिश की गई। स्थानीय सरकारो को इस अधिनियम के अन्तर्गत नियम बनाने के अधिकार प्रदान किए गए और जिला अधिकारियो को इसके प्रशासन के लिए अधिकार दिए गए।

इस अधिनियम के अन्तर्गत पुरुष महिला श्रमिको के संरक्षण हेतु कोई प्रावधान नही था। यही कारण था कि श्रमिको के हितैषी तथा लकाशायर व मैनचेस्टर मिलों के मालिक इस अधिनियम से असन्तुष्ट नही हुए। बम्बई सरकार ने सन् 1884 में कारखाना आयोग (Factory Commission) नियुक्त किया। इस आयोग ने बाल व महिला श्रमिको को संरक्षण प्रदान करने हेतु अधिनियम पास करने की सिफारिश

को, लेकिन इसे क्रियान्वित नही किया जा सका। सन् 1890 मे बर्लिन मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन मे बाल तथा महिला श्रमिको की दशा सुधारने की सिफारिश की गई। ब्रिटेन ने इन सिफारिशों को भारतीय कारखानो पर लागू करने के लिए कहा परिणामस्वरूप कारखाना अधिनियम, 1891 पास किया गया।

कारखाना अधिनियम, 1891
(Factory Act of 1891)

यह अधिनियम उन कारखानों पर, जिनमें 50 या इससे अधिक श्रधिक जो शक्ति से कार्य करते हों, लागू किया गया। स्थानीय सरकारें यदि चाहे तो 20 या उसके अधिक कार्य करने वाले श्रमिको पर भी अधिनियम लागू किया जा सकता था। अधिनियम मे व्यवस्था की गई कि 9 वर्ष से कम आयु वाले श्रमिकों को रोजगार न दिया जाए तथा 9 से 14 वर्ष की आयु वाले बाल श्रमिको से 7 घण्टे से अधिक कार्य नही लिया जाए। बाल और महिला श्रमिको को रात को, 8 बजे साय से 5 बजे प्रात: तक कार्य न कराने का प्रावधान रखा गया। महिला श्रमिकों हेतु प्रति दिन 11 घण्टे तथा 1 5 घण्टे का बीच मे रेस्ट का प्रावधान रखा गया। सभी श्रमिको हेतु साप्ताहिक अवकाश का प्रावधान भी था। इस अधिनियम में निरीक्षण, सफाई और उजालदानो की व्यवस्थाओ हेतु भी नियम बनाए गए।

इस अधिनियम मे प्रौढ श्रमिको के कार्य के घण्टों मे कमी नही की गई। इसका विरोध किया गया। परिणामस्वरूप सन् 1906 मे सूती वस्त्र समिति (Textile Committee, 1906) और सन् 1907 मे कारखाना आयोग की नियुक्ति की गई। इनकी सिफारिशों के आधार पर सन् 1911 मे कारखाना अधिनियम पास किया गया।

कारखाना अधिनियम, 1911
(Factory Act of 1911)

सन् 1905 मे बम्बई की मिलो में बिजली आ जाने से, रात को अधिक कार्य के घण्टे काम लिया जाने लगा। कलकत्ता की जूट मिलों मे भी अधिक कार्य के घण्टे हो गए। इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रथम बार वयस्क पुरुष श्रमिको के लिए कार्य के घण्टे प्रतिदिन 12 रखे गए। बीच मे एक घण्टे का रेस्ट भी दिया जाने लगा। किसी भी कारखाने मे कोई भी श्रमिक सायकाल 7 बजे से प्रात. 5 बजे के बीच कार्य नही कर सकता था। बाल श्रमिको के प्रतिदिन के कार्य के घण्टे घटाकर 6 कर दिए तथा रात को कार्य पर लगाना मना कर दिया। मौसमी कारखानो पर भी इस अधिनियम को लागू कर दिया गया। बाल श्रमिको हेतु प्रमाण-पत्र आवश्यक कर दिया गया। स्वास्थ्य और सुरक्षा तथा निरीक्षण सम्बन्धी प्रावधानो को ढग से लागू करने की सिफारिश की गई।

कारखाना अधिनियम, 1922
(Factory Act of 1922)

सन् 1914 मे प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। तीव्र औद्योगिक विकास से श्रमिकों

मे अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता उत्पन्न हुई। लाभ मे वृद्धि हुई, लेकिन बढती हुई कीमतो के कारण श्रमिको की मजदूरी कम बढी। 1919 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O.) की स्थापना होने से भी कारखाना अधिनियम मे परिवर्तन लाना आवश्यक हो गया था। यह अधिनियम उन सभी कारखानो पर लागू कर दिया गया जहां पर शक्ति से 20 श्रमिको से कम काम नही करते थे। राज्य सरकारें 10 या 10 से अधिक श्रमिको वाले संस्थानो पर भी इस अधिनियम को लागू कर सकती थी। वयस्क श्रमिको के लिए प्रतिदिन और प्रति सप्ताह क्रमश: 11 और 60 घण्टे निश्चित किए गए। बाल श्रमिको के कार्य के घण्टे सभी प्रकार के कारखानो मे 6 घण्टे प्रतिदिन नियत किए गए। बाल श्रमिको हेतु न्यूनतम आयु और अधिकतम आयु क्रमश: 12 वर्ष और 15 वर्ष रखी गई।

यह अधिनियम 1923 और 1926 मे संशोधित किया गया। 1928 मे शाही श्रम आयोग (*Royal Commission on Labour, 1928*) की नियुक्ति की गई जिसने अपनी रिपोर्ट 1931 में पेश की। रिपोर्ट के आधार पर 1934 का कारखाना अधिनियम पास किया गया।

कारखाना अधिनियम, 1934
(Factory Act of 1934)

इस अधिनियम के अन्तर्गत कारखानों को मौसमी और साल भर चलने वाले कारखानो को दो वर्गों मे विभाजित किया गया। मौसमी कारखाने वे कारखाने माने गए जो कि वर्ष मे 180 दिन कार्य करते थे। वर्ष भर चलने वाले कारखानो मे वे कारखाने रखे गए जो साल मे 6 माह से अधिक चलते हो।

वर्ष भर चलने वाले कारखानो में अधिकतम कार्य के घण्टे वयस्क श्रमिको हेतु 10 प्रतिदिन और 54 प्रति सप्ताह रखे गए। मौसमी कारखानो (Seasonal Factories) मे ये क्रमश: 11 प्रतिदिन और 60 प्रति सप्ताह रखे गए। बाल श्रमिकों के कार्य के घण्टे घटाकर 5 कर दिए गए। कार्य का फैलाव (Spread over) प्रथम बार इस अधिनियम मे रखा गया। इसमे वयस्क श्रमिको और बाल श्रमिको हेतु यह कार्य फैलाव क्रमश: *13 और 6½ घण्टे प्रतिदिन रखा गया।* अतिरिक्त कार्य करने पर सामान्य दर का 1½ गुना का भुगतान श्रमिको को किया जाएगा। इसमे प्रथम बार किशोर (Adolescents) का नया वर्ग रखा गया। 15 वर्ष से 17 वर्ष की आयु वाले इसमे रखे गए। मशीनो को ढकने, सुरक्षा उपाय, कल्याणकारी कार्य तथा कृत्रिम नमी बनाए रखने आदि के सम्बन्ध मे भी अधिनियम में प्रावधान रखे। इस अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व प्रान्तीय सरकारो पर रखा गया। इसके लिए मुख्य कारखाना निरीक्षक और कारखाना निरीक्षको की नियुक्तियाँ की गईं।

संशोधित कारखाना अधिनियम, 1946
(Amended Factory Act of 1946)

1934 का कारखाना अधिनियम 1936, 1940, 1941, *1944, 1946*

तथा 1947 मे संशोधित किया गया और अन्त में इसका स्थान वर्तमान कारखाना अधिनियम, 1948 ने लिया ।

सातवें श्रम सम्मेलन, 1945 ने 48 घण्टे प्रति सप्ताह के सिद्धान्त को स्वीकार किया । इस संशोधित अधिनियम के अनुसार वर्ष भर चलने वाले कारखानों मे कार्य के घण्टे 9 प्रतिदिन तथा 48 प्रति सप्ताह रखे गए तथा मौसमी कारखानों मे घटाकर 10 प्रतिदिन और 54 प्रति सप्ताह रखे गए। कार्य का फैलाव (Spread over) वर्ष भर वाले कारखानों और मौसमी कारखानो मे घटाकर क्रमश. 10 1/2 और 11 घण्टे कर दिए गए । अतिरिक्त कार्य हेतु साधारण दर का दुगुना भुगतान करने का प्रावधान रखा गया । 1947 के संशोधन द्वारा जिन कारखानो मे 250 श्रमिको से अधिक कार्य करते है, वहाँ केन्टीन का प्रावधान रखा गया ।

कारखाना अधिनियम, 1948

(Factories Act of 1948)

1934 के अधिनियम मे कई दोष थे । सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण सम्बन्धी प्रावधान समुचित तथा सन्तोषप्रद नही थे । इस अधिनियम के अन्तर्गत छोटे सस्थानो तथा कारखानो मे कार्य करने वाले श्रमिको को शामिल नही किया गया था ।

कारखाना अधिनियम, 1948 का उद्देश्य कारखानो मे काम करने वाले श्रमिको के रक्षा, स्वास्थ्य और कल्याणकारी कार्यों को प्रोत्साहित करना है । यह जम्मू-कश्मीर को छोडकर सभी राज्यो पर लागू होता है । वे कारखाने जहाँ 10 या 10 से अधिक श्रमिक शक्ति से कार्य करते हैं तथा 20 या 20 से अधिक श्रमिक बिना शक्ति से कार्य करते हैं, इस अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं । इसके अन्तर्गत राज्य सरकारो को यह अधिकार है कि वे किसी भी रोजगार पर यह अधिनियम लागू कर सकती हैं । इस अधिनियम के अन्तर्गत मौसमी तथा वर्ष भर चलने वाली सभी फैक्ट्रीज के अन्तर को समाप्त कर दिया गया है ।

इस अधिनियम मे विभिन्न बातें सम्मिलित की गई है । वे निम्नलिखित हैं–

1. कार्य के घण्टे (Hours of Work)—कम कार्य के घण्टे श्रमिक की कार्य कुशलता पर अनुकूल प्रभाव डालते हैं । अत. इस अधिनियम मे वयस्क श्रमिको हेतु अधिकतम कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह 48 और प्रतिदिन 9 निश्चित किए गए हैं । 5 घण्टे के कार्य के बाद ½ घण्टे का मध्यान्तर दिया जाएगा । कार्य का फैलाव (Spread over) $10\frac{1}{2}$ घण्टे से अधिक नही होगा । राज्य सरकारों को अधिकार दिया गया है कि वे कुछ व्यक्तियो के कार्य के घण्टे, साप्ताहिक छुट्टी आदि छूट दे सकती हैं । फिर भी कुल कार्य के घण्टे 10 किसी भी दिन कार्य का फैलाव 12 घण्टे, अतिरिक्त कार्य हेतु दुगुनी मजदूरी दर आदि का पालन किया जाएगा ।

2 सवेतन छुट्टी (Leave with Wages)—प्रत्येक श्रमिक को सवेतन

साप्ताहिक छुट्टी दी जाएगी। इसके अतिरिक्त निम्न दरो पर सवेतन वार्षिक छुट्टियाँ (Annual leave with wages) दी जाएँगी—

(i) एक प्रौढ श्रमिक को 20 दिन कार्य करने पर 1 दिन सवेतन छुट्टी दी जाएगी, परन्तु वर्ष मे न्यूनतम 10 दिन की सवेतन छुट्टी मिलगी।

(ii) एक बालक को 45 दिन कार्य करने पर 1 दिन सवेतन छुट्टी मिलेगी और वर्ष मे न्यूनतम 14 दिन की सवेतन छुट्टी मिल सकेगी।

(iii) यदि किसी श्रमिक को बिना अर्जित छुट्टियों का उपभोग किए ही सेवा से मुक्त कर दिया जाता है अथवा स्वय नौकरी छोड देता है तो नियोजक का कर्त्तव्य है कि उन दिनो का वेतन उसे दिया जाए।

3. नवयुवकों को रोजगार (Employment of Children)—14 वर्ष से कम आयु वाले नवयुवको को रोजगार नही दिया जाएगा। 15 और 18 वर्ष की आयु के बीच वाले श्रमिक को प्रौढ (Adolescent) माना गया है। इन नवयुवको को आयु सम्बन्धी डॉक्टरी प्रमाण-पत्र प्राप्त करना आवश्यक है। उन्हे कार्य करते समय टोकन रखना पडेगा। यह प्रमाण-पत्र 12 महीने तक वैध होगा।

4. महिला श्रमिको को रोजगार (Employment of Women)—कोई भी महिला श्रमिक मशीन चालू करते समय सफाई, तेल डालने आदि का कार्य नही करेगी। *कपास की धुनाई वाले यन्त्र का उपयोग करने पर वहाँ महिला श्रमिक को कार्य पर नही लगाया जाएगा।* जहाँ 50 या इससे अधिक महिला श्रमिक कार्य करते है वहाँ छोटे बच्चो को पालनो (Creches) की सुविधा दी जानी चाहिए।

कोई भी महिला श्रमिक 7 बजे साय से 6 बजे प्रात. के बीच काम नही करेगी। इसी अवधि मे बाल श्रमिकों से भी कार्य नही लिया जा सकेगा।

महिला श्रमिक के कार्य के अधिकतम घण्टे सप्ताह मे 48 और प्रतिदिन 9 से अधिक नही होंगे।

खतरनाक क्रिया मे महिला श्रमिको को कार्य पर नही लगाया जाएगा। अतिरिक्त कार्य हेतु सामान्य दर का दुगुना भुगतान किया जाएगा।

5. स्वास्थ्य एवं सुरक्षा (Health and Safety)—इस अधिनियम के अन्तर्गत स्वास्थ्य एव सुरक्षा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण आदेशो का प्रावधान है जिससे श्रमिक का स्वास्थ्य और सुरक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जा सके।

स्वास्थ्य सम्बन्धी निम्न आदेश इस अधिनियम मे शामिल किए गए हैं—

(i) प्रत्येक कारखाने को पूर्ण रूप से साफ किया जाएगा और किसी तरह का कूड़ा-करकट कारखाने के किसी भी भाग मे नही डाला जाएगा।

(ii) प्रत्येक कारखाने मे शुद्ध वायु आने तथा अशुद्ध वायु जाने हेतु पर्याप्त झरोखे होने आवश्यक है।

(iii) यदि किसी निर्माण क्रिया से धूल इत्यादि उड़ती है तो उसकी सफाई की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए।

(iv) कारखानों में अधिक शुष्कता अथवा नमी नही होनी चाहिए। कृत्रिम नमी करने वाले कारखानों मे इसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नही पड़े।

(v) इस अधिनियम के बाद बनाए गए कारखानो मे प्रत्येक श्रमिक हेतु 500 क्यूबिक फीट स्थान तथा पूर्व के कारखानो मे 350 क्यूबिक फीट स्थान होना जरूरी है। इससे अत्यधिक भीड़ को कम किया जा सकेगा।

(vi) कारखानो मे कार्यरत श्रमिको हेतु पर्याप्त प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक प्रकाश की व्यवस्था की जानी चाहिए। जहाँ होकर श्रमिक आते जाते हैं वहाँ पर भी इसकी व्यवस्था होनी चाहिए।

(vii) प्रत्येक कारखाने मे श्रमिकों हेतु पीने के ठण्डे पानी की व्यवस्था की जानी चाहिए। जहाँ श्रमिक 250 या इससे अधिक हैं वहाँ पर रेफ्रीजरेटर की व्यवस्था होनी चाहिए।

(viii) प्रत्येक कारखाने मे पर्याप्त संख्या मे पुरुषों व महिला श्रमिको हेतु अलग-अलग शौचालय तथा पेशाब-घरो की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ix) प्रत्येक कारखाने में थूकने के लिए थूकदानो की पूर्ण व्यवस्था की जानी चाहिए।

इस अधिनियम के अन्तर्गत सुरक्षा सम्बन्धी निम्नलिखित उपायो का प्रावधान किया गया है—

(i) मशीनो को ढक कर रखा जाए तथा खतरनाक मशीनरी की देखभाल प्रशिक्षित प्रौढ व्यक्ति द्वारा ही की जानी चाहिए।

(ii) बाल तथा महिला श्रमिको को खतरनाक मशीनो पर नही लगाया जाएगा।

(iii) यान्त्रिक शक्ति द्वारा चलाई जाने वाली मशीन को अच्छी तरह से कारखाने में फिट किया जाना चाहिए। भार उठाने वाली मशीनो तथा लिफ्ट आदि की भी समय-समय पर देखभाल करनी चाहिए। इससे दुर्घटनाएँ कम होंगी।

(iv) इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य सरकार को अधिकार है कि वह बाल, पुरुष व महिला श्रमिको द्वारा उठाए जाने वाले बोझ को निश्चित करे। इससे अधिक भार नहीं उठाया जाए क्योंकि यह श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है।

6. **कल्याणकारी उपाय (Welfare Measures)**—इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिकों के कल्याण में वृद्धि करने हेतु अग्रलिखित आदेशों का प्रावधान किया गया है—

(i) प्रत्येक कारखाने मे श्रमिको को अपने हाथ मुँह धोने की सुविधाएँ होनी चाहिए।

(ii) कपडे धोने, उन्हे सुखाने और टाँगने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(iii) प्रत्येक कारखाने मे प्राथमिक चिकित्सा सुविधा (First Aid Appliance) प्रदान की जानी चाहिए।

(iv) जिन कारखानो मे 250 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते है उनमे कैंटीन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(v) जहाँ पर 150 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते है वहाँ पर आहार कमरो (Lunch Rooms) की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(vi) जिन कारखानो मे 50 या अधिक महिला श्रमिक कार्य करती हैं वहाँ उनके बच्चो के पालनो (Creches) की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(vii) जिन कारखानो में 500 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ कल्याण अधिकारी (Welfare Officer) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

सभी कारखाना मालिको का यह दायित्व है कि रोजगार के कारण उत्पन्न किसी बीमारी अथवा दुर्घटना के विषय मे सूचना वे तत्काल सरकार तथा कारखाने हेतु नियुक्त चिकित्सको को दे। नियुक्त चिकित्सको को भी व्यावसायिक बीमारियो वाले श्रमिको के सम्बन्ध मे अपनी रिपोर्ट मुख्य कारखाना निरीक्षक (Chief Inspector of Factories) को दे देनी चाहिए।

इस अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व राज्य सरकारो का है। मुख्य कारखाना निरीक्षक सबसे बड़ा अधिकारी होता है और उसके अन्तर्गत वरिष्ठ कारखाना निरीक्षक और कारखाना निरीक्षक आते हैं जो अपने-अपने क्षेत्र मे इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानो को क्रियान्वित करने का कार्य करते हैं।

भारतीय कारखाना अधिनियम, 1948 के दोष

(*Defects of the Indian Factories Act of 1948*)

श्रम जाँच समिति, 1946 (Labour Investigation Committee, 1946) ने विभिन्न कारखाना अधिनियमो मे पाए जाने वाले दोषो का उल्लेख *किया था। यह अधिनियम* पिछले कुछ वर्षों मे अनेक दोषो का शिकार रहा है—

1 यह अधिनियम बडे औद्योगिक सस्थानो मे सन्तोषप्रद ढंग से क्रियान्वित *किया जा रहा है, लेकिन छोटे और मौसमी* कारखानो मे यह अधिनियम सन्तोषप्रद ढग से लागू नही किया जा सका है। इन कारखानो मे कार्य के घण्टो, अतिरिक्त कार्य, बालकों की नियुक्ति, सुरक्षा, स्वास्थ्य और सफाई से *सम्बन्धित* आदेशो को पूर्ण रूप से लागू नही किया जा सकता है। नियोजकों द्वारा श्रमिको के झूँठे

प्रमाण-पत्र, अतिरिक्त कार्य हेतु दोहरे रजिस्टर आदि रखकर निरीक्षको को धोखा दिया जाता है।

2 निरीक्षको की सख्या कम होने से और कारखानों की सख्या अधिक होने से कई कारखाने साल भर मे एक बार भी नही देख सकते हैं। निरीक्षक भी तकनीकी बातो की ओर ज्यादा ध्यान रखते है जबकि मानवीय समस्याओ की प्रायः उपेक्षा करते हैं। अतः निरीक्षको की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए जिससे इस अधिनियम का क्रियान्वयन प्रभावपूर्ण ढग से हो सके।

3. कुशल एवं ईमानदार कारखाना निरीक्षको की कमी है। अधिकांश निरीक्षक कारखाने का पूर्ण निरीक्षण किए बिना ही निरीक्षण प्रतिवेदन तैयार कर लेते हैं तथा मालिको से रिश्वत लेकर उनके दोषों को रिपोर्ट मे नही दिखाते हैं।

4 अधिनियम का बार-बार उल्लंघन करने का प्रमुख कारण यह भी है कि दोषियो पर दण्ड कम किया जाता है। एक मालिक पर 100-150 रु. का जुर्माना किया जाता है जबकि उसकी पैरवी के लिए निरीक्षक के आने-जाने में ही हजारो रुपये व्यय हो जाते हैं। अतः दोषी व्यक्तियो को दण्डित समय पर और पर्याप्त रूप में किया जाना चाहिए।

5 यह अधिनियम अनियन्त्रित कारखानो (Unregulated Factories) पर लागू नही होता है। इन कारखानो मे श्रमिको का शोषण किया जाता है तथा अमानवीय दशाओ मे उनको कार्य करना पड़ता है। अत. इस अधिनियम को विस्तृत करके अनियन्त्रित कारखानों पर लागू किया जाना चाहिए।

इस अधिनियम के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन हेतु कारखाना निरीक्षको की सख्या बढाया जाना आवश्यक है। उनके अधिकारो और स्तर में भी वृद्धि की जानी चाहिए। ईमानदार और कार्यकुशल निरीक्षको की नियुक्ति अपेक्षित है। विभिन्न प्रान्तो मे पाई जाने वाली असमानता को समाप्त किया जाना चाहिए। श्रमिको को भी इस अधिनियम के विभिन्न आदेशो के बारे मे बताया जाना चाहिए।



10 भारत में श्रमिकों का आवास; नियोजक व श्रम-संघों तथा सरकार द्वारा दी गई श्रम कल्याण सुविधाएँ

(Housing of Labour in India; Labour Welfare Facilities Provided by Employers, Trade Unions and Government)

भारत में श्रमिकों का आवास : समस्या का स्वरूप
(Housing of Labour in India : Nature of the Problem)

आवास का वित्त प्रबन्धन और क्रियान्वयन निजी उद्यमियों द्वारा किया जाता था। लेकिन यह नीति उस समय ही उचित है जब अधिकांश जनसंख्या कृषि में लगी हुई हो। स्वतन्त्रता की नीति के कारण से औद्योगीकरण हुआ और तीव्र औद्योगीकरण स्थानीय केन्द्रों पर अधिक होने से आबादी बढने लगी। इससे आवास की समस्या उत्पन्न हुई। बिना योजना के ही आवास-व्यवस्था की जाने लगी। इससे झुग्गी झोपड़ियों का विकास हुआ।[1]

औद्योगिक आयोग सन् 1918 (Industrial Commission) ने इस समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया। लेकिन इस सिफारिश की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया।

रोटी, कपड़ा और मकान मानव की तीन आधारभूत आवश्यकताएँ है जिनमें मकान महत्वपूर्ण आवश्यकता है। देश में आवास व्यवस्था बढती हुई औद्योगिक जनसंख्या की तुलना में कम रही। जगह की कमी, भूमि की ऊँची लागत आदि के कारण आवास व्यवस्था पूर्ण रूप से बढती हुई जनसंख्या के लिए पर्याप्त नहीं रही। धीरे-धीरे आवास-दशाओं की स्थिति बिगड़ती गई।

1 *Giri, V. V.* : Labour Problems in Indian Industry, p 303.

शाही श्रम आयोग ने प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों की आवास व्यवस्था का विवरण देते हुए बताया कि मकान एक-दूसरे से सटे हुए थे। उनमे कोई रोशनदान की तथा सफाई की व्यवस्था नही थी। एक ही कमरे में कई व्यक्ति रहते थे। सूर्य का प्रकाश भी नही आता था। पानी की भी समुचित व्यवस्था नही थी। रात को इन बस्तियो मे कोई भी आ-जा नही सकता था।

आवास व्यवस्था के अन्तर्गत न केवल चारदीवारी शामिल की जाती है, बल्कि आवास के आस-पास के वातावरण को भी शामिल किया जाता है। आवास व्यवस्था का अर्थ ऐसे आवास से है जहाँ श्रमिक आराम से रह सकें, एक ऐसे वातावरण से है जो श्रमिको हेतु स्वास्थ्यप्रद हो तथा ऐसी सुविधाओं से है जो कि श्रमिक के स्वास्थ्य व कार्य-क्षमता पर अच्छा प्रभाव डाले। श्रमिको का निवास ऐसी जगह होना चाहिए, जहाँ स्वच्छ वायु, प्रकाश व जल आसानी से मिलते हों। चिकित्सा शिक्षा, मनोरंजन, खेलकूद आदि की सुविधाएँ भी श्रमिको को मिलनी चाहिएँ।

बुरी आवास व्यवस्था से औद्योगिक श्रमिक कई बुराइयो का शिकार बन जाता है, जैसे शराब पीना, बीमारी, अनैतिकता, अपराध, अनुपस्थितता आदि। इससे अधिक अस्पतालो और जेलों की व्यवस्था करनी पड़ेगी।

आवास व्यवस्था एक मानवीय आवश्यकता है जिसे राष्ट्रीय योजना में शामिल करना आवश्यक है।

आवास की समस्या त्रिमुखी है—

1 सामाजिक समस्या (Social Problem)—यह गन्दी बस्तियो की समस्या से सम्बन्धित है। प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों मे अधिक भीड-भाड़ से आवास समुचित रूप मे न मिलने के कारण इन निम्न वर्ग के लोगों द्वारा गन्दी बस्तियाँ बना ली गई हैं। मद्रास की चेरी, कानपुर के अहाता, कलकत्ता की बस्ती, बम्बई और अहमदाबाद की चाल बस्तियाँ, गन्दी बस्तियो के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। विश्व के सम्भवत किसी भी औद्योगिक क्षेत्र मे इस प्रकार की गन्दी बस्तियाँ देखने को नही मिलती हैं।

2. आर्थिक समस्या (Economic Problem)—आवास व्यवस्था का श्रमिक के स्वास्थ्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। खराब आवास से कई प्रकार की बीमारियो को प्रोत्साहन मिलता है। इसका श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। कार्य-कुशलता घटती है और उत्पादन मे गिरावट आ जाती है।

3. नागरिक समस्या (Civic Problem)—शहरी क्षेत्रों मे अधिक जनभार से नागरिकों के आवास पर भी बुरा प्रभाव पडता है। श्रमिक भी एक नागरिक है और इस समस्या का समाधान होना आवश्यक है।

खराब आवास व्यवस्था के दोष
(Defects of Bad Housing)

प्रो. आर. सी सक्सेना के अनुसार, "अच्छे घरों का अर्थ गृह-जीवन की सम्भावना, सुख और स्वास्थ्य है तथा बुरे घरों का अर्थ है गन्दगी, शराबखोरी, बीमारी, व्यभिचार और अपराध।"[1]

1. खराब आवास व्यवस्था का स्वास्थ्य पर खराब प्रभाव पड़ता है। आवास और स्वास्थ्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा ये दोनों औद्योगिक श्रमिक की कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इससे कई प्रकार की बीमारियाँ फैल जाती हैं।

2. खराब गृह-व्यवस्था के कारण ही श्रमिकों में प्रवास की प्रवृति (Migratory Character of Labour) को प्रोत्साहन मिलता है। भारतीय श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से आकर औद्योगिक क्षेत्रों में कार्य करते हैं। लेकिन ग्रामीण और शहरी आवास में रात दिन का अन्तर देखने को मिलता है। खुली हवा, प्रकाश, शुद्ध जल तथा अच्छा वातावरण आदि का शहरी क्षेत्रों में अभाव होने के कारण वे कुछ दिन कार्य करते हैं और फिर वापिस अपने गाँव को चले जाते हैं।

3. खराब आवास व्यवस्था के कारण कई सामाजिक बुराइयाँ (Social evils) उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरणार्थ—शराबखोरी, अनैतिकता, अपराध, जुआ खेलना आदि। औद्योगिक बस्तियों में स्त्री-पुरुष का अनुपात असमान होने के कारण अनैतिकता को बढ़ावा मिलता है। श्रमिक बिना परिवार के रहने के कारण जुआखोरी, शराबखोरी, अपराध आदि बुराइयों का शिकार हो जाता है।

अपर्याप्त और खराब आवास व्यवस्था के कारण ही औद्योगिक अशान्ति, अनुपस्थिति और श्रम परिवर्तन आदि को प्रोत्साहन मिलता है। ये सभी औद्योगिक उत्पादन को कम करते हैं, जिसका राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

आवास व्यवस्था की इन अभाग्यशाली परिस्थितियों से विवश होकर डॉ. राधाकमल मुकर्जी ने ठीक ही लिखा है कि "भारतीय औद्योगिक बस्तियों की दशा इतनी भयंकर है कि वहाँ मानवता को निर्दयता के साथ अभिशापित किया जाता है। महिलाओं के सतीत्व का अपमान किया जाता है एवं देश के भावी आधार-स्तम्भ शिशुओं को आरम्भ से विष से सिंचित किया जाता है।"[2]

आवास की इन खराब दशाओं का चित्रण करते हुए श्री मीनू मसानी ने कहा था कि, "भगवान ने विश्व को बनाया, मनुष्य ने शहरों को और राक्षसों ने गन्दी बस्तियों को बनाया।"

1952 में स्वर्गीय नेहरू ने कानपुर की आवास व्यवस्था को देखकर गुस्से में कहा था, "इन गन्दी बस्तियों को जला दिया जाए।"

1 *Saxena R C* : Labour Problems & Social Welfare, p 246

2 *Dr. R. K. Mukerjee* : The Indian Working Class, p. 230

आवास : किसका उत्तरदायित्व ?
(Housing Whose Responsibility ?)

खराब आवास व्यवस्था के कारण श्रमिको की कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। श्रमिको मे अस्थिरता, औद्योगिक अशान्ति, श्रमिक परिवर्तन, अनुपस्थिति आदि सभी तत्वो के लिए खराब आवास व्यवस्था जिम्मेदार है। कई सामाजिक बुराइयाँ उदाहरणार्थ शराबखोरी, जुआखोरी, वेश्यागमन, अपराध आदि खराब आवास व्यवस्था के ही परिणाम हैं।

इन सभी बुरे प्रभावो को समाप्त करने हेतु एक अच्छी आवास व्यवस्था का होना आवश्यक है। हम यह चाहते है कि प्रत्येक व्यक्ति एक अच्छे मकान मे सपरिवार सुखी और प्रसन्न रहे। एक अच्छी आवास व्यवस्था हेतु किसे जिम्मेदार बनाया जाए, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

श्रमिको का कहना है कि आवास व्यवस्था करना मालिकों का उत्तरदायित्व है। सरकार को इसके लिए कारखाना अधिनियम, 1948 मे संशोधन कर इसे शामिल किया जाए। जहाँ मालिक यह नही कर सकता है वहाँ श्रमिकों को आवास भत्ता दिया जाना चाहिए।

मालिको का कथन है कि आवास व्यवस्था राज्य और स्थानीय निकायो द्वारा प्रदान की जानी चाहिए क्योकि आवास व्यवस्था के लिए भूमि प्राप्त करना और मकान बनाना एक महँगी व्यवस्था है जो कि मालिक द्वारा वहन नही की जा सकती है।

सरकार के कथनानुसार आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व मालिको का है क्योंकि अच्छी आवास व्यवस्था से प्राप्त लाभ मालिको को ही प्राप्त होंगे। अच्छी आवास व्यवस्था से श्रमिको की अस्थिरता, अनुपस्थिति, श्रमिक परिवर्तन, शराबखोरी, जुआखोरी, वेश्यागमन आदि दोष कम हो जाएँगे। श्रमिको की कार्यकुशलता बढेगी, उत्पादन अधिक होगा और इससे मालिको के लाभ में वृद्धि होगी। कई समितियो व आयोगो ने भी आवास के उत्तरदायित्व के बारे में अपने अलग-अलग विचार दिए हैं।

शाही श्रम आयोग के अनुसार आवास का उत्तरदायित्व सरकार और स्थानीय निकायो का है। राष्ट्रीय योजना समिति ने कहा था कि इसका उत्तरदायित्व अनिवार्य रूप से मालिको पर डाला जाना चाहिए। स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति 1946 ने भी आवास का दायित्व सरकार पर ही डाला है। श्रम अनुसन्धान समिति ने सुझाव दिया है कि आवास हेतु आवास मण्डलों (Housing Boards) की स्थापना की जानी चाहिए। आवास हेतु पूँजी वित्त का प्रबन्ध राज्यो द्वारा किया जाना चाहिए और क्रियाशील व्यय वहन करने का दायित्व मालिकों और श्रमिको पर होना चाहिए।

आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व किसी एक पक्ष पर नही डाला जा सकता

क्योंकि यह समस्या एक जटिल समस्या है तथा इसमे भूमि प्राप्त करना और मकान बनाने हेतु माल तथा वित्त का प्रबन्ध करना आदि कठिनाइयां आती हैं, जिन्हे किसी एक पक्ष द्वारा हल करना आसान नही है। अत आवास व्यवस्था हेतु न केवल राज्य सरकारो को ही उत्तरदायी बनाया जाए बल्कि स्थानीय सरकारो और मालिको को भी इस हेतु तैयार किया जाना चाहिए। यह एक सयुक्त उत्तरदायित्व है जिसमे सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रो की सस्थाओ, मालिको तथा सरकारो का सहयोग अपेक्षित है।

गन्दी बस्तियों की समस्या
(Problem of Slums)

भारतीय औद्योगिक श्रमिको की आवास व्यवस्था अच्छी नही है। वे गन्दी बस्तियों मे रहते हैं। इन गन्दी बस्तियो को विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रो मे अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। बम्बई मे चाल (Chawl), मद्रास मे चेरी (Cherry), कलकत्ता मे बस्ती (Basti) और कानपुर में अहाता (Ahatas) के नाम से जानी जाती हैं। इन औद्योगिक क्षेत्रो मे गन्दी बस्तियो को प्रोत्साहन निर्माण नियमो मे ढिलाई, श्रमिको की उदासीनता, भूमि का ऊँचा मूल्य आदि के कारण मिला है। गन्दी बस्तियां हमारे देश की दरिद्रता की निशानी हैं। शिक्षा की कमी, अधिक जनभार और योजना के अभाव के परिणामस्वरूप गन्दी बस्तियो का विकास हुआ है।

गन्दी बस्तियां एक राष्ट्रीय समस्या बन गई हैं क्योंकि आवास मानव की एक प्रमुख आवश्यकता है जिसे पूरा करना प्रत्येक कल्याणकारी सरकार का दायित्व हो जाता है। इन गन्दी बस्तियो के कारण कार्य-कुशलता मे कमी, अनैतिकता, शराबखोरी, जुआखोरी, औद्योगिक अशान्ति आदि रूपो मे हमे भारी कीमत चुकानी पड़ती है। इसलिए गन्दी बस्तियो का उन्मूलन अत्यन्त आवश्यक है। 1952 मे स्वर्गीय नेहरूजी ने कानपुर की गन्दी बस्तियो को समाप्त करने अथवा उन्हे जला देने के लिए कहा था। ससद् सदस्य श्री बी. शिवाराव ने भी इन गन्दी बस्तियो को समाप्त करने के लिए युद्ध-स्तर पर कार्य करने को कहा था।

गन्दी बस्तियो की समस्या का हल तीन दृष्टिकोणो द्वारा किया जा सकता है। प्रथम, गन्दी बस्तियो की सफाई (Slum clearance) करना। यह एक दीर्घ-कालीन समस्या है। योजनाबद्ध तरीके से इस समस्या को हल करना होगा। दूसरा, गन्दी बस्तियों का सुधार (Slum improvement) करना। जहां गन्दी बस्तियो को साफ करना सम्भव नही है तथा सुधार सम्भव है, वहां यह कार्य किया जाना चाहिए। इसे वर्तमान समय मे ही शुरू करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक सुविधाएँ, उदाहरणार्थ सडके, चिकित्सा और शिक्षा आदि प्रदान करनी चाहिए। तीसरी, गन्दी बस्तियों को रोकने (Slum prevention) का सरकार को कानून बनाना चाहिए जिससे गन्दी बस्तियों को प्रोत्साहन नही मिले। योजनाबद्ध तरीके

से ग्रावास व्यवस्था की जानी चाहिए। गृह-निर्माण सम्बन्धी नियमो को प्रभावपूर्ण ढग से लागू किया जाना चाहिए।

गन्दी बस्तियो की सफाई हेतु विभिन्न पंचवर्षीय योजनाग्रो मे निश्चित कार्यक्रम रखे गए है ग्रौर उन पर व्यय किया गया है।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे गन्दी बस्तियो की सफाई को ग्रावास सम्बन्धी नीति का ग्रावश्यक ग्रग माना गया। इसके लिए गृह-निर्माण की राशि 38 5 करोड रुपयो मे से योजना बनाकर व्यय करने का प्रावधान रखा गया था। दूसरी योजना में गन्दी बस्तियो की सफाई हेतु 20 करोड रुपये का प्रावधान रखा गया था जिसे बाद मे घटाकर 13 करोड रुपये कर दिया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना मे गन्दी बस्तियों के उन्मूलन ग्रौर सुधार हेतु 28·6 करोड रुपये रखे गए थे। चौथी पचवर्षीय योजना मे इस कार्य हेतु 60 करोड रुपये का प्रावधान था। पाँचवी पचवर्षीय योजना मे भी गन्दी बस्तियो के उन्मूलन तथा सुधार हेतु पर्याप्त धन दिया गया।

1958 मे गन्दी बस्तियो की सफाई पर सलाहकार समिति (Advisory Committee on Slum Clearance) द्वारा दी गई रिपोर्ट मे निम्न सिफारिशे की गई थी—

1 गन्दी बस्तियो की सफाई समस्या को नागरिक विकास समस्या का एक ग्रभिन्न ग्रग माना जाए।
2 सुगमतापूर्वक कार्य चलाने हेतु केन्द्रीय मन्त्रालय को यह कार्य-भार सौंप दिया जाए।
3 कार्य प्रारम्भ करने हेतु बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली, कानपुर ग्रौर ग्रहमदाबाद की गन्दी बस्तियो को सुधारा जाए।
4 वर्तमान गन्दी बस्तियो मे ग्राधारभूत सुविधाएँ—सड़क, प्रकाश, जल, चिकित्सालय, पाठशाला ग्रादि की व्यवस्था की जाए।
5. ग्रधिक गन्दी बस्तियो वाले ग्रौद्योगिक क्षेत्र मे ग्रधिक धनराशि का उपयोग किया जाए।

भारत में श्रमिकों तथा ग्रन्य वर्गों के ग्रावास पर भारत सरकार का विवरण 1985–86

भारत मे मकानो की कमी के दो पहलू हैं—कम संख्या ग्रौर ग्रसन्तोपजनक स्तर। ग्रावास की यह समस्या कई वर्षों से लगातार जटिल होती रही है। इसके मुख्यत तीन कारण रहे हैं—(1) जनसंख्या मे तेजी से वृद्धि, (2) तीव्र गति से शहरीकरण ग्रौर (3) मकानो की संख्या में अपेक्षाकृत कम वृद्धि। गाँवो ग्रौर शहरो की ग्रावास समस्या में भी बहुत बडा ग्रन्तर है। शहरी इलाको मे भीड़-भाड, तग बस्तियो ग्रौर ग्रनधिकृत बस्तियों की समस्या है ग्रौर ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण की स्थिति सही नही है तथा ग्रावश्यक सेवाग्रों का ग्रभाव है। भारत में

आवास समस्या का कोई भी व्यापक हल ढूंढते समय इन कठिनाइयों की अवहेलना नहीं की जा सकती।

स्वाधीनता के पश्चात् भारत में काफी परिवर्तन आए हैं। स्वाधीनता के बाद लोगों को ज्यादा से ज्यादा रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने और स्वास्थ्य की बेहतर देखभाल की नीतियाँ अपनाई गईं। इनसे अधिकांश लोगों की आयु बढ़ गई। दूसरी ओर जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ लोगों की औसत आयु में भी बढ़ोत्तरी हुई। इन परिवर्तनों की स्पष्ट झलक इस बात से मिलती है कि मकानों की माँग करने वाले नए परिवारों की संख्या लगातार बढ़ रही है तथा वे बेहतर मकानों में रहने की इच्छा करने लगे हैं। अतः भारत में आवास नीति में जहाँ एक ओर मकानों की संख्या बढ़ाने पर बल दिया जाता है, वहीं लोगों को अपने निजी मकान बनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है। हालांकि भारी संख्या में लोगों का जीवन स्तर बेहतर हुआ है लेकिन यह बात भी स्पष्ट रूप से सामने आई है कि मूलभूत असमानताओं में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

आवास आवश्यकताएँ

संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार भारत जैसे विकासशील देशों में आवास की स्थिति को और बिगड़ने से रोकने के लिए अगले दो-तीन दशकों में प्रतिवर्ष एक हजार की आबादी के लिए आठ से दस मकान बनाए जाने चाहिए। यह अनुमान लगाया गया है कि 1971 तक प्रति हजार जनसंख्या के लिए केवल दो से तीन मकानों की वृद्धि हुई, जबकि जनसंख्या की वृद्धि को देखते हुए प्रति हजार आबादी के लिए पाँच मकानों की आवश्यकता थी। 1971 से 1981 के बीच यह वृद्धि दर बढ़कर प्रतिवर्ष चार मकानों की प्रति हजार हो गई। मकानों के मौजूदा स्तर में सुधार तथा पुराने मकानों के स्थान पर नए मकानों के निर्माण की आवश्यकता के कारण मकानों की कमी की समस्या और गहरी हुई है।

संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने 1987 का वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय रूप से 'आवासहीनों के लिए आश्रय वर्ष' के रूप में मनाने का निश्चय किया है। इसके मुख्य उद्देश्य है—(1) 1987 तक समीपवर्ती स्थानों पर रहने वाले निर्धनों व सुविधाहीन लोगों की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास करना। (2) सन् 2000 तक निर्धनों व सुविधाहीन व्यक्तियों के लिए आवासीय सुविधा प्रदान करने से सम्बन्धित विभिन्न साधनों और संसाधनों में सम्बन्धित उन्नत जानकारियों का प्रदर्शन करना। अन्तर्राष्ट्रीय रूप से मनाए जा रहे *'आवासहीनों के लिए आश्रय वर्ष'* के निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु सरकार वचनबद्ध है।

पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत आवास योजनाएँ

आवास-निर्माण एक ऐसी गतिविधि है जिसमें विशेषतया अत्यधिक श्रम की आवश्यकता पड़ती है। अतः इससे उसी प्रकार का विकास होता है जिसकी परिकल्पना भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में की गई है। साथ ही आवास-

निर्माण में अकुशल श्रमिकों को रोजगार मिलता है और अपेक्षाकृत निर्धन लोगों को आय होती है।

सरकारी कर्मचारियों के लिए मकान बनाने के अतिरिक्त आवास-निर्माण में चौथी पंचवर्षीय योजना तक सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका कम रही है। समाज के कुछ चुने हुए आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों को रियायती मकान दिए गए हैं। पांचवी पंचवर्षीय योजना के दौरान पहली बार शहरी क्षेत्र में चलाई जा रही योजनाओं के साथ-साथ ग्रामीण भूमिहीनों को भी आवास स्थल देने का प्रावधान किया गया।

छठी योजना में यह स्पष्ट कहा गया है कि आवास एक बुनियादी आवश्यकता है और इसे अवश्य ही पूरा किया जाना चाहिए। आवास के सन्दर्भ में योजना के लक्ष्य इस प्रकार थे—(1) ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों को आवास स्थल प्रदान करना और निर्माण के लिए सहायता देना, (2) साधनों की अत्यधिक कमी को देखते हुए, सार्वजनिक क्षेत्र की सामाजिक आवास योजनाओं को इस प्रकार तैयार किया जाएगा कि इनसे अधिकाधिक लोगों को लाभान्वित किया जा सके, विशेषकर आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लोगों के लिए जिससे वे भुगतान करने में स्वयं को समर्थ पा सकें, और (3) स्तरों की समीक्षा करते हुए सस्ती वैकल्पिक निर्माण सामग्री का प्रयोग करके सार्वजनिक आवास योजनाओं में लागत को कम करने के विशेष प्रयास किए जाएँगे।

सामाजिक आवास योजनाएँ

आवास समस्या केन्द्र तथा राज्य सरकारों के लिए चिन्ता का विषय रही है, क्योंकि लोगों की व्यक्तिगत तथा सामाजिक भलाई के लिए इसका बहुत महत्व है। स्वाधीनता के पश्चात् सरकार ने यह स्वीकार किया कि लोगों को आवास सुविधाएँ प्रदान करने के लिए राज्य की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परिणामस्वरूप, राज्य/केन्द्र सरकार की यह भूमिका उत्तरोत्तर बढ़ती रही है कि आवास के लिए सरकारी व्यय में बराबर वृद्धि की जाती रही है।

देश में चल रही सामाजिक आवास योजनाओं के सन्दर्भ में केन्द्र सरकार की भूमिका, इस विषय में, मोटे तौर पर सिद्धान्त निर्धारित करने, आवश्यक परामर्श देने, राज्य सरकारों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों को ऋण और अनुदान के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करने और इन योजनाओं की प्रगति पर नजर रखने तक ही सीमित रही है। राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासनों को इन योजनाओं के अन्तर्गत परियोजनाएँ तैयार करने, स्वीकृति देने और इन्हें कार्यरूप देने तथा सम्बन्धित निर्माण एजेन्सियों को वित्तीय सहायता जारी करने के पूरे अधिकार दिए गए हैं। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से राज्य को आवास सहित राज्य क्षेत्र की सभी योजनाओं के लिए 'एक मुश्त अनुदान' और 'एक मुश्त ऋण' के रूप में पूरी केन्द्रीय सहायता दी जाती रही है। परन्तु इस

विषय मे राज्यो के लिए ऐसी कोई शर्त नही लगाई जाती कि वे विकास के किसी विशेष कार्यक्रम अथवा योजना पर कितना धन खर्च करे। आवास और निर्माण मन्त्रालय बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत चल रही योजनाओ की प्रगति पर भी नजर रखता है।

जून, 1982 तक देश मे जो सामाजिक आवास योजनाएँ चल रही थी उनका विवरण (योजना शुरू होने के वर्ष सहित) इस प्रकार है—

(1) औद्योगिक श्रमिको और समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए समन्वित रियायती आवास योजना (1952), (2) कम आयु वाले वर्ग के लिए आवास योजना (1954), (3) बागान मजदूरो के लिए रियायती आवास योजना (1956), (4) मध्यम आय वर्ग आवास योजना (1959), (5) राज्य सरकार के कर्मचारियो के लिए किराया आवास योजना (1959), (6) तग बस्तियो की सफाई/सुधार योजना (1956), (7) ग्रामीण आवास परियोजना (1957), (8) भूमि अधिग्रहण तथा विकास योजना (1959) तथा ग्रामीण क्षेत्रो मे भूमिहीन श्रमिको के लिए आवासीय स्थलो का प्रावधान (1971)।

बागान मजदूरो के लिए रियायती आवास योजना को छोडकर, जो केन्द्रीय क्षेत्र मे ही है, जुलाई, 1982 मे सामाजिक आवास योजनाओ और भूमिहीन मजदूरो के लिए आवासीय स्थलो के प्रावधान की योजना का आय के आधार पर पुन वर्गीकरण करके इनकी चार श्रेणियां बना दी गई हैं। ये है—(1) आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आवास योजना, (2) कम आय वर्ग के लिए आवास योजना, (3) मध्यम आय वर्ग के लिए आवास योजना और (3) राज्य सरकारो के कर्मचारियो के लिए किराया आवास योजना।

आवास स्थल तथा निर्माण सहायता योजना

गांवो के भूमिहीन श्रमिको के लिए आवास स्थल तथा निर्माण सहायता योजना 18 राज्यो और 6 केन्द्र शासित प्रदेशो मे चलाई जा रही है। छठी योजना मे इसके लिए लगभग 354 करोड़ रुपये रखे गए थे। इनमे से 170 करोड रुपये आवास स्थल प्रदान करने के लिए रखे गए थे और लगभग 184 करोड रुपये निर्माण सहायता के रूप मे देने का प्रावधान था। योजना के अनुसार विकसित आवास स्थलो, सम्पर्क सडको और एक पक्का कुआं बनाने पर प्रति परिवार 250 रुपये के हिसाब से खर्च किया गया। प्रत्येक परिवार को 500 रुपये निर्माण सहायता के रूप मे दिए जाएँगे। मकानो के निर्माण का खर्च योजना से लाभान्वित होने वाले परिवार स्वय करेंगे।

अनुमान है कि मार्च, 1985 तक आवास सहायता पाने योग्य परिवारो की संख्या लगभग 145 लाख होगी। 77 लाख परिवारो को छठी योजना के आरम्भ होने से पहले ही आवासीय प्लाट प्राप्त हो गए है और 68 लाख परिवार ऐसे बचे है जिन्हे आवास स्थल दिए जाने हैं। छठी योजना मे शेष सभी भूमिहीन

परिवारों को आवासीय प्लाट प्रदान करने का प्रस्ताव है। मार्च, 1985 तक 130·72 लाख परिवारों को आवास स्थल प्रदान कर दिए गए हैं। छठी योजना मे सहायता पाने योग्य 25 प्रतिशत परिवारो अर्थात् 36 लाख परिवारो को निर्माण सहायता प्रदान करने का भी प्रस्ताव है। राज्य सरकारें और लोगों द्वारा अपने प्रयासों से मकानो अथवा झोपडो का निर्माण किया जा रहा है। इन सभी प्रयासो से मार्च, 1985 तक 31 35 लाख घर बनाए जा चुके हैं।

आवास वित्त

आवास तथा अन्य निर्माण गतिविधियो मे आवास के लिए धन जुटाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है। आवास के क्षेत्र मे सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका उत्साहजनक होते हुए भी बहुत कम रही है। आवास के लिए अधिकतर पूँजी निजी क्षेत्र मे ही लगने की आशा है।

हालाँकि आवास वित्त के लिए देश मे हाल ही मे अनेक विशेषज्ञ एजेन्सियाँ बन गई हैं, लेकिन अब भी अधिकांश धन कुछ चुनी हुई वित्तीय संस्थाओ से ही प्राप्त होता है। इन संस्थाओं मे भारतीय जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, आवास और शहरी विकास निगम (हुडको), कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, इत्यादि शामिल हैं। राज्य आवास बोर्डो, आवास तथा शहरी विकास अधिकरणों, शीर्ष सहकारी आवास वित्त समितियो और राष्ट्रीयकृत व्यावसायिक बैंको के जरिए भी धन प्राप्त होता है।

शहरी विकास

छठी योजना मे छोटे और मझोले शहरो तथा कस्बो के विकास पर बल दिया गया है। शहरी विकास को ग्रामीण विकास का पूरक माना गया है ताकि शहरीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाली नीतियो से नगरो और उनके आस-पास के इलाकों के बीच सम्बन्ध सुदृढ हो सकें। छठी योजना का उद्देश्य है कि छोटे और मझोले नगरो को इस प्रकार विकसित किया जाए कि आवास, जल-आपूर्ति, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य और मनोरंजन आदि पर अधिक धन लगाया जा सके। इन शहरों में नए उद्योग स्थापित करने तथा अन्य गतिविधियों के लिए रचनात्मक प्रोत्साहन दिए जाएँगे और बिजली की सप्लाई तथा दूर सचार सुविधाओ मे सुधार किया जाएगा। इन लक्ष्यो को ध्यान मे रखते हुए एक लाख से कम जनसख्या वाले छोटे और मझोले नगरो के विकास के लिए दिसम्बर, 1979 से एक केन्द्रीय योजना चलाई जा रही है।

छठी योजना अवधि के दौरान 231 छोटे और मझोले नगरो के समन्वित विकास के लिए केन्द्रीय क्षेत्र मे 96 करोड रुपये रखे गए हैं। केन्द्र सरकार आश्रय, परिवहन तथा अन्य आर्थिक गतिविधियो से सम्बन्धित परियोजनाओं के लिए उनकी लागत का पचास प्रतिशत अथवा चालीस लाख रुपये, जो भी कम हो देगी। यह राशि देते समय इस बात का ध्यान रखा जाएगा कि राज्य की एजेन्सियो ने

परियोजना के लिए इतना ही धन दिया है। राज्य सरकारें अपनी ओर से भी इस समन्वित परियोजना के एक भाग के रूप में जल आपूर्ति, सफाई, तग बस्तियों के सुधार तथा सामाजिक सुविधाओं पर धन खर्च करेंगी। योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सहायता से कम लागत में सफाई का प्रबन्ध करने का मद भी शामिल किया गया है। कम लागत पर सफाई की योजना के अन्तर्गत राज्य सरकारें 40 लाख रुपये के अलावा 15 लाख रुपये की अतिरिक्त सहायता प्राप्त करने की भी अधिकारी हैं, बशर्ते कि वे अपने कोष से कम से कम 12 लाख रुपये की धन राशि कम लागत की सफाई योजनाओं पर खर्च करें। नगर और ग्राम आयोजन सगठन द्वारा परियोजना का मूल्यांकन किया जा चुका है। इस प्रकार 237 नगरों में से 235 नगरों का चयन किया गया है और 31 मार्च, 1985 तक 63·44 करोड़ रुपये की केन्द्रीय ऋण सहायता दी जा चुकी थी।

श्रम मन्त्रालय, वार्षिक रिपोर्ट 1985-86 का विवरण

खान और बीड़ी श्रमिकों को आवास सुविधाएँ प्रदान करने के लिए निम्नलिखित योजनाएँ बनाई गई हैं—

(i) टाइप-I आवास योजना—इस योजना के अन्तर्गत खान प्रबन्धों को मकान निर्माण हेतु प्रति मकान 7,500 रु या मकान की वास्तविक लागत का 75 प्रतिशत जो भी कम हो, की दर से प्रतिपूर्ति की जानी है। इसके अतिरिक्त खान प्रबन्धकों को साधारण क्षेत्रों में 1,000 रु और काली मिट्टी तथा उभरी हुई मिट्टी वाले क्षेत्रों में 1,500 रु प्रति मकान की दर से विकास खर्च भी देय है ताकि खान स्थलों में मकानों को निर्मित किया जा सके और उन्हें पात्र कर्मचारियों को आवंटित किया जा सके।

(ii) टाइप-II आवास योजना—इस योजना के अन्तर्गत खान स्थलों पर श्रमिकों के लिए मकान निर्माण हेतु प्रति मकान 15,000 रु या मकान की वास्तविक लागत का 75 प्रतिशत, जो भी कम हो, अभ्रक से भिन्न खान प्रबन्धतन्त्रों को प्रतिपूर्ति की जानी है। इसके अतिरिक्त साधारण क्षेत्रों में 1,500 रु और काली मिट्टी तथा उभरी हुई मिट्टी वाले क्षेत्रों में 2,250 रु प्रति मकान की दर से विकास खर्च भी दिया जाता है।

(iii) अपना मकान स्वयं बनाओ—इस योजना के अन्तर्गत खानों और बीड़ी उद्योग नियोजित श्रमिक अपनी भूमि या राज्य सरकार के प्राधिकारियों द्वारा दी गई भूमि पर अपना मकान स्वयं बनाने के लिए 1,000 रु. की दर से वित्तीय सहायता और 4,000 रु. का व्यय मुक्त ऋण पाने के हकदार हैं।

(iv) आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए आवास योजना—यह योजना बीड़ी उद्योग में कार्यरत आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों पर लागू होती है। इस योजना के अन्तर्गत भूमि की व्यवस्था की जाती है और राज्य सरकार द्वारा मकान निर्मित किए जाते हैं ताकि उन्हें आर्थिक रूप से कमजोर बीड़ी श्रमिकों

को आवंटित किया जा सके। राज्य सरकार को प्रति मकान के लिए 3000 रु. या वास्तविक लागत का 50 प्रतिशत, जो भी कम हो, की दर से प्रतिपूर्ति की जाती है।

(v) गोदाम और वर्क शेड—यह योजना विशेषकर उन बीड़ी श्रमिकों को सहायता देने के लिए तैयार की गई है जो बीडी कारखानो मे नियोजित नही हैं और जिनके पास काम करने की कोई जगह नही है। ऐसे कर्मकारो को सहकारी समितियो के रूप मे सगठित करने के उद्देश्य से उन्हें गोदाम/वर्क शेड की लागत का 75 प्रतिशत तक वित्तीय सहायता के रूप मे दिया जाता है बशर्ते कि ऐसी सोसाइटियो मे सदस्यो की सख्या कम से कम 100 हो और उनकी अपनी जमीन हो।

आवास समस्या के हल के लिए निर्माण एजेन्सियाँ और सरकारी योजनाएँ

'आवास' राज्य का विषय है। केन्द्र सरकार की भूमिका इस क्षेत्र मे राज्य सरकारो के क्रियाकलापों के समन्वय, आँकड़े एकत्र करने और उनकी जाँच-पड़ताल करने, अनुसधान को बढाने और कम लागत के मकानो तथा परम्परागत सामग्री जो महँगी और दुर्लभ हो गई है, के स्थान पर नई सामग्री के प्रयोग के सम्बन्ध मे, उसके परिणामो का प्रचार करने और आवास तथा शहरी विकास निगम लिमिटेड (हुडको), जीवन बीमा निगम (एल. आई सी.) तथा सामान्य बीमा निगम (जी. आई सी.) के माध्यम से राज्य सरकारो तथा अन्य आवास अभिकरणो के लिए ऋणो की व्यवस्था करने तक सीमित रही है।

सरकार का यह प्रयास रहा है कि (1) मौजूदा आवासो की सख्या को सुरक्षित रखा जाए और इस सख्या मे वृद्धि की जाए, (2) भूमिहीन मजदूरो के लिए आवास तथा स्थलो की व्यवस्था की जाए, (3) आवास तथा नगर विकास निगम और आवास बोर्डों जैसे सस्थागत अभिकरणो का समर्थन किया जाए ताकि ये निम्न आय और मध्यम आय वर्गों के लिए आवास की व्यवस्था कर सकें, (4) समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों के लिए आवास-निर्माण को प्रोत्साहन दिया जाए, (5) समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गो के लिए सार्वजनिक निधियो के उपयोग पर बल दिया जाए, और (6) सस्ती भवन-निर्माण सामग्री का गहन अनुसधान एव विकास किया जाए।

निर्माण एजेन्सियाँ

राष्ट्रीय भवन निर्माण निगम लिमिटेड—राष्ट्रीय भवन निर्माण निगम लिमिटेड की स्थापना 1960 मे एक विशिष्ट उद्देश्य से की गई थी कि अच्छे स्तर के प्रति रुचि का विकास हो, निर्माण लागत को कम किया जाए और दुर्गम तथा कठिन इलाकों मे निर्माण कार्य आरम्भ किया जा सके। राष्ट्रीय भवन निर्माण निगम विशेष तथा जटिल निर्माण कार्यों को हाथ मे लेता है और उन्हें पूरी तरह तैयार

करके देता है। निर्माण के साथ-साथ भवन की योजना और डिजाइन भी निगम ही बनाता है। निगम ने लीबिया तथा ईराक में विभिन्न कार्य हाथ में लिए हैं जिनमें हवाई अड्डे, रिहायशी मकान बस्तियां, छात्रावास, होटल, विश्वविद्यालय तथा जल-मल निकास प्रणालियों का निर्माण शामिल है।

आवास और शहरी विकास निगम—आवास और शहरी विकास निगम (हुडको) केन्द्र सरकार का एक उपक्रम है। इसे 1970 में निर्माण और आवास मन्त्रालय के अन्तर्गत स्थापित किया गया था। यह एक शीर्ष संगठन है जिसका मुख्य काम देश में आवास-निर्माण तथा शहरी विकास कार्यक्रम के लिए ऋण प्रदान करना है। ऐसा करते हुए यह निगम निम्न आय वर्ग और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों के लिए आवास-निर्माण को प्राथमिकता देता है।

यह निगम मुख्य तौर पर सरकार के शेयरों के माध्यम से भारतीय जीवन बीमा निगम से ऋण लेकर और अल्पकालीन ऋण पत्र जारी करके अपने लिए धन जुटाता है। छठी योजना में हुडको द्वारा 600 करोड़ रुपये के ऋण और 1,050 करोड़ रुपये के खर्च का प्रावधान था।

31 मई, 1985 तक कुल स्वीकृत ऋणों की राशि और वितरित राशि क्रमश 1,731 74 करोड़ रुपये तथा 1,002 24 करोड़ रुपये है। अब तक स्वीकृत कार्यक्रमों की योजना लागत 2,642 38 करोड़ रुपये है। इससे 20·20 लाख मकानों के निर्माण में सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त 'हुडको' से प्राप्त ऋण का उपयोग 1 78 लाख प्लाटों को विकसित करने के लिए किया जा सकेगा। इनमें से लगभग 88 प्रतिशत प्लाट समाज के कमजोर वर्गों और कम आय वर्ग के लोगों के लिए होंगे।

हिन्दुस्तान प्री-फैब लिमिटेड—हिन्दुस्तान प्री-फैब लिमिटेड, नई दिल्ली (जो पहले हिन्दुस्तान हाऊसिंग फैक्ट्री लि के नाम से जानी जाती थी) सरकार का एक उपक्रम है। यह कम्पनी पूर्व सरचित गृहों के निर्माण के अतिरिक्त पूर्व सरचित प्रबलित सीमेंट कंक्रीट के हिस्से, पूर्व प्रबलित सीमेंट कंक्रीट के बिजली के खम्भे, फोम कंक्रीट के पैनल तथा विभाजन और विसवाहन खण्ड आदि विभिन्न प्रकार की निर्माण सामग्री बनाती है। इसमें लकड़ी की जुड़ाई का काम होता है और यहाँ इमारती लकड़ी को पकाने की उत्तर भारत की सबसे बड़ी भट्टी है। इसने व्यक्तिगत भवन निर्माताओं और निर्माण एजेन्सियों के इस्तेमाल के लिए भवनों के कुछ पूर्वनिर्मित हिस्सों का मानकीकरण किया है। औद्योगिक ढाँचों के लिए जो पूर्व निर्मित हिस्से इस कारखाने ने बनाए हैं उनमें इस्पात की बचत के साथ-साथ निर्माण लागत में कमी और निर्माण कार्यों के पूरा होने में तेजी आई है।

केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग—केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग (सी पी. डब्ल्यू. डी.) रेलवे, संचार, रक्षा सेवाओं, परमाणु ऊर्जा और आकाशवाणी के निर्माण कार्यों को छोड़कर, केन्द्र सरकार की सभी इमारतों के डिजाइन बनाने,

निर्माण, रख-रखाव तथा मरम्मत करने का काम करता है। यह दिल्ली में राष्ट्रीय राजमार्गों के रख-रखाव का काम करता है और केन्द्र शासित प्रदेशो के लोक निर्माण विभागो पर तकनीकी नियन्त्रण रखता है। सार्वजनिक क्षेत्र के जिन प्रतिष्ठानो के पास लोक निर्माण इजीनियरी सगठन नहीं हैं वे अपने निर्माण कार्य केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग अथवा सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण सगठनों और सलाहकार सगठनों को ही सौंपते है। केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग अर्ध-सरकारी संगठनो के निर्माण और कार्य अनुबन्ध अपने हाथ में लेता है।

केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग ने वास्तुकला, सौन्दर्य और बागवानी के साथ-साथ निर्माण कार्य तथा विभिन्न सेवाओं की व्यवस्था करने में उल्लेखनीय विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है। विभाग मे सक्षम, वास्तु शाखा, डिजाइन तैयार करने के लिए एक केन्द्रीय डिजाइन-संगठन, परियोजनाएँ चलाने के लिए क्षेत्रीय एकांश और विभिन्न सेवाओं की व्यवस्था करने के लिए एक विद्युत् तथा यांत्रिक शाखा है।

औद्योगिक आवास से सम्बन्धित विधान
(Legislation Relating to Industrial Housing)

स्वतन्त्रता से पूर्व हमारे देश मे औद्योगिक आवास से सम्बन्धित एक ही अधिनियम था। वह भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1933 (Land Acquisition Act of 1933) था। इसके अन्तर्गत श्रमिको हेतु मकान बनाने के लिए मालिको को भूमि प्राप्त करने मे सहायता मिलती थी। अभ्रक खान श्रम कल्याण कोष अधिनियम, 1946 (Mica Mines Labour Welfare Fund Act of 1946), कोयला खान श्रम कल्याण अधिनियम, 1947 (Coal Mines Labour Welfare Fund Act of 1947) और लोहा खान श्रम कल्याण कोष अधिनियम, 1961 (Iron-ore Mines Labour Welfare Fund Act of 1961) आदि के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के श्रमिको के लिए गृह-निर्माण का प्रावधान रखा गया है। इसके अतिरिक्त कई राज्यो द्वारा भी आवास व्यवस्था के लिए अधिनियम पास किए गए है। उदाहरणार्थ—बम्बई आवास मण्डल अधिनियम 1948, मध्य प्रदेश आवास मण्डल अधिनियम 1950, 1955 का मैसूर आवास मण्डल अधिनियम, 1952 का हैदराबाद श्रम आवास अधिनियम, 1956 का पजाब औद्योगिक आवास अधिनियम, 1955 का उत्तर प्रदेश औद्योगिक आवास अधिनियम, आदि। इन अधिनियमों के अन्तर्गत विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिए आवास व्यवस्था के प्रावधान रखे गए है।

आवास योजनाओं की धीमी प्रगति के कारण
(Causes of Slow Pace of Housing Scheme)

आवास व्यवस्था का दायित्व सरकार, मालिक, श्रम संघो तथा अन्य सगठनों पर सयुक्त रूप से है। इसी सयुक्त उत्तरदायित्व को ध्यान मे रखते हुए देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् इन वर्गों द्वारा विभिन्न आवास योजनाएँ चलाई गई हैं। इन आवास योजनाओ द्वारा श्रमिकों की बढती हुई आवास व्यवस्था की मांग की तुलना

मे पूर्ति कम हुई है। आवास योजनाएँ धीमी गति से चली हैं। इसके कुछ प्रमुख कारण ये है—

1 *सरकारी योजनाएँ लाल-फीताशाही का शिकार रही हैं।* सरकारी कार्य धीरे-धीरे होने से आवास योजनाओ की प्रगति भी धीमी दर से हुई है।

2 मकान निर्माण हेतु कच्चे माल की पर्याप्त मात्रा और समय पर मिलने मे कठिनाई के कारण से भी धीमी प्रगति हुई है। सीमेण्ट, लोहा आदि माल पर्याप्त मात्रा में और समय पर नही मिल सका है।

3. कुछ औद्योगिक क्षेत्रो मे श्रमिक 10 रुपये माहवार भी मकान किराया देने मे असमर्थ होने से सरकार अधिक मकान बनाने मे असमर्थ रही है।

4. मालिकों को सहायता तथा ऋण के रूप मे मिलने वाली राशि के *अतिरिक्त राशि प्राप्त करने मे कठिनाई होती है।*

5 भूमि अधिग्रहण करना, कच्चा माल प्राप्त करना आदि कठिनाइयो के कारण मालिको द्वारा आवास योजना की प्रगति धीमी रही है।

6 श्रमिक अशिक्षित तथा अज्ञानी होने के कारण श्रम सहकारी समितियाँ बनाने में असमर्थ है और इनके अभाव मे निर्माण की गति को बढाया नही जा सकता।

7 श्रम सहकारी समितियो को भी मकानो के निर्माण हेतु भूमि प्राप्त करने तथा कच्चा माल—सीमेण्ट, लोहा आदि प्राप्त करने मे कठिनाई आती है। इससे *श्रम सहकारी समितियो द्वारा बनाए जाने वाले मकानो की सख्या अधिक नहीं* बढ सकी है।

सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास की सफलता हेतु उपाय
(Measures for Successful Industrial Housing Scheme)

राज्य सरकारो, मालिको और श्रम सहकारिताओ द्वारा सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना मे अधिक रुचि नही दिखाई है। इसकी सहायता हेतु श्री वी. वी गिरि (V V Giri) ने जो सुझाव दिए थे, वे अनुकरणीय हैं[1]—

1. जो स्थान काम करने के क्षेत्रो से दूर हैं और उनमे श्रमिको की बस्तियाँ *बस जाती हैं वहाँ से श्रमिको के आने-जाने के लिए राज्य सरकारो और स्थानीय* सस्थाओ को यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध करनी चाहिए।

2. श्रमिको की बस्ती मे सार्वजनिक सेवाओ तथा अन्य दूसरी सुविधाओ को उपलब्ध किया जाना चाहिए, उदाहरणार्थ बाजार, डाकघर और स्कूल का प्रबन्ध।

3. जहाँ तक सम्भव हो सके प्रत्येक श्रमिक को एक अलग भूमि का टुकडा दिया जाए, जिसमे सभी प्रकार की सुविधाएँ हो। श्रमिको को वहाँ अपने श्रम से मकानो का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

1 *Giri, V. V.* : Labour Problems in Indian Industry, 1959, p 312-13

4. मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 मे इस प्रकार संशोधन किया जाना चाहिए कि राज्य सरकारें सीधे श्रमिकों के वेतन से ऋण की राशि प्राप्त कर सकें।

5. यह योजना उन औद्योगिक श्रमिको के लिए भी काम में लाई जानी चाहिए जो राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार के नौकर हैं।

6. जिन श्रमिको के लिए मकान की व्यवस्था नहीं हो सकी है उनमे से कम से कम 20% के लिए भी यदि मालिक मकान बनवाना चाहें तो उन्हे बढी हुई दर पर 3 से 5 साल तक के लिए वित्तीय सहायता और ऋण देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

7. वैधानिक रूप से भाध्य करने की नीति को काम में लाया जाना चाहिए तथा राज्य सरकारो को चाहिए कि वे मालिको को उचित दर पर भूमि देने की व्यवस्था करें। वित्तीय सहायता और ऋण देने की दिशा में भी आगे कदम बढया जाना चाहिए।

8. यदि कोई अन्य योजना बनाई जाती है तो उसके लिए भी वित्तीय सहायता देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

9. वित्तीय सहायता और ऋण मे वृद्धि करके श्रमिकों की सहकारी समितियो को प्रोत्साहन दिया जा सकता है। राज्य सरकार इन समितियो को 'न लाभ न हानि' के आधार पर अच्छी भूमि देने की व्यवस्था कर सकती है।

10. ऋण वापस लेने की किस्तों मे रियायत की जानी चाहिए, विशेष रूप से श्रमिको की सहकारी समितियो के लिए।

श्रम कल्याण की परिभाषा और क्षेत्र
(Definition & Scope of Labour Welfare)

विभिन्न समितियो, सम्मेलनों, आयोगों द्वारा श्रम कल्याण की परिभाषा और क्षेत्र के विषय मे भिन्न-भिन्न विचार दिए गए हैं।

शाही श्रम आयोग, 1931 (Royal Commission on Labour, 1931) के अनुसार 'श्रम कल्याण एक लचीला शब्द है जिसके एक देश से दूसरे देश मे अलग-अलग अर्थ निकलते हैं। यह विभिन्न सामाजिक रीति-रिवाज, औद्योगीकरण की मात्रा और श्रमिक का शैक्षणिक विकास आदि के अनुसार बदलता रहता है।"[1]

श्रम कल्याण कार्य के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए कृषि जाँच समिति (*Agricultural Enquiry Committee*) ने अपने प्रतिवेदन मे लिखा है कि श्रम कल्याण क्रियाओ के अन्तर्गत श्रमिकों के बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक एवं आर्थिक विकास के कार्यों को शामिल किया जाना चाहिए। ये कार्य चाहे सरकार, नियोक्ता या अन्य संस्थानो द्वारा ही क्यो न किए जाएँ। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन की द्वितीय रिपोर्ट के अनुसार, "श्रम कल्याण से ऐसी सेवाओ और सुविधाओं को समझा जाना चाहिए, जो कारखानो के अन्दर या निकटवर्ती स्थानों

1 Report of the Royal Commission on Labour, 1931, p. 261.

में स्थापित की गई हो ताकि उनमें काम करने वाले श्रमिक स्वस्थ और शान्तिपूर्ण परिस्थितियों में अपना काम कर सकें तथा अपने स्वास्थ्य और नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने वाली सुविधाओं का लाभ उठा सकें।"[1]

जून, 1956 में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन की 39वीं बैठक के अनुसार निम्नलिखित सेवाओं और सुविधाओं को श्रम कल्याण क्रियाओं के अन्तर्गत रखा गया है—

1. संस्थान में अथवा पास में भोजन की व्यवस्था।
2. आराम और मनोरंजन की सुविधाएँ।
3. जहाँ सार्वजनिक यातायात असमुचित अथवा अव्यावहारिक है वहाँ श्रमिकों के आने-जाने के लिए यातायात की सुविधा।

श्रम कल्याण क्रियाओं के क्षेत्र का सबसे अच्छा विवरण श्रम अनुसंधान समिति, 1946 (Labour Investigation Committee, 1946) द्वारा दिया गया है। इसके अनुसार, "*श्रम कल्याण क्रियाओं में वे सभी क्रियाएँ शामिल की* जाती हैं जो श्रमिकों की बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक और आर्थिक उन्नति के लिए की जाती हैं। ये कार्य चाहे नियोक्ता सरकार या अन्य संस्थानों द्वारा किया जाए तथा साधारण अनुबन्ध या विधान के अन्तर्गत श्रमिकों को जो मिलना चाहिए उनके अलावा किए गए हों। इस परिभाषा के अन्तर्गत हम आवास, चिकित्सा और शिक्षा सुविधाएँ पोषाहार (कैण्टीन की व्यवस्था), आराम और मनोरंजन की सुविधाएँ, सहकारी समितियाँ, नर्सरी और पालने, सफाई की सुविधाएँ, सवेतन छुट्टियाँ, सामाजिक बीमा, ऐच्छिक रूप से अकेले अथवा संयुक्त रूप से श्रमिकों के साथ में मालिक द्वारा बीमारी और मातृत्व लाभ योजनाएँ, प्रोविडेण्ट फण्ड ग्रेच्युटी और पेन्शन आदि का समावेश कर सकते हैं।"[2]

श्रम कल्याण के सिद्धान्त
(Principles of Labour Welfare)

श्रम कल्याण कार्य निम्नलिखित के आधार पर किया जाता है—

(1) उद्योग के सामाजिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त, (2) प्रजातान्त्रिक मूल्य का सिद्धान्त, (3) उचित मजदूरी का सिद्धान्त, (4) कार्यकुशलता का सिद्धान्त, (5) व्यक्तिगत विकास का सिद्धान्त, (6) सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धान्त, (7) *सम्पूर्ण कल्याण का सिद्धान्त।*

इस सिद्धान्तों का संक्षिप्त वर्णन लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् डॉ. देवेन्द्र प्रतापनारायण सिंह ने इस प्रकार किया है—

(1) उद्योग के सामाजिक उत्तरदायित्व—उद्योग में कार्य करने वाले कर्मचारियों के कल्याण की व्यवस्था का उत्तरदायित्व उद्योगपतियों पर है। यह

1 Report II of the I. L. O. Asian Regional Conference, p. 3.
2 Report of Labour Investigation Committee, p. 345.

सामाजिक मान्यता का एक अंग है। समाज कल्याण का आधार ही दो बातो पर निर्भर है—(1) दूसरो के दुःखो को जानने की क्षमता और उनको मदद करने की इच्छा तथा (2) वास्तविकता की खोज करने की क्षमता।

इन्ही दो स्तम्भों पर सामाजिक नीति की नीव डाली गई है। कर्मचारी वर्ग कमजोर है, भूखा है, बीमार है और उसमे अपने परिवार एव समाज को उठाने की क्षमता नही है। इसलिए उद्योग की नीति सामाजिक दृष्टिकोण से दूसरो की मदद करने की क्षमता के रूप में होनी चाहिए। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए सामाजिक एव श्रमिक अधिनियमो का सृजन हुआ। गरीबो की रक्षा करना, नियोक्ताओ का सामाजिक धर्म है। श्रमिको का संगठित होना, संघों का निर्माण करना एवं क्रान्तिकारी भावना की जागृति के परिणामस्वरूप ही सामाजिक नीति के निर्माण की आवश्यकता पडी और उसमे शीघ्रता से सुधार होने लगा। राज्य, धर्म के आधार पर भी औद्योगिक श्रमिकों के विकास के लिए आवास, शिक्षा एव शारीरिक गठन आदि पर ध्यान देना आवश्यक माना गया है। इस प्रकार के कार्य अच्छे सम्बन्धों और शान्ति स्थापना मे सहायक माने जाते हैं।

(2) प्रजातान्त्रिक मूल्य—श्रमिकों के कल्याण के लिए प्रजातान्त्रिक व्यवस्था होनी चाहिए जिसमे श्रमिको को यह अधिकार हो कि वे अपने कार्यो को स्वाभाविक ढग से पूरा करें। उन पर अनायास बन्धन न हो, जिम्मेदार व्यक्ति के रूप मे अपने कार्यो को करने की उन्हे स्वतन्त्रता हो। कठोर बन्धन उद्योग की प्रगति के हित में नही होता इसलिए प्रजातान्त्रिक मूल्यो के आधार पर ही श्रमिक कल्याण की व्यवस्था हो सकती है।

(3) उचित मजदूरी का सिद्धान्त—यह मान्यता है कि श्रमिको को उनकी न्यूनतम आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वेतन दिया जाए। यह तर्क कि श्रमिको को अनेक प्रकार की कल्याणकारी सुविधाएँ दी जाती हैं, इसलिए वेतन कम दिया जाए, उचित नही है। उद्योगपतियों का यह कथन कि वे श्रमिको को वेतन के ऊपर बोनस, भत्ता, लाभांश आदि देते है इसलिए अधिक वेतन की कोई विशेष आवश्यकता नही, तर्कसंगत नही है। इसके विपरीत, अच्छे उद्योगो मे, जहाँ मजदूरी अधिक है, श्रम कल्याण की व्यवस्था भी उतनी है। यह सिद्धान्त श्रमिको मे आत्म-विश्वास को बढावा देता है और अच्छे सम्बन्धो को बनाए रखने में सहायक होता है।

(4) कार्यक्षमता का सिद्धान्त—अच्छे श्रमिक कल्याण का अर्थ ही है कि श्रमिकों की कार्यक्षमता को बढाया जाए। अर्थकारी शिक्षा, पौष्टिक भोजन एव सुन्दर आवास कार्यक्षमता को बढाने मे सहायक रहा है और रहेगा, उदाहरणार्थ जवान श्रमिकों के विकास के लिए सलाहकारी व्यवस्था उनके बच्चो के लिए शिक्षा एवं उनको दैनिक आवश्यकता की आपूर्ति आदि।

(5) व्यक्तित्व विकास का सिद्धान्त—औद्योगिक संस्थानो में श्रमिकों का महत्व एकमात्र व्यक्तिगत कार्य से ही सम्बन्धित है। उद्योग में श्रमिको के व्यक्तित्व

विकास का प्रयास कैसे हो, क्या हो, यह वही उद्योगपति सोच सकता है जो मानव कल्याण के प्रति उदार हो। यह समझना है कि अच्छा कर्मचारी वही हो जो स्वयं सोचने समझने, कार्य करने और उद्योग की प्रगति में सहायक बनने की क्षमता रखता हो। व्यक्तित्व के विकास के लिए श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करना और उसके सोचने और कार्य में रुचि लेने के लिए जितना भी प्रयास सम्भव हो करना आवश्यक हो जाता है।

(6) सहउत्तरदायित्व—श्रम कल्याण के लिए श्रमिकों एवं नियोक्ताओं का सहउत्तरदायित्व है। एकमात्र नियोक्ता अथवा श्रमिक ही समस्याओं का निराकरण नहीं कर सकता। नियोक्ता श्रमिक-कल्याण के साधनों को प्रदान करा सकता है, पर उसका उपयोग करने वाले श्रमिकों का यह उत्तरदायित्व है कि वे उन कल्याण की सुविधाओं का सदुपयोग कर सकें।

(7) सम्पूर्ण श्रम कल्याण—सम्पूर्ण कल्याण उसी समय पूर्ण माना जा सकता है जब उद्योग के प्रारम्भ से ही नियोक्ता एवं श्रमिक उसका लाभ उठाएँ। यदि यह क्षणिक दिखावा मात्र हो तो उसे श्रम कल्याण की संज्ञा नहीं दी जा सकती। श्रम कल्याण अधिकारी मात्र ही श्रम कल्याण नहीं कर सकता। इसके लिए सभी विभागों में सभी स्तर पर सभी अधिकारियों द्वारा पूर्णरूपेण प्रयास किया जाना चाहिए। इन्हीं आधार-बिन्दुओं पर लक्ष्यों को पूरा करने की परिकल्पना बनाई जाती है जिससे देश का कल्याण हो, श्रमिक एवं नियोक्ताओं में सौहार्द्र हो (अच्छे सम्बन्ध हो) और वे परिवर्तन की दिशा की ओर अग्रसर हों।

श्रम कल्याण कार्य का वर्गीकरण
(Classification of Labour Welfare Work)

श्रम कल्याण शब्द का एक व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। श्रम कल्याण कार्यों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—

1. वैधानिक कल्याण कार्य (Statutory Welfare Work)—वे कल्याण कार्य है जो मालिकों द्वारा श्रमिकों को कानूनी तौर पर प्रदान किए जाते हैं। विधान में श्रमिकों के कल्याण हेतु न्यूनतम स्तर निश्चित कर दिए जाते हैं और इनका उल्लंघन करने वाले मालिकों को दण्डित किया जा सकता है। इनमें कार्य की दशाएँ कार्य घण्टे, प्रकाश, सफाई और स्वास्थ्य से सम्बन्धित विषय आते हैं।

2. ऐच्छिक कल्याण कार्य (Voluntary Welfare Work)—ये वे कल्याण कार्य हैं जो मालिकों द्वारा स्वेच्छा से किए जाते हैं। ये उदारवादी दृष्टिकोण पर आधारित हैं। यदि हम इन्हें गहराई से देखें तो इस प्रकार के कार्यों से न केवल श्रमिकों की कुशलता में वृद्धि होती है बल्कि मालिक व श्रमिकों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित होने से औद्योगिक झगड़ों में कमी आती है। इस प्रकार के कार्य ऐच्छिक संस्थाओं जैसे वाई. एम. सी. ए. (Y. M. C. A) द्वारा भी प्रदान किए जाते हैं।

3 पारस्परिक अथवा संयुक्त कल्याण कार्य (Mutual Welfare Work)—ये कल्याण कार्य सयुक्त रूप से मालिको और श्रमिको द्वारा किए जाते हैं। इसमे श्रम सघो द्वारा श्रम कल्याण हेतु किए गए कार्य शामिल किए जाते है।

श्रम कल्याण कार्य का दूसरा वर्गीकरण भी दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

(i) कारखाने के अन्दर प्रदान किए जाने वाले कल्याण कार्य (Intra-mural Activities)—इसके अन्तर्गत सम्मिलित किए जाते है जैसे पीने का पानी, कैण्टीन, पालने, चिकित्सा सुविधा और विश्रामालय आदि।

(ii) कारखाने के बाहर के कल्याण कार्य (Extra-mural Activities)—ये कारखानो के बाहर प्रदान किए जाते हैं और इनके अन्तर्गत शैक्षणिक और मनोरजन की सुविधाएँ, खेलकूद और चिकित्सा सुविधाओ आदि का समावेश किया जाता है। बीमारी, बेरोजगारी, वृद्धावस्था आदि के समय दी जाने वाली वित्तीय सुविधाएँ भी इसके अन्तर्गत आती हैं।

श्रम कल्याण कार्य के उद्देश्य
(Aims of Labour Welfare Work)

कल्याणकारी क्रियाओ का उद्देश्य मानवीय, आर्थिक और नागरिक आधार माना गया है।[1]

1. मानवीय आधार (Humanitarian)—श्रम एक उत्पादन का मानवीय साधन है। श्रमिक कुछ सुविधाएँ अपने आप प्राप्त नही कर पाता है क्योकि उसकी निम्न आय है। वह निर्धन है अतः इन सुविधाओ को मानवीय आधार पर प्रदान किया जाता है।

2. आर्थिक आधार (Economic Basis)—श्रम कल्याण क्रियाओ से श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है। इससे उत्पादन मे वृद्धि होती है तथा श्रम और पूँजी के बीच मधुर सम्बन्ध होने से औद्योगिक विवाद भी कम हो जाते है। अधिक उत्पादन से न केवल मालिक को ही लाभ प्राप्त होता है बल्कि समूचे राष्ट्र और प्रत्येक समाज के वर्गों को भी होता है।

3. नागरिक आधार (Civic Basis)—श्रम कल्याण कार्यों से श्रमिको के उत्तरदायित्व और इज्जत मे वृद्धि होती है। वह अपने आपको एक अच्छा नागरिक समझने लगता है।

भारत में कल्याण कार्य की आवश्यकता
(Necessity of Welfare Work in India)

भारतीय श्रमिक किन दशाओ में कार्य करते हैं और उनमें कौनसी विशेषताएँ पाई जाती हैं—इन बातों पर विचार करते हुए कल्याण कार्य की आवश्यकता का अग्रलिखित आधारो पर अध्ययन किया जा सकता है—

1 *Saxena, R. C.*: Labour Problems & Social Welfare, p 239.

1. भारतीय श्रमिक की कार्य दशाएँ खराब है। यहाँ श्रमिको को कार्य के अधिक घण्टे, अस्वस्थ वातावरण आदि के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। इन दशाओ मे कार्य करने के पश्चात् श्रमिक अपनी थकान को दूर नही कर सकता। वह कई सामाजिक बुराइयो का शिकार बन जाता है। उदाहरणार्थ शराबखोरी, जुआखोरी, वेश्यागमन, अन्य अपराध आदि। अत इन बुराइयो को समाप्त करने का एक मात्र साधन श्रम कल्याण क्रियाएँ प्रदान करना है।

2. श्रम कल्याण कार्य के अन्तर्गत शिक्षा, चिकित्सा, खेलकूद, मनोरंजन, आदि सुविधाएँ प्रदान की जाती है। इससे श्रमिको व मालिको के बीच मधुर सम्बन्धो को प्रोत्साहन मिल सकेगा। परिणामस्वरूप औद्योगिक शान्ति की स्थापना की जा सकेगी।

3. विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी क्रियाओं से श्रमिक विभिन्न कारखानो की ओर आकर्षित होगे। वे रुचि लेकर कार्य करेंगे और इसके परिणामस्वरूप एक स्थायी एवं स्थिर श्रम शक्ति (*Permanent & Stable Labour Force*) का उदय होगा।

4. अच्छी आवास व्यवस्था, केण्टीन, बीमारी और अन्य लाभो के रूप मे कल्याणकारी कार्य करने के फलस्वरूप श्रमिको की मानसिक दशा मे परिवर्तन होगा। वे कारखाने मे अपना योगदान समझ सकेंगे। इससे श्रमिको की अनुपस्थिति, श्रमिक परिवर्तन आदि मे कमी होगी और श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होगी।

5 केण्टीन, मनोरंजन, चिकित्सा, मातृत्व और बाल कल्याण सुविधाएँ और शैक्षणिक सुविधाओ से समाज को कई लाभ प्राप्त होगे। केण्टीन से श्रमिको को सस्ता और अच्छा भोजन, मनोरजन से रिश्वतखोरी, शराबखोरी, जुआखोरी आदि की समाप्ति, बीमारियो की समाप्ति और मानसिक दक्षता तथा आर्थिक उत्पादकता आदि रूपों से सामाजिक लाभ (Social Advantages) प्राप्त होते हैं।

6 हमारे देश ने तीव्र आर्थिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन का मार्ग अपनाया है। अत विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओ के लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु एक सन्तुष्ट श्रम शक्ति (Contended Labour Force) का होना आवश्यक है और इसके लिए श्रम कल्याण कार्य की आवश्यकता है।

भारत में कल्याण कार्य
(Welfare Worksin India)

हमारे देश मे कल्याण कार्यों पर द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् ही ध्यान दिया जाने लगा। निर्मित वस्तुओ की मांग मे वृद्धि, कीमतो मे निरन्तर वृद्धि, औद्योगिक क्षेत्रो मे आवास समस्या, औद्योगिक अशान्ति आदि तत्वो ने सरकार मालिको, श्रमिको और अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओ तथा सस्थाओ का ध्यान आकर्षित किया। श्रम कल्याण कार्य करने का श्रेय मुख्यत. निम्नलिखित सस्थाओं को है—

(1) केन्द्रीय सरकार, (2) राज्य सरकार, (3) उद्योगपति या मालिक, (4) श्रमिक सघ, (5) समाज सेवी सस्थाएँ तथा (6) नगरपालिकाएँ।

1. केन्द्रीय सरकार द्वारा आयोजित कल्याण कार्य
(Welfare Activities of the Central Govt)

दूसरे महायुद्ध तक श्रम कल्याण क्षेत्र मे भारत सरकार द्वारा बहुत कम कार्य किया गया। सन् 1922 मे अखिल भारतीय कल्याण सम्मेलन (All India Welfare Conference, 1922) मे कल्याण समस्याओ पर विचार किया गया तथा देश मे कल्याण कार्य के समन्वय पर अधिक जोर दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के प्रस्ताव के कारण सन् 1926 मे कल्याण कार्य के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्रित करने हेतु प्रान्तीय सरकारो को आदेश दिए गए। द्वितीय महायुद्ध तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् श्रम कल्याण कार्य की ओर सरकार ने अधिक ध्यान देना शुरु किया। कोयला और अभ्रक खानो मे श्रम कल्याण कोषो की स्थापना तथा प्रमुख उद्योगो मे प्रोविडेण्ट फण्ड आदि के शुरू करने मे इस क्षेत्र मे कल्याण कार्यों को प्रोत्साहन मिला। भारत सरकार ने विभिन्न क्षेत्रो मे श्रमिको की कार्यदशाओ के नियमन और कल्याणकारी सेवाएँ प्रदान करने के लिए कई अधिनियम पास किए। सन् 1944 और सन् 1946 मे क्रमश कोयला और अभ्रक खानो मे श्रम कल्याण कोषो की स्थापना की गई जिनके अन्तर्गत मनोरजन, शिक्षा और चिकित्सा आदि सुविधाएँ प्रदान की जाती है। कारखाना अधिनियम, 1948, खान अधिनियम, 1952, बागान श्रम अधिनियम, 1952, मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम, 1961; लोहा खान श्रम कल्याण अधिनियम, 1961, आदि के अन्तर्गत केण्टीन, पालनो, विश्रामालय, धोने की सुविधाएँ, चिकित्सा सुविधा और श्रम कल्याण अधिकारी नियुक्त करना, कार्य की दशाओ का नियमन आदि प्रावधान हैं। इनसे श्रमिको के कल्याण मे वृद्धि होती है तथा उनकी कार्यकुशलता बढ़ती है। उपरोक्त सभी कल्याण कार्य कानूनन है जिनको श्रमिको को प्रदान करना प्रत्येक मालिक का दायित्व है।

कल्याण कार्यों के सम्बन्ध मे वैधानिक प्रावधानो के अतिरिक्त श्रम कल्याण कोषों के निर्माण मे भी एक महत्त्वपूर्ण योजना का मार्ग प्रशस्त किया गया है। इन कोषो मे अंशदान स्वैच्छिक आधार पर श्रमिको, सरकारो अनुदान, अर्थदण्ड की प्राप्तियाँ, ठेकेदारो से छूट, केण्टीन के लाभ, सिनेमाओ से प्राप्त आय आदि से प्राप्त होता है। यह योजना सन् 1946 मे बनाई गई। इस प्रकार के कोष कई सरकारी संस्थानो मे स्थापित कर दिए गए हैं। इनसे आन्तरिक और बाह्य खेल, पुस्तकालय और वाचनालय, रेडियो, शिक्षा और मनोरंजन आदि सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। विभिन्न संस्थानों और श्रम संघों द्वारा प्रसूति केन्द्रो, शालाओ और सामाजिक सेवा केन्द्रो को चलाने के लिए अनुदान भी दिए जाते हैं।

भारत सरकार के श्रम कल्याणकारी कार्यों और व्यवस्थाओं तथा काम की शर्तों का सुन्दर विवरण वार्षिक सन्दर्भ ग्रन्थ 'भारत 1985' मे अग्र प्रकार दिया गया है—

काम की शर्तें और कल्याण

कारखानों में काम की शर्तें फैक्टरी अधिनियम, 1948 के द्वारा नियमित की जाती हैं। इस अधिनियम के अनुसार प्रौढ श्रमिकों के लिए सप्ताह में 48 घण्टे काम के लिए निश्चित हैं एवं किसी भी कारखाने में 14 साल से कम उम्र के बच्चों को काम पर लगाने की मनाही है। अधिनियम के अन्तर्गत रोशनी, साफ हवा, सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण सेवा के न्यूनतम मानक भी निश्चित हैं, जिनका पालन मालिकों को अपने कारखानों में करना पड़ता है। जिन कारखानों में 30 से अधिक महिला श्रमिक काम करती हैं, वहाँ उनके बच्चों के लिए बाल-गृहों की व्यवस्था करनी पड़ती है। जिन कारखानों में 150 से अधिक व्यक्ति काम करते हैं, वहाँ कारखाने के मालिकों को उनके लिए आश्रय स्थल, विश्राम-गृह तथा भोजन के लिए कमरों की भी व्यवस्था करनी पड़ती है। जिन कारखानों में 250 से अधिक व्यक्ति काम करते हैं, वहाँ श्रमिकों के लिए आवश्यक सुविधाओं से युक्त कैण्टीनों की भी व्यवस्था उन्हें करनी पड़ती है। जिन कारखानों में 500 या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं उनमें कल्याण अधिकारी की नियुक्ति करना आवश्यक है। खान अधिनियम, 1952, बागान मजदूर अधिनियम, 1951, बीड़ी और सिगार कर्मचारी (रोजगार की शर्तें) अधिनियम, 1966, ठेका मजदूर नियमन और उन्मूलन अधिनियम, 1970, मोटर परिवहन कर्मचारी अधिनियम, 1961 आदि के अन्तर्गत खानों और बागानों के कर्मचारियों के लिए भी सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

कोयला, अभ्रक, लोह अयस्क, मैंगनीज अयस्क, चूर्ण प्रस्तर और डोलोमाइट खानों और बीड़ी उद्योग में कार्य करने वाले श्रमिकों हेतु आवास, चिकित्सा, मनोरंजन और अन्य कल्याण सुविधाएँ नियोजित आधार पर प्रदान करने के लिए सांविधिक कल्याण निधि का सृजन किया गया है।

निधि के लिए धनराशि अभ्रक निर्यात पर लगे सीमा शुल्क पर उपकर, लोहा और मैंगनीज अयस्क निर्यात के सीमा शुल्क पर उपकर, आन्तरिक खपत पर लगे उत्पादन शुल्क और लोहा अयस्क, इस्पात संयन्त्र और सीमेण्ट तथा अन्य कारखानों में इस्तेमाल होने वाले चूना पत्थर और डोलोमाइट के उत्पादन पर उपकर लगाकर प्राप्त की जाती है। बीड़ी श्रमिकों की कल्याण निधि के लिए धनराशि तैयार बीड़ी पर लगे शुल्क पर उपकर लगाकर प्राप्त की जा रही है।

वे अधिनियम जिनमें निधि स्थापित की गई है इस प्रकार हैं—लौह अयस्क खान और मैंगनीज अयस्क खान श्रमिक कल्याण उपकर अधिनियम, 1976, लौह अयस्क खान, मैंगनीज अयस्क खान तथा क्रोम अयस्क खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1976, चूर्ण प्रस्तर और डोलोमाइट खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1972, कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, अभ्रक खान श्रम

कल्याण निधि अधिनियम, 1946 और बीड़ी कर्मचारी कल्याण उपकर (सशोधन) अधिनियम, 1981 ।

बागान मजदूर—बागान मजदूर अधिनियम, 1951 मे बागान मजदूरों के कल्याण तथा बागानो मे कार्य करने की शर्तो को नियमित करने का प्रावधान है। अधिनियम राज्य सरकारो द्वारा लागू किया जाता है। यद्यपि अधिनियम को 1951 में पारित किया गया था परन्तु यह 1 अप्रेल, 1954 से लागू किया गया। इस दिन से भी केवल वही अनुच्छेद लागू किए गए जो बगैर किसी नियम निर्धारण के लागू किए जा सकते थे। सम्बन्धित राज्य सरकारो ने श्रम मन्त्रालय के निर्देशो का अनुसरण करते हुए अपने कानूनो का निर्माण सितम्बर, 1955 से अप्रेल, 1959 तक की अवधि के दौरान किया।

बागान मजदूर अधिनियम, 1951 के कार्यान्वयन के दौरान अनुभव की गई कुछ कठिनाइयो को दूर करने के लिए तथा अधिनियम का क्षेत्र बढाने के लिए बागान मजदूर (सशोधन) विधेयक, 1981 संसद् द्वारा पारित किया गया और 26 जनवरी, 1982 से लागू कर दिया गया।

यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर को छोडकर पूरे भारत मे लागू है तथा इसके अन्तर्गत ऐसे समस्त चाय, काफी, रबड, सिनकोना, इलायची बागान आते हैं जो 5 हैक्टेयर या अधिक क्षेत्रफल के हैं और जिनमे 15 या अधिक श्रमिक नियोजित है। अधिनियम के अन्तर्गत ऐसे श्रमिक जिनका मासिक वेतन 750 रुपये प्रतिमाह तक है, आते है। अधिनियम मे अब बागानो के अनिवार्य पंजीकरण का प्रावधान है।

अधिनियम के अन्तर्गत, समस्त बागानो मे आवासीय, मजदूरो और उनके परिवारो तथा ऐसे समस्त व्यक्तियो के लिए, जो कि बाहर निवास करते है परन्तु बागान मे रहने की अपनी इच्छा लिखित मे प्रकट कर चुके है बशर्ते कि वह 6 महीने की नौकरी कर चुके हो, निवास स्थान की व्यवस्था करने का प्रावधान है। बागानो मे मजदूरो के लिए अस्पताल और औषधालय की भी व्यवस्था करना जरूरी है। कुछ बागानों मे मजदूरी के बच्चों की शिक्षा के लिए प्राथमिक स्कूलो की भी व्यवस्था है। चाय बोर्ड की सहायता से कुछ बागानो मे लाभदायक हस्तकला जैसे—सिलाई, बुनाई और टोकरी बनाने का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। यहाँ पर मनोरंजन की सुविधाएँ भी प्रदान की जाती है।

श्रम सुरक्षा—फैक्टरी अधिनियम, 1948 श्रमिको की सुरक्षा की गारण्टी और स्वास्थ्य सुधार और समाज कल्याण की व्यवस्था का प्रावधान रखता है। यह उन फैक्टरियो मे, जिनमे 1000 या इससे अधिक कर्मचारी कार्य करते हैं और शारीरिक चोट, जहर या राज्य सरकारो द्वारा सूचीबद्ध बीमारियो के जोखिमों से सम्बन्ध रखने वाली फैक्टरियों मे सुरक्षा अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान भी करता है। उनके अधीन तैयार अधिनियम और कानूनो को राज्य सरकार उनके फैक्टरी निरीक्षणालय के द्वारा प्रशासित करती है।

गोदी मजदूर (रोजगार का नियमन) अधिनियम, 1948 के अधीन गोदी मजदूरों के स्वास्थ्य और कल्याण के उपाय सुनिश्चित करने तथा जो कर्मचारी गोदी मजदूर विनियम, 1948 की परिधि के अन्तर्गत नहीं आते, उनकी सुरक्षा करने के लिए गोदी मजदूर (सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण) योजना 1961 तैयार की गई थी।

फैक्टरी सलाह सेवा महानिदेशालय और श्रम संस्थान, बम्बई औद्योगिक कर्मचारियों की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण से सम्बन्धित मामलों पर सरकार, उद्योग और अन्य संस्थाओं को सलाह देने का सम्पूर्ण निकाय है।

जोखिम पर नियन्त्रण और व्यावसायिक स्वास्थ्य के बचाव तथा खतरनाक उत्पादन प्रतिष्ठानों में कार्य करने वाले श्रमिकों की सुरक्षा के लिए सरकार ने समन्वित कार्रवाई योजना का राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाया है। इस कार्रवाई योजना में काम के वातावरण में सुरक्षा तथा स्वास्थ्य के लिए सरकार, प्रबन्ध तथा श्रमिक संगठनों की जिम्मेदारियाँ निश्चित की जाती हैं।

वार्षिक रिपोर्ट 1985-86 का विवरण

अभ्रक, लोहा अयस्क, मैंगनीज अयस्क और क्रोम अयस्क, चूना पत्थर तथा डोलोमाइट खानों और बीड़ी उद्योग में नियोजित श्रमिकों को कल्याण सुविधाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से नियोजकों और राज्य सरकारों के प्रयासों को अनुपूरित करने के लिए इस सम्बन्ध में निम्नलिखित से सम्बन्धित कानूनों के अन्तर्गत कल्याण निधियाँ स्थापित की गई हैं—

(क) अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1946,

(ख) चूना पत्थर और डोलोमाइट खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1972,

(ग) लोह अयस्क/मैंगनीज अयस्क और क्रोम अयस्क खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम, 1976;

(घ) बीड़ी कर्मकार कल्याण निधि अधिनियम, 1976।

इन निधियों की स्थापना खनिज पदार्थ के उत्पादन या खपत या निर्यात पर और बीड़ी के मामले में निर्मित बीड़ियों पर उपकर लगा कर की गई है। इन निधियों से चलाए जा रहे कल्याण उपाय चिकित्सा सुविधाओं के विकास, आवास, पेयजल की आपूर्ति, आश्रितों को शिक्षा देने के लिए सहायता, मनोरंजन आदि से सम्बन्धित है। हालाँकि अधिकाँश कार्यकलापों का संचालन कल्याण संगठन द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है, लेकिन राज्य सरकारों, स्थानीय प्राधिकरणों, नियोजकों को अनुमोदित योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए ऋण और आर्थिक सहायता भी दी जाती है।

विभिन्न कल्याण निधियों के अन्तर्गत अनेक योजनाओं को लागू करने के लिए देश में नौ क्षेत्र बनाए गए हैं, अर्थात् इलाहाबाद, बंगलौर, भुवनेश्वर,

भीलवाडा, गोवा, जबलपुर, नागपुर, करमा ग्रौर हैदराबाद। प्रत्येक क्षेत्र का समग्र प्रभारी, कल्याण आयुक्त होता है ग्रौर उसकी सहायता करने के लिए सहायक स्टाफ की भी व्यवस्था की गई है।

विभिन्न निधियो के ग्रन्तर्गत कार्यक्रम ग्रौर नीति तैयार करने के प्रयोजन हेतु त्रिपक्षीय केन्द्रीय ग्रौर राज्य सलाहकार निकायो के गठन के लिए भी व्यवस्था की गई है। विभिन्न कल्याण निधियों के ग्रन्तर्गत सभी समितियों का गठन हो चुका है ग्रौर इन समितियो की नियमित बैठकें ग्रायोजित की जा रही है।

कल्याण उपायों के लिए खर्च मे निम्नलिखित शामिल हैं—

(i) जन-स्वास्थ्य ग्रौर सफाई मे सुधार, रोगों की रोकथाम ग्रौर चिकित्सा सुविधाग्रो की व्यवस्था तथा उनमे सुधार,

(ii) शैक्षणिक सुविधाग्रो की व्यवस्था तथा उनमे सुधार,

(iii) जल ग्रापूर्ति की व्यवस्था तथा उसमे सुधार ग्रौर धुलाई की सुविधाएं,

(iv) रहन-सहन के स्तर मे सुधार जिसमे ग्रावास ग्रौर पोषण, सामाजिक दशाग्रो मे सुधार तथा मनोरजन सुविधाग्रो की व्यवस्था शामिल है,

(v) ऐसी ग्रन्य कल्याण सुविधाग्रो तथा उपायो की जो निर्धारित किए जाएँ, व्यवस्था तथा उनमे सुधार, ग्रौर

(vi) राज्य सरकारो, स्थानीय प्राधिकरणों या नियोजको को केन्द्रीय सरकार द्वारा ग्रनुमोदित किसी योजना की मदद के लिए ग्रनुदान या ग्राथिक सहायता देना।

चिकित्सा एवं देखरेख

विभिन्न कल्याण निधियो के ग्रन्तर्गत चिकित्सा एव देखरेख की व्यवस्था करने ग्रौर उसमे सुधार करने के लिए विभिन्न स्थानों पर ग्रस्पताल, ग्रौपधालय (एलोपैथिक ग्रौर ग्रायुर्वेदिक) निम्नानुसार स्थापित किए गए हैं—

(क) **ग्रस्पताल**—ग्रभ्रक खान श्रम कल्याण निधि के ग्रन्तर्गत सात ग्रस्पताल दो करमा मे (50 पलगो वाला एक तपेदिक ग्रस्पताल ग्रौर 100 पलंगो वाला एक सामान्य ग्रस्पताल), तिसरी, गंगापुर ग्रौर कालिचेड (30 पलगो के) में एक-एक ग्रौर तालपुर तथा साइदेपुरम में (10 पलगो के) दो क्षेत्रीय ग्रस्पताल स्थापित किए गए है। लोह ग्रयस्क, मैगनीज ग्रयस्क ग्रौर क्रोम ग्रयस्क खान श्रम कल्याण निधि के ग्रन्तर्गत चार केन्द्रीय ग्रस्पताल जोडा, टिसका, बाराजमदा (50 पलगो के) ग्रौर करोगानूर मे (60 पलगो का) एक-एक स्थापित किए गए हैं। बीडी श्रमिक कल्याण निधि के ग्रन्तर्गत मैसूर (कर्नाटक) मे 10 पलगो वाला एक ग्रस्पताल ग्रौर निनतिता (पश्चिमी बगाल) में एक चैस्ट क्लीनिक कार्य कर रहे हैं। लोह ग्रयस्क, मैगनीज ग्रयस्क/क्रोम ग्रयस्क श्रमिक कल्याण निधि के ग्रन्तर्गत 50 पलगो वाले तीन ग्रस्पतालो—मैसूर (कर्नाटक), लुधियाना, (पश्चिम बगाल) ग्रौर मुक्काडाल (तमिलनाडु) मे एक-एक की स्थापना के लिए प्रशासनिक

अनुमति जारी कर दी गई है। बीडी श्रमिक कल्याण निधि के अन्तर्गत मुरतगंज (उत्तर प्रदेश) में 50 पलगों वाला एक अस्पताल और गुरशायंज (उत्तर प्रदेश) में 10 पलगों वाला एक अस्पताल स्थापित करने के प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है।

औषधालय—अब तक विभिन्न वर्गों के कुल 211 चिकित्सा संस्थान स्थापित किए जा चुके हैं। इनमें बीडी श्रमिक कल्याण निधि एवं चूना पत्थर और डोलोमाइट खान श्रमिक कल्याण निधि के अन्तर्गत 1985-86 के दौरान मंजूर किए गए क्रमश. 12 और 2 औषधालयों की संख्या भी शामिल है।

(ग) स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यकलापों के अन्तर्गत निम्नलिखित योजनाओं में संशोधन किया गया है—

(1) कैंसर के मरीज (खान श्रमिकों) का इलाज करवाने के लिए अस्पतालों में पलगों को आरक्षित करने की योजना यह योजना बीडी श्रमिकों पर भी लागू कर दी गई है। अस्पतालों में पलगों को आरक्षित करने की अपेक्षा, कैंसर से पीड़ित खान और बीडी कर्मकारों का इलाज करने पर खर्च हुई वास्तविक लागत की प्रतिपूर्ति करने की व्यवस्था की गई है।

(2) तपेदिक से पीडित लौह / मैंगनीज / क्रोम अयस्क और अभ्रक खान श्रमिकों के गृहोपचार सम्बन्धी योजना · तपेदिक से पीडित खान और बीडी श्रमिकों के गृहोपचार सम्बन्धी योजना के अन्तर्गत उपलब्ध फायदों को चूना पत्थर और डोलोमाइट खान और बीडी श्रमिकों को भी देने की व्यवस्था की गई है।

(3) खान और बीडी श्रमिकों के लिए तपेदिक अस्पतालों में पलग आरक्षित कराने की योजना · इस योजना में निम्नलिखित उपबन्ध किए गए हैं—

(i) आरक्षण प्रभार 3,600 रु प्रति वर्ष से बढ़ाकर 10,000 रु प्रति वर्ष कर दिए गए हैं।

(ii) पहले 9 महीनों की अवधि के लिए 50 रु प्रति माह की दर से दिए जाने वाले निर्वाह भत्ते की दर को बढ़ा कर अब उसे 12 महीनों की अवधि तक 150 रु. प्रतिमाह कर दिया गया है।

(iii) बहिरग और अंतरग मरीजों के लिए खाने के खर्च को प्रति दिन 2 रु. से बढ़ाकर प्रति मरीज के लिए 7 रु प्रति दिन कर दिया गया है।

(iv) पात्रता : पात्रता के लिए मजदूरी की अधिकतम सीमा को 500 रु प्रतिमाह से बढ़ाकर 1250 रु. प्रतिमाह कर दिया गया है।

(4) खान प्रबन्धकों को एम्बुलेन्स वाहन की पूर्ति सम्बन्धी योजना · इस योजना के अन्तर्गत चूना पत्थर और डोलोमाइट खान प्रबन्धकों के सम्बन्ध में, एम्बुलेंस वाहन की खरीद के लिए विद्यमान व्यवस्था के अनुसार निर्धारित अनुदान सहायता की 30,000 रु. की राशि को बढ़ाकर 55,000 रु कर दिया गया है।

शिक्षा—खान और बीडी श्रमिको के बच्चो को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने के लिए 1975–76 से एक योजना चल रही है। यह योजना उन श्रमिको के बच्चो पर लागू होती है जिनकी मासिक आय 1,250 रु से अधिक नही है। छात्रवृत्तियो की दर 15 रु से 125 रु प्रतिमाह तक है। पात्रता की सीमा को 1,250 रु. से बढ़ाकर 1,600 रु करने के प्रस्ताव पर यह मन्त्रालय सक्रिय रूप से विचार कर रहा है। वर्ष 1984–85 के दौरान 22,789 विद्यार्थियो को 65,60,879 रु. की राशि छात्रवृत्तियो के रूप मे वितरित की गई। आन्ध्र प्रदेश मे अभ्रक खान श्रम कल्याण सगठन द्वारा चलाए गए स्कूलो मे बच्चो को दोपहर का भोजन व स्टेशनरी प्रदान की जाती है। निधि सगठन के आवास / छात्रावास भी स्थापित किए है। चूना पत्थर और डोलोमाइट खान तथा लौह अयस्क / मैंगनीज अयस्क / क्रोम अयस्क श्रमिको के स्कूल जाने वाले बच्चो को परिवहन सुविधा प्रदान करने के लिए प्रबन्धतन्त्र को बस की वास्तविक लागत का 50 प्रतिशत या सामान्य बस के लिए एक लाख रुपये और मिनी बस के लिए 50,000 रु. जो भी कम हो, की सहायता देने हेतु एक योजना प्रारम्भ की गई है। इसके अतिरिक्त जिन बीडी श्रमिको की मासिक परिलब्धियाँ 600 रु से अधिक नही हैं उनके बच्चों को एक जोड़ा ड्रेस देने की योजना भी लागू की गई है।

जलपूर्ति—खान प्रबन्धतन्त्रो को अभ्रक खान श्रम निधि के अन्तर्गत जलपूर्ति योजनाओ के लिए अनुमानित या वास्तविक लागत का 75 प्रतिशत जो भी कम हो, और अन्य निधियों के सम्बन्ध मे 50 प्रतिशत की दर से राशि दी जाती है।

मनोरंजन—श्रमिको को मनोरंजन सुविधाएँ प्रदान करने के लिए बहुद्देश्यीय सस्थान, चलते-फिरते सिनेमा, यूनिट कल्याण केन्द्र तथा उप कल्याण केन्द्र व पुस्तकालय स्थापित किए गए है। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक और मनोरजन समारोह, टूर्नामेंट भी नियमित अन्तराल पर आयोजित किए जा रहे हैं। रेडियो सेट और प्रोजेक्टरो की खरीद के लिए खान प्रबन्धतन्त्रो को सहायता अनुदान भी मजूर किया जा रहा है। खान श्रमिको के लिए भ्रमण एव अध्ययन दौरे की भी योजना बनाई गई है जो उन्हे महत्त्वपूर्ण धार्मिक व अन्य स्थलो को देखने का अवसर प्रदान करती है। प्रति दौरे के लिए 10,000 रु की वित्तीय सहायता दी जाती है। बीडी श्रमिकों के लिए (जिनमे घर खाता बीडी श्रमिक भी आते हैं) खेल-कूद, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यकलाप आयोजित करने के लिए एक योजना प्रारम्भ की गई है। अभ्रक / लौह अयस्क / चूना पत्थर और डोलोमाइट खानों में नियोजित कर्मकारो के लिए भ्रमण एव अध्ययन दौरे की एक अन्य योजना लागू कर दी गई है।

बीड़ी श्रमिकों को सहकारी संघों में संगठित करना—गरीब बीडी श्रमिकों

को (जिनकी सख्या अनुमानत 35 लाख है) मुनाफाखोरो के चगुल से और उनकी शोषणात्मक क्रियाओ से बचाने के उद्देश्य से सरकार उन्हे सहकारी सघो मे सगठित करने पर विचार कर रही है। बीडी श्रमिको को सहकारी सघो को संगठित करने के लिए एक अवैतनिक सलाहकार की नियुक्ति की गई, जिन्होने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है और श्रम मन्त्रालय सम्बन्धित राज्य सरकारो से परामर्श करके इस पर विचार कर रहा है। इस बीच, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन से "बीडी श्रमिको मे औद्योगिक सहकारिता को बढावा देना" नामक परियोजना सम्बन्धी एक विचार प्राप्त हुआ है, मन्त्रालय जिसकी जाँच कर रहा है।

परिवार कल्याण—श्रम मन्त्रालय अपने कल्याण प्रभाग मे स्थापित जनसख्या सेल के तहत परिवार कल्याण कार्यक्रमो को समन्वित कर रहा है। यह कार्यक्रम जनसख्या शिक्षा और परिवार कल्याण के बारे मे यू. एन डी. पी. / आई एल ओ से सहायता प्राप्त परियोजनाओ की तहत चलाया जाता है।

अब तक नौ परियोजनाएँ पूरी की जा चुकी हैं। चल रही परियोजनाओ की सूची निम्न प्रकार से है—

(i) संगठित क्षेत्र मे परिवार कल्याण कार्यकलापों को बढावा देने के लिए द्विपक्षीय सहयोग टैक्सटाइल लेबर एसोसिएशन, इलाहाबाद।

(ii) औद्योगिक बागानो मे परिवार कल्याण शिक्षा-भारतीय चाय एसोसिएशन।

(iii) व्यापक परिवार कल्याण शिक्षा कार्यक्रम आन्ध्र प्रदेश सरकार।

(iv) संगठित क्षेत्र के कर्मकारो के लिए परिवार कल्याण शिक्षा महाराष्ट्र सरकार।

(v) भारतीय चाय एसोसिएशन परिवार कल्याण परियोजना की असम शाखा (ए बी. आई. टी. ए)।

(vi) कर्मचारी राज्य बीमा योजना परिवार कल्याण परियोजना।

(vii) ए. आई. पी. ई परिवार कल्याण परियोजना (फेज–II) आल इण्डिया आर्गनाइजेशन ऑफ एम्पलायर्स।

(viii) ई एफ आई परिवार कल्याण परियोजना (फेज–II) भारतीय नियोजक सघ।

इस तरह की निम्नलिखित परियोजनाओ पर विचार किया जा रहा है—

(i) ग्रामीण श्रमिको की परिवार कल्याण शिक्षा के लिए केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड की परियोजना–केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड।

(ii) बीडी श्रमिको के लिए परिवार कल्याण शिक्षा परियोजना—श्रम मन्त्रालय।

आदिरूपीय (प्रोटोटाइप) योजना—सांविधिक कल्याण निधि अधिनियमो

के लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से अभ्रक/बीड़ी श्रमिकों और उनके परिवार के सदस्यों के लिए चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था करने के उद्देश्य से निम्नलिखित आदिरूपीय (प्रोटोटाइप) योजनाएँ अपनाई गई हैं—

1. तपेदिक के अस्पतालों में पलंगों को आरक्षित करना।
2. चलते-फिरते चिकित्सा यूनिट।
3. कृत्रिम अंगों की सप्लाई।
4. कैंसर के इलाज के लिए पलंगों को आरक्षित करना।
5. मानसिक बीमारियों से पीड़ित श्रमिकों का इलाज।
6. सरकारी अस्पतालों में पलंगों को आरक्षित करना।
7. खनिकों के लिए चश्मों की व्यवस्था।
8. खान प्रबन्धों के लिए एम्बुलेंस गाड़ियों की व्यवस्था।
9. औषधालय का रख-रखाव करने के लिए प्रबन्धतन्त्रों को सहायता अनुदान।
10. औषधालय सेवाएँ उपलब्ध कराने के लिए वित्तीय सहायता।
11. घातक और गम्भीर दुर्घटना लाभ योजना।
12. कुष्ठ रोग की दशा में सहायता।
13. तपेदिक के मरीजों का गृहोपचार।

राज्य सरकारों द्वारा किए गए श्रम कल्याण कार्य
(Welfare Activities of the State Governments)

केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा भी कल्याणकारी कार्य किए गए हैं। महाराष्ट्र, गुजरात व राजस्थान में श्रम कल्याण केन्द्र (Labour Welfare Centres) चलाए जाते हैं। इन श्रम कल्याण केन्द्रों पर महिला विभाग और पुरुष विभाग हैं। महिला विभाग में महिला दर्जी तथा महिला सुपरवाइजर होती है। महिला दर्जी श्रमिकों की स्त्रियों को सिलाई सम्बन्धी कार्य सिखाती हैं जबकि महिला सुपरवाइजर छोटे-छोटे बच्चों तथा महिलाओं को पढ़ाने का कार्य करती हैं। ये श्रमिकों के परिवारों में जाती है और इस प्रकार की क्रियाओं के विषय में जानकारी देती हैं। पुरुष विभाग में गेम्स सुपरवाइजर, संगीत शिक्षक, वैद्य या कम्पाउण्डर होते है। आन्तरिक व बाह्य खेलकूद, वाचनालय, पुस्तकालय, चिकित्सा सुविधा, रेडियो, फिल्म दिखाना आदि सुविधाएं पुरुष विभाग द्वारा प्रदान की जाती है। इनके ऊपर श्रम कल्याण निरीक्षक होता है जिसका कार्य सम्बन्धित कल्याण केन्द्रों की विभिन्न गतिविधियों को देखना तथा उनमें समन्वय स्थापित करना है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि राज्य सरकारों ने भी श्रम कल्याण केन्द्रों की स्थापना की है। इन केन्द्रों पर संगीत शिक्षक द्वारा संगीत की शिक्षा भी दी जाती है। इन केन्द्रों की संख्या औद्योगिक श्रमिकों की संख्या की तुलना में कम है। इन केन्द्रों की विभिन्न गतिविधियों को सुचारु रूप से

चलाने के लिए पर्याप्त वित्त व्यवस्था होनी चाहिए। महिला विभाग के अन्तर्गत महिला दर्जी द्वारा चलाए जाने वाले कार्य मे वृद्धि करने हेतु अधिक सिलाई मशीनें खरीदनी चाहिए तथा उनकी समय-समय पर मरम्मत भी की जानी चाहिए। श्रमिको के बच्चो की शिक्षा हेतु भी अधिक सुविधा प्रदान करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त इन कल्याण केन्द्रो की प्रबन्ध व्यवस्था मे श्रमिको को भी हिस्सा दिया जाना चाहिए। प्रशिक्षित व्यक्तियो द्वारा केन्द्रो को चलाया जाना चाहिए। सरकार को कोई ऐसा विधान बनाना चाहिए जिससे मालिक भी कल्याण कार्यों मे अपना योगदान दे सके।

नियोजकों या मालिकों द्वारा कल्याण कार्य
(Welfare Work by Employers)

नियोजको द्वारा कल्याण कार्य स्वेच्छा से न करके विधान के अन्तर्गत प्रदान किए गए हैं। केन्टीन, पालने, विश्रामालय, स्नान घर, धोने की सुविधाएँ, चिकित्सा सुविधाएँ आदि विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत दी जाती हैं। कल्याण कार्य पर किए गए व्यय को मालिको ने 'अपव्यय' (Wastage) माना है जबकि अब अध्ययन से पता चला है कि इससे श्रमिकों की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है और इसे अपव्यय न मानकर विनियोग (Investment) माना जाता है। अधिकांश उद्योगपति कल्याण कार्यों के प्रति अनुदार भावना रखते हैं। फिर भी अब प्रगतिशील तथा उदारवादी विचारधारा वाले मालिको ने विभिन्न प्रकार के उद्योगो मे श्रम कल्याण कार्य किए हैं, जो मुख्यत निम्न प्रकार हैं—

(1) सूती वस्त्र उद्योग–बम्बई की सूती वस्त्र मिलों ने चिकित्सालय, पालने, केण्टीन, अनाज की दूकानो की सुविधाएँ आदि प्रदान की जाती हैं।

नागपुर की एम्प्रेस मिल्स ने इस क्षेत्र मे प्रशंसनीय कार्य किया है। चिकित्सा सुविधाएँ सन्तोषप्रद हैं। एक पत्रिका का भी प्रकाशन किया जाता है। बीमारी लाभ कोष की भी स्थापना की गई है।

देहली क्लोथ एव जनरल मिल्स ने कर्मचारी लाभ कोष ट्रस्ट बना रखा है। यह श्रमिको और प्रबन्धको के चुने व्यक्तियो द्वारा चलाया जाता है। लम्बी बीमारी, शादी, दाह संस्कार और अच्छे विशेषज्ञो के इलाज आदि के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। हायर सैकेण्डरी, मिडिल तथा तकनीकी पाठशालाएँ चलाई जाती हैं। एक साप्ताहिक डी. सी. एम गजट भी प्रकाशित किया जाता है।

मद्रास की बकिंघम एव कर्नाटक मिल्स द्वारा अच्छा चिकित्सालय चलाया जाता है। महिलाओ को सफाई, बच्चों के पालन-पोषण, रोगो को रोकने आदि का ज्ञान देने हेतु विशेष कक्षाएँ चलाई जाती हैं।

बंगलौर में ऊनी, सूती और रेशम मिल्स द्वारा भी कल्याण कार्यों का अच्छा समन्वय किया गया है। चिकित्सालय, प्रसूति और बाल कल्याण केन्द्र आदि की सन्तोषप्रद सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

अत अधिकांश सूती वस्त्र मिलों में श्रम कल्याण कार्य सन्तोषप्रद है। फिर भी इन कार्यों मे विभिन्न केन्द्रो पर समानता नही पाई जाती है।

(ii) *जूट उद्योग (Jute Mill Industry)*—इस उद्योग मे श्रम कल्याण कार्य करने वाली एक मात्र सस्था भारतीय जूट मिल्स सघ (Indian Jute Mills Association) हैं। यह मालिको की सस्था है। इसके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों मे कल्याण केन्द्र चलाए जाते हैं। इसके द्वारा आन्तरिक व बाह्य खेल, मनोरजन सुविधाएँ, पुस्तकालय, वाचनालय, प्राथमिक शालाएँ, श्रमिकों के बच्चो को छात्र-वृत्तियाँ देना आदि कल्याणकारी कार्य किए जाते हैं।

(iii) इन्जीनियरिंग उद्योग (Engineering Industry)—कई मिलो मे चिकित्सालय, केण्टीन, शैक्षणिक और मनोरंजन सुविधाएँ प्रदान की जाती है। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी द्वारा 8 चिकित्सालयो और अच्छी साज-सज्जा वाले अस्पताल की व्यवस्था की गई है। प्रसूति और बाल कल्याण केन्द्र भी चलाए जाते हैं।

कागज, चीनी, सीमेण्ट, चमड़ा, रासायनिक, पदार्थ तेल आदि उद्योगो मे अस्पताल, चिकित्सालय, शिक्षा और मनोरजन सुविधाएँ आदि मालिको द्वारा प्रदान की जाती हैं।

(iv) बागान (Plantations)—इस उद्योग मे श्रम कल्याण कार्यों हेतु बागान श्रम अधिनियम, 1951 (Plantations Labour Act of 1951) के प्रावधान रखे गए हैं। गम्भीर बीमारी हेतु बागानों मे अस्पतालो की व्यवस्था है। असम मे 19 अस्पताल और 6 चिकित्सालय खोले गए हैं जहाँ पर बागान श्रमिको का इलाज किया जाता है। कल्याण कार्यों हेतु असम बागान श्रमिको हेतु असम चाय बागान कर्मचारी कल्याण कोष अधिनियम, 1959 (Assam Tea Plantations Employee's Welfare Fund Act of 1959) पास किया गया है। इस कोष का निर्माण राज्य या केन्द्रीय सरकार के अनुदान, मालिको से प्राप्त दण्ड राशियाँ, ऐच्छिक दान तथा अन्य उधार धन से दिया गया है।

कोयला, लोहा और अभ्रक की खानो मे काम करने वाले श्रमिको के कल्याण के लिए श्रम कल्याण कोषो की स्थापना की गई है। इन कोषो की सहायता से चिकित्सा सुविधाएँ, आन्तरिक एव बाह्य खेलकूद, मनोरजन, वाचनालय, पुस्तकालय आदि की *सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।*

श्रम संघों द्वारा कल्याण कार्य
(Labour Welfare by Trade Unions)

भारतीय श्रम संघो का कार्य अपने सदस्यो के वेतन तथा उनकी कार्य दशाओ मे सुधार हेतु मालिकों से संघर्ष करने तक ही सीमित रहा है। श्रमिको के लिए रचनात्मक कार्य करने मे उनका योगदान बहुत कम रहा है। श्रमिक सघ निर्धन होने से इस क्षेत्र मे अपना योगदान देने में समर्थ नही रहे हैं। फिर भी कुछ सुदृढ

श्रम संघों ने अपने सीमित कोषों से श्रम कल्याण कार्यों के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अहमदाबाद सूती वस्त्र श्रम संघ (Ahmedabad Textile Labour Association) ने कल्याण कार्य के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया है। यह संघ अपनी आय का 75% कल्याण कार्यों पर व्यय करता है। इसके अन्तर्गत 25 केन्द्र चलते हैं जहाँ पर सांस्कृतिक कार्यक्रम, वाचनालय, पुस्तकालय, आन्तरिक व बाह्य खेलकूद, मनोरंजन, चिकित्सा आदि सुविधाएँ उपलब्ध हैं। संघ द्वारा 9 शिक्षा संस्थाएँ चलाई जाती हैं, जिनमें 6 स्कूल, 2 अध्ययन भवन तथा 1 बालिका छात्रावास है। संघ द्वारा श्रमिकों के बच्चों को उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं। इस संघ द्वारा 'मजूर सन्देश' (Majur Sandesh) नाम का पत्र भी निकाला जाता है।

कानपुर की मजदूर सभा (Mazdoor Sabha) द्वारा भी श्रमिकों के कल्याण के लिए वाचनालय, पुस्तकालय और चिकित्सालय की सुविधाएँ प्रदान की गई हैं।

रेल कर्मचारी संघों ने भी अपने सदस्यों हेतु क्लब खोलना, सहकारी समितियाँ, मुकदमे की पैरवी आदि रूपों में कल्याणकारी कार्य किए हैं।

इन्दौर की मिल मजदूर यूनियन (Mill Mazdoor Union, Indore) द्वारा एक श्रम कल्याण केन्द्र चलाया जाता है। यह केन्द्र तीन विभागों के अन्तर्गत चलाया जाता है—बाल मन्दिर, पुरुष केन्द्र और महिला मन्दिर। इन केन्द्रों पर शिक्षा, स्वास्थ्य, सिलाई, शारीरिक प्रशिक्षण आदि की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं।

अधिकांश श्रमिकों के संगठन ने श्रम कल्याण कार्य में अधिक रुचि नहीं ली है। इसका सबसे प्रमुख कारण वित्तीय कठिनाई का होना है।

समाजसेवी संस्थाओं द्वारा कल्याण कार्य
(Welfare Work by Social Service Agencies)

कुछ समाज सेवी संस्थाओं द्वारा भी श्रम कल्याण कार्य क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया गया है। इन संस्थाओं में 'बम्बई समाज सेवी लीग', 'सेवा सदन समिति', 'बम्बई प्रेसीडेन्सी महिला मण्डल', 'वाई० एम० सी० ए०' आदि प्रमुख हैं। बम्बई की समाज सेवा लीग द्वारा रात्रिकालीन शिक्षण संस्थाएँ चलाई जाती हैं। इसमें श्रमिकों में शिक्षा का प्रसार होगा। पुस्तकालय, वाचनालय, स्काउटिंग, मनोरंजन व खेलकूद की व्यवस्था, सहकारी समितियों की स्थापना आदि सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। पूना और बम्बई की सेवा सदन समितियों द्वारा बाल व महिलाओं को सामाजिक, शैक्षणिक और चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। ये सामाजिक कार्य कर्त्ताओं को तैयार करने का कार्य भी करती हैं। पश्चिम बंगाल में महिला समितियों द्वारा गाँव-गाँव में जाकर शिक्षा प्रसार और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा के कार्य किए जाते हैं। इस प्रकार श्रम कल्याण कार्यों के क्षेत्र में इन सामाजिक

सेवा संस्थाओं का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण और सराहनीय रहा है। इसके प्रचार, प्रसार और प्रोत्साहन के कारण हमारे देश मे श्रमिक कल्याण कार्य के क्षेत्र मे कई कानून बनाए जा सके हैं।

नगरपालिकाओं द्वारा श्रम कल्याण कार्य
(Labour Welfare Work by Municipalities)

नगर निगमो और नगरपालिकाओं द्वारा भी श्रम कल्याण कार्य के क्षेत्र मे अपना योगदान दिया गया है। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, मद्रास और अजमेर के नगर निगमो द्वारा सहकारी साख समितियो की व्यवस्था की गई है। बम्बई नगर निगम द्वारा एक अलग से कल्याण विभाग (Welfare Department) चलाया जाता है। कानपुर व अजमेर मे नगर निगमों द्वारा प्राथमिक शालाएँ चलाई जाती है। कलकत्ता नगर निगम द्वारा रात्रि शालाएँ, शिशु सदन तथा केण्टीन आदि चलाने की व्यवस्था है। दिल्ली और तमिलनाडु मे प्रौढ़ शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जाती है। कई नगरपालिकाओं मे प्रोविडेण्ट फण्ड योजना भी चलाई जाती है। बम्बई की औद्योगिक बस्तियाँ जिन्हे 'चाल' कहा जाता है, वहाँ श्रमिको हेतु आन्तरिक तथा बाह्य खेलो, वाचनालयो तथा मनोरंजन सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाता है।

श्रम कल्याण कार्य के विभिन्न पहलू
(Various Aspects of Labour Welfare Work)

श्रम कल्याण कार्य के पहलू उद्योग की प्रकृति, उसकी स्थिति, काम मे प्रगति एव सगठन के ढग और उसके परिणाम पर निर्भर करते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण श्रम कल्याण कार्य के पहलू नीचे दिए गए हैं—

1. केण्टीन (Canteens)—किसी भी औद्योगिक संस्थान मे केण्टीन के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। इसका संस्थान के श्रमिको के स्वास्थ्य, कुशलता और कल्याण पर प्रभाव पड़ता है। इसका उद्देश्य सस्ता और पोषाहारयुक्त भोजन सुलभ कराना है। इससे श्रमिक एक-दूसरे के अधिक निकट आते हैं और प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

किसी भी सस्थान मे केण्टीन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इसमे पर्याप्त वस्तुएँ हो, साफ-सुथरी जगह हो और अच्छे वातावरण मे कारखाने मे इसे स्थापित किया जाए। यह न लाभ न हानि (No Profit No Loss) के आधार पर चलाया जाना चाहिए। प्रबन्धको द्वारा इसे अनुदान दिया जाना चाहिए। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी, डी सी. एम., लिवर ब्रादर्स आदि द्वारा बहुत ही सुन्दर केण्टीन सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। कारखाना अधिनियम, 1948, खान अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत 250 या इससे अधिक श्रमिक होने पर कारखाने तथा खानो मे मालिक द्वारा केण्टीन की व्यवस्था करनी पड़ती है। बागान श्रम अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत 150 या इससे अधिक श्रमिक होने पर केण्टीन की व्यवस्था करना आवश्यक है।

2 पालने (Creches)—छोटे बच्चो के लिए पालनों की व्यवस्था करना आवश्यक है क्योकि महिला श्रमिक कार्य करती रहती है तथा बच्चो को मिट्टी आदि खाने, गन्दे होने आदि से बचाने के लिए इसकी व्यवस्था आवश्यक है। भारत सरकार ने विभिन्न राज्य सरकारो को कानून द्वारा पालनो की व्यवस्था हेतु कानून बनाने का निर्देश दिया है। कारखानों मे जहाँ 50 या इससे अधिक महिला श्रमिक कार्य करती हैं वहाँ पर पालनो की व्यवस्था की जानी चाहिए। खान अधिनियम व बागान अधिनियम मे भी पालने की व्यवस्था करने का प्रावधान है।

श्रम अनुसंधान समिति, 1946 ने कहा था कि अधिकांश कारखानो मे पालनो की स्थिति असन्तोषजनक है। कार्य के स्थान से यह व्यवस्था दूसरे कोने पर की जाती है जहाँ पर उनकी देखभाल के लिए कुछ भी प्रबन्ध नही किया जाता है और न ही बच्चो को खेलने के लिए खिलौने आदि की व्यवस्था की जाती है।

पालने की अच्छी व्यवस्था होने पर बच्चे की माँ अपने बच्चे की सुरक्षा और आराम से रुचि लेकर कार्य करती है जिससे उसकी कार्य-कुशलता बढती है। मदुरा मिल्स, बकिंघम और कर्नाटक मिल्स तथा डी सी. एम मे पालनो की व्यवस्था सन्तोषप्रद है।

3. मनोरंजन सुविधाएँ (Recreational Facilities)—श्रम अनुसधान समिति (Labour Investigation Committee) ने मनोरंजन सुविधाओ पर जोर दिया है। सारे दिन का थका हुआ श्रमिक कार्य की थकावट, नीरसता आदि को स्वयं के साधनो से दूर नही कर सकता। इस थकावट, नीरसता आदि को दूर करने हेतु नाटक, वाद-विवाद, सिनेमा, रेडियो, संगीत, वाचनालय, पुस्तकालय व पार्क आदि की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिएँ। मनोरजन की सुविधाओ के अभाव मे श्रमिक कई सामाजिक बुराइयो (Social Vices) उदाहरणार्थ—शराबखोरी, जुआखोरी, वेश्यागमन आदि का शिकार बन जाता है। मनोरजन सुविधाओ की ओर मालिको व सरकारो द्वारा कोई विशेष ध्यान नही दिया गया था। श्रम अनुसधान समिति ने सुझाव दिया है कि मनोरंजन की सुविधाएँ प्रदान करना मालिको का ऐच्छिक उत्तरदायित्व होना चाहिए। उन पर किसी प्रकार का वैधानिक दायित्व नही होना चाहिए।

4. चिकित्सा सुविधाएँ (Medical Facilities)—श्रमिको की कार्यकुशलता पर उनके स्वास्थ्य का प्रभाव पडता है। अच्छे स्वास्थ्य हेतु चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। बीमारी और खराब स्वास्थ्य के कारण श्रमिको मे अनुपस्थिति, श्रमिक परिवर्तन, श्रम प्रवासिता तथा औद्योगिक अकुशलता तथा अशान्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

समूचे देश मे ही चिकित्सा सुविधाएँ असमुचित तथा अपर्याप्त हैं। मालिको द्वारा प्रदान की गई ये सुविधाएँ भी असन्तोषजनक हैं। श्रम अनुसधान समिति ने कहा है कि चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान करने का प्रमुख दायित्व सरकार का है फिर भी इन सुविधाओ हेतु मालिको और श्रमिको का सहयोग भी अपेक्षित है।

कारखाना अधिनियम, 1946 के अन्तर्गत कुछ राज्यों मे चिकित्सा सुविधाओं की देख-रेख हेतु चिकित्सा निरीक्षको की नियुक्ति की गई है।

5. धोने और नहाने की सुविधाएँ (Washing & Bathing Facilities)—कारखाना अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत कपडे धोने तथा गन्दे हाथ पैर धोने तथा नहाने की पूर्ण व्यवस्था का प्रावधान है। श्रमिको को अपने गन्दे कपडे धोकर सुखाने तथा टाँकने की व्यवस्था भी की गई है। कारखाना अधिनियम के अतिरिक्त खान अधिनियम, मोटर यातायात कर्मचारी अधिनियम, बागान श्रम अधिनियम, आदि के अन्तर्गत धोने और नहाने की सुविधाओ के सम्बन्ध में प्रावधान किए गए हैं।

6. शैक्षिणक सुविधाएँ (Educational Facilities)—श्रमिको में अशिक्षा कई बुराइयो की जननी है। अत श्रमिको मे शिक्षा का प्रसार करना और इसकी सुविधाएँ प्रदान करना प्रत्येक कल्याणकारी राज्य का उत्तरदायित्व हो जाता है। शिक्षा से श्रमिको की मानसिक दक्षता और आर्थिक उत्पादकता में वृद्धि होती है। औद्योगिक विकास के कारण तीव्र गति से उत्पादन के विभिन्न तरीको मे परिवर्तन हो रहा है। इसमे वही श्रमिक अधिक सफल हो सकता है जिसमे कुशलता प्राप्त करने की क्षमता है। श्रम अनुसधान समिति (Labour Investigation Committee)ने शिक्षा के सम्बन्ध मे राज्यो पर जिम्मेदारी डाली है। यही कारण है कि सन् 1958 मे श्रमिको की शिक्षा हेतु एक केन्द्रीय मण्डल (Central Board for Workers Education)की स्थापना की गई। इस बोर्ड के माध्यम से श्रमिको की शिक्षा की दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण कदम लिया गया है। इस बोर्ड के अन्तर्गत सरकार द्वारा शिक्षा अधिकारियो (Education Officers) की नियुक्ति की जाती है। ये शिक्षा अधिकारी प्रादेशिक कार्यालयो मे चुने हुए श्रमिको को श्रम कानून तथा अन्य विषयो पर शिक्षा देते हैं। उन्हे श्रमिको के अध्यापक (Workers' Teachers) कहा जाता है। ये बाद मे अपने सस्थानो मे वापस जाकर श्रमिको में शिक्षा के प्रसार का कार्य करते हैं।

उपरोक्त श्रम कल्याण कार्य के विभिन्न पहलुओ का अध्ययन करने पर हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इन विभिन्न पहलुओं को प्रभावपूर्ण ढग से लागू करने पर श्रमिकों की कार्य-कुशलता पर अनुकूल प्रभाव पडता है। इन पर जो व्यय किया जाना है वह अपव्यय न होकर विनियोग माना जाता है क्योकि इससे श्रमिक के स्वास्थ्य, कार्य-कुशलता तथा जीवन-स्तर पर अनुकूल प्रभाव पडता है। राष्ट्रीय उत्पादन बढता है, प्रति व्यक्ति आय बढती है और लोगो का जीवन-स्तर उन्नत होता है। इन सब लाभो को ध्यान में रखते हुए सरकार, मालिको, श्रम संघों तथा समाज सेवी सस्थाओ का यह दायित्व हो जाता है कि वे संयुक्त रूप से मिलकर इन विभिन्न पहलुओ को प्रोत्साहित करें। सरकार को न्यूनतम स्तर निर्धारित करके उनके प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन हेतु मशीनरी को सुदृढ करना चाहिए। मालिको को इस

वैधानिक दायित्व को पूरी तरह निभाना चाहिए। मालिकों को इस दिशा मे एक उदारवादी और प्रगतिशील विचारधारा को अपनाना होगा। उन्हे इस व्यय को अपव्यय न समझकर विवेकपूर्ण विनियोग (Rationale Investment) समझना चाहिए क्योंकि इससे श्रमिको की कार्य-कुशलता बढती है और इसके परिणामस्वरूप उसके लाभो मे वृद्धि होती है।

श्रम कल्याण कार्य को सरकार, मालिक और श्रम संघो द्वारा एक संयुक्त उत्तरदायित्व (Joint Responsibility) समझना चाहिए। कोई भी अकेला पक्ष इस कार्य को सफलतापूर्वक नही कर सकता है क्योंकि इस पर वित्तीय लागत अधिक आती है, जिसे अकेला पक्ष वहन नही कर सकता है।

हमारे देश मे श्रम कल्याण कार्य के क्षेत्र मे अच्छी शुरूआत कर दी गई है। फिर भी इस कार्य के मार्ग मे कई बाधाएँ आती है जैसे श्रमिको की प्रवासिता की विशेषता, श्रम संघों मे प्रभावपूर्ण सगठन की कमी, श्रम सघो के पास कोषो की कमी, श्रमिको की अशिक्षा तथा अन्य सामाजिक और आर्थिक दशाएँ जो वर्तमान समय मे हमारे देश में हैं, लेकिन इन बाधाओ के बावजूद भी सभी पक्षो—सरकार, श्रम सघो और मालिकों को सयुक्त रूप से मिलकर यह करना चाहिए। इसे एक सुनियोजित योजना बनाकर तेजी से लागू किया जाना चाहिए, सफलता अवश्य मिलेगी।

Appendix—1

श्रम मन्त्रालय का ढाँचा और कार्य[1]

श्रम मन्त्रालय का सम्बन्ध मुख्यतः औद्योगिक सम्बन्ध, मजदूरी, रोजगार, कर्मकारों के कल्याण तथा, सामाजिक सुरक्षा आदि विषयों से है जिनका उल्लेख भारत के संविधान की 7वीं अनुसूची की संघीय और समवर्ती सूचियों में किया गया है और यह मन्त्रालय इन मामलों के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नीतियाँ निर्धारित करता है। रेलवे, खानों, तेल क्षेत्रों, मुख्य पत्तनों, बैंकों, बीमा कम्पनियों (जिनकी शाखाएँ एक से अधिक राज्यों में हैं) तथा ऐसे अन्य उपक्रमों जिनका उल्लेख संघीय सूची में किया गया है और जिनके श्रम सम्बन्धों के लिए केन्द्रीय सरकार सीधे जिम्मेदार है, को छोड़कर श्रम नीति के कार्यान्वियन के लिए राज्य सरकारें सामान्यतः जिम्मेदार हैं, परन्तु केन्द्रीय सरकार समन्वय कार्य करती है। यह मन्त्रालय कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948; कर्मचारी भविष्य निधि तथा प्रकीर्ण-उपबन्ध अधिनियम, 1952 के कार्यान्वियन और खानों तथा बीडी उद्योग में श्रमिकों के सम्बन्ध में कल्याण निधि की व्यवस्था के लिए भी उत्तरदायी है। यह मन्त्रालय व्यक्तियों के कौशल को बढ़ाने के लिए उन्हें प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान करता है, ताकि उनकी नियोज्यता बेहतर हो सके। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाज सुरक्षा संघ से सम्बन्धित सभी कार्यकलापों के लिए यह मन्त्रालय नोडल संगठन के रूप में कार्य करता है। यह मन्त्रालय इन संगठनों की बैठकों और सम्मेलनों में प्रतिनिधियों के भाग लेने सम्बन्धी समन्वयन कार्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम मानकों और इन निकायों की अन्य सिफारिशों के कार्यान्वियन का कार्य करता है। *श्रम मन्त्रालय को हाल ही में बनाए गए उत्प्रवास अधिनियम, 1983 के अधीन* भारतीय श्रमिकों को विदेशों में नौकरी पर जाने तथा उनकी वापसी सम्बन्धी कार्य भी सौंपा गया है। इस नए कार्य को सम्भालने के लिए उत्प्रवास प्रोटेक्टर के सात कार्यालयों सहित एक पूर्ण उत्प्रवासी प्रभाग जिम्मेदार है।

श्रम मन्त्रालय विभिन्न त्रिपक्षीय सम्मेलनों और समितियों, श्रम मन्त्रियों तथा सचिवों के सम्मेलनों के लिए सचिवालय की भी व्यवस्था करता है। श्रम मन्त्रालय का एक संगठनात्मक चार्ट परिशिष्ट—1 पर दिया गया है।

1 श्रम मन्त्रालय, वार्षिक रिपोर्ट, 1985–86.

इस मन्त्रालय के चार सम्बद्ध कार्यालय, 21 अधीनस्थ कार्यालय और 6 स्वायत्त संगठन हैं।

सम्बद्ध कार्यालयो के महत्त्वपूर्ण कार्य इस प्रकार हैं—

(1) रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय सारे देश मे नीतियाँ, प्रक्रियाओ तथा मानक निर्धारित करने और रोजगार सेवा प्रक्रियाओ एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रमो के समग्र समन्वय के लिए उत्तरदायी है।

(2) मुख्य श्रमायुक्त (केन्द्रीय) कार्यालय ऐसे उद्योगो और प्रतिष्ठानो मे श्रम कानूनो के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी हैं, जिनके सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार समुचित प्राधिकरण है। यह कार्यालय केन्द्रीय श्रमिक संगठनो से सम्बद्ध यूनियनो की सदस्यता के सत्यापन के लिए भी जिम्मेदार है।

(3) कारखाना सलाह सेवा और श्रम विज्ञान केन्द्र महानिदेशालय कारखानो और गोदियो मे श्रमिको की सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण से सम्बन्धित है। यह महानिदेशालय राज्य सरकारों द्वारा कारखाना अधिनियम, 1948 के कार्यान्वयन का समन्वय करने तथा इस अधिनियम के अधीन आदर्श नियम बनाने के लिए जिम्मेदार है। यह भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम, 1934 और उसके अधीन बनाए गए विनियमो तथा गोदी कर्मकार (सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण) योजना, 1961 को भी लागू करता है। यह औद्योगिक-व्यावसायिक बीमारियो, औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और औद्योगिक फिजियालोजी में अनुसन्धान करता है। यह उत्पादिता, औद्योगिक इंजीनियरिंग, तकनीकी और प्रबन्धकीय सेवाओं मे प्रशिक्षण भी देता है और औद्योगिक सुरक्षा में एक वर्ष की अवधि का डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी आयोजित करता है।

(4) श्रम ब्यूरो निदेशालय रोजगार, मजदूरी दरों, आय, औद्योगिक विवादों, कामकाज की दशाओ आदि के बारे मे सांख्यिकीय तथा अन्य सूचना एकत्र और प्रकाशित करने के लिए जिम्मेदार है। यह औद्योगिक तथा कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध मे उपभोक्ता मूल्य सूचकांक संकलित और प्रकाशित भी करता है।

अधीनस्थ कार्यालयो मे से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यालय और उनके कार्य इस प्रकार हैं—

(1) खान-सुरक्षा महानिदेशालय को खान अधिनियम, 1952 के उपबन्धो तथा उसके अधीन बनाए गए नियमो, और विनियमो को लागू करने का काम सौंपा गया है। इसके अतिरिक्त यह निदेशालय गैर-कोयला खानो सम्बन्धी प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 के अधीन बनाए गए खान प्रसूति प्रसुविधा नियमो को लागू करता है। यह निदेशालय खानो और तेल क्षेत्रो को लागू भारतीय बिजली अधिनियम, 1910 के उपबन्धो का प्रवर्तन भी करता है।

(2) कल्याण निधि संगठन लौह अयस्क, मैंगनीज और क्रोम अयस्क, अभ्रक, चूना पत्थर तथा डोलोमाइट खानो और बीडी उद्योग मे विद्यमान है जो सम्बन्धित उद्योग मे नियुक्त श्रमिको के कल्याण को बढ़ावा देते हैं।

श्रम मन्त्रालय के छः स्वायत्त संगठनों द्वारा किए जाने वाले कार्य निम्नलिखित है—

(i) कर्मचारी राज्य बीमा निगम कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी है, जिसमे बीमारी, प्रसूति और रोजगार के दौरान सभी चोट के मामलों मे चिकित्सा सुविधा और नकद लाभ की व्यवस्था है।

(ii) कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1952 के अधीन स्थापित कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, भविष्य निधि, परिवार पेन्शन तथा जमा सम्बद्ध बीमा योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है।

(iii) राष्ट्रीय खान सुरक्षा परिषद् एक पंजीकृत संस्था है। इस परिषद् का उद्देश्य प्रत्येक खनिज को खान सुरक्षा सन्देश देना और उसे सभी प्रकार के सुरक्षा कार्यों के साथ सहयोजित कराना है।

(iv) राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् एक पंजीकृत संस्था है, जो प्रचार और प्रसार के विभिन्न साधनों प्रमुखत श्रव्य-दृश्य साधनो से खान श्रमिको मे सुरक्षा जागरूकता को बढा देती है।

(v) केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड एक पंजीकृत संस्था है, जो श्रमिको को ट्रेड संघवाद के तकनीको मे प्रशिक्षण देने सम्बन्धी योजना संचालित करता है। श्रमिको को उनके अधिकारों और कर्त्तव्यो का बोध कराना भी इस बोर्ड का कार्य है। बोर्ड ने ग्रामीण श्रमिक शिक्षा तथा क्रियात्मक प्रौढ शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम भी शुरू किए हैं।

(vi) राष्ट्रीय श्रम संस्थान एक पंजीकृत संस्था है, जो कार्योन्मुख अनुसन्धान करती है और ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रो मे ट्रेड यूनियन आन्दोलन मे मूलभूत श्रमिकों को और औद्योगिक सम्बन्धो, कार्मिक प्रबन्ध, श्रमिक कल्याण आदि से सम्बन्धित अधिकारियों को भी प्रशिक्षण प्रदान करती है।

Appendix—2

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन[1]

प्रथम विश्व-युद्ध की समाप्ति के पश्चात् सन् 1919 मे राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई जिसका एक लक्ष्य महान् उद्योगो मे श्रमिको की दिशा मे सुधार करना भी था। इसी उद्देश्य के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना हुई और यह विश्व के विशाल जनसमूह के कल्याण का प्रतीक माना जाने लगा।

श्रमिक कल्याण के लिए सुझाव

श्रमिक कल्याण के लिए इसमे निम्नलिखित सुझाव दिए गए जिनका उल्लेख श्रमिक चार्टर मे है—

(1) श्रमिकों को मात्र वाणिज्य की वस्तु न समझा जाए, उनका क्रय-विक्रय न किया जाए, उन्हें उतना ही महत्त्व दिया जाए जितना देश के किसी वरिष्ठ नागरिक को दिया जाता है।

(2) नियोक्ता एवं श्रमिको को सगठन बनाने के पूर्ण अधिकार दिए जाएँ जिससे वे अपने अधिकारो एवं कर्त्तव्यो का सुचारु रूप से पालन कर सकें। इस संघ का उद्देश्य वैध लक्ष्यो की प्राप्ति मे सहायक होना है।

(3) श्रमिको को देश एवं काल के अनुरूप उचित मजदूरी अथवा वेतन प्रदान किया जाए जिससे राष्ट्रीय जीवन-स्तर मे गिरावट न आने पाए।

(4) आठ घण्टे से अधिक किसी श्रमिक से कार्य न लिया जाए और कार्य की अवधि सप्ताह मे 48 घण्टे से अधिक न हो।

(5) प्रत्येक श्रमिक को 48 घण्टे साप्ताहिक कार्य के बाद 24 घण्टे का अवकाश साप्ताहिक भी मिलना चाहिए। इसमे साप्ताहिक अवकाश की व्यवस्था भी हो।

(6) बच्चो के मानसिक एवं शारीरिक विकास मे अवरोध उत्पन्न न हो, इसके लिए बच्चो से श्रम लेने पर रोक लगाने की व्यवस्था की जाए।

(7) स्त्री और पुरुष श्रमिको को समान कार्य के लिए समान मजदूरी की व्यवस्था की जाए।

1 डॉ. देवेन्द्र प्रताप नारायण सिंह : औद्योगिक सम्बन्ध एवं श्रम समस्याएँ, पृष्ठ 440–48 का सारांश।

(8) देशी अथवा विदेशी श्रमिकों के आर्थिक क्रिया-कलापो मे कोई अन्तर न किया जाए।

(9) प्रत्येक देश अपने श्रमिको के लिए ऐसी व्यवस्था करे जिससे उनको अपने कार्यों के सम्पादन मे किसी प्रकार का अवरोध महसूस न हो। दूसरे शब्दो मे, सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे श्रमिक अपने कार्यों को उचित ढंग से आगे बढा सकें।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय जेनेवा मे स्थित है। इसकी शाखाएँ अन्य नौ देशो में भी हैं। इसका प्रमुख कार्य विषय-सामग्री इकट्ठी करना तथा अनुसंधान के कार्यों को सचालित करने मे सहायता प्रदान करना है। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम गोष्ठी के कार्य संचालन मे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सामाजिक एवं औद्योगिक व्यवस्था भी इसके कार्य-क्षेत्र में आती है। यहाँ से कई महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं, जैसे-(1) अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक समीक्षा (मासिक), (2) उद्योग एवं श्रम (पाक्षिक)। अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय मे विभिन्न देशो के विशेषज्ञ कार्यरत हैं जो अपने देश के योजना-कार्यों के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण परामर्श देते हैं। कार्यालय का मुख्य अधिशासी महानिदेशक कहलाता है। इस कार्यालय की एक शाखा सन् 1928 से ही भारत मे कार्यरत है। भारत मे यह सामाजिक एवं आर्थिक विकास विषयक सूचना प्रसारित करता है।

भारत और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन

भारत पर इस संगठन का उत्तरदायित्व इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि भारत इस सगठन के साथ सहयोग करके अपने देश में सामाजिक न्याय के सिद्धान्तो को कार्यान्वित करा रहा है। पिछले 56 वर्षों से इस संगठन ने देश मे शान्ति स्थापना मे एवं उद्योगो मे आपसी तनाव को दूर करने मे सहायता प्रदान की है। भारतीय सविधान ने भी इस तथ्य पर जोर दिया है कि वह अपने नागरिको के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की व्यवस्था करेगा। संविधान का यह प्रमुख उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सगठन का प्रमुख ध्येय है और यह तभी सम्भव है जब देश मे जन-कल्याण द्वारा व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य और सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सके।

नागरिको के मौलिक अधिकारो की सुरक्षा परम आवश्यक है। मौलिक अधिकारो की सुरक्षा के लिए संविधान मे ऐसे मार्गदर्शक सिद्धान्तो की परिकल्पना की गई जो सभी समुदायों को स्वतन्त्रता देती है।

कार्यक्रम,

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यकलापो पर विचार व्यक्त करते हुए श्रम आयोग ने यह सुझाव दिया है कि यदि भारत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यक्रमों मे सहयोग करता है तो उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह उन कार्यक्रमो

द्वारा अपने यहाँ की श्रम व्यवस्था को सुधारने का प्रयास करे। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने सन् 1950 के बाद ऐसे कार्यक्रमो को प्रोत्साहित किया है जिनके द्वारा किसी देश के आर्थिक विकास में सहायता मिल सके। भारतवर्ष भी इससे अनेक रूपो मे लाभान्वित हुआ है, उदाहरणस्वरूप, सन् 1951 मे श्रम संगठन से हुए समझौते के अन्तर्गत तकनीकी सहायता, विशेषत विशेषज्ञो के रूप मे तथा प्रशिक्षण छात्रवृत्ति के रूप मे मिली है। इन विशेषज्ञो ने निम्नलिखित क्षेत्रो मे कार्य किए हैं—(1) सामाजिक सुरक्षा, (2) उत्पादकता, (3) औद्योगिक प्रशिक्षण, (4) रोजगार सूचना, (5) सलाह, (6) दस्तकारी प्रशिक्षण, (7) लघु उद्योगो सम्बन्धी प्रशिक्षण, (8) औद्योगिक सम्बन्ध प्रशिक्षण, (9) श्रमिक शिक्षा, (10) औद्योगिक स्वास्थ्य, (11) खदानो की सुरक्षा, (12) प्रबन्ध मे विकास, (13) औद्योगिक मनोविज्ञान तथा (14) औद्योगिक तकनीक आदि। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने नौ विशेष वित्त कोष कार्यक्रम भी दिए हैं। इन सभी कार्यक्रमो का मुख्य उद्देश्य भारत के औद्योगिक विकास की गति को तीव्र करना है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का श्रमिक आन्दोलन से सम्बन्ध

भारतवर्ष के श्रमिक आन्दोलन को गति देने मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। संगठन के उद्देश्य इस बात का स्पष्टीकरण करते हैं कि श्रमिक उन लक्ष्यो के आधार पर अपने और अपनी संस्थाओ को आगे बढाएँ और अपने अधिकारो एव कार्यों के प्रति जागरूक हो। श्रमिको की ज्ञानवृद्धि के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए है। समय-समय पर भारतीय प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो मे सम्मिलित होते रहे हैं और अन्य राष्ट्रो के श्रमिकों से सम्बद्ध विचारो का आदान-प्रदान करते है जिससे जागरण की नव-भावनाओ का उदय होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का श्रम अधिनियम पर प्रभाव

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारतीय अधिनियम के विकास मे भी सहायता प्रदान की है। अब तक भारत मे अनेक महत्त्वपूर्ण श्रम अधिनियम बनाए जा चुके हैं। इन अधिनियमो के निर्माण मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। विद्वानो का यह मत है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन श्रमिको की समस्याओ मे जनता की रुचि को बढाने का कार्य करता है। इसने ऐसे कदम भी उठाए हैं जिनसे श्रमिकों को प्रोत्साहन मिला है। ऐसे समय मे यदि श्रमिक संगठन न रहा होता तो भारतीय श्रम के कार्यों मे उतना सुधार भी नही हो पाता जितना हुआ है। प्रत्यक्ष रूप मे भारतीय श्रम सुधार कार्यों मे जो भी प्रगति हुई है वह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सहयोग से ही हो सकी है। इस तथ्य को रायल श्रम आयोग (1929–31) तथा राष्ट्रीय श्रम आयोग (1969) ने भी स्वीकारा है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का भारतीय औद्योगिक सम्बन्ध पर प्रभाव

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने श्रमिक, नियोक्ता एवं सरकार इन तीनों को एक साथ कार्य करने के लिए प्रेरित किया है। भारत में भी विशेष रूप से द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् से प्रबन्ध एवं श्रमिक आपसी विवादो के निवारण के लिए त्रिदलीय समझौता का सहारा लेने लगे हैं। संगठन के प्रमुख उद्देश्यो मे औद्योगिक शान्ति और व्यवस्थित प्रबन्ध विशेष उल्लेखनीय है। इसने भारत की श्रम व्यवस्था को सुधारने मे काफी सहायता प्रदान की है। सामाजिक दृष्टिकोण से भी संघर्ष मिटाने मे और राष्ट्रीय भावनाओ को जाग्रत करने में श्रमिक संगठनो ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस सगठन के भावी कार्यक्रमों के आधार पर भारत के औद्योगिक सम्बन्ध प्रगतिशील हैं।



Appendix—3



वर्तमान श्रम कानूनों में संशोधन

(श्रम मन्त्रालय की रिपोर्ट 1985–86)

बोनस सदाय (संशोधन) अधिनियम, 1985

मई, 1985 में बोनस अधिनियम, 1965 मे सशोधन किया गया था। इस सशोधन द्वारा इस अधिनियम की धारा 12 का लोप कर दिया गया था जिसके अनुसार 1,600 रुपये प्रतिमाह मजदूरी/वेतन पाने वाले कर्मचारी बोनस की गणना के लिए पहले से विद्यमान सीमा के किसी प्रतिबन्ध के बिना अपनी वास्तविक मजदूरी/वेतन पर आधारित बोनस के पात्र होगे।

सितम्बर, 1985 को एक अध्यादेश जारी किया गया था और 1984 के दौरान किसी भी दिन शुरू होने वाले लेखा वर्ष और उसके बाद के प्रत्येक लेखा वर्ष के लिए बोनस के भुगतान के सम्बन्ध मे इस संशोधन को पूर्वप्रभावी कर दिया गया।

7 नवम्बर, 1985 को दूसरा अध्यादेश जारी किया गया जिसके द्वारा बोनस की पात्रता सीमा 1,600 रुपये प्रतिमाह से बढ़ाकर 2,500 रुपये कर दी गई थी। तथापि वे कर्मचारी जो 1,600 रुपये से 2,500 रुपये प्रतिमाह तक मजदूरी/वेतन पा रहे हैं उनके बोनस का निर्धारण उसी प्रकार होगा मानो उनकी मजदूरी/वेतन 1,600 रुपये प्रतिमाह है। इस सशोधन को भी 1984 मे किसी भी दिन से शुरू होने वाले लेखा वर्ष से लागू किया गया। इन दो अध्यादेशो को बदलने के लिए ससद् के शीतकालीन अधिवेशन मे एक विधेयक दोनो सदनो द्वारा पारित किया गया और 19 दिसम्बर, 1985 को राष्ट्रपति जी द्वारा मंजूरी दिए जाने के पश्चात् यह एक अधिनियम बन गया (1985 का 67वां अधिनियम)।

बालक नियोजन अधिनियम, 1938

वर्ष 1985 के दौरान बालक नियोजन अधिनियम, 1938 में सशोधन किया गया। इस सशोधन के अनुसार कुछ नियोजनो मे 14/15 वर्ष से कम आयु के बालकों के नियोजन के सम्बन्ध मे इस अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानो का पहली बार और उसके बाद उल्लघन करने के अपराधो के लिए निर्धारित दण्ड बढ़ा दिया गया है। इस सशोधित अधिनियम को शीघ्र ही लागू कर दिया जाएगा।

बन्धित श्रम पद्धति (सेवा की शर्तें) संशोधन अधिनियम, 1985

बन्धित श्रम पद्धति (उत्सादन) संशोधन विधेयक, 1984 संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया था और इसे 24 दिसम्बर, 1985 को राष्ट्रपति की मंजूरी मिल गई थी। इस संशोधन से ठेका श्रम और अन्तर्राज्यिक प्रवासी श्रमिकों को भी बन्धित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976 में परिभाषित बंधुआ श्रमिकों के समान ही माना जाएगा।

ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970

राष्ट्रपति जी ने 28–1–86 को ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970 का संशोधन करते हुए एक अध्यादेश जारी किया जिसके अनुसार इस अधिनियम में उपयुक्त सरकार की परिभाषा को इस प्रकार बदला गया है कि किसी भी प्रतिष्ठान के लिए औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 और ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970 के अधीन उपयुक्त सरकार एक ही होगी। इस अध्यादेश को बदलने के लिए संसद् के बजट अधिवेशन में एक विधेयक प्रस्तुत किया जाएगा।



111708

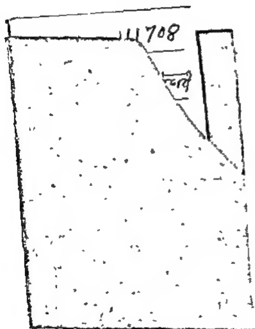
Appendix—4

SELECT BIBLIOGRAPHY

1. *A. M.* ...
2. *V. B. Singh* (Ed.) ... India
3. *Bloom and Northrup* : Economics of Labour Relations.
4. *C. K. Johari* (Ed.) : Issues in Indian Labour Policy
5. I. L. O. : Minimum Wage Fixing and Economic Development.
6. I. L. O. : Introduction to Social Security
7. HMSO : British : An Official Hand Book.
8. *J. H. Richardson* : Economic and Financial Aspects of Social Security.
9. *B. Gilbert* : The Evolution of National Insurance in Great Britain.
10. The American System of Social Insurance.
11. *M. R. Sinha* (Ed.) : ... Economics of Man-Power Planning.
12. *J. N. Sinha & P. K.* ... : Wages and Productivity in Indian Industries
13. *V. B. Singh* (Ed.) : Labour Research in India ...
14. Government of India : Report of the National Commission on Labour.

Journals and Reports :

1. India Journal of 'Labour Economics', Lucknow.
2. Indian Labour Journal, Simla.
3. Indian Labour Year Book.
4. International Labour Review, Geneva.
5. British Journal of Industrial Relations.
6. Economic and Political Weekly.
7. भारत 1985–86
8. श्रम मन्त्रालय रिपोर्ट 1985–86 एव 1986–87
9. योजना ।


11708